श्रीकल्कि-पुराण



लेखक:

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद् षट्-दर्शन, २० स्मृतियों

एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार

卐

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली [उ०प्र०]

प्रकाशक
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब,
बरेली ।

लेखक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
श्री रामभक्त

प्रथम संस्करण
१९७०

मुद्रक
शेखर प्रिन्टर्स
वृन्दावन दर्वाजा,

मूल्य
सात रुपए पिचहत्तर पैसे (रु० ७ ७५)

कल्कि अवतार-रहस्य

प्रथम अध्याय

ईश्वरीय शक्ति का प्राकट्य

समस्त धर्मों का मूल ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखना है। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो 'धर्म' की भावना तभी जन्म लेती है, जब मनुष्य समस्त जगत की व्यवस्था का मनन करते हुए उसके आदि स्रोत को ढूंढने का प्रयत्न करता है। यों खाना, सोना और प्रजनन सभी प्राणियों के लिये एक स्वाभाविक नियम है, पर मनुष्य जैसे विवेकयुक्त प्राणी का प्रधान लक्षण यही है कि वह जो कार्य करे, जिन नियमों और व्यवस्थाओं को ग्रहण करे उनकी युक्तियुक्तता तथा मूल आधार पर भी विचार करले। इसी महान आवश्यकता की पूर्ति के लिये पिछले हजारों वर्षों से सब देशों और जातियों के विद्वान ईश्वर के अस्तित्व और मानव-कर्तव्यों पर विचार-विमर्श करते आये हैं। उनमें से किसी ने उसको आकाश स्थित किसी सर्वोच्च स्थान में विराजमान, सर्वाधिक शक्तिशाली देवता के रूप में माना और किसी ने समस्त विश्व में व्याप्त एक महाशक्ति के रूप में। ईश्वर सम्बन्धी यही विचारधारा और उसमें उत्पन्न होने वाले अनगिनती प्रश्न तथा उनके समाधानों का संग्रह ही 'मजहब या धर्म' कहलाया। यों साधारण दृष्टि से लोग सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं, आचार-विचार सम्बन्धी नियमों को भी 'धर्म' कहने लगते हैं, पर जब तक उनका सम्बन्ध ईश्वर से नहीं जोड़ा जाता है, उनको ईश्वरीय आदेश के अनुकूल सिद्ध नहीं किया जाता है, तब तक उनका महत्व सामयिक ही रहता है, उन्हें 'स्थायी धर्म' का दर्जा प्राप्त नहीं हो सकता।

दो शब्द

'कल्किपुराण' का महत्व वर्तमान समय में विशेष बढ़ गया है। यह मुख्यतः 'युग-परिवर्तन' से सम्बन्ध रखता है और इस समय परिवर्तन की भावना संसारव्यापी हो रही है। लोग यह नहीं समझ पाते कि एक तरफ मनुष्य ज्ञान-विज्ञान में आशातीत उन्नति करके प्रकृति का स्वामी बन रहा है और दूसरी तरफ वह जीवन-निर्वाह के साधनों को आपस में आवश्यकतानुसार बाँट कर व्यवहार में भी नहीं ला सकता। इस परस्पर विरोधी दृश्य को देख कर यही प्रतीत होता है कि हमारी 'सभ्यता' के जड़मूल में ही कोई खराबी है। यह तो सब कोई अच्छी तरह जानते हैं कि जब तक संसार में न्याय और सत्य की स्थापना न होगी और प्रत्येक मनुष्य को उसका न्यायोचित भाग प्रदान न किया जायगा तब तक असंतोष और अशान्ति की अग्नि किसी रूप में धधकती ही रहेगी।

'कल्कि' की विशेषता इसी बात में है कि वे इस ज्वाला को शान्त करके संसार में 'सतयुग' की स्थापना करेंगे इसमें तो सन्देह नहीं कि दैवी-शक्ति के अतिरिक्त और किसी उपाय से काम लेकर वर्तमान अह और स्वार्थपरता की भावना से ओत-प्रोत दुनिया का सुधार नहीं किया जा सकता। क्योंकि इस समय संसार में, राष्ट्रों में, समाज में, व्यक्ति में जो दोष उत्पन्न हो गये हैं, उनको कोई समझता न हो ऐसी बात नहीं है। इस समय विद्या, शिक्षा और प्रचार-कार्य की इतनी अधिकता हो गई है कि छोटी आयु के लड़के भी सार्वजनिक-जीवन और संसारव्यापी परिवर्तनों की बातों को इतना जान लेते हैं जितना सौ, दो सौ वर्ष पूर्व परिपक्व आयु के पढ़े-लिखे व्यक्ति भी नहीं जान पाते थे। इस समय समाचार पत्र रेडियो, टेली-विजन, दूरवर्ती देशों के भ्रमण की सुविधा आदि की इतनी भरमार हो गई है कि राह चलता व्यक्ति भी इधर-उधर से सुनकर संसार की राजनैतिक और सामाजिक प्रगति का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

पर यह जान कर भी कि इस समय मनुष्य मात्र की एकता, पारस्परिक सहयोग और सामूहिक प्रयत्नों के बिना मनुष्य का जीवन

मध्य ही ठहरेगा। यहाँ पर ऐसे भी व्यक्ति हैं जो सड़क पर पड़े पत्थर को सेंदुर लगा कर देवता के रूप में पूज लेते हैं और ऐसे 'ब्रह्मज्ञानी' भी मौजूद हैं जो समस्त धर्म व्यवहारों को 'माया' बतलाते हैं और ईश्वर को एक भाव-रूप शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते। वे लोग निस्संकोच भाव से 'अहं ब्रह्मास्मि' का उद्घोष करके स्वयं ही 'ईश्वर' होने का दावा करते हैं और सब लोगों से उसी प्रकार का व्यवहार किये जाने की माँग करते हैं।

वास्तव में हिन्दू-धर्म शास्त्रों का इतना अधिक विस्तार हो गया है कि उससे एक निश्चित मत या तथ्य का निकाल लेना और सब लोगों को तदनुसार आचरण-व्यवहार करने की प्रेरणा दे सकना बड़ा कठिन कार्य है। जब तक इस शास्त्र रूपी सागर का भली प्रकार मथन न किया जाय तब तक सत्य-तत्त्व रूपी नवनीत का प्राप्त हो सकना सम्भव नहीं हो सकता।

जहाँ संसार के प्रायः सभी धर्मों ने ईश्वर के निराकार या साकार—दो रूपों में से किसी एक को स्वीकार कर लिया है और उसी प्रकार से उसकी पूजा उपासना करते रहते हैं, वहाँ हमारे शास्त्रों में एक ही स्थान पर ईश्वर को "निर्गुण और सगुण" दोनों बतलाया गया है और कह दिया गया है कि—

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज सोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

वास्तव में जिसने धर्म-तत्त्व का गहन अध्ययन करके उसके सार-तत्त्व को ग्रहण किया है उसकी व्यापक दृष्टि में साकार-निराकार या सगुण-निर्गुण का भेद अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। वह जानता है कि स्थूल-जगत में भी सब वस्तुयें आकाशमण्डल में इतने छोटे रूप में रहती हैं कि उनको किसी प्रकार नहीं देखा जा

नये उपाय निकालने लगता है, जिनमें से कुछ तो ऐसे क्रूरतापूर्ण होते हैं कि जिनका वर्णन कर सकना भी संभव नहीं।

'कल्कि' की वास्तविकता का आशय हम वर्तमान हिंसक-भावना युक्त मानवीय सभ्यता के स्थान पर एक ऐसी नई सभ्यता की स्थापना समझते हैं जिसमें मनुष्य किसी अन्य मनुष्य को मारने, काटने, लूटने का विचार भी मनमें न ला सकेगा। आज हम प्रायः 'आध्यात्मिकता' का नाम लेते हैं, पर वह कभी सार्वजनिक व्यवहार में लाई गई या नहीं इसका कह सकना कठिन है। शायद प्राचीन ऋषि-मुनियोंमें से थोड़े बहुत ऐसे हुये हों कि जिन्होंने ने हिंसा का सर्वथा त्याग कर प्रेम के सिद्धान्त के आधार पर व्यवहार किया हो। ऐतिहासिक युग में महावीर, बुद्ध और ईसा ने इसका उदाहरण उपस्थित करके नई सभ्यता की स्थापना की चेष्टा की, पर उनको बहुत थोड़ी और अस्थायी सफलता ही मिली। आज ईसा और बुद्ध के 'अनुयायी' कहे जाने वाले ही हिंसा और युद्ध के सब से बड़े समर्थक और संचालक बने हुये हैं।

'कल्कि' को यद्यपि हाथ में तलवार लिये चित्रित किया गया है पर उसका आशय 'ज्ञान की तलवार' से है। अनेक 'कल्कि-भक्तों' का अब भी यह मत है कि भावी अवतार को 'निष्कलंक' नाम से पुकारने का कारण यही है कि वह संसार में हिंसा, द्वेष, रक्तपात आदि का कोई ऐसा काम न करेंगे, जिसमें किसी प्रकार का कलंक लगने की संभावना हो। 'कल्कि पुराण' आदि में भावी अवतार द्वारा समस्त दुष्टों के संहार का वर्णन है, पर वास्तव में वे आपस में ही लड़-भिड़ कर नष्ट होंगे। जब इस प्रकार 'हिंसा' की अति हो जायगी और मानव जाति अपने ही बनाये अस्त्र-शस्त्रों से अपना सर्वनाश करने को उद्यत होगी तब इस भयंकर हत्या काण्ड को रोकने और हिंसा की मनोवृत्ति की हानि और अमानुषिकता को समझा कर मनुष्यों को सहयोग और प्रेम के मार्ग पर चलने की शिक्षा देने के लिये ही 'अवतार' का आविर्भाव होगा। वह 'अवतार' मनुष्य रूपमें होगा, या किसी संस्था या संगठन के रूप में होगा या भाव रूप होगा, इस सम्बन्ध में विवाद उठाना अनावश्यक है। वास्तव

भारतीय धर्मशास्त्रों की मान्यता है कि सभी मुख्य अवतारों का एक विशेष उद्देश्य किसी संसार व्यापी आवश्यकता को पूरा करने का रहता है। अथवा गीता के शब्दों में यों कहना चाहिये कि "जब संसार में अधर्म की वृद्धि और धर्म की हानि होने लगती है और इस कारण मानव-प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और दुष्ट स्वभाव के लोग उसे मनमाने ढंग से चलाना चाहते हैं, तब भगवान उस प्रति-रोध को समाप्त करने के लिये और साथ ही मनुष्यों को यह शिक्षा देने के लिये आते हैं कि वे भविष्य में वैसा अनुचित कार्य करके अपने और अन्य लोगों के ऊपर संकट न बुलायें।" हिन्दू शास्त्रों के अनुसार अब तक जो नौ अवतार हो चुके हैं उनमें से जन्तु-जगत से सम्बन्धित तीन—मत्स्य, कच्छप और वाराह को छोड़ कर शेष छः विश्व की किसी महती आवश्यकता अथवा संकट के निवारणार्थ ही अवतरित हुए थे, उनके प्राकट्य का उद्देश्य क्या था इसकी जो व्याख्या विभिन्न दृष्टिकोणों से की जाती है उसमें कुछ अन्तर होने पर भी मूल तथ्य में समता ही देखने में आती है।

सबसे पहला स्थान हमारे पुराणों का है, क्योंकि उन्होंने अवतारों की जीवन-घटनाओं को अधिक से अधिक विस्तार देकर रोचक कथाओं की अनुगामी प्रचलित की है। इन कथानकों का सार बंगाल के महाकवि जयदेव ने अपने 'गीत गोविन्द' काव्य ग्रन्थ में निम्न श्लोकों में दिया है—

तव कर कमल वरे नखमद्भुत शृङ्गम्
दलित हिरण्यकशिपु तनु भृङ्गम्।
केशव धृत नरहरि रूप जय जगदीश हरे॥

"हे नृसिंह देव! आपने अपने विशाल हाथों के तीक्ष्ण नखों से महादैत्य हिरण्यकशिपु के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। हे भगवान आपकी सदा जय हो।"

में किये गये परिवर्तन प्रारम्भ में विचारमूलक और भाव रूप ही होते हैं पर आगे चल कर वे किसी व्यक्ति या संगठन में 'मूर्त रूप' भी ग्रहण कर लेते हैं। सामान्य बुद्धि की जनता, जो विचार शक्ति के स्वरूप और प्रभाव को अनुभव करने में असमर्थ होती है व्यक्ति को ही प्रधान रूप से 'अवतार' मानने लग जाती है।

'कल्कि पुराण' में भावी अवतार की जो कथा वर्णन की गई है और भावी अवतार को एक राजा के रूप में चित्रित करके उसकी बहुसंख्यक रानियों और पुत्रों का वर्णन किया गया है, तथा अनेक युद्धों में शत्रु पक्षों की अद्भुत वीरता दिखलाई गई है, उसका मूल उद्देश्य इसको अन्य पुराणों के समान रोचक और 'धर्म कथा' से युक्त बनाना ही है। पर सामान्य पाठकों के मन पर यही भावना उत्पन्न होती है कि कल्कि कोई बड़ा भीषण युद्ध प्रिय क्रूर योद्धा होगा जो अपना अधिकांश जीवन मार-काट और रक्त की नदियां बहाने में ही व्यतीत करेगा। पर यह धारणा सर्वथा भ्रम है। जो व्यक्ति पुराणों के वास्तविक रहस्य को नहीं समझते और कथाओं की रचना में से अलंकार, रूपक, उपमा आदि को अलग कर, उनका वास्तविक आशय हृदयंगम करने में समर्थ नहीं होते वे ही ऐसे भ्रम में पड़ते हैं।

शास्त्रों और संत महापुरुषों ने 'कल्कि' भगवान का क्या स्वरूप बतलाया है, उनकी लीलाओं (कार्यों) का वास्तविक अर्थ क्या है, और वे किस नवीन आदर्श का अनुसरण करके नये जगत का निर्माण करेंगे इन सब प्रश्नों का विवेचन और व्याख्या करने के लिये पुस्तक के आरम्भ में श्री सत्यभक्त जी द्वारा लिखित 'कल्कि अवतार रहस्य' शीर्षक निबन्ध दिया जा रहा है, जिससे पाठकों की सब शंकाओं का निराकरण हो जायगा और यह भी विदित हो जायगा कि 'अवतार' किन महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कैसे रूप में प्रकट होते हैं।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

का कुछ पालन भी करने लगता है, तो भी उसमें आपाधापी की प्रवृत्ति ऐसी प्रबल होती है कि वह चाहता है कि संसार के समस्त पदार्थ उसी को मिल जायें। 'वामन भगवान' देखने में तो छोटे से थे, पर दान में पृथ्वी को नापा तो तीन ही कदमों में तीनों लोकों को ग्रहण कर लिया। इसे प्रवृत्ति-मार्ग का कुछ उन्नत रूप माना गया है। इसे जीव की 'वैश्यावस्था' भी कह सकते हैं।

तीसरा अवतार परशुराम जी का हुआ। यह जीव की उस अवस्था की सूचना देता है। जब मनुष्य स्थूल पदार्थों को जमा करते-करते उनसे थक जाता है, उसे मानसिक शांति नहीं मिलती तो वह प्रवृत्ति-मार्ग से हटकर निवृत्ति की तरफ ध्यान देने लगता है। वह एक साथ तो प्रवृत्ति को नहीं त्याग सकता, पर स्थूल पदार्थों के बजाय शक्ति और अधिकार की लालसा करने लगता है। परशुराम कुछ अंशों में त्यागी थे पर बड़े क्रोधी और शक्ति के उपासक थे। यह जीव की मध्यम अवस्था (प्रवृत्ति-निवृत्ति का संयोग) का प्रथम स्वरूप है। इसे 'क्षत्रिय-अवस्था' का पूर्व भाग भी कह सकते हैं।

फिर रामावतार का वर्णन आता है। भगवान राम के जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति का काफी संघर्ष दिखलाई पड़ता है। चाहे उनके पारिवारिक जीवन को देखा जाय और चाहे राजनैतिक-जीवन पर दृष्टि डाली जाय उनको सदा दोनों ओर खींचने वाली शक्तियों के बीच में चलकर प्रयत्नपूर्वक ही अपना मार्ग निकालना पड़ा। वन-गमन और सीता-परित्याग की घटनायें इसी की उदाहरण हैं। इस तरह का जीवन ऊपर से तो कठिनाइयों से भरा और कष्ट-पूर्ण जान पड़ता है, पर कर्तव्य-पालन की उच्च मनोवृत्ति का पालन करने से उसमें मनुष्य को बड़ा आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता रहता है। यह जीव की 'क्षत्रिय अवस्था' का उच्च आदर्श-युक्त जीवन कहा जा सकता है।

कृष्णावतार मनुष्य की धर्मोन्नति में उस अवस्था का सूचक है जब मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति के संघर्ष में से गुजर कर निवृत्ति को

कल्कि पुराण की विषय-सूची

(कल्कि अवतार-रहस्य)

उन्हीं की माला और उनके गुणों का वर्णन करके लोगों को उससे लाभ उठाने की प्रेरणा दी। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि सब जीवात्मा एक साथ किसी भी नीच या उच्च अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते। यदि ऐसा हो तो भगवान की बनाई इस बहुरंगी दुनिया की विशेषता और आकर्षण ही समाप्त हो जाय। इस लिए अब भी संसार में जंगली से लेकर योगियों और महात्माओं तक इन श्रेणियों में से प्रत्येक के व्यक्ति मौजूद हैं। और सच पूछा जाय तो नीची नीची श्रेणी के व्यक्तियों की ही भरमार है। ऊंची श्रेणी के नि:स्वार्थ भावना वाले तो सौ में से दो-चार और विश्व-कल्याण के व्रतधारी हजारों-लाखों में से एक मिल सकते हैं।

इस लिये जब हम अवतारों की प्रत्यक्ष लीलाओं का वर्णन या अभिनय करते हैं और उनसे भगवान के स्वरूप में झूमते हैं तो साथ ही हमको उनकी आन्तरिक विशेषताओं पर भी ध्यान देना चाहिये। उनके उदाहरण से हमको समझना चाहिये कि संसार में बाधाओं अथवा कठिनाइयों से घबराना और भागना ठीक नहीं, वरन् छोटा-बड़ा बढ़िया-घटिया जो कुछ दिखाई पड़ता है वह सब भगवान के विधान के अनुसार ही है भगवान ने जीव को प्रयत्न करने की शक्ति अवश्य दी है जिससे वह चाहे तो प्रयत्न करके किसी भी दर्जे को अन्य लोगों की अपेक्षा शीघ्र पार कर सकता है, पर भिन्न भिन्न विकास के लिए सब जीवात्माओं को उपरोक्त सभी अवस्थाओं में से गुजर कर उनका अनुभव प्राप्त करना अनिवार्य है।

अवतारों के जीवन पर विचार करने का यह एक बुद्धिसंगत और लाभदायक तरीका है। इसको ठीक प्रकार समझ लेने से हम किसी भी अवस्था में रहने पर उसका उत्तमता-पूर्वक उपयोग कर सकते हैं और क्रमानुसार आगे बढ़ते चले जा सकते हैं। अवतार एक प्रकार से हम सबके, मानव-जाति के आदर्श स्वरूप हैं और वे ही प्राचीन काल से हमारा मार्ग-दर्शन करते रहे हैं। उनकी भक्ति और पूजा करने के लिये

में जरदुश्त, कनफ्यूशस, मूसा, ईसा, मुहम्मद आदि का आविर्भाव ऐसे ही अवसरों पर हुआ था। देखने में वे भी अन्य लोगों की तरह चार हाथ-पाँव और पाँच इन्द्रियों से युक्त मनुष्य ही थे, पर उनके अन्तर में विश्व-ब्रह्माण्ड का संचालन करने वाली उस महान चैतन्य-सत्ता का प्रकाश इस प्रकार जगमगा रहा था कि उनको उस निराशा के अन्धकार में सत्य-मार्ग दिखलाई पड़ गया और उन्होंने उसके द्वारा संसार में एक नई शक्ति उपस्थित करके मानव-समाज को नष्ट होने से बचा लिया। तब सर्व साधारण ने उनकी पूजा की और उनकी असाधारण शक्ति को देखकर उनको 'अलौकिक पुरुष' मान लिया। इसी भाव को हम 'अवतार' के द्वारा प्रकट करते हैं।

ऊपर 'अवतार' का जो विवेचन मनुष्य के मानसिक-विकास और सामाजिक-विकास की दृष्टि से किया गया है, उसका आशय यह नहीं कि 'भारत के अवतार' कल्पित हैं अथवा वे सामान्य व्यक्ति ही थे इस बात को सभी समझदार लोगभी स्वीकार करते हैं कि अवतारके रूप में प्रसिद्ध वे महामानव, एक नवीन युग के स्थापनकर्ता हुएहैं और उन्होंने किसी महासंकट से मानवता की रक्षा करके उसे प्रगति मार्ग पर अग्रसर होने की शक्ति प्रदान की है। कुछ लोग, जिनको हम'ज्ञानमार्गी' कह सकते हैं, इस युग-परिवर्तन' की घटना को प्रधान रूप से भावना-त्मक मानते हैं और उसमें किसी व्यक्ति विशेष के भाग को गौण ही बतलाते हैं। दूसरे लोग जिनको 'भक्ति-मार्गी' कहा जा सकता है, इसमें भगवान के 'साकार अवतार' की महिमा का ही वर्णन करते हैं। इन दोनों विचार-धाराओं का विवेचन आगे अध्याय में किया जायगा।

बढ़ाकर समस्त आर्यावर्त पर एकच्छत्रीय अधिकार जमाने की चेष्टा की। पर भगवान राम ने उसे अपनी दृढ़ता और त्याग-तपस्या के बल पर पराजय कर दिया, जिसके उपलक्ष्य में वे आज तक भारतवासियों की दृष्टि में परमात्मा के एक विशेष अवतार के रूप में पूज्य और उपास्य बने हुये हैं।

भगवान कृष्ण भी साम्राज्यों और साम्राज्याभिलाषियों के विध्वंसक थे। कंस के साथ तो जन्मकाल से ही उनका विरोध था और युवावस्था में पदार्पण करते ही जरासन्ध से भी—जो उस समय एक बड़े भूभाग की सम्राट पदवी को प्राप्त कर चुका था—उनकी शत्रुता हो गई। इसके सिवाय उस समय दुर्योधन, शिशुपाल, पौण्ड्रक, हंस-डिम्भक आदि और भी अनेक राजा सम्राट बनने की चिन्ता में व्यस्त थे और अपनी प्रजा का शोषण करके सैन्य शक्ति को बढ़ाने में जुटे हुये थे। भगवान कृष्ण ने अपनी नीतिज्ञता और दूरदर्शिता से इन स्वार्थपर एकतन्त्र शासकों का अन्त करके ऐसी परिस्थिति लादी जिसमें हजारों वर्ष तक देश में गण-तन्त्र शासन प्रचलित रह सका। देश की राजनैतिक स्थिति का परिवर्तन करने के साथ ही भगवान कृष्ण समाज में सेवा, सहयोग, प्रेम-भाव और कला की प्रवृत्तियों के प्रवर्तक और वृद्धि करने वाले भी हुये। उन्होंने लोगों को आत्म-भावना का उपदेश दिया और समाज तथा धर्म की रक्षा के लिये मनुष्य को किस प्रकार निःस्वार्थ और निर्भय भाव से उद्यत रहना चाहिये इसका सर्वश्रेष्ठ उपदेश गीता द्वारा उपस्थित किया। उनका यही एक महान दैवी कार्य ऐसा है जिससे आज हम भारतवासी ही नहीं संसार के अन्य देशों के भी बहुसंख्यक व्यक्ति उनको संसार की सबसे महान ईश्वरीय विभूति स्वीकार करते हैं।

भगवान बुद्ध का आविर्भाव समाज में उत्पन्न हो गई कितनी ही भयंकर सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए हुआ। उस समय यज्ञों में पशुहिंसा की अत्यधिक वृद्धि के कारण अनेक प्रकार

ईश्वर और धर्म की दृष्टि से हमारे देश का स्थान विशिष्ट है। अन्य देश वालों ने तो इस सम्बन्ध में थोड़ा-सा विचार करके ईश्वर को एक महान शासक की तरह दण्ड और पुरस्कार का कर्ता मान लिया और अपने समाज में प्रचलित नियमों तथा ईश-प्रार्थना के विधि-विधानों को ही 'धर्म' का नाम दे दिया। पर भारतीय मनीषियों ने अपना समस्त जीवन [redacted] इस समस्या का निर्णय करने में लगा दिया और इस सम्बन्ध में सूक्ष्म से सूक्ष्म खोज करके धर्म-कलेवर को इतना विस्तार रूप दे डाला कि संसार की कोई समस्या, जीवन का कोई क्षेत्र तथा समाज और व्यक्ति का कोई व्यवहार उससे पृथक न रह सका। यदि यह कहा जाता है कि 'एक हिन्दू का सारा जीवन ही धर्ममय है' तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। यहाँ के अपढ़ से अपढ़ व्यक्ति भी प्रत्येक छोटे-बड़े कार्य में 'धर्म' का नाम ले लेते हैं और 'अधर्म' से बचा रहने की चेष्टा करते हैं। यह बात दूसरी है कि शिक्षा और ज्ञान के अभाव से अथवा समय के प्रभाव से वे धर्म के वास्तविक रूप को भूल गये हों और कितनी ही विपरीत बातों को भी भ्रमवश 'धर्म' मान बैठे हों।

ईश्वर का स्वरूप और उसके कार्य—

यद्यपि यहूदी, ईसाई, मुसलमान जैसे प्राचीन और प्रचलित धर्मों के अनुयायियों ने ईश्वर को एक निश्चित साकार रूप देकर उसके आदेशों का पालन करना अवश्य मान लिया है और वे सब अधिकांश में तदनुसार आचरण भी करते आये हैं। उन्होंने अपने धार्मिक नियम भी अपनी भौतिक परिस्थिति की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी और लाभदायक निश्चित किये हैं, जिससे बहुत ही अधिक मतभेद होने की गुंजाइश नहीं रहती। पर हिन्दू-धर्म की स्थिति इस सम्बन्ध में बड़ी विचित्रतापूर्ण है। यदि यह कहा जाय कि यहाँ के समाज में जितने स्तर के व्यक्ति मिलते हैं, उनके लिये उसी स्तर की धर्म-प्रणाली का निर्माण कर दिया गया है, तो यह अतिशयोक्ति न

किया कुछ नहीं कर सकता। यह सामूहिक सवर्ग की प्रवृत्ति अदृश्य अवतार (महाकाल) ही समय-समय पर भड़काते है। वे निराकार है, इस लिए उनका कार्य-क्षेत्र भी सूक्ष्म जगत ही होता है। वे भाव-स्वरूप-चैतन्य है, इस लिये विश्वव्यापी चैतन्य-तत्व में ही उनकी इच्छा सक्रिय होती है। उन्हीं की स्फुरणा से प्रबुद्ध व्यक्ति बड़े-बड़े काम करने लगते है। उन्हें यश,शौर्य, श्रेय,साफल्य उपलब्ध होता है। इस लिये उन्हीं को कर्ता, विजयी, उद्धारक, अवतार मानते हैं। पर वास्तविकता कुछ और ही होती है। उनको प्रेरणा देने वाला सूत्रधार पर्दे के पीछे छिपा बैठा रहता है, उसे चर्म-चक्षु कब देख सकते है।

अनीति को हटाकर उसके स्थान पर औचित्य एवं विवेक को प्रतिष्ठापित करने का दैवी प्रयोजन अनेक व्यक्ति पूर्ण करते है और उनको यश भी प्राप्त होता है। महत्व-पूर्ण अवसरों पर यह अवतरण प्रक्रिया अनादि काल से उपस्थित होती आई है। जब फिर वैसी ही परिस्थितियां उत्पन्न हो जाने पर उसी प्रकार की पुनरावृत्ति होने वाली है।

भावनात्मक अवतरण के उदाहरण—

"प्राचीन काल में एक बार उत्पादन और वैभव ठप्प हो गया। सभी देव और असुर मानस में श्रमित होकर बैठ गये तब "महाकाल" ने समुद्र-मन्थन की प्रेरणा की। देवता और असुरों का सम्मिलित सहयोग सम्भव हो गया और समुद्र में ऐसे १४ 'रत्न' निकले जिन्हे पा कर संसार की समृद्धि अनेक गुनी बढ़ गई। पर समुद्र-मथन का कार्य सुमेरु पर्वत से चलाने के लिए इस वजन की आवश्यकता पड़ी कि इतनी भारी मथानी (पर्वत) को कहाँ रखा जाय ? उसका भार कौन सम्भाले ? तब कच्छप-अवतार आगे आया। उसने आधार बनना स्वीकार किया। उसी की पीठ पर समुद्र-मन्थन हो सका। कच्छप-अवतार की जय बोली गई, क्योंकि उसने एक बड़ा उत्तरदायित्व संभाला था।

भाषा में आध्यात्मिक सहायता की आवश्यकता है। इस समय मनुष्य के ऊपर भौतिकता का नशा, जिस प्रकार चढ़ गया है, उसे देखते हुए आवश्यकता है कि वह भगवान को फिर से समझे उनके लिये भगवान को फिर से सिद्ध करने की आवश्यकता है। उन्होंने 'एटम बम' और 'हाइड्रोजन बम' की शक्ति को देख लिया है, अब आवश्यकता है कि वे दुष्टता पर विजय पाने को ईश्वरीय-शक्ति को भी देखें। मनुष्य के सम्मुख यह प्रकट हो जाना चाहिये कि ईश्वर की महिमा कोई कहानी किस्सा है अथवा एक वास्तविक सत्य? इस समय बहुत आवश्यक है कि कोई इस बात का सबूत लोगों के सामने उपस्थित करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मनुष्य तो ईश्वर की ऊँचाई तक पहुँच नहीं सकता इस कारण करुणा-सागर भगवान को ही मनुष्य-लोक में अवतीर्ण होना पड़ेगा।

दैवी अवतरण—

जैसा कि इस समय देखने में आ रहा है, मनुष्य भगवान को उसी समय ठीक तरह से समझ सकता है जब वह मानव-शरीर में उसके सामने खड़ा हो, चले-फिरे और उसके साथ मिलकर विविध प्रकार की लीलायें करे। संसार को भगवान की पूर्ण रूप से आवश्यकता है, वह भी केवल भावना रूप में नहीं वरन् स्थूल दृष्टि से भी।" वे ऐसा भगवान चाहते हैं जो उन्हीं में से एक जान पड़े, उनकी चिन्ता करें, उनको प्रेम करें, उनके लिये परिश्रम करें, उनके लिए कष्ट सहन करें। वे चाहते हैं कि भगवान उनके पास आकर उनको शिक्षा दें, उनको नई दैवी-सम्पदा का मार्ग-दर्शन करावे और यह सब काम वह उन पर विशेष भार डाले बिना स्वयं ही पूरा करें।"

मानव-जाति का इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भरा हुआ है, जब दयालु भगवान ने पृथ्वी पर प्रकट होकर मानवता की रक्षा की। मनुष्य इस बात को जानते हैं, पर 'दैवी माया' के प्रभाव से फिर भूल जाते हैं। इस समय तो वे इस बात को स्वीकार करते

जाता और फिर वे ही प्रकाश स्थूल बनते हुये दिखाई पड़ने लगते लग जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक प्रकार की शक्ति भी जब तक निष्क्रिय अवस्था में रहती है तब तक ऐसी अव्यक्त होती है जिसका कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता। पर जब वही किसी व्यवहार में आने लगती है तो उसका अस्तित्व सब पर प्रकट हो जाता है और सबको उस पर विश्वास करना पड़ता है।

अवतारवाद का सिद्धान्त—

सभी धार्मिक धर्मों के अनुयायी ईश्वर को जगत का कर्ता और संचालक मानते हैं और साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि उसकी तरफ से समय-समय पर प्रेम देवदूत (पैगम्बर) या जीवन-महात्मा (जीव मुक्त) भेजे जाते हैं, जो जनसाधारण का मार्ग-दर्शन करके समयानुकूल और यथार्थ धार्मिक नियमों के पालन की शिक्षा देते हैं। पर हिन्दू धर्म में इससे भी बढ़ कर यह प्रतिपादित किया गया है कि संसार में व्यवस्था कायम रखने और विशेष विकृतियों को दूर करने के लिये भगवान स्वयं मानव-रूप में अवतीर्ण होते हैं। भगवान सर्व-शक्तिमान हैं और वे जैसी परिस्थिति देखते हैं वैसी ही व्यवस्था कर सकने में समर्थ हैं। उनका उद्देश्य, जिसकी पूर्ति के लिये उन्होंने सृष्टि-रचना करके जीवात्मा को संसार में भेजा है, यही है कि उसका क्रमशः विकास और उत्थान हो और वह निरन्तर प्रगति करता हुआ अन्ततः उनका सान्निध्य प्राप्त कर ले। इस लिये संसार में जब किसी महत्वपूर्ण व्यक्तियों या किसी समुदाय द्वारा इस प्रगति-पथ में बाधा डाली जाने लगती है—विकास की गति में रोक अटकाया जाने लगता है, तभी वे उस अवरोध को मिटाने के लिये स्वयं आते हैं अथवा प्रेरणा देकर किसी जीवन्मुक्त महात्मा को उसकी पूर्ति में लगा देते हैं। इसी भावना के आधार पर भारतवर्ष में राम, कृष्ण, बुद्ध आदि का अवतार और विदेशों में जरथुस्त, मूसा, ईसा, कनफ्यूशस, मोहम्मद आदि को ईश्वर के प्रतिनिधि (पैगम्बर) माना गया है।

भरने के लिए, एक नवीन सभ्यता का श्रीगणेश करने के लिए और पृथ्वी पर सुख-शान्ति-समृद्धि को लाने के लिए। यही जगत्-माता का कार्य हो सकता है। इसके लिये शक्ति की आवश्यकता होगी, और वह अवश्य उद्धारक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति लेकर आयेगा जिसकी मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकते। वे केवल फल-लाभ—फल को देखकर ही उसका निर्णय कर सकेंगे।

वर्तमान जगत और उसकी समस्या—

आज की दुनिया भगवान कृष्ण, या बुद्ध देव, अथवा ईसामसीह मुहम्मद आदि के सामने की दुनिया से सर्वथा भिन्न है। उस समय संसार छोटे-छोटे टुकड़े में बंटा था, जो एक दूसरे से अनजान थे और कभी अवसर पड़ने पर बड़ी कठिनाई से एक दूसरे के निकट पहुंच पाते थे। पर आज समस्त पृथ्वी एक साधारण देश की तरह बन गई है, जिसके निवासी प्रति दिन परस्पर मिलते-जुलते रहते हैं और जिनके स्वार्थ भी अधिकांश में एक ही होते हैं। यद्यपि इस समय समस्त संसार की समस्यायें—भोजन, वस्त्र, मकान, शान्ति, प्रसन्नता सम्बन्धी एक ही हैं, पर उनको विभिन्न दृष्टि-कोण से देखा जाता है। इससे बड़ी उलझनें पैदा हो गई हैं, जिन्हें सुलझा सकना मानव-बुद्धि के लिये असम्भव सिद्ध हो रहा है।

आज की सबसे बड़ी समस्या पृथ्वी पर मानव-जाति का अस्तित्व स्थिर रह सकने की है। यह प्रश्न किया जाता है कि मनुष्य पृथ्वी तल पर जीवित रहेंगे या अपने ही आविष्कारों के फल स्वरूप मर मिटेंगे? आज की सबसे बड़ी समस्या है 'एटम बम' और 'हाइड्रोजन बम' का अन्त करने की। आज की बड़ी समस्या है सदा के लिये युद्ध का अन्त करने की और पूर्ण निःशस्त्रीकरण करने की और उनके मूल कारणों का भी अन्त कर देने की। आज की समस्या है मानसिक और नैतिक दृष्टि से शस्त्रों का सर्वथा त्याग करके मानव-जाति के आध्यात्मिक पुनर्जन्म होने की। आज की आवश्यकता है एक

"इस लिए अगर संसार में कभी इस बात की आवश्यकता थी कि पृथ्वी पर 'भगवद्-शक्ति' का अवतरण हो और वह मानवीय रूप और मानवीय प्रणाली से संसार का उद्धार-कार्य करे तो वह अवसर इस समय उपस्थित है। अगर किसी जमाने में कृष्ण, बुद्ध, ईसा और अन्य दिव्य आत्माओं के आने की आवश्यकता थी, तो वह आवश्यकता इस समय सैकड़ों गुने नये रूप में मौजूद है। यह स्थिति किसी उपयुक्त साधनों से युक्त 'महान शक्ति' के आविर्भाव की राह देख रही है। इस समय अगर ईश्वरीय हस्तक्षेप न हुआ तो संसार नष्ट हो जायगा और मानव जाति मर जायगी। अतः इस समय संसार के प्रत्येक नर, नारी और बालक के लिये जगत्-उद्धारक का आगमन जीवन और मरण का प्रश्न है।"

"इस बार अवतार लेने पर भगवान संसार के लोगों को एक ईश्वर, एक धर्म, एक राष्ट्र की शिक्षा देंगे, जिससे मनुष्य-मात्र एक परिवार की तरह रहने लगें। यह भगवान का विशाल परिवार होगा। इससे कम में संसार की समस्या सुलझ नहीं सकती। जब तक किसी प्रकार का भेद भाव रहेगा तब तक पारस्परिक कलह का बीज बना ही रहेगा जो किसी समय अवसर पाकर पनप सकता है। इस प्रकार का परिवर्तन आज असम्भव जान पड़ता है पर जब काल चक्र के प्रभाव से अदूरदर्शी लोगों का अन्त हो जायगा और शेष लोगों का आध्यात्मिक पुनर्जन्म होगा तो वे जगदोद्धारक अवतार के आदेशों को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करेंगे, क्योंकि इसी में उनको अपनी रक्षा और मुक्ति दिखलाई पड़ेगी।"

'जगत-माता' के लेखक का कथन है कि "इस परिवर्तन के लिये 'अवतार' एक-एक व्यक्ति को समझाने नहीं फिरेंगे। वरन् इसके लिये वे अपनी प्रबल विचार शक्ति से मानसिक जगत को प्रभावित करेंगे, जिससे सब श्रेणी के व्यक्ति स्वयं ही नवीन आदर्शों, सिद्धान्तों की तरफ आकर्षित होंगे। अवतार के सभी कार्य सूक्ष्म जगत (ऐथरिक-

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुत वामन
पद नख नीरज जनित जन पावन।
केशव धृत वामनरूप जय जगदीश हरे ॥

"हे वामन भगवान ! आपने राजा बलि को भ्रम में डाल कर उससे तीनों लोकों का राज्य छीन लिया। आप ही अपने पैर के नाखून से लोक पवित्रकारी गंगा की धारा को प्रवाहित करने वाले हैं। हे भगवान आपकी जय विजय हो।"

क्षत्रिय रुधिरमये जगदप गत पापं,
स्नपयसि पयसि शमित भव तापं।
केशव धृत भृगुपति रूप जय जगदीश हरे।"

हे भृगुपति परशुराम ! आपने अनेक बार क्षत्रियों की रुधिर धारा बहाकर उनके पापों को धो डाला और संसार के ताप को शान्त कर दिया। हे भगवान आपकी जय-जय हो।"

वितरसि दिक्षुरणे दिक्पति कमनीयम्
दशमुख मौलि बलिं रमणीयम्
केशव धृत रघुपति रूप जय जगदीश हरे ॥

हे भगवान राम ! आपने संसार के शत्रुरूप राक्षसराज रावण के दस सिरों को काट कर दशों दिशाओं के दिक्पालों को भेंट स्वरूप दे दिया। सब लोकों में और सब देशों में आपकी जय हो।"

इसी तरह भगवान कृष्ण, बुद्ध और कल्कि की भी स्तुति की गई है। उन्होंने बस, पांच शब्दों में ही कल्कि की महाशक्ति और पराक्रम का जो चित्र खींचा है वह साहित्यिक दृष्टि से भी अनुपम है। श्री जयदेव ने कल्कि की जय जयकार करते हुए कहा है—

म्लेच्छनिवहनिधने कलियसि करवालम्
धूमकेतुमिव किमपि करालम्।
केशव धृत कल्कि शरीर जय जगदीश हरे ॥

तीसरा अध्याय

अवतार के सम्बन्ध में शास्त्रों और महात्माओं का अभिमत

गत अध्यायों में पाठकों ने अवतार के सम्बन्ध में सामान्य विवेचन तथा तर्क और बुद्धि-वादियों के मन्तव्य पढ़े। अब हम इस विषय पर हिन्दू शास्त्रों तथा विभिन्न देशों के महापुरुषों के कथनों पर विचार करेंगे। क्योंकि अवतार सम्बन्धी विचारों के उद्गम स्थान हमारे पौराणिक-ग्रन्थ ही हैं। दस अथवा चौबीस अवतारों का वर्णन सर्व प्रथम पुराणों में ही किया गया है। इस लिये यदि इस विषय को ठीक तरह से समझना हो तो हमको पुराणों में पाये जाने वाले अवतार सम्बन्धी प्रसंगों को ध्यान पूर्वक पढ़ना और मनन करना चाहिये जिससे इस सम्बन्ध में ठीक निर्णय कर सकना सम्भव हो सके।

यों तो अवतारों का न्यूनाधिक वर्णन सभी पुराणों में पाया जाता है, और एक-एक अवतार के नाम पर कितने ही पुराणों की रचना भी की गई है, पर इस सम्बन्ध में सबसे अधिक गम्भीरता पूर्ण विवेचन 'श्री मद्भागवत्' का है। उसमें अवतार का जो रहस्य और तत्व प्रकट किया गया है, उसी को भिन्न रूप और शब्दों में अन्य सब लोगों ने भी कथन किया है। 'भागवत' के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में श्री सूत जी कहते हैं—

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया॥ १॥
यस्याम्भसि शयानस्य योग निद्रां वितन्वतः।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः॥ २॥

"जिन्होंने म्लेच्छों का संहार करने के लिये हाथ में करवाल ग्रहण की है और जो दुष्टों के लिये धूमकेतु की तरह भीषण दिखाई पड़ते हैं, उन भगवान कल्कि की जय हो—सदैव जय होती रहे।"

मध्य-काल में 'दशावतार' की भावना ने ऐसा ज़ोर पकड़ा था कि शंकराचार्य जैसे 'महामानव' ने भी उनके सम्बन्ध में दस भक्ति पूर्ण श्लोक लिखे हैं। इसी प्रकार काश्मीर के प्रसिद्ध कवि क्षेमेन्द्र का 'दशावतार चरित' काव्य भी बहुत विद्वत्तापूर्ण माना गया है। इतना ही क्यों प्राकृत-भाषा में, जो मुख्यतः जैन और बौद्धों के धर्म ग्रंथों में व्यवहार में आई गई है, दस अवतारों के सम्बन्ध में एक रचना हमारे देखने में आई है, जिसमें चार चरणों में ही दसों अवतारों की स्तुति कर दी गई है—

जिण वेअ धरिज्जे महिअल लिज्जे पिट्ठहि दन्तहि ठाउँ धरा।
रिउ वच्छ बिआरे छलतनु धारे बधिअ सत्तु पआल धरा॥
कुल खत्तिय कम्पे दसमुंह कट्टे कंसिअ क्स विनास करा।
करुणा पअले म्लेच्छहि वअले सो देउ नराअण तुम्हहि वरा॥

कोई कवि किसी श्रेष्ठ दानी पुरुष को आशीर्वाद देता हुआ कहता है कि "जिन भगवान ने मत्स्य रूप में वेदों की रक्षा की, कच्छप और वाराह अवतार लेकर अपनी पीठ तथा दाँत पर पृथ्वी को रक्खा, जिन्होंने शत्रु (हिरन्यकुश) के वक्षस्थल को विदीर्ण कर दिया, जिन्होंने बलि को बहकाने के लिये बौना शरीर बना कर उसे पाताल में बाँध दिया, जिन्होंने क्षत्रिय जाति को नष्ट कर डाला, जिन्होंने रावण को काट डाला, जिन्होंने केशी और कंस को विनष्ट किया, जिन्होंने बुद्ध रूप से करुणा की धारा प्रवाहित की और जो कल्कि रूप में म्लेच्छों का मूलोच्छेद करेंगे वे भगवान नारायण आपको यथेष्ठ फल प्रदान करें।"

इस प्रकार न जाने कितने लेखकों और कवियों ने तरह-तरह के भावों से युक्त अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ दशावतारों को चढ़ाई हैं

करने वाली चैतन्य सत्ता तीन दर्जों में बँटी हुई है। उसका पहला रूप निर्गुण निराकार और अव्यक्त है। उसकी व्याख्या करने की चेष्टा निरर्थक है। क्योंकि वह संसार की किसी भली-बुरी बात से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखती, सब प्रकार से निर्लिप्त है। इस लिये वेद और शास्त्रों ने उसका जिक्र आने पर 'नेति-नेति' कह कर ही समस्या को समाप्त कर दिया है।

पर जब सृष्टि रचना का अवसर आता है तो उसका एक अंश सक्रिय होकर सगुण रूप में परिवर्तित हो जाता है जिसको ब्रह्मा विष्णु, महेश दुर्गा सूर्य, इन्द्र आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। ये सब नाम देश, काल अथवा सम्प्रदाय आदि से सम्बन्ध रखते हैं, पर वास्तव में यह विश्वव्यापी चैतन्य शक्ति का दूसरा दर्जा या रूप है जिससे सृष्टि-रचना, लोक-निर्माण आदि का कार्य सम्पन्न होता है। पर यह दैवी शक्ति, जिसे अवसर और प्रयोजन के अनुसार विभिन्न नामों से पुकारा जाता है सूक्ष्म होती है, और वास्तव में उसका कोई आकार नहीं होता। इसी का तीसरा दर्जा अवतार है जो स्थूल रूप में देखा जा सकता है और विश्व-संचालन की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भाग लेता है। यों सिद्धान्त रूप से सभी जीव, प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का अवतार है, पर शास्त्रों में विश्व-संचालन की प्रक्रिया को समझाने के लिये उन्हीं व्यक्तियों अथवा विभूतियों को 'अवतार' नाम दिया गया जिन्होंने इस जगद्व्यापी कार्यक्रम की किसी विशेष आवश्यकता की पूर्ति की है।

ऐसे दस अवतारों का वर्णन हम पीछे कर चुके हैं, पर 'भागवत' में उनकी संख्या बढ़ाकर चौबीस कर दी है। इनमें से जितने अवतार मानव देह-धारी हैं वे सब भारतवर्ष से ही सम्बन्धित हैं। पर संसार के अन्य देशों में भी समाज-व्यवस्था के कार्य में समय-समय पर ऐसे ही विशेष अवसर आये हैं और वहाँ भी लोकोत्तर पुरुषों ने प्रकट होकर उनका समाधान किया है।' उनका उद्गम स्थल भी-यही

और भगवद्भक्ति भाव से उसकी महिमा और गुणों का गान किया है, जिससे सर्व साधारण में आस्तिकता और भगवद्भक्ति की वृद्धि हो।

मनुष्य-जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ और अवतार—

जिन विद्वानों ने अवतारों की व्याख्या पर बुद्धिवाद की दृष्टि से विचार किया है उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि इनका वास्तविक आशय मानव जीवन की क्रमोन्नति से है। यह तो सभी मानते हैं कि मनुष्य के आविर्भाव से पहले 'जीव' की गति पशु-विभाग तक ही सीमित थी। पशु और मनुष्य में मुख्य अन्तर यह है कि पशु में 'अहंता' अर्थात् व्यक्तित्व का भाव नहीं होता। उसमें केवल समष्टि-भाव होता है जिससे सामूहिक भावना उसके जन्म से ही प्राप्त हो जाती है। साथ ही उसमें लघु मानसिक शरीर का भी विकास होता जाता है जिससे कुछ समय पश्चात् वह अहं-भाव (व्यक्तिगत जीवात्मा) को ग्रहण करने योग्य बन जाता है। इसी के पश्चात् मानव युग आरम्भ हो सकता है।

धर्म ज्योतिष के लक्षण के मतानुसार मनुष्य का "यह जीवन-काल प्रधानतः दो भागों में बँटा हुआ है—प्रवृत्तिकाल और निवृत्ति-काल। प्रवृत्तिकाल में मनुष्यों में ग्रहण करने की भावना ही अधिक पाई जाती है। इस लिए वह अपने लिए तरह-तरह के कर्म बन्धन उत्पन्न कर लेता है। निवृत्ति-काल में मनुष्य धीरे-धीरे प्रवृत्ति में तृष्णा को कम करता हुआ, अन्य प्राणियों से लेने के बजाय उन्हें कुछ देने का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार प्रवृत्ति-अवस्था का स्वाभाविक नियम ग्रहण करना और निवृत्ति अवस्था का स्वाभाविक नियम त्याग करना है। इन दोनों के बीच एक मध्यम अवस्था भी होती है, जिसमें मनुष्य कभी भोग की ओर ज्यादा झुक जाता है और कभी त्याग की ओर। उस अवस्था में उसके भीतर दोनों वृत्तियों का झगड़ा होता रहता है। पर अन्त में मनुष्य का ऊपर

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥ २२ ॥
एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवान् हरद्भरम् ॥ २३ ॥
ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्नाजिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥
अथासौ युग सध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ।
जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५ ॥

"सत्रहवें अवतार में सत्यवती के गर्भ से पाराशर द्वारा व्यास के रूप में अवतीर्ण हुये और लोगों की मेधा-शक्ति को क्षीण होता देखकर वेद रूपी वृक्ष की कई शाखायें बनाकर सुव्यवस्थित कर दिया। अठारहवीं बार देवताओं का कार्य सम्पन्न करने के उद्देश्य से रामचन्द्र के रूप में अवतार धारण किया तथा समुद्र पर सेतु बांधना और रावण वध आदि की वीरतापूर्ण लीलाएं कीं। उन्नीसवें और और बीसवें अवतारों में यदुवंश में कृष्ण और बलराम के रूप में प्रकट हुये और पृथ्वी के भार को हलका किया। इक्कीसवीं बार कलियुग आ जाने पर मगध देश में देवताओं के द्वेषी दैत्यों को मोहग्रस्त बनाने के लिये जिन-पुत्र बुद्ध अवतार के रूप में प्रकट हुये। इसके पश्चात् जब कलियुग समाप्त होने लगेगा और शासक वर्ग प्रजा को लूटने लगेगा तो जगत की रक्षा के लिये भगवान् विष्णुयश के घर में कल्कि रूप में प्रकट होंगे।"

इन बाईस अवतारों के अतिरिक्त दो अवतार 'हयग्रीव' और 'हंस' के और हैं जिनका वर्णन द्वितीय स्कन्ध के सातवें अध्याय में ब्रह्माजी ने नारद को इस प्रकार सुनाया था—

सत्रे ममास भगवान् हयशीरषासौ
साक्षात् स यज्ञपुरुषस्तपनीय वर्णः ।
छन्दोमयो मखमयोऽखिल देवतात्मा
वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥

से आने वाली शक्ति नीचे से जाने वाली शक्ति को दबा देती है और तब मनुष्य निवृत्ति पथ पर आरूढ़ हो जाता है।"

इस वर्णन से यह कभी नहीं समझ लेना चाहिये कि तीनों प्रकार की अवस्थाओं का परिवर्तन एक ही सांसारिक-जीवन में हो जाता है। वास्तव में इनमें से एक-एक अवस्था को पार करके दूसरी में पहुँचने तक सैकड़ों हजारों वर्ष लग जाते हैं। इसमें कोई बात असम्भव या अस्वाभाविक भी नहीं है। आत्म-विकास के लिये जीवात्मा का प्रत्येक अवस्था में से गुजर कर उसका अनुभव प्राप्त करना पड़ता है, तभी वह अग्रसर हो सकती है। संसार में स्थूल, सूक्ष्म, छायामय वासना-मय अनेक क्षेत्र हैं, जिनमें मनुष्य को रहना पड़ता है। यदि वह इनकी क्रम से जानकारी प्राप्त नहीं करेगा तो उसकी जीवात्मा को बीच में ही कहीं भी रुक जाना पड़ेगा और उसका बहुत समय के लिये पतन हो जायगा।

प्रवृत्ति और निवृत्ति के दो विभागों के नियम का ही यह परिणाम होता है कि अभी जो मनुष्य प्रवृत्ति-मार्ग पर चल रहा है उस पर निवृत्ति की बातें प्रायः असर नहीं करतीं। पर इसका अर्थ यह भी नहीं समझ लेना चाहिये कि विषयों में लिप्त रहना मनुष्य के लिये कोई श्रेष्ठ बात है। कुछ भी हो, है तो वह निम्न अवस्था ही। इस लिये हमको यही उचित है कि ईश्वरीय विधान को शिरोधार्य करते हुये प्रवृत्ति-मार्ग का अनुभव प्राप्त करके यथा सम्भव शीघ्र उससे छुटकारे की कोशिश करें। हाँ, ऐसी जल्दी भी काम की नहीं कि जिससे पुन: वापस लौट कर नीचे की गति में पड़ना हो। जैसे बहुत से व्यक्ति सामर्थ्य और योग्यता न होने पर भी किसी के बहकाने से अथवा स्वयं ही किसी उमंग में आकर गृहस्थ को भोग बिना ही युवावस्था में साधु-सन्यासी बन जाते हैं, पर कुछ समय बाद प्रवृत्ति के संस्कार जोर मारते हैं और वे ऐसी वेश में कञ्चन और कामिनी के फेर में पड़ कर गृहस्थों से भी निम्न दशा में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार के भ्रंश से उनका इतना आत्म-

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः
स्वभावः सदसन्मनश्च ।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि
विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥
अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा
दक्षादयो ये भवदादयश्च ।
स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला
नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥
यत्किञ्च लोके भगवन्महस्वदोजः
सहस्वद् बलवत् क्षमावत् ।
श्रीह्री विभूत्यात्मवदद्भुतार्णं
तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥

"परमात्मा के सर्व प्रथम अवतार तो विराट् पुरुष ही है। उसके सिवा काल, स्वभाव कार्य, कारण, मन, पञ्चभूत, अहङ्कार, तीन गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानी स्थावर और जंगम जीव, सबके सब उस अनन्त भगवान् के रूप हैं। मैं (ब्रह्मा) शङ्कर, विष्णु, दक्ष आदि सब प्रजापति, तुम और तुम्हारे जैसे अन्य भक्तजन, स्वर्ग-लोक के पालक, पक्षियों के राजा, मनुष्य-लोक के पालक नीचे के लोकों के राजा आदि संसार में जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रिय-बल, मनोबल, शरीर बल या क्षमा से युक्त हैं अथवा जो भी विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूति से युक्त हैं अथवा जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्ण वाली रूप या अरूप हैं, वे सब परम तत्त्वमय भगवत् स्वरूप ही हैं।"

पुराणकार के इतने साफ शब्दों में अवतार की सार्वत्रिकता और व्यापकता प्रकट कर देने पर भी जो मनुष्य वाराह आदि अवतारों के शेष दर्शन में ही अपनी शक्ति खर्च करते रहते हैं, उनकी बुद्धि उन्हीं सामान्य जीव-जन्तुओं की भाँति निम्न श्रेणी की ही समझना चाहिये। वे सार वस्तु को त्याग कर निस्सार पर ही दृष्टि डालते रहते हैं अथवा

पतन होता है कि उन्हें जो गति प्राप्त होती है, उसे नर्कयाम के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता।

अवतारों का उदाहरण—

इस लिए जीवात्मा का क्रम-विकास होकर मुक्ति अवस्था तक पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति की सभी अवस्थाओं को भोगता हुआ उनमें अनुभव और शिक्षा ग्रहण करें और आगे बढ़कर ऊँचे दर्जे में प्रविष्ट हों। भगवान के जिन दस अवतारों का मानव रूप में होना वर्णन किया गया है उनका आशय उन दस मुख्य अवस्थाओं से है जिनमें होकर वर्तमान मन्वन्तर की मानव जाति को गुजरना पड़ा है। इनका विवेचन करते हुए इस विषय के ज्ञाताओं ने जो मत प्रकट किया है उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

मानव-अवस्थाओं की दृष्टि से पहला अवतार नरसिंह भगवान का है। यह जीव की उस अवस्था का सूचक है जब वह पशु-विभाग को पार करके मानव विभाग में प्रविष्ट ही हुआ था। पर मनुष्य होने हुये भी उसकी बहुत सी वृत्तियाँ और आचरण पशुओं जैसे ही थे। यह जंगली अथवा आदिम मनुष्यों की अवस्था है। इस पाशविक अवस्था में एक मनुष्य दूसरे को मार कर खा भी जाता था। पर धीरे-धीरे इस प्रवृत्ति का निरोध होने लगता है और वह अपनी जाति वालों अर्थात् मनुष्यों को छोड़कर अन्य प्राणियों को ही मारने लगता है ऐसे जंगली मनुष्यों की निन्दा करने या उनसे घृणा करने का कोई कारण नहीं। प्रत्येक मनुष्य को आरम्भिक-काल में इसी अवस्था में होकर गुजरना पड़ा था। इसको मानवता का अंशकाल कह सकते हैं। इसको जीव की 'शूद्रावस्था' भी कहा जा सकता है।

दूसरा वामन अवतार हुआ। यह उस अवस्था की सूचना देता है जब जीव जङ्गली अवस्था से सुधर कर आगे बढ़ता है और उसमें मानवता के कुछ लक्षण चाहे वे अपूर्ण ही हों—दिखलाई देने लगते हैं। इस अवस्था में मनुष्य समाज में रहने लगता है और सामाजिक नियमों

सदा मेरे भक्त बने रहते हैं और अन्त मे मेरे पास ही आ जाते हैं। जो मनुष्य मुझे जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का कारण समझकर मेरी शरण लेता है, उसको मैं भवबन्धन से मुक्त देता हूं।"

ब्रह्मादिर्हि देवानां सृष्ट ब्रह्माद्यो मया।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य जगत् सर्वं सृजाम्यहम् ॥
तमोमूलोऽहमव्यक्तो रजोमध्ये प्रतिष्ठित.।
ऊर्ध्वं सत्त्व चिना लोभ ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यंत. ॥
धृतोर्वी सर्वत सम्यगत्यतिष्ठ दशागुलम्।
सर्वभूतात्म भूतस्थ. सर्वव्यापी ततोऽस्म्यहम् ॥

"मैं ही देवताओं का आदि हूं। ब्रह्म आदि देवताओं की मैंने ही सृष्टि की है। मैं ही अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर जगत की सृष्टि करता हूं। मैं अव्यक्त परमेश्वर ही तमोगुण का आधार, रजोगुण के भीतर स्थित और उत्कृष्ट सत्त्वगुण मे भी व्याप्त हूं। मुझे कोई आकांक्षा नही है पर मैं ब्रह्मा से लेकर छोटे से कीट मे भी व्याप्त हूं। मैं पृथ्वी को सब ओर से धारण करके, नाभि से दस अंगुल ऊपर सब के हृदय मे विराजमान हूं। सम्पूर्ण प्राणियों मे आत्मरूप से स्थित हूं, इसलिए सर्वव्यापी कहलाता हूं।"

कंस का शासन समाप्त होने के पश्चात् एक दिन कृष्ण-बलराम जब अक्रूरजी के पास गये तो उनकी महिमा को समझकर वयोवृद्ध होते हुए भी उन्होंने उनकी पूजा की और स्तुति करते हुए उनकी दैवी सत्ता के विषय मे कहा—

युवां प्रधान पुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ।
भवद्भ्यां न विना किञ्चित् परमास्ति न चापरम् ॥
आत्म सृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः।
ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुत प्रत्यक्ष गोचरम् ॥
यथाहि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना।

संसार के अभ्युदय-आभिवृद्धि के लिये हुआ है। हम सब आपके प्रभाव से ही प्रभावान्वित होकर सातों भुवनों का पालन करते हैं। आप एक और अद्वितीय आदिपुरुष हैं। मायाकृत जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति-इन तीन अवस्थाओं में अनुगत और उनसे अतीत तुरीय तत्त्व भी आप ही हैं। आप किसी दूसरी वस्तु से प्रकाशित नहीं होते, वरन् स्वयं प्रकाश हैं। आप सब के कारण हैं, परन्तु आपका न तो कोई कारण है और न आप में कारणपना ही है। भगवान्! ऐसा होने पर भी आप तीनों गुणों की विभिन्न विषमताओं को प्रकाशित करने के लिये अपनी मायाए से देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि शरीरों के अनुसार भिन्न भिन्न-रूपों में प्रतीत होते हैं।"

भगवान कृष्ण जी ने शंकर जी के अनुरोध को रक्षा करके बाणासुर को अभय प्रदान किया और कहा कि आप (शंकर जी) और मुझमें कोई भेद ही नहीं है। केवल सृष्टि सञ्चालन के लिये दो भिन्न रूप जान पड़ते हैं।

'पद्मपुराण' में वेद व्यास और कृष्णजी का संवाद—

एक बार भगवान वेद व्यास ने ईश्वर के परमतत्व को जानने की इच्छा से कई हजार वर्ष तक कठिन तप किया। इस पर प्रसन्न होकर भगवान ने उनसे वर मांगने को कहा तो उन्होंने यहीं प्रार्थना की, कि हे मधुसूदन! मैं आपके अद्भुत तत्व रूप को ही जानना चाहता हूँ। इस पर भगवान ने कहा—

भामेके प्रकृतिं प्राहुः पुरुषं च तथेश्वरम्।
धर्ममेके धनं चैके मोक्षमेके ऽकुतोभयम्॥
शून्यमेके भावमेके शिवमेके सदाशिवम्।
अपरे वेदशिरसि स्थितमेकं सनातनम्॥
सद्भाव विक्रियाहीनं सच्चिदानन्द विग्रहम्।
पश्याद्य दर्शयिष्यामि स्वरूपं वेदगोपितम्॥

अपेक्षा को जान लेता है और उस मार्ग पर दृढ़ता-पूर्वक चलने का प्रयत्न करने लगता है। इसमें स्वार्थ-भाव की कमी होने लगती है और मनुष्य दूसरों के साथ निःस्वार्थ भाव से प्रेम करना सीखने लगता है। वृन्दावन के बाल कृष्ण की वंशी की ध्वनि जिस प्रकार स्त्री-पुरुष, पशु, पक्षी, वृक्ष-लता, नदी, पर्वत आदि सबको मोह लेती थी, वह इस बात का सूचक है कि निवृत्ति मार्ग पर चलने वाला इसी प्रकार विश्व-व्यापी प्रेम का स्रोत बनने लग जाता है। इसमें व्यक्तिगत स्वार्थ बहुत कुछ जाता रहता है और वह सब प्राणियों के हित के लिये चेष्टा करने में आनन्द अनुभव करने लगता है। इसको जीव की 'ब्राह्मण-अवस्था' का पूर्व भाग कहा जा सकता है।

बौद्धावतार में जीव की जिस अवस्था का दिग्दर्शन कराया गया है उसे 'ब्राह्मण-अवस्था' का उत्तर भाग कह सकते हैं। पहले भाग में जीवात्मा की सामाजिक प्रेम, सेवा, निःस्वार्थता आदि गुणों का अभ्यास हो जाता है। अब इसी अवस्था आने पर आत्मा गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित करके सामूहिक [illegible] से समस्त विश्व की कल्याण भावना को परिपक्व करने लगती है। इस जीवन में भी मनुष्य को अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ता है, तरह-तरह के आकर्षक प्रलोभनों से अपने को बचाना पड़ता है। जो जीव उनकी तरफ ध्यान न देकर आत्मोन्नति का लक्ष्य ही मालूम रखता है वह सब बाधाओं और विपत्तियों को सह कर पूर्ण मनुष्यता प्राप्त करके महा-मानव की श्रेणी में पदार्पण करता है। निवृत्ति की अवस्था का यह अन्तिम लक्ष्य होता है।

इस विवेचन से यह परिणाम नहीं निकालना चाहिये कि परशु-राम, भगवान राम, कृष्ण आदि केवल भावनात्मक या काल्पनिक ही हैं, वास्तविक रूप में वे कभी नहीं हुए। वरन हम यह कह सकते हैं कि ये अवतार अपने समय के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति-परमात्मा के प्रत्यक्ष स्वरूप थे, इस लिए विद्वानों ने उस युग का आदर्श (युग-पुरुष) अथवा प्रतिनिधि

की विशेष व्यक्ति को विशेष प्रेरणा देने की सम्भावना भी अस्वीकार की जाय। जैसा हम पीछे बतला चुके हैं। यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि पौराणिक-युग में भगवान राम और कृष्ण तथा ऐतिहासिक काल में भगवान बुद्ध और शंकराचार्य जो कार्य करके दिखा गये हैं उसको साधारण मानव की शक्ति से सम्भव नहीं माना जा सकता। अतः जब हम देखते हैं कि इन ढाई हजार वर्षों के भीतर जन्म लेने वाले कई लाख मनुष्यों में से दस-पाँच भी प्रयत्न करते हुये उनके समान कार्य करके न दिखा सके तो इस अन्तर का कोई विशेष कारण मानना ही पड़ेगा। और वह विशेष कारण यही हो सकता है कि या तो अनेक जन्मों में उनका इतना विकास हो चुका था कि वे ईश्वरीय स्थिति तक पहुँच गये थे या संसार की सर्वोच्च जीवनमुक्त आत्माओं में से ही कोई विश्व-विधान के अनुसार संसार की उलझी हुई विकट समस्या को सुलझाने के लिये पृथ्वी पर अवतरित हुई थीं। इस प्रकार की विचारधारा वर्तमान समय के विद्वानों में ही नहीं पाई जाती, पुराने 'अवतारवादी' लेखकों ने ईश्वरावतारों के चरित्र सम्बन्धी अद्भुत और चमत्कारों से भरी हुई कथाएँ लिखते हुये बीच-बीच में इस तथ्य को भी प्रकट कर दिया है। 'रामचरित मानस' में, जिसे 'अवतारवाद' की दृष्टि से सबसे प्रभावशाली और महान रचना कहा जा सकता है, गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को मानते हुये ही 'अवतार' का प्रतिपादन किया है। उन्होंने कहा है कि भगवान के अवतार का वास्तविक रहस्य जान सकना या बतला सकना तो किसी भी बड़े से बड़े विद्वान, ऋषि-महर्षि के लिये संभव नहीं, पर उसका प्रत्यक्ष कारण वही है जो गीता में बतलाया गया है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्॥

इसी सिद्धान्त की व्याख्या करते हुये उन्होंने 'उमा-शंभु संवाद'

कहा कि "देश का राजा या शासन-संचालन करने वाला जैसा होगा वहाँ वैसा ही युग प्रवृतमान हो जायगा।" यदि राजा या शासन का संचालन करने वाले प्रधान अधिकारी सच्चे, न्यायपरायण और पूर्ण कर्तव्य निष्ठ हैं तो वहाँ की जनता को भी उसी प्रकार चलना पड़ेगा। ऐसे आदर्श शासन में दुष्ट, दुराचारी, ठग, बदमाशों को या तो अपने दुर्गुण त्याग कर सज्जनता का व्यवहार सीखना पड़ता है अथवा वहाँ से निकल किसी दूरवर्ती स्थान को चला जाना पड़ता है। इस प्रकार महाभारत के कथनानुसार जहाँ जैसा राजा होता है वैसा ही युग बनने लगता है—

राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेतायां द्वापरस्य च।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम्॥

(शान्ति पर्व अ० ६९-९८)

"राजा ही सतयुग की सृष्टि करने वाला होता है और राजा ही त्रेता, द्वापर और चौथे युग (कलियुग) को भी सृष्टि का कारण होता है।"

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्तमान समय में भारतीय जनता के एक बड़े भाग में जो 'कलियुग' के अनिवार्य होने की धारणा जमी हुई है, वह बड़ी घातक है। हमने बहुसंख्यक व्यक्तियों को किसी बुराई का जिक्र आने पर प्रायः यह कहते सुना है कि—"अजी, यह तो कलियुग है, इसमें तो ऐसे निषिद्ध या पाप कर्मों का होना मामूली बात है।" आज यह मनोवृत्ति करोड़ों लोगों में देखी जा सकती है। अपनी बुराई या त्रुटियों का दोष इस प्रकार 'युग' अथवा 'दैव' पर डालकर उनके सुधार का कोई प्रयत्न न करना एक बहुत बड़ी मूर्खता का चिन्ह है 'कल्कि पुराण' के पाठकों से हम आग्रह पूर्वक प्रार्थना करेंगे कि वे अपने ऊपर 'कलियुग' का प्रभाव स्वीकार न करें, वरन "भगवान कल्कि" के सहधर्मी बन कर उसको नष्ट करने को तैयार हो जावें। जैसा 'कल्कि पुराण' में कहा गया है 'कलियुग' का

आवश्यक है कि हम केवल उनकी मूर्तियों के आगे भेंट पूजा रख कर ही सन्तुष्ट न हो जावें परन्तु उनका गुणों को भी अपने भीतर न्यूनाधिक परिमाण में ग्रहण करने की चेष्टा करें। भगवान इन सब रूपों में, मनुष्यों को अपना कर्तव्य-पालन करते हुए लौकिक और पारलौकिक क्षेत्र में अग्रसर होने की शिक्षा देने के लिये ही अवतरित हुए थे।

भौतिकवादी दृष्टिकोण—

जो लोग धार्मिक प्रश्नों पर भौतिकवादी, सामाजिक या, राजनैतिक दृष्टिकोण से विचार करते हैं, उन्होंने भी जीवन के भौतिक विकास तथा अवतार सिद्धान्त में समन्वय स्थापित की चेष्टा की है। उनका कहना है कि प्रथम चार अवतार वैज्ञानिक विकास-सिद्धान्त के पूर्णतया अनुकूल है। वैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि पहले समस्त पृथ्वी जलमयी थी, इसमें सबसे पहले जलचर जीव, जिनको सामान्य रूप में मछली ही कहा जा सकता है, उत्पन्न हुये। शास्त्रों में भी जीव का प्रथम अवतार 'मत्स्य' ही बतलाया है। फिर कालक्रम से जब जल के भीतर से पृथ्वी के छोटे-छोटे टुकड़े निकलने आरम्भ हो गये तो वातावरण में परिवर्तन होने के प्रभाव से 'कच्छप' (कछुआ) श्रेणी के जीवों का आविर्भाव हुआ जो इच्छानुसार जल-स्थल दोनों में रह सकता है। शास्त्रकारों ने भी दूसरा अवतार 'कूर्म' या कछुआ का ही बतलाया है।

इसके पश्चात् जब भूमि के बड़े-बड़े टुकड़े बाहर निकल आये और वातावरण में परिवर्तन होने से उनमें कुछ वानस्पतिक खाद्य-सामग्री (घास-फूस झाड़ी आदि) उत्पन्न हो गई तो ऐसे जीवों की उत्पत्ति हुई, जो इन पदार्थों पर निर्वाह कर सकते हैं, पर जल और कीचड़ से भी नहीं डरते थे। क्योंकि उस समय जल से निकली हुई पृथ्वी का पूर्ण रूप से शुष्क होना सम्भव न था, उसमें जगह-जगह जल से भरे गड्ढे और दल-दल का होना अनिवार्य था। ऐसे वातावरण

स चेमं संकुलं लोकं प्रसादमुपनेष्यति ।
उत्थितो ब्राह्मणो दीप्तः क्षयान्तकृदुदारधीः ॥९६
संक्षेपको हि सर्वस्य युगस्य परिवर्तकः ।
स सर्वत्र गतान् क्षुद्रान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।
उत्सादयिष्यति तदा सर्वम्लेच्छगणान् द्विजः ॥९७

अर्थात्—"युगान्त के अवसर पर महाकाल की प्रेरणा से सम्भल निवासी एक ब्राह्मण के घर में एक बालक प्रकट होगा जिसका नाम 'विष्णुयशा-कल्की' होगा। वह महान बुद्धि एवं पराक्रम से सम्पन्न महात्मा, सदाचारी और जनता का हितैषी होगा। मन से चिन्तन करते ही उसके पास इच्छानुसार वाहन अस्त्र-शस्त्र, योद्धा, कवच आदि उपस्थित हो जायेंगे। वह धर्मविजयी चक्रवर्ती राजा होगा। वह उदार बुद्धि, तेजस्वी ब्राह्मण, दुःख से व्याप्त इस जगत को आनन्द प्रदान करेगा। कलियुग का अन्त करने के लिए उसका प्रादुर्भाव होगा। वही कलियुग का संहार करके नूतन युग का प्रवर्तक होगा। वह ब्राह्मणों से घिरा हुआ विचरण करेगा और भूमण्डल में फैले हुए नीच स्वभाव वाले सम्पूर्ण म्लेच्छों का संहार कर डालेगा।"

उपर्युक्त वर्णन में अवतार का नाम 'विष्णुयशा कल्की' लिखा है, जब कि 'कल्किपुराण' तथा अन्य ग्रन्थों में भी विष्णुयश को कल्की का पिता कहा गया है। हो सकता है कि जैसे अनेक प्रदेशों में पिता और पुत्र का नाम मिलाकर ही पूरा नाम बोला जाता है, उसी रीति का यहाँ अनुसरण किया गया हो। 'श्रीमद्भागवत' के बारहवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय में भी कलियुग का वर्णन करते हुए कल्कि अवतार के प्राकट्य और कार्यों का महत्व बड़े श्रद्धायुक्त रूप में बतलाया गया है—

शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥१८
अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ।
असिनासाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥१९

में जिस पशु का निर्वाह होना सम्भव था वही उस समय उत्पन्न हुआ। अतः तीसरा अवतार 'वाराह' कहलाया इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अन्य जीव जहाँ कीचड़ में फँस जाने से घबड़ाते हैं, अधिक गहरे चले जाने पर मर भी जाते हैं, वहाँ 'वाराह' अपने शक्तिशाली दाँत के प्रहार से कीचड़ को दूर-दूर तक फेंक कर उसे सुखा ही डालता है।

'नरसिंह' 'भगवान' का वर्णन स्पष्ट रूप से प्राणी विकास के उस युग का सूचक है जब पशु-जगत में हाथी, गैंडे, सिंह, शार्दूल जैसे पशु उत्पन्न होकर पृथ्वी तल को हलचल पूर्ण बना चुके थे, उनका लघु-मानसिक विकास भी एक विशेष सीमा तक हो चुका था, तब परिवर्तन-चक्र के अनुसार ऐसे जीवों का आविर्भाव हुआ जिनमें पाशविक वृत्तियों के साथ कुछ मानवीय गुणों का भी समावेश था। विज्ञान में ऐसे जीवों को 'वनमानुष' कहा गया है और भू-गर्भ में से उनकी ठठरियाँ निकाल कर उनकी शारीरिक विशेषताओं का एक हद तक पता लगा लिया गया है। 'नरसिंह' उसी युग के प्रतिनिधि हैं और एक दृष्टि से विचार किया जाय तो उनको पशु और मानव की शृंखलाओं को जोड़ने वाली कड़ी कहा जा सकता है।

'वामन-भगवान' से मानव-जाति का आरम्भ स्वीकार किया जा सकता है। उनका आविर्भाव उस समय हुआ जब वन-मानुष सैकड़ों पीढ़ियों तक प्रगति करता हुआ सहयोग पूर्वक रहना सीख गया। उसे अनुभव हो गया कि वन्य-प्रदेश के अन्य विशाल-काय और शक्तिशाली जीवों के मुकाबले में वह तभी ठहर सकता है जब संघबद्ध होकर कार्य करने की विधि से काम लेने लगे। पर उनकी यह सहयोग-भावना आत्मरक्षा और आक्रमण तक ही सीमित थी। जीवन-निर्वाह की सामग्रियों के लिये वे आपस में लड़ने-झगड़ने लग जाते थे। धीरे-धीरे उनमें परिवारों और वर्गों का संगठन होने लगा और वे समझौते से काम करने के लाभ समझने लगे। वामन-भगवान का कथानक उसी युग के मानवों से सम्बन्ध रखता है जब कि उनमें मानवता की झलक

'भागवत' में "राजा रूपी दस्युओं" के कल्कि भगवान् द्वारा नष्ट किए जाने की बात लिखी गई है। जिस समय इस वर्णन को लिखा गया था, उस समय पृथ्वी पर प्रत्येक अधिकार सम्पन्न और शक्ति-शाली को राजा माना जाता था, क्योंकि वह क्षत्रियों की प्रधानता का युग था। पर अब वह समय खत्म होकर वैश्य-प्रधान युग आ गया है और संसार भर में समाज की बागडोर बहुत बड़े धनवानों, उद्योग-पतियों, बैंकरों, पूँजीवादियों के हाथ में है। उन्होंने समस्त धन को और उसके द्वारा जनता के जीवन-निर्वाह के साधनों को अपने वश में कर रखा है। इसका परिणाम यह होता है कि एक तरफ तो संसार के करोड़ों व्यक्ति अन्न और वस्त्र के अभाव से पीड़ित रहते हैं और दूसरी तरफ लाखों मन खाद्य सामग्री और करोड़ों गज कपड़ा उनके गोदामों में ताले के भीतर बन्द पड़ा-सड़कर नष्ट हो जाता है। 'कल्कि' अपनी शक्ति-प्रभाव से इस सन्ताप पूर्ण स्थिति को बदल देंगे, और पूँजीवादी प्रथा का अन्त ही जायगा।

'भविष्य-पुराण' में 'कल्कि' का उल्लेख युग परिवर्तन के सम्बन्ध में करके यह बतलाया गया है कि वे 'महायज्ञ' द्वारा देवताओं को संतुष्ट करके जगत् को सुखी बनायेंगे—

'तदांश भगवान कल्किः पुरुषः पुरुषोद्भवः ।
दिव्यं वाजिनमारुह्य खड्गी वर्मा च धर्मपः ॥
म्लेच्छानसारान् दैत्यभूतांश्च हत्वा योगं गमिष्यति ॥
षोडशाब्दः सहस्राणि तदर्धे शासिता प्रजापिता ।
अल्पभूता कर्मभूमिर्निर्जीवा भाविता तदा ॥
गते कलियुगे घोरे कर्मभूमि पुनर्हरिः ।
कृत्वाश्वत्थमयो रथ्या यज्ञैर्देवान् यजिष्यति ॥
यज्ञभागमुपादाय देवास्ते बलसंयुता ।
वैवस्वतं मनुं पश्चात् कथयिष्यन्ति कारणम् ॥

प्रवृत्तियां उत्पन्न हो गई थीं पर बौद्धिक दृष्टि से अभी उनका विकास बहुत कम हुआ था और इस लिए पूर्ण बुद्धिमान मनुष्य के मुकाबले में वे वामन या 'बौना' ही कहे जा सकते थे।

मनुष्य का बौद्धिक और सामाजिक विकास प्रारम्भ में धीरे-धीरे ही होता रहा पर जब संगठित हो जाने से और कृषि कार्य प्रारम्भ कर देने से उनको जीवन-निर्वाह की सामग्री की सुविधा हो गई तो शारीरिक शक्ति की वृद्धि शीघ्रता पूर्वक होने लगी और जन में जितने ही व्यक्ति अपनी शक्ति के मद में कम शक्ति वालों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करने लगे। वे स्वयं परिश्रम करके उपार्जन करने के बजाय दूसरों की सामग्री को लूट-मारकर प्राप्त कर लेने में बड़प्पन और लाभ अनुभव करने लगे जब यह प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ़ गई और इससे सारे समाज का विघटन होने लग गया तब बुद्धि शक्ति और बुद्धि सम्पन्न पुरुषों ने इसका अन्त करने का निश्चय किया। इनमें श्री परशुराम जी अग्रगण्य थे और उन्होंने अपनी शक्ति की वृद्धि और सुदृढ़ संगठन करके दूसरों की प्रवृत्ति वाले लोगों पर मुठभेड़ का अभियान आरम्भ किया और उनको दण्ड के रूप में इतनी शिक्षा दी कि वे अनाचार और अत्याचार करना भूल गये। तब समाज में एक नये युग का श्री गणेश हुआ।

राम-चरित्र को वर्तमान समय तक समाज के लिए एक आदर्श माना जाता है। यद्यपि उस समय व्यावसायिक अथवा औद्योगिक दृष्टि से समाज बहुत प्रारम्भिक दशा में था और वर्तमान अर्थों में सभ्यता का उद्भव भी बहुत कम ही पाया था, पर भगवान राम ने उस समय की जिस सामाजिक-मर्यादा की स्थापना की वह न्याय, सरलता और सचाई के नियमों पर आधारित थी। इस लिए जीवन-निर्वाह की सामग्री बहुत सीमित और पुराने ढंग की होने पर भी लोगों का जीवन सम्पन्न बन गया था। भगवान राम के समय में ही मायामयवादी योद्धाओं का प्रमुख प्रभावशाली रावण उत्पन्न हुआ जिसने अपनी सैनिक शक्ति

जब ह्रास की अवस्था अत्यन्त भीषण हो जाती है और 'गीता' के कथनानुसार अधर्म की विजय होकर धर्म पददलित किया जाने लगता है—सज्जन व्यक्ति दुःखी और पीड़ित दिखाई पड़ते हैं तथा दुष्ट, धूर्त व्यक्ति शान के साथ अकड़ने लगते हैं, तो जगत् का नियन्त्रण करने वाली शक्ति का आसन डोल जाता है और संसार में कोई ऐसा व्यक्ति सम्मुख आता है—किसी ऐसी दैवी-शक्ति का अव-तरण होता है जो उस दूषित, अस्वाभाविक, प्रकृति विरोधी अवस्था के विरुद्ध खड़ी होती है और उसका आमूल से परिवर्तन करके नई दुनिया की रचना करती है।

यही 'कल्किपुराण' में वर्णित कथा का सारांश और मुख्य उद्देश्य है। यह एक ऐसी घटना या नाटक है जो युग-युग में, जब कभी अधर्म की, अन्याय और अत्याचार की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है, तो संसार के रङ्गमंच पर दिखाई दिया करता है। 'कल्किपुराण' के लेखक ने अपने समय की लोक रुचि के अनुकूल शैली और भाषा में, मनोरञ्जन का पुट देकर दर्शाया है। इसलिए एक समझदार पाठक को पुराण पढ़ते हुए इस तथ्य को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। यों तो सभी पुराणों में लोकाकर्षण के उद्देश्य से कथा भाग की ही मुख्यता हो जाती है, तो भी वे लोग उनके आधार स्वरूप कुछ वास्त-विक तथ्यों को समझाने का प्रयत्न करते हैं। पर 'कल्कि पुराण' के लेखक ने तो समस्त वर्णन यह समझकर किया है कि ये घटनाएँ सुदूर भविष्य में होंगी। ऐसी दशा में उसका कार्य तो केवल कल्पना द्वारा ही सम्पन्न हो सकता था। यही बात हमको इस पुराण को पढ़ते समय आदि से अन्त तक प्रतीत होती है। इसमें बीच-बीच में माया की प्रबलता, ज्ञान, भक्ति की महिमा, उपासना, सत्कर्म आदि के सिद्धान्तों और नियमों का समावेश अवश्य कर दिया गया है। रामायण की संक्षिप्त कथा भी इसमें एक जगह आ गई है। पर कल्कि के जन्म से लेकर मृत्यु तक की कथा लेखक को अपनी कल्पना से ही गढ़नी पड़ी है।

वनात्मक दृष्टिकोण—

इस दृष्टिकोण के समर्थक व्यक्ति जो समाज की वर्तमान ा को ध्यानपूर्वक देख रहे हैं, उनको इसके सुधार और परिवर्तन का आवश्यकता अनुभव होती है। वे मानते हैं कि कपड़ा मैला हो जाता ो उसे धोकर साफ करना पड़ता है। इसलिए मकान, मशीन, मोटर ो उपयुक्त दशा में रखने के निमित्त समय-समय पर मरम्मत करनी ो है। इसीलिए सामाजिक-व्यवस्था की सफाई और मरम्मत भी आनुसार होती रहनी चाहिये। इसके लिये सुधारकों का आना-जाना रहता है। धर्मोपदेशक, समाज-सुधारक, मार्गदर्शक, देवदूत, सन्त, , मुनि समय-समय पर आते-जाते रहते हैं और अपने काल की स्थिति परिस्थितियों को देखकर उन्हें संभालने, सुधारने का अपने ढंग से प्रयास करते हैं।

"जब जब परिस्थितियाँ अधिक विषम हो जाती हैं तो विश्व-नियन्ता शक्ति- महाकाल' को अपने हाथ संभालने पड़ते हैं। साधारण ड़ी का उपाय सामान्य सुधारकों द्वारा सम्पन्न हो सकता है, पर ाए सीमा को उलंघन कर जाता है, मर्यादायें टूट जाती हैं अन-ीम किसी शुभ प्रेरणा और सद्भावना से प्रभावित होने की क्षमता नहीं है तब 'महा सुधारक' की जरूरत पड़ती है इस कार्य को भिन्न-ाके (महाकाल) स्वयं पूरा करते हैं। इन दिनों जन-जीवन जिस ाम स्तर पर पहुँच गया है, उसे अब छोटे सुधारकों से काम ा नहीं दीखता। अब उसके लिये बहुत बड़ी उलट-पुलट की— ाधपन की आवश्यकता अनिवार्य हो गई है। इस प्रयोजन की पूर्ति दि काल से 'महाकाल' ही करते रहे हैं। अब भी वे ही करने वा ह।"

ा आगामी कुछ ही वर्षों में जिस उथल-पुथल की सम्भावना स्पष्ट ी. . रही है, उसे आलंकारिक दृष्टिकोण वाले 'विध्वंस' प्रकार अनुभव करते हैं। वे कहते हैं कि अब ऐसी परिस्थितियाँ

राजा शशिध्वज की दैवी-भावना—

कलियुग की सेना पर विजय प्राप्त करके कल्किजी भल्लाट-नगर (चारों ओर से घिरे नगर) में पहुँचे। वहाँ का राजा शशिध्वज (चन्द्रमा की ध्वजा वाला अर्थात् शिव) भगवान् का सच्चा भक्त था, पर जब कल्किजी दिग्विजय की भावना से वहाँ पहुँचे तो वह 'क्षत्रिय-धर्म' के अनुसार उनसे युद्ध के लिए तैयार हुआ। उसकी रानी सुशान्ता ने जब पूछा कि आप तो भगवान् के भक्त और सेवक हो उनके ऊपर शस्त्र-प्रहार कैसे करोगे, तो शशिध्वज ने अवतार के रहस्य के सम्बन्ध में एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कही—

ब्रह्मणो ब्रह्मतेशस्य शरीरित्वे शरीरितः।
सेवकस्याभेदस्यस्येव जन्मलयोदयाः॥

'अर्थात् 'पूर्ण ब्रह्म परमात्मस्वरूप ईश्वर' को ब्रह्म कहते हैं। जब वह भौतिक शरीर धारण करके मूर्तिमान हो जाता है तब वह शरीरी (अवतार) कहा जाता है। जिस सेवक (भक्त) की भक्ति-भावना दृढ़ हो गई है और जिसे अभेद-ज्ञान प्राप्त हो चुका है, उसका जन्म, उदय (वृद्धि) और लय (समाप्ति) भी भगवान् के सदृश ही होता है, अर्थात् वह भगवान् के तुल्य ही बन जाता है। साथ ही उसने यह भी कहा कि 'जब भगवान् ने मूर्ति धारण की, तब कामादि माया के प्रप-इतर शरीरों के दुःखों की परम्परा नारायण के शरीर में भी आरोपित हुई। कामादि के आरोपित होने से उनके देह में कामादिक विषय क्यों नहीं आरोपित होंगे ?'

इस प्रकार 'कल्कि पुराण' ने एक बहुत बड़ा सिद्धान्त पाठकों के समक्ष रखा है कि संसार में सबसे बड़ा धर्म कर्तव्य-पालन ही है। इसका महत्व इतना अधिक है कि यदि इसके लिए बड़े से बड़े पुरुष का भी विरोध करना पड़े, उनके विरुद्ध न्याययुक्त संघर्ष करना पड़े

से समाज का पतन होना जा रहा था और व्यक्तियों में दोष-दुर्ग बढ़ते जाते थे। बुद्ध ने स्वयं त्याग और तपस्या का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करके लोगों को झूँठे अन्धविश्वासों को त्याग कर सत्य अहिंसा, दया, क्षमा के मार्ग पर चलने की शिक्षा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म में से ढोंग का बहुत कुछ निराकरण हो गया और शू तथा स्त्रियों की स्थिति में सुधार होकर वे समाज के उपयोगी अ बना लिये गये। इससे भारतीय समाज की शक्ति में वृद्धि हुई औ लगभग एक डेढ़ हजार वर्ष तक यहाँ काफी प्रगति-शील शासन-सत्ता स्थित रह कर जनता में सुख-सुविधा का वातावरण बनाये रही। भगवा बुद्धका समस्त समाजके लिये इतना प्रतिदान सामान्य बात नहीं थी उस देश की काया पलट ही कर दी और आज २५०० वर्ष बीत जाने पे भी उनके कारण भारत का समस्त जगत में सम्मान किया जाता है ऐसी ही अलौकिक आत्माओं को जीवन्मुक्त अथवा अवतार कहा जात है। चाहे भौतिकतावादी अलौकिकता पर विश्वास न करें, पर महात्म बुद्ध की विशेषता और श्रेष्ठता के सम्मुख उनको भी नतमस्तक होन पड़ता है।

इस बात का कोई महत्व नहीं कि ऐसे महामानवों को किस नाम से पुकारा जाय। अवतार, जीवन-मुक्त, पैगम्बर, जगत त्रात उद्धारकर्ता, अतिमानव आदि शब्द एक ही भाव को प्रकाशित करते है। जिस समय समस्त संसार अथवा कोई महा-जाति भीषण संकट में ग्रस्त हो जाती है और उसे चारों ओर नाश-सर्वनाश की विभीषिका के दर्शन होने लगते हैं, जब संकट से बचने के लिये किये गये उनके समस्त प्रयत्न निष्फल सिद्ध होते हैं और अनुभव होता है कि कोई व्यक्ति परिस्थिति का सुधार नहीं कर सकता, तब छोटे-बड़े सभी व्य क्तियों के हृदय में यह भावना उठने लगती है कि कोई ऐसी अलौकिक शक्ति प्रकट हो जो इस 'असम्भव' जान पड़ने वाले कार्य को सम्भव कर दे। हमारे देश में राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकर, चैतन्य और विदेशों

काञ्चीपुरी पर आक्रमण करके चित्रग्रीव गन्धर्व की भार्या सुलोचना का उद्धार किया। वह यक्ष ऋषि के शाप से विष-दृष्टि वाली बन गई थी और जो भी प्राणी उसके सम्मुख आता था वह मृत हो जाता था। कल्कि के दर्शनों के पश्चात् उसने कहा—'अब आपकी अमृतमयी दृष्टि के पड़ने से मेरा वह दोष जाता रहा और मैं भी आपका दर्शन करके धन्य हो गई।'

जब 'कल्कि' समस्त पृथ्वी में धर्म की स्थापना करके और विभिन्न भागों का आधिपत्य अपने सहयोगियों को देकर पुनः 'शम्भल' में आकर निवास करने लगे तो उनके माता-पिता, भ्राता, पत्नी आदि सबको अत्यानन्द हुआ। इसके पश्चात् वे अनेक वर्षों तक धर्म राज्य करके अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ सुखोपभोग करते रहे। जब यहाँ का कार्य पूरा हो चुका तो स्वर्ग के देवताओं ने उनसे सेवा में उपस्थित होकर वैकुण्ठ चलने की प्रार्थना की। इस पर कल्किजी राज्य-भार अपने पुत्रों को देकर हिमालय को चले गये और गङ्गाजी के तट पर चतुर्भुज रूप धारण करके विष्णु पद में प्रवेश कर गये।

'कल्कि-कथा' का यही अन्त होता है। इसका सारांश यही है कि जब अधर्म की प्रबलता होकर धर्म का ह्रास होगा तो भगवान् दुष्ट दमनकारी रूप धारण करके संसार का उद्धार करेंगे। पिछले बुद्धावतार के समय भगवान् ने प्रेम और दया का आश्रय लेकर मानव जाति को सुमार्ग पर लाने का प्रयत्न किया था। पर उसका प्रभाव थोड़े ही समय तक रहा और लोगों ने फिर स्वार्थपरता का मार्ग अपनाकर समाज को कलह और पतन के गड्ढे में धकेल दिया। इस समय दुनिया के 'कर्णधार' कहलाने वाले जिस प्रकार भौतिक विज्ञान का प्रयोग पारस्परिक नाश के साधन प्रस्तुत करने में कर रहे हैं, उससे मानव जाति का भविष्य अत्यन्त सङ्कटमय और अन्धकारपूर्ण दिखलाई पड़ रहा है।

को मथुरा के एक ब्राह्मण वंश में प्रकटीभूत होंगे।" यद्यपि उन्होंने कल्कि के जन्म स्थान का श्रेय सम्भल के बजाय मथुरा को प्रदान किया है, पर उनके समस्त सहयोगी और सभी सम्बन्धी अधिकांश में बङ्गाल के ही बतलाये हैं।

कुछ समय पूर्व हमने किसी मासिक पत्र के एक लेख में यह भी पढ़ा था कि 'सम्भल' वास्तव में ईरान के किसी प्रदेश में अवस्थित है, और 'कल्कि अवतार' वहीं से सम्बन्धित है। इस प्रकार विभिन्न सम्प्रदायों और विचारों के व्यक्ति 'सम्भल' के विषय में विभिन्न मत प्रकट कर चुके हैं।

यही बात उनके अवतरण के सम्बन्ध में है। प्राचीन परिपाटी के पण्डित तो उनके आविर्भाव का समय कलियुग के अन्त में मानते हैं जिसमें अभी लाखों वर्ष शेष हैं। पर वर्तमान समय के अवतारवादी, जो कलियुग को १२०० वर्ष से अधिक का नहीं मानते, कल्कि अवतार का समय बिल्कुल निकट बतलाते हैं। जैसा हमने ऊपर लिखा है।

बङ्गाली स्वामी जी ने उनकी जन्मतिथि सन् १९८५ में घोषित कर दी है। अमरीका की अन्य महिला जीन डिक्सन ने बतलाया है कि "५ जनवरी १९६२ को एक ऐसे बालक का जन्म हो चुका है जो संसार का नया कायाकल्प करेगा। सम्प्रदायों की सङ्कीर्णता को वह मिटा देगा और एक सार्वभौम विश्वधर्म की स्थापना करेगा। सन् १९८० में होने वाले विश्व युद्ध के पश्चात् वह बालक इतना शक्तिशाली हो जायगा कि संसार भर को सद्भावना उसे प्राप्त होगी और सब लोग उसके निर्देशों का पालन करेंगे। सन् १९९९ में इस बालक की प्रतिभा पूर्ण रूप से निखरेगी और उसके हाथों नये युग की आधारशिला रखी जायगी।"

अन्य अवतारवादी सज्जन भी, जिनमें भारतवासी और विदेशी दोनों ही प्रकार के व्यक्ति हैं, 'अवतार' के प्रकट होने को निकट

फिर भी वे समुद्र-मन्थन की सारी प्रक्रिया करने वाले नहीं कहे जा सकते हैं। जिस वासुकि नाग की रस्सी बनाई गई, जिन देवता और असुरों ने अपनी शक्ति लगा मन्थन किया, जिस समुद्र ने अपार रत्न से विशाल कर के रत्न दिये, उन सभी का सहयोग महत्त्वपूर्ण था। वस्तुतः यह सभी की सम्मिलित विजय थी। सात्त्विक दृष्टि से देखा जाय तो इसका श्रेय भगवान द्वारा प्रेरित उस भावनात्मक प्रवाह को है जिसने जन-मानस में एक विशिष्ट हलचल और उत्साह उत्पन्न किया और इतना विशाल साधन जुटाने में काम को सफल बना दिया। या जो घटना का वर्णन करने वाले लेखक इसका श्रेय कच्छप अवतार को देते हैं। इसमें कोई बड़ा दोष भी नहीं है। कूर्म ने सही एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह उसी ने की ही।"

हर अवतार में इसी तथ्य की पुनरावृत्ति होती रही है। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध के चरित्रों पर व्यापक दृष्टि डालने से यही तथ्य उनमें सन्निहित जान पड़ता है। अवतारी युग-पुरुष बड़े-बड़े अद्भुत काम कर दिखाते हैं। पर दो बातें हर 'अवतार' में एक सी होती है—एक यह कि उनका उद्देश्य तत्कालीन असाधारण स्थितियों का बदलना होता है और दूसरा यह कि इस प्रयोजन में जन-सहयोग की पर्याप्त मात्रा सम्मिलित होती है। इतना ही नहीं 'अवतार' तभी होता है जब सारा जन-मानस क्षुब्ध और असन्तोष युक्त हो जाता है। इसी को अवतार के कथानकों में पृथ्वी का पीड़ित और आसन्न होकर देवताओं और भगवान की शरण में जाने के रूप की भाँति वर्णन किया गया है।

"अब दसवाँ 'निष्कलंक' अवतार इन दिनों हो रहा है अथवा यों कहना चाहिए कि हो चुका है। यह एक ऐसा भावना-प्रवाह है जिसका उद्देश्य हजारों वर्षों की अस्तव्यस्तता को धोकर सतयुग का पुनरागमन करना है।" इसमें निष्कलंक अवतार के नाम पर अन्तत उस अभियान की सफलता का सेहरा किसके सिर पर बाँधा जायगा, इसमें

अणु-अस्त्रों के युग में कोई सम्भावना नहीं। इसी प्रकार विवाह में दहेज स्वरूप हाथी रथ घोड़े, दासी और युवती स्त्रियों के देने का जो वर्णन किया गया है, वह भी वर्तमान वातावरण में निरर्थक है। आज-कल राजाओं को भी दहेज में मोटरकार ही दी जाती है और हाथी की अपेक्षा उसका मूल्य भी अधिक होता है। 'बौद्धों' से युद्ध की भी अब कोई सम्भावना नहीं रही। भारतवर्ष के कीकट (मगध) आदि किसी प्रदेश में अब बौद्ध नहीं पाये जाते। यदि चीन वालों से युद्ध होने की कल्पना करें तो कम्यूनिस्टों ने वहाँ भी बौद्ध धर्म को मिटा दिया है और जो थोड़े बहुत बौद्ध धर्म के अनुयायी वहाँ भी रहे होंगे, तो उनका देश के शासन में कोई हाथ नहीं। लंका, बर्मा, स्याम, कोरिया आदि देशों में थोड़े बहुत बौद्ध हैं, पर वे भारतवर्ष से मित्र भाव ही रखते हैं। अतएव जन-संख्या थोड़ी होने के कारण भारत से उनके युद्ध करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

कल्कि जी के अनेक विवाहों का होना, वनों और पर्वतों में जाकर बहुसंख्यक स्त्रियों के साथ विहार करना, छोटे-बड़े यज्ञ-यागादि रचाना, किसी पहाड़ी आश्रम में जाकर वेद पुराणों की शिक्षा प्रदान करना आदि ऐसी बातें हैं जो आज-कल व्यवहार में से उठ गई हैं और किसी सम्मानीय व्यक्ति के सम्बन्ध में उनकी सम्भावना भी स्वीकार नहीं की जा सकती। इस समय जो व्यक्ति संसार का सार्वभौम नेता और बड़े-बड़े राष्ट्रों को प्रभावित करके कलियुग को समाप्त करने में समर्थ होगा वह निश्चय ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में पारंगत होगा और उसका रहन-सहन आधुनिक सभ्यता तथा शिक्षा के नियमों के पूर्ण अनुकूल ही होगा। ऐसे व्यक्ति के लिये यह कल्पना करना कि वह हजार-पाँच सौ वर्ष पुराने वस्त्र के ढंग पहिनेगा और उसी समय का-सा रहन-सहन रखेगा, एक मनोरंजक कल्पना ही हो सकती है।

इस समय जो भी 'अवतार' या संसार का 'मार्गदर्शक' प्रादेशिक यह संसार के वेशभूषा और व्यवहार में पूर्ण आधुनिक युग के समान और

आठवां अध्याय

कल्कि पुराण और भक्ति-मार्ग

'कल्कि-पुराण' में भगवत्-प्राप्ति का मुख्य उपाय भक्ति ही है और यह बात इतिहास के उपाख्यान द्वारा इसको भी सिद्ध की है। उसमें दरशाया गया है कि मनुष्य अपने को भागवत का सेवक समझ कर तदनुसार व्यवहार करने से ही भक्ति के उच्च आदर्श को प्राप्त कर सकता है। यों तो शास्त्रों में ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है और 'गीता' में भी "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" कह कर ज्ञान को संसार की सर्वोत्तम वस्तु प्रदान कर दी है। पर यह प्रश्न यह होता है कि क्या साधारण व्यक्ति ब्रह्मज्ञान को हृदयंगम कर सकते हैं? सभी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि ब्रह्म-ज्ञान अथवा आत्मज्ञान का यथार्थ रूप पंडितों और शास्त्र विचारकों के लिए भी अति कठिन है। गीताकार ने ही इस बात को बहुत स्पष्ट रूप से कह दिया है—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥
(गीता २-२९)

"कोई तो आश्चर्य पूर्वक इसकी ओर देखता है, कोई आश्चर्य रूप से इसका वर्णन करता है, कोई महान आश्चर्य की तरह इसे सुनता है। पर इस तरह देखकर, वर्णन करके और सुनकर भी कोई इसके सार को नहीं समझ पाता।"

उपनिषदों में भी इस सम्बन्ध में कह दिया है कि ब्रह्मचारी ने एक ब्रह्मज्ञानी ऋषि से पूछा—"महाराज ! मुझे ब्रह्म की व्याख्या

उत्पन्न होने जा रही है कि जिनसे मनुष्य-जाति के कष्टों में वृद्धि हो और उसको ऐसी प्रताड़ना हो जिससे विवश होकर वह अपनी भूल को अनुभव करे और आगे नित्य सावधान रहे। अनीति अन्तत हानिकारक होती है, इतनी सी शिक्षा यदि लोग अपना सके होते तो आज प्रकृति को कुपित होकर रुद्र रूप नहीं धारण करना पड़ता और असंख्यों व्यक्तियों को निरर्थक कष्ट नहीं भोगना पड़ता।"

यह परिस्थिति किसी दृष्टि से हितकारी नहीं-नहीं जा सकती और भगवान को तो इस तरह लोगों को दण्ड देना पसन्द हो ही नहीं सकता। पर उनको यह सब कुछ बाध्य होकर करना पड़ता है। आज मानव-समाज अहंकार (फोड़े) का रोगी बन गया है और जब तक उसका आपरेशन करके दूषित मवाद को बाहर न निकाल दिया जायगा तब तक वह स्वस्थ नहीं हो सकता। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये भगवान का 'अवतार' शीघ्र होने की आशा की जा रही है।

"अवतारों का सदा यही प्रयोजन रहा है कि किसी प्रकार अशान्ति का अन्त होकर शान्ति की स्थापना हो। महाकाल इस उद्देश्य से एक भावनात्मक प्रवाह उत्पन्न करते हैं। इस प्रवाह से जन-मानस उद्वेलित होता है और उसमें से ऐसे कितने ही 'योद्धा' निकल पड़ते हैं जो इस दैवी पुण्य-प्रयोजन की पूर्ति के लिये असाधारण पुरुषार्थ कर दिखाते हैं। भले ही उस अभियान के नेताओं में से किसी एक को विशेष ख्याति मिल जाय, पर वस्तुतः होता वह भावनात्मक प्रवाह ही है, जो सहज ही अनेक साथी-सहयोगी बनाकर खड़े कर देता है। आश्चर्यचकित लोग प्रभु प्रेरित सूक्ष्म जगत की विधि व्यवस्था को तो देख नहीं पाते, बाहर से जो सबसे प्रमुख व्यक्ति दीखता है, उसी के सिर पर श्रेय का सेहरा बाँध देते हैं।"

"अवतार या विजेता कोई एक घोषित किया जाता है—यह मनुष्यों की भूल भरी परख है। तत्वदर्शी जानते हैं कि एक व्यक्ति कितना ही बड़ा या समर्थ क्यों न हो, वह अनेक मनुष्यों के सहयोग के

आधार के लिये कोई इन्द्रिय गोचर स्थिर वस्तु न हो, तब तक यह मन बार-बार भूल जाया करता है कि उसका आधार क्या है ? जिस प्रकार 'रेखागणित' की शिक्षा देते समय यह जानते हुए भी कि रेखा को कोई चौड़ाई नहीं होती, वह वास्तव में अप्रत्यक्ष [redacted] अव्यक्त ही है, उसका एक छोटा-सा नमूना स्लेट या काले तख्ते पर व्यक्त करके दिखाना ही पड़ता है। इसी प्रकार ऐसे परमेश्वर पर प्रेम करने के लिये जो सर्वकर्ता, सर्व शक्तिमान होते हुए भी निराकार और अव्यक्त है, मन के सामने किसी प्रत्यक्ष (नाम रूपात्मक) वस्तु के रहे बिना साधारण मनुष्यों का काम चल नहीं सकता।

अब चाहे इसे कोई मनुष्य के मन का स्वभाव कहे या दोष, जब तक देहधारी मनुष्य अपने मन के स्वभाव को अलग नहीं कर सकता, तब तक उपासना के लिए उसे भगवान के सगुण स्वरूप को अपनाना ही पड़ेगा। यही भक्ति-मार्ग है।

इसी सिद्धान्त का समर्थन अनेक उपनिषदों में और गीता में भी यह कह कर किया गया है :—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥१२-५॥

अर्थात्—"जो साधक निराकार ब्रह्म में चित्त लगाकर उपासना करते हैं उनको बहुत क्लेश अथवा परिश्रम उठाना पड़ता है, क्योंकि देहाभिमानी (स्थूल शरीर वाले) मनुष्यों द्वारा अव्यक्त विषयक आगम बड़ी कठिनाई से प्राप्त की जाती है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग में किसी प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता की कल्पना करना हमारा अज्ञान ही है। ये दोनों मार्ग अनादि हैं। इनकी साधन-प्रणाली भिन्न अवश्य है, पर दोनों के द्वारा मनुष्य एक ही लक्ष्य अर्थात् परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त

है, पर भक्ति मार्ग में सेव्य-सेवक रूप से द्वैत-भाव का उदय हो ही जाता है। भक्त को उचित है कि वह सर्वत्र एकमात्र नारायण को ही देखे। भक्त विष्णु भगवान का स्मरण करता है, उनके नाम का जाप करता है, एवं उनके ही निमित्त समस्त कर्म किया करता है। यह सब वह इसलिए करता है कि इससे आनन्द की प्राप्ति होती है। जो निरता प्रकृति है, जो ब्रह्म सम्पत्ति है वही भक्ति के रूप में प्रकाशित हुई है। यह भक्ति ही विष्णु, ब्रह्मा और शिव स्वरूपा है।"

'कल्कि पुराणकार' ने भक्ति की जो व्याख्या की है उसमें एक सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने भक्ति का रूप केवल पूजा-पाठ ही नहीं बतलाया है, वरन् इस भावना पर जोर दिया है कि 'भक्त अपने को भगवान का सेवक माने और सब प्राणियों को भगवान की मूर्ति समझे।' वास्तव में वर्तमान समय में परिस्थितियों ने जो स्वरूप ग्रहण कर लिया है, उसमें एक स्वतन्त्र विचारक को सिवाय 'माला फेरने और पूजा की घण्टी हिलाने' के अतिरिक्त कोई लोकोपयोगी अथवा कल्याणकारी भावना दृष्टि गोचर नहीं होती।

इसी कारण इस सम्बन्ध में प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि भक्तिमार्ग ने लोगों को आलसी और विशेष स्वार्थी बना दिया है। ये लोग सांसारिक संघर्ष और उद्योग से प्रायः यह कह कर किनाराकशी कर जाते हैं कि "भगवान की जैसी इच्छा होगी वही होगा।" अथवा "हमने तो भगवान की शरण ग्रहण करली है, वे ही हमारा बेड़ा पार लगावेंगे।" निस्सन्देह इस प्रकार के उद्गार अकर्मण्यता की वृद्धि करने वाले होते हैं। भारतवर्ष में आज लाखों साधु, वैरागी और पण्डा पुजारी आदि इसी 'सिद्धान्त' की आड़ में निकम्मा जीवन बिता रहे हैं। पर ऊपर के उद्धरण में पुराणकार कहते हैं कि भक्त के लिए केवल पाषाण, धातु या काष्ठ की मूर्ति की पूजा-अर्चा कर लेना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उसे समझना चाहिये कि भगवान तो घट-घट में समाये

दूसरा अध्याय

अवतार—भावनात्मक और मानव रूप में

बौद्ध-धर्म के अनुयाइयों में, विशेषतः तिब्बत के बौद्ध लामाओं और साधारण जनता में भी यह विश्वास प्रचलित है कि 'यद्यपि गौतम बुद्ध' ने मानव शरीर को त्याग दिया और उनकी अस्थियाँ अभी तक स्मारक-स्वरूप रखी हैं, तो भी उन्होंने वास्तव में इस पृथ्वी का त्याग कभी नहीं किया। इससे हम यह तात्पर्य समझ सकते हैं कि यद्यपि बुद्ध भगवान का पार्थिव-शरीर नष्ट हो गया पर उनका भावनात्मक देह निरन्तर पृथ्वी-मंडल में विद्यमान रह कर अब भी अगणित मनुष्यों को प्रभावित कर रहा है।

अवतार के सम्बन्ध में ये दोनों दृष्टिकोण प्राचीन काल से प्रचलित हैं। आधुनिक युग के विद्वान अधिकांश में भावनात्मक अवतार के समर्थक हैं, क्योंकि किसी स्थूल-देहधारी व्यक्ति को ईश्वर मानकर उसकी वन्दना या उसके प्रति देव-भाव से श्रद्धा प्रकट करना उनकी रुचि के अनुकूल नहीं है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि वर्तमान समय में हमारे देश में बहुसंख्यक व्यक्तियों ने स्वयं अवतार होने की घोषणा करना आरम्भ कर दिया है। अन्य देशों में भी इस प्रकार के कुछ लोग पाये जाते हैं, जो दैवी-प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं। इन लोगों की स्थिति और कार्यों को देखकर समझदार व्यक्तियों की अवतार-सम्बन्धी धारणा और भी खराब हो जाती है, और वे अवतार सिद्धान्त का ही विरोध करने लग जाते हैं। पहले हम पाठकों के समक्ष भावनात्मक अवतार में विश्वास रखने वाले सज्जनों का दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं, जिससे विदित हो सकेगा कि वर्तमान समय के अधिकांश शिक्षित व्यक्ति अवतार को किस रूप में मान रहे हैं।

करके उनको यथाशक्ति मिटाने में सहायक बनता है।' केवल जिह्वा से भगवान के नाम की रट लगाये रहना अथवा घण्टा-घड़ियाल बजा कर दिन में दो-चार बार आरती कर देना तब तक सार्थक नहीं माना जा सकता जब तक वास्तविक दीन-दुःखी लोगों की दशा सुधारने के लिए भी कुछ प्रयत्न न किया जाय।

हिन्दुओं में ही नहीं मुसलमान धर्म के ज्ञाताओं का भी ऐसा ही मत है। इसका प्रतिपादन करने के लिए एक कथा प्रसिद्ध है कि "मकूबिल मदहम नाम के सन्त दीन-दुखियों की सेवा में सदैव संलग्न रहते थे, चाहे ईश-प्रार्थना का समय भी निकल जाय। एक दिन आधी रात के समय चाँदनी में कुछ लिखता हुआ एक 'फरिश्ता' उनको दिखाई पड़ा। सन्त ने उससे कि तुम क्या लिख रहे हो? उत्तर मिला कि इस पुस्तक में ईश्वर भक्तों की सूची लिखी जा रही है। सन्त पूछा कि जरा मेहरबानी करके यह देख लीजिये कि मेरा नाम भी इसमें है या नहीं? फरिश्ते ने तमाम किताब देख कर कहा—आपका नाम तो इसमें नहीं है। सन्त चुप हो गये और फरिश्ता भी चला गया। दूसरे दिन वह फिर उसी स्थान पर दिखाई पड़ा और उसके हाथ में दूसरी छोटी किताब थी। पूछने पर मालूम हुआ कि इसमें उन व्यक्तियों की नामावली है जिनको स्वयं ईश्वर प्यार करते हैं। यह कह कर उसने किताब को खोला तो सबसे प्रथम मकूबिल मदहम का ही नाम लिखा था।"

यह कथा ईश्वर-भक्ति के सच्चे स्वरूप को बहुत साफ शब्दों में प्रकट करती है। जो लोग ईश्वर से प्रेम रखते हैं, उसकी पूजा, उपासना प्रार्थना में समय व्यतीत करते हैं और इस तरह अनेक बुरे कार्यों से बचे रहते हैं, वे अवश्य प्रशंसनीय हैं। पर जिन भक्तों को ईश्वर भी प्यार करता है, जिनका महत्त्व वह भी स्वीकार करता है वही आगे आ सकते हैं जो जीवित मानवता की सेवा के लिए हृदय से निःस्वार्थ कार्य

महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया।
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च॥
आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसंकीर्तनाच्च मे।
आर्जवेनार्यसङ्गेन निरहंक्रियया तथा॥
मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः।
पुरुषस्याञ्जसाभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम्॥

"भगवान कपिल ने देवहूति से कहा—हे माता! निष्काम भाव से अपने नित्य-नैमित्तिक कर्त्तव्यों का पालन कर प्रतिक्रिया रहित, उत्तम क्रिया योग का अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमा का दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति और वन्दना करने, सब प्राणियों में मेरी (भगवान की) भावना करने, धैर्य और वैराग्य के अवलम्बन, महापुरुषों का सम्मान, दीनों पर दया और समान स्थिति वालों के प्रति मित्रता का व्यवहार करने, यम नियमों का पालन, अध्यात्मशास्त्रों का श्रवण, भगवान के नामों का कीर्तन करने से, तथा मन की सरलता सत्पुरुषों के संग और अहंकार के त्याग से मद्धर्मी का चित्त शुद्ध होता है और वह भगवान की तरफ आकर्षित होकर उनके धर्म का अधिकारी बनता है।"

ऊपर के वर्णन पर अच्छी तरह ध्यान देने से मालूम होता है कि वर्तमान समाज में भक्ति-मार्ग एकाङ्गी रहा गया है। 'भगवान की प्रतिमा [redacted] दर्शन स्पर्श, पूजा, स्तुति, वन्दना और नाम कीर्तन' आदि तो किये जाते हैं, पर उनके सहकारी तथा आधारभूत कर्म जैसे सब प्राणियों को भगवान का अंश मान कर आत्मवत् समझना, महापुरुषों का सम्मान दीनों पर दया, बराबरी वालों से सच्ची मित्रता आदि की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। इसके बजाय अभिमान व्यक्त करने, दूसरों का स्वत्व अपहरण करने, उनके साथ छल-कपट का व्यवहार करने, कष्टपूर्ण कार्यों द्वारा दूसरों को कष्ट पहुंचाने में भी किसी प्रकार

हमारे लिए वे -- तप-त्याग करने में भी संकोच न करेंगे। 'कल्कि-अवतार' का यह प्रसंग प्रश्नोत्तर-संवाद द्वारा जानने वालों और प्रकाशित करते हुए इस समय की आवश्यकता से ज्ञान और अनुभव का संगम है।

पर इस महाशक्ति काव्य (युग-गाथा) में कुछ ऐसे व्यक्ति भी चित्रण करते हैं जो इस महान उत्तरदायित्व का निर्वाह न करके अवतार होने का दावा करने लगते हैं और भगवान की अपेक्षा परिस्थितियों से मुक्ति दिलाने का वायदा करते हैं। इनमें अनेक मार्ग-भ्रष्ट व्यक्ति मार्ग च्युत हो जाते हैं और अवतार के वास्तविक कार्य व उद्देश्य के बजाय उल्टी-सीधी बातें करने लगते हैं जिससे इस महान-उद्देश्य को हानि पहुँचती है। ऐसे तथाकथित अवतार इस युग-धर्म करने वाले व्यक्तियों की तरह हैं जो यहाँ वहाँ चमत्कारी सिद्धांत रखते हैं वहीं ऐसा ही युग अनावश्यक उपस्थित हो जाते हैं। जिस प्रकार वर्तमान समय में स्वतंत्रता-प्राप्ति पर आज तक हजारों स्वतंत्रता-सेनानी कुछ न कर भी पाकर पेंशन का 'गांधी जी के अनुयायी' बन गए और ... में ... का पतन कराने वाले सिद्ध हुए, इसी प्रकार ये 'अवतार' नामधारी भी निष्कलंक अवतार के मार्ग में सहायता पहुँचाने के बजाय स्वार्थ-पूर्ति की कार्यवाहियों के कारण ही सिद्ध होंगे।

"इस समय इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है। सर्वाङ्गीण धर्माचार और अविवेक का उन्मूलन करके, सद्भावनाओं एवं सत्-प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करने के लिए इसका 'निष्कलंक अवतार' फिर हो रहा है। और आप उसका स्वागत करते हैं और बुद्धि वाले ईश्वरीय-चेतना में सहयोग देकर अनन्त सौभाग्य के भागीदार बन सकते हैं।"

यहाँ तक अवतार के प्रयोजन और स्वरूप के संबंध में भावना-त्मकतावादी दृष्टिकोण का वर्णन किया गया। भगवान की सत्ता और महत्ता को जिन उनकी आवश्यकता को वे भी स्वीकार करते हैं और उनकी सर्वशक्तिमानता में भी विश्वास रखते हैं, पर उनका विचार

जीवन की वास्तविकता का पता लग सकता है और वह दूसरों के साथ स्वयं भी सर्वोच्च गति को प्राप्त कर सकता है। हमें स्मरण रखना चाहिये कि इस सच्चे धर्म का पालन ही इस लोक को स्वर्ग लोक में परिणित कर सकता है, और तभी हम भगवान के ऐश्वर्य के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।

भक्ति और कर्तव्यनिष्ठा —

इतना ही नहीं कि भक्ति का रूप श्रद्धा, दया, परोपकारमय है, वरन् वह कर्तव्यनिष्ठा पर भी बहुत अधिक जोर देती है। अनेक व्यक्तियों का ख्याल है कि भक्ति-मार्ग पर चलने वाले मनुष्य स्वभाव से ढीले, कठिनाइयों से पराङ्मुख और संघर्षमय जीवन के अयोग्य होते हैं। अपने इष्ट देव की कृपा पर ही पूर्णतया आश्रित रहने के कारण वे उद्योग, श्रम, साहस आदि गुणों की दृष्टि से पिछड़ जाते हैं और प्रायः भाग्यवादी बन कर जीवन संग्राम में असफल ही सिद्ध होते हैं। इतिहास के पाठक बतलाते हैं कि विदेशी मुसलमानों के आरंभिक आक्रमणों के समय सोमनाथ और मथुरा जैसे तीर्थ स्थानों में उन देवताओं के भक्तों और पुजारियों ने आक्रमणकारियों के प्रतिरोध का सामान्य प्रयत्न भी नहीं किया और अन्तिम समय तक यही कहते रहे कि "भगवान स्वयं इन दुष्टों का नाश कर देंगे।" उनकी अकर्मण्यता और कर्तव्य विमुखता का परिणाम यह हुआ कि महमूद गजनवी अनेक बार सोमनाथ और मथुरा के विशाल मन्दिरों को तोड़ और लूट कर करोड़ों का धन ले गया और उसने धार्मिक जनों की घोर दुर्दशा कर डाली।

पर सच पूछा जाय तो यह भक्ति का विकृत रूप है। 'कल्कि-पुराण' में इस सम्बन्ध में जो अभिमत प्रकट किया गया है, वह इससे सर्वथा भिन्न प्रकार का है। उसमें कहीं यह नहीं कहा गया है कि भक्त को लंगोटी पहिन कर या शरीर भर में तिलक-छापा लगा कर

है कि इस कार्य के लिये साक्षात् भगवान को मनुष्य शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं, वे किसी भी एक या अनेक व्यक्तियों को प्रेरणा, साहस, शक्ति प्रदान करके इस उद्देश्य को पूरा करा सकते हैं। यदि शास्त्रों का गम्भीर भाव से मनन किया जाय तो यह विचार-धारा भी उनमें पाई जाती है। इसे 'आधुनिक' ही समझा जाय यह कोई जरूरी बात नहीं। प्राचीन ऋषि-मुनियों में से भी कितनों ने ही 'अवतार' की इसी रूप में व्याख्या की है। उनका अभिमत है कि संसार की दशा का सुधार और परिवर्तन करने के लिए भगवान किसी उपयुक्त मानव के अन्दर में अपनी विशेष शक्ति का प्रवेश करा देते हैं और जब वह प्रयोजन पूरा हो जाता है तो वह शक्ति भी निकल कर जहाँ की तहाँ पहुँच जाती है। विशेष उद्देश्य की पूर्ति भगवान की विशेष शक्ति से ही होती है पर संसार के देखने में एक या कुछ व्यक्ति उसके निमित्त बन जाते हैं।

प्रत्यक्ष अवतार के समर्थक—

दूसरा पक्ष उन भक्ति-भाव प्रधान विद्वानों का है जो भगवान के साकार रूप में विशेष आस्था रखते हैं और कहते हैं कि मानव-समाज को शिक्षा और प्रेरणा देने के लिए भगवान को मानव-देह धारण करके अपनी लीला करनी चाहिये। ऐसा होने पर ही सामान्य मानव उसे हृदयंगम कर सकता है और उसका अनुकरण करके सफल होने का विश्वास कर सकता है। यदि भगवान अपनी शक्ति का अतीन्द्रिय रूप से प्रयोग करके किसी महान प्रयोजन को पूरा कर दे, अथवा असम्भव बना दे, अथवा असम्भव को सम्भव बना दे, तो इससे साधारण मनुष्य का मानसिक बल नहीं बढ़ सकता। वह यही कहता रहेगा कि "यह तो भगवान की महिमा है, हम सांसारिक प्राणी उसकी समता किस प्रकार कर सकते हैं।" मानव-जीवन में इस प्रकार के प्रत्यक्ष ईश्वरीय सहयोग की कितनी अधिक आवश्यकता है इस सम्बन्ध में 'कमिङ्ग आफ वर्ल्ड सेवियर' (जगत-त्राता की आगमन) पुस्तक में कहा गया है—

पर 'कल्कि' ने उनकी इस भावना को समय और परिस्थिति के प्रतिकूल समझा। क्योंकि वे देख रहे थे कि इस समय समस्त जगत में पाप और पाखण्ड व्याप्त है, इसलिये भगवान के सच्चे भक्तों का कर्तव्य है कि उसके सुधार का प्रयत्न करें जिससे अन्य जीवों के लिये भी भक्ति और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो। यदि केवल व्यक्तिगत पुण्यमय जीवन बिता कर मुक्ति के अधिकारी बन गये और संसार के शेष मनुष्य उसी प्रकार पाप-कर्मों में लिप्त रह कर नारकीय-जीवन का अनुभव करते रहे, तो उसका क्या महत्व हो सकता है ? इस-लिए उन्होंने उन दोनों से कहा—

युवां परम धर्मज्ञौ राजानौ विदितौ मम।
मदादेश करौ भूत्वा निज राज्य परिच्छदः ॥
हत्वा कृत युग कृत्वा पालयिष्यामि प्रजाः।
तपोवेशकृतं त्यक्त्वा समारुह्य रथोत्तमम् ॥
युवां सशस्त्र कुशलौ सेनागण परिच्छदौ।
भूत्वा महारथो लोके मया सह चरिष्यथ ॥

"तुम दोनों धर्मतत्व के बड़े ज्ञाता राजर्षि पुरुष हो। इस समय मेरे आदेश को स्वीकार करके राज कार्य करो। मैं पापियों का संहार करके सत्ययुग की स्थापना तथा प्रजापालन की सुव्यवस्था करूँगा। इस अवसर पर तुम भी तपस्वी वेष को त्याग कर उत्तम रथ पर सवार हो जाओ। तुम लोग अस्त्र-शस्त्र के संचालन में कुशल हो और बड़े योद्धा हो इसलिए इस सत्ययुग की स्थापना के अभियान में हमारे सहयोगी बन कर रहना।"

कल्कि-चरित्र का यह प्रकरण 'भगवद् गीता' में वर्णित भग-वान कृष्ण और अर्जुन के सम्वाद से मिलता-जुलता है। वहाँ भी अर्जुन ने सांसारिक कर्तव्य की अपेक्षा वन में रह कर तपस्या करने को ही महत्व दे रखा था। उसने वहाँ तक कह दिया था—

विश्व-राज्य की स्थापना करके मानव-मात्र में सहयोगात्मक, रचनात्मक और न्यायानुकूल प्रवृत्तियों का प्रचार करने की।

ये सब महान परिवर्तन अनिवार्य रूप से अन्तरात्मा, हृदय और मस्तिष्क में ही प्रकट होंगे। सड़े-गले विचारों वाले मनुष्यों से नये जगत का निर्माण नहीं हो सकता। केवल आध्यात्मिक दृष्टि से पुनर्जन्म ग्रहण की हुई जाति ही शान्ति, समृद्धि, आनन्द से युक्त संसार की रचना में समर्थ हो सकती है। इसका तात्पर्य है एक नवीन जगत और नये स्वर्ग की रचना करना। निश्चय ही इसके लिए आवश्यकता होगी सर्वोच्च आध्यात्मिक शक्ति और अभिरुचि की। ये सब कार्य मानसिक प्रयत्नों द्वारा ही पूरा किए जायेंगे। पर इस समय मनुष्य तो अनेक दोषों के शिकार बने हुये, इस कार्य के अयोग्य दिखलाई पड़ रहे हैं। मनुष्यों की सामर्थ्य इस कार्य के लिये सर्वथा अपर्याप्त है, क्योंकि इसके लिये मुख्यतया आध्यात्मिक प्रवृत्ति और आध्यात्मिक शक्ति की ही आवश्यकता होगी है, जिसकी इस समय मनुष्यों में बड़ी कमी देखने में आ रही है। इस समय समस्त मानव-जाति की रक्षा होनी है तो उसके लिये सर्वोच्च नैतिकता वाले व्यक्तियों के सामने आने और निःस्वार्थ भावना से काम करने की जरूरत है। सामान्य श्रेणी के नर-नारियों के लिये यह कार्य कल्पना से बाहर है। इसके लिए इस दृष्टि से पूर्णतः उपयुक्त नेतृत्व की आवश्यकता पड़ेगी।

इसके लिये आवश्यकता है मनुष्यों के एक सच्चे नेता की—एक सच्चे मार्ग दर्शक की। उसमें ऐसी शक्ति होनी चाहिये कि वह मानवता को इच्छित लक्ष्य तक पहुँचा सके और मनुष्य मात्र के हृदय, मस्तिष्क, आत्मा पर नियन्त्रण रख सके। इस महान कार्य के लिये जिसकी आवश्यकता है, वह सिवाय भगवान के और कोई नहीं हो सकता। इसके लिये किसी भी दैवी प्रतिनिधि या दूत (पैगम्बर) से काम नहीं चलेगा। सिवाय भगवद्-शक्ति के और कोई इस अवसर पर संसार की समस्या को नहीं सुलझा सकता।

हो—सिकन्दर और नेपोलियन की तरह सर्वत्र विजय प्राप्त करने वाला क्यों न हो, कोई हस्ती नहीं है। ईश्वरीय शक्ति देखते-देखते बड़े-बड़े सम्राटों और चक्रवर्तियों को मसल कर रख देती है। इसलिए यह अपने को उसी विश्व नियन्ता के आश्रित समझ कर और उसी के विधान को सर्वोपरि मान कर निर्भय हो जाता है। वह फिर सांसारिक दृष्टि से कैसी भी स्थिति में रहे, चाहे अक्षेय धन सम्पदा का स्वामी बन जाय और चाहे अपनी इच्छा से देने में से दाना बीन कर उदर पोषण करे, उसे अशान्ति, क्लेश, भय नहीं हो सकता।

ऐसे व्यक्ति की आत्मा सदैव निर्भय, निर्द्वन्द्व और उच्च अवस्था में रहती है। पर ऐसी शान्ति का अर्थ जो लोग निष्क्रियता, दीनता-हीनता समझते हैं, वे अवश्य ही बड़ी गलती करते हैं। ईश्वर कभी अपने भक्तों को दुर्दशा, हीनावस्था में नहीं रखना चाहते। वे इस प्रकार स्वयं कर्मयोग में उनको पूर्ण उद्योग, प्रयत्न करने का आदेश देते हैं और साथ ही विश्व-संचालक शक्ति का ध्यान (उपासना) करने की प्रेरणा करते हैं। जो कोई व्यक्ति इनमें से केवल एक ही मार्ग का अनुसरण करना चाहता है, उसका आचरण ईश्वरीय-विधान के प्रतिकूल माना जायगा और अन्त में उसे हानि उठानी पड़ेगी। 'गीता' का यही सिद्धान्त है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनो बुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

"इसलिये हे अर्जुन! तू सदैव मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार जब तू अपने मन और बुद्धि को भगवदार्पण कर देगा तो निश्चय ही परम पद को प्राप्त कर लेगा।"

भगवान अपने भक्त से कभी यह नहीं चाहते कि वह लौकिक कर्मों को त्याग कर - घर-गृहस्थी की तरफ से लापरवाह होकर केवल माला ही फेरता रहे। अथवा साधु-वेष धारण करके भजन-पूजा के

साधारण लोगों को भले ही दिलचस्पी हो, पर तत्त्वदर्शियों की दृष्टि उसका कुछ भी मूल्य नहीं। वे मानते हैं कि इतने बड़े प्रयोजन की पूर्ति कोई एक व्यक्ति नहीं कर सकता। भगवान अपने विशेष प्रति-निधि संसार में भेजते रहते हैं। पर वे अंश-अवतार ही होते हैं। 'अवतार' की वेला में अनेक प्रबुद्ध आत्माएँ एक साथ अवतरित होती हैं और वे मिल-जुलकर ही दैवी प्रयोजन की पूर्ति सम्भव करती हैं।

इस तथ्य को समझने वाले विचारक ऐसी भूत-भविष्यत् की घटनाओं में व्यक्तियों को कम महत्त्व देते हैं, वे भावना-क्षेत्र को ही पहिचानने का प्रयत्न करते हैं। इस समय एक प्रकार का जो प्रवाह समस्त विश्व को उद्वेलित कर रहा है, उसके पीछे एक ही तथ्य है —मानवता के प्राचीन कालीन उज्ज्वल गौरव की पुनः प्रतिष्ठापना। सदियों तक विदेशी शासन के नीचे पड़े रहने और आवश्यक समय में संघर्ष न करने की भीरुता का कलंक हमारे मस्तक पर एक कालिमा की तरह लगा हुआ है। इस अवांछनीय स्थिति को इसलिये सहन करते रहे कि संघर्ष में पड़ने से हमें कष्ट उठाने पड़ेंगे, त्याग करने पड़ेंगे। यह कारण एक आलसी, भीरु और आत्मा को अमर मानने वालों के लिये निःसन्देह बहुत दूषित है। अब जन-मानस में यही भावना-प्रवाह उत्पन्न होकर हलचल मचा रहा है कि स्वाभिमानी, सत्य-निष्ठ, विवेकशील मनुष्यों की तरह जियेंगे और हमारे जीवनों पर पिछली शताब्दियों से जो कलंक लगा है, उन्हें प्रायश्चित्तपूर्वक धो डालेंगे। इस भावना-प्रवाह को 'निष्कलंक अवतार' ही कहा जायगा।

उक्त अवतार हो चुका है—वह स्पष्ट और परिपुष्ट हो रहा है। पौराणिक-भाषा में इसका नाम है 'निष्कलंक' क्योंकि वह हमारी पिछली तथा वर्तमान दुष्प्रवृत्तियों, कलंकों को धो रहा है। उसके द्वारा ऐसा भावनात्मक-प्रवाह उत्पन्न किया जा रहा है, जिससे लोग अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा समस्याओं में ही उलझे रहने की अपेक्षा स्वभावतः लोक-मंगल सम्बन्धी कार्यों के लिये कटिबद्ध होंगे।

शक्तिसम्पन्न निश्शंक भाव से युद्ध क्षेत्र में गया और वहाँ इतनी वीरता से लड़ा कि देवी-भक्तों से युक्त कल्कि जी को वायु वर्षा करके छिन्न-भिन्न बना दिया और उनको पकड़ कर अपने स्थान में ले गया। जब इस प्रकार वह 'शत्रु पक्ष' पर विजय प्राप्त करके अपना कर्तव्य पालन कर चुका तब उसने एक सम्माननीय अतिथि के रूप में कल्कि जी की खूब सेवा-शुश्रूषा करके उनको स्वस्थ किया और उनके साथ अपनी पुत्री का विवाह करके सदा के लिए स्थायी सम्बन्ध स्थापित कर लिया। 'कल्कि पुराण' में कथा के रूप में वर्णित शक्ति का यह रूप निस्सन्देह बहुत ऊँचा और अनुकरणीय है।

'कल्कि' ने स्वयं भी हर जगह इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि जब तक संसार में पाप कर्मों और पापी मनुष्यों की अधिकता है, तब तक निरन्तर उनसे संघर्ष करते रहो। उन्होंने स्वयं भी अपना समस्त जीवन दुष्टों के दमन तथा सज्जनों की रक्षा में लगाया। उन्होंने अपने समस्त भक्तों को कर्तव्य-पालन की शिक्षा दी और इसी को ईश्वर की सबसे बड़ी पूँजी और भजन बतलाया। हृदय में ईश्वर का ध्यान और विश्वास रखना तो आवश्यक है, क्योंकि वही प्रत्येक छोटी बड़ी कठिनाई में धैर्य और साहस का आधार सिद्ध होता है। साथ ही इस व्यवहार में देश-काल की परिस्थिति और आवश्यकता को दृष्टि गोचर रख कर समस्त कर्तव्यों का प्रयत्न पूर्वक पालन करना भी हमारा कर्तव्य है। धर्म और भक्ति का सच्चा स्वरूप यही है।

का साहस भी नहीं कर सकते कि वर्तमान समय में भगवान मनुष्य रूप में अवतार लेंगे। वे जानते हैं कि प्राचीन समय में भगवान ने कितनी ही बार अवतार लिया है पर इस समय रक्त-मांस से बनी देह में जन्म लेकर वैसे काम कर सकते हैं, यह बात उनके मन में नहीं बैठती। इसे भाग्य-दोष सम्बन्धी मूढ़ता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।"

भगवान कृष्ण ने आज से ५००० वर्ष पहले स्पष्ट रूप में कहा था—'जब कभी धर्म-न्याय का पतन होता है और अधर्म प्रधानता प्राप्त कर लेता है तो मैं जन्म लेता हूँ।" अगर उनके ये शब्द सत्य हैं, तो वे इस समय भी आ सकते हैं। हम इस बात को अच्छी प्रकार समझते भी हैं, पर इस पर हमारा दृढ़ विश्वास नहीं होता। इसमें लोगों का ज्यादा दोष भी नहीं है। भगवान की माया बड़ी प्रबल है और उसी ने इस समय मनुष्य की बुद्धि पर पर्दा डाल रखा है।

हम ऐसे सज्जनों से पूछना चाहते हैं कि क्या अब नास्तिकों की निगाह में भगवान शिथिलित हो गया है? क्या भगवान ने मनुष्यों से प्रेम करना छोड़ दिया है। क्या दैवी अवतारों का युग समाप्त हो गया है। क्या संसार में तर्क, विज्ञान और 'बुद्धिमानी' की वृद्धि हो जाने से भगवान का आना रुक गया है? क्या भगवान 'एटम' और 'हाइड्रोजन' बमों का आविष्कार हो जाने से भयभीत हो गया है? नहीं, इनमें से कोई बात ठीक नहीं है। तब उनके अवतार को रोकने वाली कौन-सी बात है? इसका एक मात्र उत्तर यही दिया जा सकता है कि 'कुछ भी नहीं'।

सब से खास बात याद रखने की यह है कि जगत-त्राता का काम केवल कुछ सद्गुणों की शिक्षा देना नहीं होता, वह केवल कुछ दार्शनिक तत्त्व या धार्मिक सिद्धान्त सिखलाने को नहीं आयेगा। जगत-उद्धारक भगवान मानव जाति को बचाने के लिए, दुष्टता को मिटाने के लिये मनुष्यों के हृदय को बदलने के लिए, उनमें एक नवीन भावना

"भगवान की माया से इस प्रकार व्याकुल और अर्पित होकर मैंने स्त्री, पुत्र, धन-धान्य,सबका त्याग कर वन में जाकर विधि-विधान सहित तप करना आरम्भ किया परन्तु किसी प्रकार से भी इन्द्रिय और मन को वशीभूत न कर सका। मैं वन में बैठ कर जब परमात्मा का ध्यान करता, उस समय भी स्त्री, धन तथा अन्यान्य सांसारिक बातें मुझे स्मरण हुआ करती थीं। मेरे अन्तःकरण में स्त्री, पुत्र, ऐश्वर्य आदि का स्मरण होने से दुःख, शोक, भय आदि उत्पन्न होकर मेरा अन्तःकरण अति व्याकुल हो जाता और इससे, ध्यान, धारणा में विघ्न उपस्थित होने लगता। पुनः मैंने इन्द्रियों को नष्ट करने का संकल्प किया। मैंने विचारा कि इन्द्रियों को नष्ट करते ही मन वश में हो जायगा।

"अब इस प्रकार संकल्पपूर्वक मैं इन्द्रियों का दमन करने लगा तो उन इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवगण मेरी ओर देखने लगे और कहा—हम इन इन्द्रियों के दश देवता हैं। इनको छिन्न भिन्न तथा नष्ट करना तुम्हें उचित नहीं है। क्या इस प्रकार से मन को वशीभूत करके तुम अपना कल्याण कर सकोगे? कदापि नहीं। इन्द्रियों के छिन्न-भिन्न करने से तुम्हारे धर्म में बाधा होने पर तुम मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे। क्या तुम नहीं देखते कि जो अन्धे, बहरे और लूले-लंगड़े कि एकान्त में पड़े रहते हैं उनका मन भी विषय-भोगों के लिए लोलुप होता है? जीव तो अपने-अपने 'कर्मों' के आधीन रहता है। मुक्ति और संसार-बन्धन का कारण मन है। जगदीश्वर की माया के अनुसार मन ही लोलुप जीव को संसार चक्र में घुमाता रहता है। इसलिए हे अनन्त मुनि! तुम मन को वशीभूत करने के लिए विष्णु भगवान् की भक्ति करो। भक्ति ही निरन्तर समस्त कर्म का नाश करके सुख और मोक्ष प्रदान करती है। हरि-भक्ति से द्वैत-अद्वैत का ज्ञान हो जाता है। हरिभक्ति आनन्द-सन्दोह देने वाली है। हे महा-

का अधिकांश भाग निकल गया। तत्पश्चात् वह अपने पुत्र तथा कन्याओं का विवाह करने, गृह, कोष, सेवक, मन्त्री आदि के देख-रेख में व्यस्त रहने लगा। उसने स्वर्गीय भोगों की कामना से अनेक यज्ञों की दीक्षा भी ली। इस प्रकार करते-करते वृद्धावस्था आ पहुँची।

"अब चण्डवेग नामक गन्धर्व राज ने, जिसके अधीन तीन सौ साठ महाबलवान गन्धर्व रहते थे, राजा पुरञ्जन की पुरी को लूटना आरम्भ किया। तब पाँच फन के सर्प ने, जो उस पुरी का प्रधान रक्षक था, उसको ऐसा करने से रोका, और वह अकेला ही गन्धर्वों से वर्षों तक युद्ध करता रहा। इन्हीं दिनों एक काल-कन्या वर की खोज में त्रिलोकी में भटकती रही, फिर भी किसी ने उसे स्वीकार नहीं किया। यह काल-कन्या—'जरा' बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण मानी जाती थी और कोई उसे स्वीकार करना नहीं चाहता था। अन्त में वह यवनराज 'भय' के पास गई और उससे अपनी व्यथा और कामना कह सुनाई। यवनराज भय ने उससे कहा—"मैंने योगदृष्टि से देख कर तेरे लिए एक उपाय सोचा है। तू सबका अनिष्ट करने वाली है इसलिए किसी को अच्छी नहीं लगती। तू मेरी सेना लेकर जा, इसकी सहायता से सबको अपने अधीन करके इच्छानुसार भोग कर सकेगी, और कोई तेरा सामना न कर सकेगा।

"अब कालकन्या ने पुरंजन की पुरी पर आक्रमण किया और वह बलात्कार से उस पुरी की प्रजा को भोगने लगी। इसके फलस्वरूप राजा पुरञ्जन की सारी श्री नष्ट हो गई। उसने देखा कि गन्धर्व और यवनों ने उसका समस्त ऐश्वर्य लूट लिया है, सारा नगर नष्ट-भ्रष्ट हो गया है, पुत्र, पौत्र, भृत्य और अमात्य, सभी प्रतिकूल होकर अनादर करने लगे हैं, स्त्री स्नेह-शून्य हो गई और मेरी देह को काल-कन्या 'जरा' ने वश में कर रखा है।

"ईश्वर के बिना मानव-जीवन एक दुर्वह भार और न सुलझ सकने वाली समस्या है। भगवान से पृथक होते ही हमारा जीवन अपने मूल स्रोत, आनन्द, प्रसन्नता से पृथक हो जाता है। अपने आरम्भिक स्रोत से कटी हुई नदी की तरह वह थोड़े ही समय में सूख जाता है। इसके बिना किसी श्रेष्ठ और महान लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। बिना भगवान के जीवन का यथार्थ रूप में जी सकना असम्भव है। आज मनुष्य भगवान को भूल गया है। वह सोचता है कि मैं स्वयं ही अपना स्वामी हूँ और सांसारिक विषयों की जिस प्रकार चाहूँ व्यवस्था कर सकता हूँ। इसमें ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं। उसकी इसी मिथ्या अहम्मन्यता का परिणाम है कि आज मनुष्य अपने ही आविष्कारों के परिणाम स्वरूप मृत्यु के सामने खड़ा है और भयङ्कर दुर्घटना होकर उसके सर्वनाश की सम्भावना पैदा हो गई है।

"आज संसार की सबसे बड़ी आवश्यकता 'भगवान' ही है। समस्त मानव-जाति को भगवान के समझने और मानने की आवश्यकता है। मनुष्य को ईश्वर के सम्बन्ध में विचार करना चाहिये, ईश्वर के सम्बन्ध में वार्तालाप करना चाहिये, ईश्वर को जीवन का मूल-आधार स्वीकार करना चाहिये और स्वेच्छापूर्वक जीवन के समस्त व्यापारों में भगवान को पिता और सब मनुष्यों को भ्राता मानकर आचरण करना चाहिये। वर्तमान समय का समाज सङ्गठन बिना किसी निश्चित योजना के अस्तव्यस्त हो गया है, उसमें अनेक प्रकार के अन्याय और असमानता का समावेश हो गया है। उसमें भगवान के पितृत्व और मनुष्यों के भ्रातृत्व का खण्डन कर दिया गया है और यही कारण है कि आज मानव जाति आत्महत्या करके जड़मूल से नष्ट हो जाने की स्थिति में पहुँचती जाती है।"

भगवान ही संसार का संचालक है—

बिना भगवान के मनुष्य सर्वथा असमर्थ है। पर यदि मनुष्य असहाय है तो भगवान करुणासिन्धु है। आज मनुष्य को बहुत अधिक

मुझे छोड़कर यहाँ पृथिवी पर चले आये। यहाँ घूमते-घूमते तुमने एक स्त्री का रचा हुआ स्थान देखा। भाई! उस नगर में उसकी स्वामिनी के फन्दे में पड़ कर, उसके साथ विहार करते-करते तुम भी अपने स्वरूप को भूल गये और इसी से तुम्हारी यह दुर्दशा हो गई।

"देखो, तुम न तो विदर्भराज की पुत्री हो और न यह मलयकेतु तुम्हारा पति है। जिसने तुम्हें नौ द्वारों के नगर में बन्द किया था उस पुरंजन के पति भी तुम नहीं हो। पहले जन्म में तुम अपने को पुरुष मानते थे और अब सती स्त्री मानते हो—यह सब मेरी फैलाई हुई माया है। हम दोनों तो 'हंस' हैं हमारा जो वास्तविक स्वरूप है, उसका अनुभव करो। मित्र! जो मैं (ईश्वर) हूँ वही तुम (जीव) हो। तुम मुझसे भिन्न नहीं हो और तुम विचारपूर्वक देखो तो मैं भी वही हूँ जो तुम हो।"

इस प्रकार 'भागवत' में पुरंजन के उपाख्यान के रूप में जीवात्मा के संसार की माया में फँसने का वर्णन किया गया है। यह 'कालिका-पुराण' के 'अनन्त उपाख्यान' से मिलता-जुलता ही है। 'अनन्त ब्राह्मण' और 'पुरंजन राजा'—दोनों ही विषयासक्त होकर भी, परिवार और ऐश्वर्य की ममता से दुःखी और दुरवस्था को प्राप्त हुए थे और अन्त में सच्चा ज्ञानोपदेश मिलने पर उससे छुटकारा पा सके। इन दोनों उपाख्यानों का आशय यही है कि मनुष्य को संसार में आकर अपना सब कार्य कर्तव्य पालन की बुद्धि से और अनासक्त भावना रख कर करना चाहिये। उसे सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि यह सब मात्र सांसारिक प्रपंच क्षणिक है किसी भी समय यह बदल सकता है या नष्ट हो सकता है। ज्ञानी पुरुष उसी को कहा जा सकता है जो इसके बीच में रहकर भी निर्लिप्तता का भाव रखे।

जो राजा भरत प्रथम विशाल राज्य, पुत्र, कलत्र सब कुछ छोड़ चुके थे वे एक हिरन के मोह में पड़ गये और इससे आत्म-ध्यान में विघ्न होने लगा। समय आने पर जब राजा भरत ने प्राण त्याग किया तो मृग-बालक उनके समीप खड़ा दुःखित भाव से उनको देखता रहा और वे भी उसकी चिन्ता करते रहे। इसके फलस्वरूप वे आगामी जन्म में मृग होकर ही जन्मे। पर उनकी तपस्या के फल से पूर्व जन्म की याद बनी रही। उन्होंने उस योनि को भी सदा सूखी घास और पत्ते खाकर तपस्वी के समान ही बिताया और शीघ्र ही प्राण त्याग कर ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुए।

"अपनी पुरानी भूल को याद करके इस जन्म में वह पूर्ण-अनासक्त और विरक्त जीवन व्यतीत करते। उनको पूर्व जन्म का ही सब कुछ ज्ञान था, इसलिए उन्होंने गुरु के यहाँ भेजे जाने पर भी वेद तथा अन्य शास्त्र नहीं पढ़े। जब उनसे कोई प्रश्न किया जाता, तो वह सदा अहंकारहीन, इच्छाहीन अथवा प्रयोजन रहित वाक्य जैसे जड़वत् बनकर रहते थे। इससे उनका नाम 'जड़-भरत' पड़ गया और लोग प्रायः उनका अपमान किया करते थे। वह अति सामान्य अन्न कणों की ओर का आहार करते हुए समय व्यतीत करते।

"एक दिन जड़-भरत के ग्राम के समीप होकर सौवीर नरेश कहीं जा रहा था। उसके सेवकों को राजा की पालकी ढोने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता हुई तो उन्होंने अन्य कुछ लोगों के साथ जड़ भरत को भी बेगार के लिए पकड़ लिया। जड़ भरत ने इसका कुछ प्रतिकार नहीं किया, वरन् वह इसको अपने किसी पापमय प्रारब्ध का नाश करने का साधन समझकर पालकी उठाकर चलने लगे। पर जहाँ अन्य बेगारी मजदूर शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे, जड़ भरत पृथ्वी को देखते हुए धीरे-धीरे पग उठा रहे थे। इससे पालकी की गति में असमानता आती थी और राजा को असुविधा जान पड़ती थी। उसने

प्लेन) के द्वारा प्रेरित होंगे, जिससे प्रदृश्य होने के कारण कोई उनका विरोध न कर सकेगा और धीरे-धीरे उनके सम्मुख आत्म समर्पण कर देगा। आज कल विज्ञान में भी बड़े पेचीदा यन्त्रों को दूर से ही नियन्त्रण में रखा जाता है। भावी अवतार भी अपनी सर्वोपरि आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा सब लोगों की अन्तरात्मा को उसी प्रकार वश में कर लेंगे।"

यदि विज्ञान की आधुनिकतम खोजों और प्रत्यक्ष क्रियाकलापों पर ध्यान दिया जाय तब तो दूर से अदृश्य शक्ति द्वारा अनेक प्रकार के विलक्षण कार्यों के होने में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। पृथ्वी से चन्द्रमा पर भेजे गये यन्त्र द्वारा फोटो लेकर पृथ्वी तक भेजना वहाँ मिट्टी को खोदकर उसके तत्वों की जानकारी अमरीका और रूस की प्रयोग-शालाओं में बैठे हुए वैज्ञानिकों को दे देना, अन्तरिक्ष में हजारों मील ऊपर उड़ते हुए बीमार व्यक्ति की डाक्टरी परीक्षा पृथ्वी के अस्पताल से ही कर सकना और उसके लिए औषधि निर्देश करके सूचित कर देना, ऐसी बातें हैं कि यदि इनका भेद किसी को न बतलाया गया होता तो दुनियाँ इन्हें निश्चय ही 'जादू' या 'दैवी कृत्य' मान लेती। इस लिये यह मनोवृत्ति कि जिस बात को हम अभी नहीं समझ पाते उसे असत्य अथवा असम्भव घोषित कर दिया जाय, कोई बड़ी बुद्धिमानी अथवा 'ज्ञान' का लक्षण नहीं मानी जा सकती। विश्व-ब्रह्माण्ड के निर्माण और उसके संचालन के नियमों के विषय में हम अभी बहुत कम जानते हैं। इस लिये संसार का नियंत्रण करने वाली चैतन्य शक्ति किस-किस रूप में काम करती है इस सम्बन्ध में हठधर्मी से काम न लेकर अधिकाधिक अध्ययन, मनन और विचार का आश्रय लेकर उसका निर्णय करना ही उचित है।

यह तो मोटा-ताजा है।' यह पालकी यदि मेरे लिए बोझ-रूप हो सकती है तो वह तुम्हारे लिए भी उसी प्रकार हो सकती है। जिस पञ्च-भूत द्वारा यह पालकी बनी है, उसी से तुम्हारा, मेरा और अन्य सभी का शरीर भी बना है, जिसमें ममता का आरोप माना है।'

जड़ भरत के ये अध्यात्म-सिद्धान्त-प्रकाशक वचन सुनकर सौवीर नरेश तत्काल पालकी त्याग कर भूमि पर उतर आये। उन्होंने ब्राह्मण के चरण पकड़ लिए और कहा—"हे भगवन् ! आप इस वेष में कौन हैं ? यहाँ किस कारण आये हैं ? मुझे आपके विषय में जानने की बड़ी इच्छा हो रही है। जड़भरत ने कहा—"हे राजन् ! मैं कौन हूँ, यह कह नहीं सकता। इसके अतिरिक्त तुमने मेरे यहाँ आने का कारण पूछा तो आवागमनादि क्रियायें कर्म-फल भोगने के लिए ही होती हैं। धर्म-अधर्म से उत्पन्न सुख दुःख का भोग करने के लिए ही यह शरीर बनता है। हे राजन् ! ये धर्म-अधर्म ही सब जीवों की समस्त अवस्थाओं के कारण होते हैं, फिर मेरे ही आने का कारण पूछने की क्या विशेषता है ?"

इस प्रकार 'जड़ भरत उपाख्यान' में माया का जीव को बंधन में डालने वाला प्रभाव दिखलाया है और अध्यात्म-सिद्धान्त की दृष्टि से उसके स्वरूप का विवेचन भी अच्छी तरह किया है। राजा भरत के चरित्र से यह उपदेश मिलता है कि मनुष्य चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न पहुँच जाय सांसारिक माया-मोह एक अच्छे ज्ञानियों को थोड़ी-सी भूल हो जाने पर अपने पंजे में फँसा लेता है। यद्यपि राजर्षि भरत का मृग शावक की रक्षा का कार्य अत्यन्त दया भाव से प्रेरित था और उनकी सहृदयता की सब कोई प्रशंसा ही करेंगे। पर अपनी थोड़ी-सी हार्दिक कमजोरी के कारण वे उस मृग-बालक की सुरक्षा में आवश्यक रखने लग गये और इसी कारण माया ने उनको फाँस लिया। हमको परोपकार और दया को आश्रय करना चाहिये, पर उसको उचित सीमा

Nouy" (लकान्ते द नौय) ने, जो स्वयं एक प्रख्यात वैज्ञानिक हैं, कई वर्ष पहले लिखा था—

"मानव जाति ने अभी अपने इतिहास के अन्धकारमय युगों में से एक को पार किया है। वह सबसे अधिक दुखान्त भी हो सकता है, क्योंकि सम्पूर्ण संसार के कोने-कोने प्रवेश पा चुका है। मनुष्य को अपनी जिस सभ्यता पर इतना अधिक गर्व था उसकी दृढ़ता और स्थिरता को अभूतपूर्व हिंसा ने नष्ट कर दिया है। वर्तमान यान्त्रिक उन्नति का एक हानिकारक पहलू बड़े और खतरनाक युद्ध भी हैं। अब यह आवश्यक नहीं कि दुश्मन पड़ोस में हो, वह दुनिया के किसी भी कोने में हो सकता है। अब वायुयान और राकेटों द्वारा किसी भी स्थान पर कुछ ही घण्टों में मार की जा सकती है। इन युद्धों के कारण मनुष्यों को बड़ी दुर्दशा में रहना पड़ता है। राष्ट्र का अधिकांश धन शस्त्रों के निर्माण में खर्च हो जाता है और बहुसंख्यक लोगों को पूरा भोजन भी नहीं मिल पाता। यह तब तक होता रहेगा, जब तक मनुष्य विश्व बन्धुत्व को व्यापक मात्रा में नहीं सोचेगा, जब तक सबके समान आदर्श न होंगे। अभी इस अवस्था तक पहुंचने में समय लगेगा, पर निराशा का कोई कारण नहीं है। यदि हम सत्य के तत्वों को ठीक-ठीक समझ सकें तो हम यह कह सकते हैं कि मानव-जाति की मुक्ति 'धर्म' से ही मिलेगी।'

अमरीका की 'New History Society" (नवीन इतिहास समिति) के प्रमुख नेता डा० एच० सी० ऐंजिलब्रेट युद्धों के बड़े विरोधी हैं और उन्होंने "Merchants of death" (मृत्यु के सौदागर) नाम की पुस्तक में हथियार बनाने वाले पूँजीपतियों की चालों का पूरी तरह भण्डाफोड़ किया है। उनका कहना है कि ये गोला-बारूद बनाने वाले 'राजा लोग' अनेक देशों की सरकारों को अपने नियन्त्रण में ही नहीं रखते, वरन् उनकी नीति और कार्य प्रणाली को भी स्वार्थ

यस्यावयवसंस्थाने कल्पिता लोकविस्तरः
तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्वमूर्जितम् ॥
पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बर कुण्डलोल्लसत् ॥
एतान्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देव तिर्यङ्नरादयः ॥

अर्थात्—"सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत्तत्व आदि से निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया। उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत—ये सोलह कलायें थीं। उन्होंने 'कारण-जल' में शयन करते हुए जब योग निद्रा का विस्तार किया, तब उनके नाभि सरोवर में से एक कमल प्रकट हुआ और उस कमल से प्रजापतियों के अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुये। भगवान के उस विराट रूप के अंग प्रत्यंग में समस्त लोकों की कल्पना की गई है और वही भगवान का विशुद्ध, सत्वमय श्रेष्ठ रूप हजारों पैर, जांघें, भुजायें और मुखों के कारण अत्यन्त विलक्षण है। उसमें हजारों सिर, हजारों कान, हजारों आँखें और हजारों नासिकायें हैं। हजारों मुकुट, वस्त्र, कुण्डल आदि आभूषणों से वह उल्लसित रहता है। भगवान का यही सगुण रूप अनेक अवतारों का बीज है जो अक्षय रहता है। इसी रूप के छोटे से अंश से देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि समस्त प्राणियों की सृष्टि होती है।"

भगवान के इस विराट स्वरूप की कल्पना और उसी में समस्त अवतारों के प्रकट होने का वर्णन ही एक मात्र ऐसा सिद्धान्त जो इस समस्या का ठीक समाधान कर सकता है। इसके पश्चात् जितने भी और तर्कवादी विद्वानों ने इस विषय का विवेचन किया है वह घुमा-फिरा कर 'भागवत' की इसी व्याख्या के अन्तर्गत आ जाता है। यद्यपि पौराणिक शैली के अनुसार उसमें रूपक और अलंकार भरे पड़े हैं, पर उसका आशय शब्दों में यही है कि जगत का संचालन

यह एक चित्र है आधुनिक सभ्यता और विज्ञान का अहंकार करने वाले राष्ट्रों का। इस प्रकार विश्वव्यापी नर-संहार में सभी राष्ट्रों के अपार क्षति उठानी पड़ती है और अनेकों की तो कमर ही टूट जाती है। तब उनके साधनों का शोषण करके अन्य नूतन राष्ट्रों का उत्थान होता है। आज सर्वाधिक बुद्धिमान और ज्ञान-विज्ञान में बढ़चढ़े लोग ही जब इस प्रकार का विपरीत आचरण कर रहे हैं तो इसे दैवी-माया के प्रभाव के अतिरिक्त क्या कहा जाए? एक तरफ तो मनुष्य चन्द्रलोक तथा अन्य लोकों तक पहुँचने के असम्भव माने जाने वाले कार्य में सफलता प्राप्त कर रहा है और दूसरी तरफ अपनी शासन-प्रणाली में ऐसा सुधार भी नहीं कर सकता जिससे जीवन निर्वाह की सामग्री का उचित बँटवारा हो सके और किसी 'मानव-सन्तान' को अकारण भूखा और नङ्गा न रहना पड़े। इसी परिस्थिति के कारण विभिन्न देशों की जनता में असन्तोष और विद्रोह की उत्पत्ति होती है और षड्यन्त्र, क्रान्ति तथा शासन-सत्ता के उलटने के दृश्य प्रतिदिन दिखाई पड़ रहे हैं। इन बुद्धिमान और विद्वान व्यक्तियों द्वारा अपने ही पैरों में आप कुल्हाड़ी मारने वाले कार्यों को यदि हम 'ईश्वरीय माया' कहें तो इसमें क्या गलती है?

सत्य तो यह है कि गत पाँच सौ वर्षों से योरोप के गोरे लोग अमरीका के मूल निवासी 'रेड इण्डियन्स' (लाल रंग वालों,) अफ्रीका के हबशियों (काले रङ्ग वालों) और एशियाई देशों के अशिक्षित लोगों की हत्या और शोषण कर रहे हैं। इन देशों के निवासी प्राकृतिक जीवन बिताने वाले और सीधे-सादे थे, जिनको दानव स्वभाव के गोरों ने बन्दूक, तोप और घातक अस्त्र-शस्त्रों के बल पर मनमाना लूटा सताया और अनेकों का नाम निशान ही मिटा दिया। वे तो समझते थे कि हम इन सबको मिटाकर अथवा गुलाम बनाकर स्वयं ही स्वर्गीय भोग भोगेंगे, पर ईश्वर के दरबार में ऐसी नीति सदैव नहीं चल सकती। जिस देश-

दसवाँ अध्याय

अवतार का प्रचार और उसकी प्रतिक्रिया

संसार की वर्तमान अभूतपूर्व हलचल, चारों तरफ फैली हुई मार धाड़, चन्द्रलोक-यात्रा तथा डाक्टरों के 'दिल बदल' जैसी ईश्वरीय सत्ता को चुनौती देने वाले आविष्कारों ने 'संसार भर के धार्मिक लोगों' के दिमाग में एक उथल-पुथल पैदा करदी है। हमारे भारतीय बन्धु तो सदा से 'भगवान् की लीला' के आगे नतमस्तक होते ही आये हैं और उसके आगे आत्म-समर्पण को ही उन्होंने उद्धार और रक्षा का एकमात्र मार्ग स्वीकार किया है। चाहे इन विचारों को 'आधुनिकता' के रङ्ग में रंगे हुए लोग 'अन्धविश्वास' ही क्यों न कहें, पर भारतीय-संस्कृति में पला हुआ व्यक्ति ऐसी संकट की घड़ी में 'भगवान' से बढ़कर आश्रय और किसी को नहीं मान सकता। उसका यही आन्तरिक विश्वास होता है कि चाहे भौतिकता के अभिमानी कितनी ही उछल कूद क्यों न मचा लें, पर जब दैवी-चक्र चलेगा तो सब क्षण भर में धराशायी होते ही दिखाई देंगे।

भारतीय-धर्म के अनुयायियों की बात छोड़ भी दें तो आज योरोप, अमरीका के प्रगतिशील लोगों में से भी करोड़ों नर-नारी प्रतिदिन होने वाली सनसनीपूर्ण घटनाओं तथा हलचल से प्रभावित होकर किसी बहुत बड़े परिवर्तन की आशा करते हैं। ईसाइयों की 'बाइबिल' में एक स्थान पर कहा गया है—

'जब अन्त समय (युग-परिवर्तन का अवसर) आयेगा तब चारों तरफ लड़ाइयाँ होंगी लोगों और लड़ाई की अफवाहें सुनाई देंगी

एक 'भगवान' या दैवी शक्ति है, क्योंकि प्रत्येक देश या मजहब के लिये एक-एक पृथक दैवी-शक्ति या भगवान को मानना तो मूर्खता का लक्षण होगा। इसका अर्थ तो यह होगा कि जब काल-प्रभाव से किसी मजहब का अन्त हो जाय तो उसका 'भगवान' भी समाप्त हो गया और जब किसी नये मजहब का आरम्भ हो तो उसका नया 'भगवान' उत्पन्न हो गया। ये सब बातें बुद्धि बाह्य लोगों की बातें हैं, जिनको कोई विद्वान या बुद्धिमान मनुष्य नहीं दे सकता।

इस प्रकार हम 'अवतारों' की संख्या जिनका पता पुराणों और इतिहासों से लगाया जा सकता है, चौबीस ही नहीं कई सौ तो मान ही सकते हैं। इनमें दस-बीस का उल्लेख स्थान-स्थान पर किया भी गया है, पर यहाँ हमारा उद्देश्य उन्हीं अवतारों का वर्णन करना है। जिनका भारतीय शास्त्रों में उल्लेख है और जिनमें से अनेकों का नाम हम प्रायः सुनते भी रहते हैं। 'भागवत' में २४ अवतारों का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६ ॥
द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥
तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥ ८ ॥
तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ।
भूत्वात्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥
पंचमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ।
प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १० ॥

"भगवान ने आरम्भ में सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—चार ब्रह्मकुमारों के रूप में अवतार लेकर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया। दूसरी बार उन्होंने यज्ञ वाराह का रूप धारण

फिर से स्थापना होने की आशा कर रहे हैं। हम अच्छी तरह समझ रहे हैं कि आवश्यकता एक ऐसे 'अवतार' की है जिसमें ईश्वर का पूरा प्रकाश मौजूद हो। वही उन हृदयों को प्रकाशित कर सकता है जो ईश्वर के लिए व्याकुल होकर पुकार रहे हैं और जो पृथ्वी पर मनुष्य मात्र में भ्रातृभाव की स्थापना के अभिलाषी हैं। आज संसार के सभी देशों में ऐसे अनेक व्यक्ति 'दैवी अवतरण' की राह देख रहे हैं। एक ग्रन्थ लेख में पादरी 'मेनार्ड' ने अवतार के विषय में अपनी दृढ़ श्रद्धा व्यक्त की है—

'एक महान प्रकाश के लिए हमको तैयार हो जाना चाहिये। उस अवसर के आने में अब अधिक देर नहीं है। शायद दिन पर दिन खतरनाक होती जाती है, आसमान में काले बादलों के दल इकट्ठे हो रहे हैं और इन बादलों के कारण प्रकाश की किरणें निरन्तर क्षीण पड़ती जाती है।

'पर ऐसे समय में दुनिया वाले क्या कर रहे हैं? इन में से अधिकांश ऐसे हैं जो भगवान् की इच्छानुसार चलने के बजाय भगवान को अपनी इच्छा के अनुकूल बनाना चाहते हैं। बहुतों को तो यह भी पता नहीं कि हमारे लिए और संसार के लिए भगवान के पास कोई विशेष योजना है। अनेक यह भी स्वीकार नहीं करते कि यह संसार ईश्वर का बनाया है और इसका न्याय तथा प्रेमयुक्त शासन वही परम पिता कर सकता है। इस समय हमारी एक-मात्र आशा भरोसा यही है कि परमात्मा की शक्ति फिर से प्रकट होकर संसार का उद्धार करेगी।'

बहुत सज्जन यह भी विश्वास करते हैं कि अब जो अवतार होगा वह सभी जातियों और देशों का होगा। वह ईसाइयों में ही होकर और ईसाइयों का ही पथ-प्रदर्शक

करके पृथ्वी को जल के भीतर से निकाला। तीसरी बार 'ऋषियों' की सृष्टि में वे देवर्षि नारद के रूप में प्रकट हुये और निष्काम कर्म द्वारा मुक्ति का मार्ग दिखलाया। धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ से उन्होंने नर-नारायण के रूप में अवतार लिया और बड़ी कठिन तपस्या की। पाँचवें अवतार के समय वे सिद्धों के स्वामी कपिल देव के रूप में प्रकट हुये और आसुरि ऋषि को तत्त्वों के निर्णय करने वाले 'सांख्य-शास्त्र' का उपदेश दिया।

षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया।
आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥ ११ ॥
ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत।
स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायम्भुवान्तरम् ॥ १२ ॥
अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥
ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः।
दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥ १४ ॥
रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥ १५ ॥

'अनुसूया के वर माँगने पर वे छठे अवतार में अत्रि ऋषि के पुत्र रूप में—दत्तात्रेय हुए और अलर्क, प्रह्लाद आदि को ज्ञानोपदेश किया। सातवीं बार उन्होंने रुचि प्रजापति की पत्नी आकूति से 'यज्ञ' के रूप में अवतार लिया और अपने पुत्र 'याम' आदि के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की। आठवीं बार राजा नाभि की पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव के रूप में प्रकट हुये, और परम हंसों का वह मार्ग प्रचलित किया जो सबके लिये वन्दनीय है। नवीं बार ऋषियों की प्रार्थना पर वे राजा पृथु के रूप में अवतीर्ण हुए और मनुष्यों के निर्वाह के लिये पृथ्वी से समस्त वनस्पतियों का दोहन किया। दसवीं बार, चाक्षुष मन्वन्तर में जल में लय समस्त पृथ्वी-मंडल जब

आस्ट्रेलिया की रहने वाली एक आध्यात्मिक-ज्ञान सम्पन्न महिला मिस एडिनबेरा ने वर्तमान कष्टपूर्ण स्थिति से बचने के लिए एक सुझाव के रूप में अपने अनुयायियों तथा सभी धर्म प्रेमी सज्जनों से कहा था कि सब पूर्ण रूप से मिलकर सहयोगपूर्वक काम करने का समय आ गया है। अब ऐसा बताया जा रहा है कि आपको आपस के सब भेद-भाव और विरोधी विचार त्याग कर, एकता पर ही जोर देना चाहिये। इस 'नये युग' में ऐसे लोगों का अस्तित्व कायम रह सकना कठिन होगा जिनमें आत्मिक शक्ति की कमी या अभाव पाया जायगा। यद्यपि वे टिके रहने की कोशिश करेंगे पर उनको अधिक समय तक ठहर सकने में सफलता प्राप्त न होगी। आकाश से आने वाली 'किरणें' उनके लिये 'मौत की औषधि' काम करेंगी। स्थिति की भयङ्करता को देखते हुए हमारा एकमात्र कर्तव्य यही है कि भगवान् पर पूर्ण विश्वास करके अपने को उसके भरोसे उसी प्रकार छोड़ दें जैसे बालक माता के विश्वास पर सर्वथा निश्चिन्त हो जाता है। भगवान ऐसे ही सच्चे हृदय से दृढ़ श्रद्धा रखने वाले लोगों को ही नवीन वातावरण और नई दुनिया में स्थान देंगे।'

नई दुनिया की रचना अवश्यम्भावी है—

इस प्रकार सभी देशों के विचारकों में यह भाव फैल रहा है कि वर्तमान समय में मानव-सभ्यता अग्रसर होते-होते ऐसे स्थान पर आ पहुँची है जहाँ उसकी गति रुद्ध हो गई है और इसलिए उसमें तरह-तरह के दोष उत्पन्न होकर संसार को संकटजनक परिस्थिति में डाल रहे हैं। जिस प्रकार बहता हुआ पानी किसी बड़े गड्ढे में रुक जाता है तो कुछ ही समय में उसमें काई और तरह-तरह के हानिकारक कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार वर्तमान समय में कुछ थोड़े से लोगों के हाथ में संसार की समस्त शक्ति और साधन आ जाने से

में डूब गया तो उन्होंने मत्स्यावतार के रूप में वैवस्वत मनु की रक्षा की।"

सुरासुराणामुदधि मथ्नतां मन्दराचलम् ।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥ १६ ॥
धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।
अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥ १७ ॥
चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ।
ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥ १८ ॥
पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः ।
पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥
अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥ २० ॥

"जिस समय देवता और दैत्य मिलकर समुद्र मन्थन करने लगे तो भगवान् ने कच्छप रूप धारण करके ग्यारहवाँ अवतार लिया और मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण किया। बारहवाँ अवतार धन्वन्तरि के रूप में अमृत लेकर हुआ तेरहवाँ मोहिनी रूप में प्रकट हुआ जिसने दैत्यों को मोहित करके देवताओं को अमृत प्रदान किया। चौदहवाँ अवतार नृसिंह भगवान् के रूप में हुआ और उन्होंने महाबलशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपु की छाती को इस प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे चटाई बनाने वाला सींकों को चीर देता है। पन्द्रहवाँ अवतार वामन का हुआ, जिसमें उन्होंने बलि के यज्ञ में जाकर तीन पैर पृथ्वी माँगी और तीनों लोक नाप लिये। सोलहवाँ अवतार परशुराम का हुआ जिन्होंने राजाओं को ब्राह्मणों का द्रोही देखकर क्रोध पूर्वक इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर दिया।"[1]

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥"

"घोर कलियुग का एक मुख्य कारण संसार की जन-संख्या का बहुत अधिक बढ़ जाना भी है। संसार में शान्ति स्थापना करने के लिए सबसे पहली बात यह है कि यह बढ़ी हुई जनसंख्या कम हो। इसके लिये मनुष्य यदि विवेक से काम लेवें तो स्वयं भी सतयुग ला सकते हैं। और यदि उन्होंने विवेक और संयम से काम न लिया तो भगवान अपनी प्रकृति द्वारा स्वयं नये युग की स्थापना करेंगे।

"ऐसा परिवर्तन होने से रोटी का झगड़ा खत्म हो जायगा और एक दूसरे देशों को विजय करने की आवश्यकता ही शेष नहीं रहेगी। सबको स्वराज्य प्राप्त हो जायगा, मजदूरों के झगड़े खत्म हो जायेंगे, ऊँच-नीच का प्रश्न हल हो जायगा। इसलिये सामाजिक वैषम्य भी न रहेगा। सबको मनुष्य समझा जायगा। भ्रातृभाव की स्थापना हो जायगी। और राजनैतिक तथा आर्थिक गुत्थियाँ ऐसी हल हो जायेंगी कि न तो कोई भूखा रहेगा न किसी पर अन्याय हो सकेगा। फिर एक बार धर्म-राज्य स्थापित हो जायगा।"

श्री विश्वरञ्जन ब्रह्मचारी ने 'जीवन-रहस्य' नामक बंगला ग्रन्थ में लिखा है—

"जगदीश्वर की जिस प्रकार की प्रेरणा मिली है उससे अब हमको हताश होने का कोई हेतु नहीं। इस घोर मिथ्यायुग (कलि-युग) में ही सत्य-युग का प्रकाश बिखर जायगा। अब पुनः इस देश में ऋषि-युग आयेगा। फिर सत्यधर्म से भारत गगन पवित्र होगा। पुण्यात्मा, तपस्वी महात्माओं के प्रयत्नबल से, अमोघ आशीर्वाद से लोगों के प्राण संजीवित हो उठेंगे। फिर यह भारत ही समग्र वसुधा को ज्ञान-प्रकाश द्वारा 'अमृत' का पथ-प्रदर्शन करा देगा—सत्य वस्तु का अनुसन्धान बता देगा। वह दिन आयेगा, अवश्य ही आयेगा।"

हिमालय के सिद्ध महात्मा स्वामी शान्तानन्दजी ने यह आशा-जनक सन्देश दिया है कि 'साधना में संलग्न ऋषि लोग इस समय

समय भगवान की अनुपम सत्ता प्रकाशित होती जान पड़ती है और वह दिन समीप ही है जबकि समस्त संसार प्रेम, समता और भ्रातृभाव के सन्देश से गूँज उठेगा। यह दैवी-संगीत इस भारत-भूमि से ही प्रारम्भ होगा।'

ईश्वर एक ही रहेगा—

'सर्व धर्म सम्मेलन' के सभापति सर फ्रान्सिस यंगहसबैण्ड ने एक घोषणापत्र द्वारा नवयुग आगमन का सन्देश दिया है और इसके लिये धार्मिक मतभेदों को त्यागने की सम्मति दी है —

'संसार का पुनर्संगठन सूक्ष्म-जगत में आरम्भ हो गया है। इसके पहले एक मेह संसार की रचना के लिए इतना पवित्र उत्साह और तत्परता कभी दिखलाई नहीं पड़ी थी। संसार में नवीन युग की स्थापना के लिये सबसे आवश्यक बात सब धर्मों के अनुयायियों की आध्यात्मिक प्रेरणा ही है। जिस प्रकार यह 'नवयुग' किसी एक देश के निवासियों की कोशिश से नहीं आवेगा वरन् उसके लिये सभी देश वालों को चेष्टा करनी पड़ेगी, इसी प्रकार यदि संसार के सब धर्मों के अनुयायी विश्व-कल्याण के लिये आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करना चाहते हैं तो उनको भी मिलकर एक होना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में फ्रान्स के महान दार्शनिक 'हेनरी-बर्गसाँ' का यह कथन बहुत ही महत्व का है कि 'समस्त मनुष्यों का ईश्वर एक ही है। उसको एक ही मार्ग द्वारा, जो सबको प्राप्त हो सकता सम्भव है—पारस्परिक कलह और युद्ध का अन्त हो जायगा।'

सम्मेलन के कथन से एक बहुत महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी निकलता है कि नये 'अवतार' को संसार में नया [illegible] स्थापित करने के लिये किसी प्रकार की हिंसा और मार-काट का आश्रय नहीं लेना

"तत्पश्चात् उन्ही यज्ञ पुरुष ने यज्ञ में स्वर्ण की कान्ति वाले 'हयग्रीव' के रूप में अवतार ग्रहण किया था। भगवान् का वह विग्रह वेदमय, यज्ञमय और सर्व देवमय है। उन्ही की नासिका से श्वास के रूप में वेदवाणी प्रकट हुई।"

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान् विवृद्ध-
भावेन साधुपरितुष्ट उवाच योगम्।
ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं
यद्वासुदेवशरणा विदुरञ्जसैव ॥

"हे नारद ! तुम्हारे प्रेम-भाव से अत्यन्त प्रसन्न होकर हंस के रूप में भगवान् ने तुम्हे योग, ज्ञान और आत्म तत्त्व को प्रकाशित करने वाले वैष्णव धर्म का उपदेश दिया। वह श्रेष्ठ ज्ञान भगवान् के शरणागत भक्तों को ही सुगमता से प्राप्त हो सकता है।"

भगवान के अवतार असंख्य हैं—

इन चौबीस अवतारों का वर्णन करके भागवतकार ने अन्त में स्वयं ही यह कह दिया है कि भगवान् के अवतारों की तो कोई संख्या ही नहीं है, क्योंकि संसार में जो कुछ विभूति-युक्त पदार्थ हैं वे सब भगवान् के विशेष अंश रूप हैं और इसलिये उनके अवतार ही हैं—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥
ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥

"जैसे अगाध सरोवर से हजारों छोटे-छोटे नाले निकलते हैं वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् श्रीहरि के असंख्यों अवतार हुआ करते हैं। ऋषि-मुनि देवता प्रजापति, मनु पुत्र और जितने भी महान् शक्तिशाली हैं, वे सब भगवान् के ही अंश हैं।"

'भागवत' के ही अध्याय २-६ में इस बात को और भी स्पष्ट रूप में विस्तार के साथ कहा गया है—

खड्ग (तलवार) का होना शास्त्रों में लिखा गया है, वह लोहे से बनी साधारण तलवार नहीं है वरन् 'ज्ञान रूपी खड्ग' है, जिससे संसार भर के लोगों के मस्तिष्क को एक ही साथ बदला जा सकता है। इसको अलंकार की भाषा में 'मस्तिष्क काटना' भी लिख सकते हैं। इसलिए हमको वर्णों के इस कथन में बहुत कुछ सार दिखाई पड़ता है कि निकट भविष्य में कोई ऐसा महामानव प्रकट होना सर्वथा सम्भव है, जिसकी एक ही भावना लोगों की पारस्परिक कलह और युद्धों का अन्त कर देगी।

अवतारवाद की प्रतिक्रिया—

'अवतार' के प्रकट होने की इस नवीन भावना ने हमारे देश में गत पचास वर्षों के भीतर विशेष जोर पकड़ा है और इसी बीच में अनेक विचारकों, लेखकों और धार्मिक व्यक्तियों का ध्यान इधर आकर्षित हुआ है। हिन्दी भाषी सामान्य पाठकों में इसका प्रचार "चेतावनी" नामक छोटी सी पुस्तिका से हुआ, जो सन् १९३० के आस-पास प्रकाशित हुई थी। इसमें महाभारत के एक श्लोक के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था कि वर्तमान कलियुग १ अगस्त १९४१ को समाप्त होकर उस समय से 'सतयुग' प्रारम्भ हो जायगा। लोगों को यह बात कुछ अनोखी-सी जान पड़ी। क्योंकि आमतौर से वे यही सुनते आये थे कि कलियुग चार लाख ३२ वर्ष का होता है और उसमें से अभी पाँच हजार वर्ष के लगभग ही व्यतीत हुये हैं। इसलिये जहाँ सर्व-साधारण इस पुस्तिका को कौतूहलपूर्वक पढ़ने लगे वहाँ पुराने ढङ्ग के पण्डित उसका 'विरोध' भी करने लग गये और 'सतयुग और कल्कि अवतार' की बात का प्रचार करने वालों तथा उस पर विश्वास करने वालों को "मूर्ख" की पदवी देने लगे। इस वाद-विवाद से उक्त पुस्तिका का प्रचार काफी हो गया और जगह-जगह उसकी चर्चा सुनाई पड़ने लगी।

'भगवान् वैकुण्ठनाथ बालाजी (आन्ध्र प्रदेश) के मंदिर में एक बड़ा सर्प बाहर से आया। उस समय भगवान की पूजा करने वाले वहीं पर थे। वे उस सर्प को देखकर भय से मन्दिर ही किवाड़ की आड़ में छिप गये। तब सर्पराज ने एक वृद्ध पुरुष का रूप धारण करके, उन छिपने वाले भक्तों को सामने बुलाकर कहा, मेरे प्यारे भक्तो! तुम मेरे से मत डरो, मैं कुछ ही दिनों के भीतर कलियुग में अवतार धारण करूँगा और दुष्ट पाप कर्म करने वालों को कुचल कर न्याय [illegible] पालन करूँगा।' और भी कई बातें लिखी हैं। और अन्त में यह भी कह दिया गया है कि जो 'इसको ५ हजार या कम से कम २५ प्रतियाँ बाँटेगा तो १५ दिन में उसकी मनोकामना पूर्ण होगी।'

धार्मिक बातों के प्रचार करने का यह एक पुराना तरीका है। इन बातों के सत्य अथवा झूठ होने के सम्बन्ध में विचार उठाना ही निरर्थक है पर इससे इतना प्रकट हो जाता है कि भारतीय जनता की मनोभावना पर 'अवतार' का प्रभाव बहुत समय से चला आया है।

दिल्ली का 'निष्कलङ्की-दल'–

इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण दिल्ली और आस-पास के स्थानों में पाया जाने वाला 'निष्कलङ्की-दल' है। इसकी स्थापना को तो अब पचासों वर्ष व्यतीत हो गये होंगे पर सन् १९३८—३९ के लगभग जब हरजुग-आन्दोलन बढ़ा तो इसकी भी अनेक शाखायें खुल गईं और जगह-जगह धूमधाम से कीर्तन-समारोह होने लग गये। इस प्रकार का एक कीर्तन, जो रात भर होता रहा, मैंने भी दिल्ली में देखा था। करीब ४०—५० नवयुवक, अधेड़ और वृद्ध बड़े जोश और भक्ति-भाव से 'कल्कि भगवान' के एक बड़े चित्र के सम्मुख घण्टों तक तरह-तरह के भजन गाते रहे। उनके उत्साह, तल्लीनता और आन्तरिकता को देखकर यही प्रतीत होता था कि उनको 'कल्कि' के आगमन का पूरा विश्वास है और वे उनके नाम पर कुछ त्याग, परमार्थ करने

अपने मस्तिष्क को 'सत्य' से अवरुद्ध रखकर निस्सार दलीलोंमे ही आनन्द का अनुभव किया करते हैं। उनको उन कथाओ मे वर्णित अद्भुत प्राणियों की विशालता, आहार, भोग और अन्य चमत्कार आदि बातें तो याद रहती हैं, पर उनमें निहित सृष्टि और अवतारवाद का उद्भव और मानव की बुद्धि, शक्ति, सभ्यता का क्रमश. विकास समझ में नही आता। ऐसे लोग पौराणिक-शैली की विशेषताओं और उद्देश्य पर कुछ ध्यान न देकर केवल उनके कहानी वाले अशों की आलोचना, खण्डन-मडन करने में ही अपनी योग्यता समझा करते हैं। पर ऐसा करने से वे उन कथाओं में छिपे ज्ञानवर्द्धक तथ्यों से वंचित रह जाते हैं, उसका उन्हें कुछ ख्याल नही होता।

'भागवत' और अन्य अनेक पुराणों में अवतार सिद्धान्त पर जो कुछ कहा गया है उससे प्रत्येक विचारक यह समझ सकता है कि वे ससार के प्रत्येक पदार्थ प्राणी और कार्य को भगवान के रूप और लीला की दृष्टि से देखते हैं जब कि एक वैज्ञानिक इनका ससार के 'मूलतत्व' और 'क्रम विकास' के रूप में वर्णन करता है। पुराणकार का उद्देश्य करोडो अल्पशिक्षित और अशिक्षित और अर्धशिक्षित व्यक्तियों को कथा-कहानी के रूप में ईश्वर और विश्व-ब्रह्माण्ड की असीमता और अनन्तता का परिचय कराके धर्म, नीति, चरित्र तथा कर्तव्य पालन की शिक्षा देना होता है, जब कि वैज्ञानिक उसका वर्णन गूढ और गम्भीर शैली से करता है, जिसे विद्वान ही समझ पाते हैं। पुराणों की कथाओ को सुनकर चाहे सब लोग धार्मिक और पवित्र न बन जाते हो तो भी बहुसख्यक लोगो के हृदय में भक्ति और शुद्ध-आचरण की भावना विकसित होती है और आज तक उनके प्रभाव से करोडो व्यक्ति कुमार्ग से हटकर सुमार्गगामी बन चुके हो और आत्मोद्धार कर चुके हों तो कोई आश्चर्य की बात नही। पर वैज्ञानिकों का वर्णन किसी को धार्मिक, सच्चरित्र, परोपकारी बनाता हो यह अभी तक देखने मे नही आया। इस दृष्टि से विचार करने पर सर्व-

मानव-जाति के नष्ट होने की संभावना—

जब तक जो प्राणी पशु-पक्षी की योनियों तक सीमित था, उसे खाने, पीने, सोने, प्रजनन आदि की प्रेरणा स्वयं प्रकृति से ही प्राप्त होती थी। उसके विपरीत वह न तो कुछ सोच सकता था और न कर सकता था। उसका कार्य क्षेत्र और प्रभावक्षेत्र अत्यन्त सीमित था। पर जब से मानव का आविर्भाव होकर उसने विचार शक्ति प्राप्त की है तब से वह प्रकृति से प्रेरणा नहीं लेता वरन् निरन्तर उस पर अधिकार जमाकर व्यक्तिगत और सामूहिक हित के लिये उसका प्रयोग करने की चेष्टा कर रहा है। इसके फल से अनेक समस्यायें और उलझनें पैदा होती हैं जिनके कारण मनुष्यों में मतभेद, कलह और संघर्ष की वृद्धि होने लगती है। यह स्थिति बढ़ते-बढ़ते अब यहाँ तक पहुँच चुकी है, इस सम्बन्ध भारत के महान् विचारक श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखा है—

"हम मानव जाति के इतिहास में एक सबसे अधिक निर्णायक समय में रह रहे हैं। मानव इतिहास के अन्य किसी भी समय में इतने लोगों के सिर पर इतना अधिक बोझा नहीं था और न वे इतने अधिक अत्याचारों और मनोवेदनाओं से कष्ट पा रहे थे। हम इस समय ऐसे संसार में जी रहे हैं जिसमें विषाद सर्वव्यापी है परम्परायें, संयम और कानून सर्वथा शिथिल हो गये हैं। संसार गलतफहमियों, कट्टरताओं और शंकाओं से विदीर्ण हो गया है। सारा वातावरण सन्देह, अनिश्चितता और भविष्य के भय से भरा है। जनता के कारण सारे संसार में एक ऐसी भावना व्याप्त रही है जो वास्तव में क्रांतिकारी है। 'क्रान्ति' शब्द का अर्थ सदा भीड़ की हिंसा और शासक वर्ग की हत्या ही नहीं समझा जाना चाहिए। समाज-जीवन के मूल आधारों में तीव्र और प्रबल परिवर्तन की उस भावना भी क्रान्ति का ही रूप है।

किसी भी समय को परिवर्तन के कारण 'क्रांतिकारी' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि परिवर्तन तो इतिहास में सदा होता ही रहता है।

साधारण की दृष्टि से पुराणों की कथाओं का यदि समयानुकूल रूप में प्रचार किया जाय तो इससे जन-साधारण का हित साधन ही हो सकता है। अधिक विशालकाय पुराणों का पढ़ना-सुनना वर्तमान परिस्थितियों में अवश्य ही कठिन जान पड़ेगा। इसके लिए उनके सरल और संक्षिप्त संस्करण प्रस्तुत किये जा सकते हैं और यही कार्य आज कल हमारी संस्था द्वारा किया जा रहा है।

महाभारत में अवतार-महिमा कथन—

भारतीय धर्म-साहित्य के यदि प्रमुख ग्रन्थों की भी गणना की जाय तो उनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँचती है। पर उन सबमें 'महाभारत' की महिमा को कोई नहीं पहुँचता। वैसे किसी एक विशेष दृष्टि से किन्हीं एक दो-दो ग्रन्थों को श्रेष्ठ माना जा सकता है पर सर्वाङ्ग रूपसे विचार करने पर महाभारत ही भारतीय संस्कृति का 'महासागर' प्रतीत होता है। महाभारत के आधार ग्रन्थ कितने ग्रन्थों की रचना की गई है, इसकी गिनती नहीं। फिर आपेक्षिक दृष्टि से विचार किया जाय तो महाभारत की वर्णन शैली अधिक प्रामाणिक भी जान पड़ती है। अवतार के सम्बन्ध में भी 'महाभारत' का विवेचन विशेष रूप से स्वाभाविक और गम्भीर है। उसमें बहुत स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया गया है कि समस्त जगत भगवत् स्वरूप ही है। प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक लोक उनका एक अंग ही है। इस दृष्टि से 'अवतार' भी उनके अतिरिक्त अन्य किसी स्रोत से प्रकट नहीं हो सकते 'सभापर्व' के ३८ वें अध्याय में युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर भगवान कृष्ण के विश्व-स्वरूप का वर्णन करते हुए महाज्ञानी भीष्म पितामह ने कहा—

सहस्रशीर्षः पुरुषो ध्रुवोऽव्यक्तः सनातनः।
सहस्राक्षः सहस्रास्यः सहस्रचरणो विभुः॥
सहस्रबाहुः साहस्रो देवो नामसहस्रवान्।
अप्सृजत् सलिलं पूर्वं स च नारायणः प्रभुः।

तो निश्चय ही नाश के गहरे गड्ढे में एक ऐसी छलांग लगा लेगा जिससे उसकी अब तक की समस्त उपलब्धियाँ और उन्नति नष्ट हो जायगी और वह सैकड़ों वर्षों के लिये बर्बरता के युग में पहुंच जायेगा।

नये नेतृत्व की आवश्यकता—इस शोचनीय अवस्था का मुख्य कारण यही है कि मानव-जाति का मार्ग दर्शन करने वाला कोई सच्चा नेता इस समय नहीं है। आजकल जिन लोगों के हाथ में राष्ट्रों की बागडोर है वे प्रायः अपने संकीर्ण स्वार्थों में फंसे रहने के कारण वास्तविकता की तरफ से आँखें फेरे हुए हैं। वे जानते हैं कि इस समय संसार ने इतनी वैज्ञानिक और आर्थिक उन्नति करली है कि अगर देशों के कर्णधार मिल-जुलकर चलें और समझदारी से काम लेकर सेना और अस्त्र-शस्त्रों में किये जाने वाले अपार व्यय को बचत करें तो दुनिया का प्रत्येक मनुष्य सुखी और सन्तुष्ट जीवन बिता सकता है। पर जातीय अहंकार अथवा दूसरों का शोषण करने की पुरानी मनोवृत्ति उनका पीछा नहीं छोड़ती और वे जान बूझ कर नाश के मार्ग पर ही अग्रसर हो रहे हैं।

यह भयंकर दृश्य देखकर मानवता के अनेक शुभचिन्तक इसके सुधार की तरह-तरह की योजनाएँ बना रहे हैं, जिनका अनुसरण करने से सबके साथ न्याय हो सके और दुनिया के लोग लड़-भिड़कर नष्ट हो जाने के बजाय अपने परिश्रम और सहयोग के द्वारा इस पृथ्वी को स्वर्ग बना सकें। यद्यपि ऐसे शुभ विचार वालों के हाथ में राज्य की शक्ति न होने से अभी वे अपने विचारों को व्यावहारिक रूप नहीं दे सकते, तो भी उनके विचारों का प्रचार किया जाना आवश्यक है। ऐसा करने से जन समुदाय सच्चे मार्ग को समझने लगेगा और समय आने पर उसको अमल में लाने की भी चेष्टा करेगा। इस सम्बन्ध में अमरीका की 'नियो-क्रिश्चियन' नामक संस्था ने यह प्रश्न किया था कि "ऐसा कौनसा उपाय है जो इस समय विनाशोन्मुख मानव-समाज को आशा का सन्देश दे सके?" फिर स्वयं ही इसका उत्तर देते हुए उसने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया—

ततस्तु भगवांस्तोये ब्रह्माणमसृजत् स्वयम् ।
ब्रह्मा चतुर्मुखो लोकान् सर्वांस्तानसृजत् स्वयम् ।।
आदिकाले पुरा ह्येव सर्वलोकस्य चोद्भव.।
पुराथ प्रलये प्राप्ते नष्टे स्थावर जगमे।
ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु नष्टे लोके चराचरे।।

"ये ही ध्रुव अव्यक्त एव सनातन परम पुरुष हैं। इनके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र, सहस्रों मुख, सहस्रों चरण, सहस्रों भुजायें हैं। ये सहस्रों रूपों और सहस्रों नामों से युक्त हैं। इन्हीं सामर्थ्यवान भगवान नारायण ने सबसे पहले जल (मूलतत्व) की सृष्टि की और फिर उस जल में शयन करके स्वयं ही ब्रह्माजी को उत्पन्न किया। ब्रह्माजी ने, जिनके चार मुख हैं, सम्पूर्ण लोकों की रचना की है। आदि काल में इसी रीति से समस्त जगत और उसके पदार्थों की उत्पत्ति हुई थी। फिर प्रलय काल आने पर जैसा कि सदा का नियम है, समस्त स्थावर जगम सृष्टि का नाश हो जाता है एव चराचर जगत का नाश होने के पश्चात् ब्रह्मा आदि देवता भी अपने कारण तत्त्व में लीन हो जाते हैं।"

इस प्रकार महाभारतकार ने बहुत स्पष्ट रूप से यह बतलाया है कि यह समस्त जगत एक ही तत्त्व (जिसको 'परमात्मा' कहना उचित ही है) से उत्पन्न, विकसित हुआ है और अरबों-खरबों वर्ष बीत जाने पर अन्त में उन्हीं में लीन हो जाता है। विश्व की उत्पत्ति और अन्त होने की ठीक यही व्याख्या आज विज्ञान भी कर रहा है। यही बात वेदों में 'एकोऽहम् बहुस्याभि' वाले सिद्धान्त से प्रकट होती है। भगवान के इस 'विराट् रूप' का वर्णन करते हुए भीष्म पितामह कहते हैं—

नारायणस्य चाङ्गानि सर्व दैवानि भारत ।
शिरस्तस्य दिवं राजन् नाभि ख चरणौ मही ।।
अश्विनौ घ्राणयोर्देवौ चक्षुषी शशिभास्करौ।

ही रूप वाली कमनीय नारी का रूप उन्हें प्राप्त होगया।२४। इस प्रकार नारी सुलभ हास, विलास, भ्रमण, चातुर्य, सुन्दर मुख और कमल जैसे नेत्रों को प्राप्त हुए वे राजागण अपने को स्त्री हुए देख कर पद्मा के पीछे पीछे उसकी सहेली बनकर चलने लगे।२५। उस समय पद्मा के विवाह का वह उत्सव देखने के निमित्त मैं पास ही के एक वृक्ष पर बैठ गया था। जब वे राजागण स्त्री रूप हो गये, तब तो पद्मा अत्यन्त शोकित हो उठी। मैं उसके विलाप को सुनता रहा। हे शौनक रुक्मिन्! अब भगवान् नारायण के इस प्रकार, समाप्त हो जाने पर पद्मा ने भगवान् शंकर का ध्यान कर जो विलाप किया था, वह कारुण विलाप को आप श्रवण कीजिये। पद्मा ने देखा कि सभी राजागण मुझे देखते ही अपने हाथी, अश्व, रथ आदि से विमुख होकर स्त्री रूप में मेरी सहेली होकर साथ-साथ चल रहे हैं, तो वह अत्यन्त शोकतापूर्वक अपने आभूषणों को त्याग कर धरती को कुरेदने लगी। फिर वह शिवजी के वर-दान की सफलता के हेतु भगवान् विष्णु का पवित्र मन से ध्यान करने लगी।२७-२६।



इन्द्र वैश्वानरौ देवौ मुखे तस्य महात्मनः ।
अन्यानि सर्व देवानि तस्याङ्गानि महात्मनः ॥
सर्व व्याप्य हरिस्तस्थौ सूत्रं मणिगणानिवः ।
सोऽध्यक्षः सर्वभूतानां प्रभुतः प्रभवोऽच्युतः
सनत्कुमारं रुद्रं च मनुं चैव तपोधनान्
सर्वमेवासृजत ब्रह्म ततो लोकान् प्रजास्त था

"हे युधिष्ठिर ! भगवान नारायण के सब अंग सर्व देवमय है। द्युलोक उनका मस्तक, अन्तरिक्ष उनकी नाभि और पृथ्वी चरण हैं। दोनों अश्विनीकुमार उनके नासिका के स्थान में हैं, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं, एवं इन्द्र और अग्निदेव उन परमात्मा के मुख स्वरूप हैं। इसी प्रकार अन्य सब देवता (देव-शक्तियाँ) भी उन महात्मा के विभिन्न अवयव हैं। जैसे गुथी हुई माला की सभी मणियों में एक ही सूत्र व्याप्त रहता है, उसी प्रकार भगवान श्रीहरि समस्त जगत को व्याप्त करके स्थित हैं। इस प्रकार अपनी महिमा से कभी च्युत न होने वाले, सब की उत्पत्ति के कारणभूत और सम्पूर्ण भूतो के अध्यक्ष श्रीहरि ने ब्रह्म रूप से प्रकट होकर सनत्कुमार रुद्र मनु तथा तपस्वी ऋषि-मुनियो को उत्पन्न किया। सबकी सृष्टि उन्होंने की है। उन्हीं से सम्पूर्ण लोको और प्रजाओ की उत्पत्ति हुई।'

यद्यपि इनमें से प्रत्येक देवता के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रकार की अनेक अद्भुत कथायें लिखी गई हैं, पर वे सब ऐसे पाठकों या श्रोताओ के कौतूहल को शान्त करने के लिए रची गई हैं, जो 'परमात्मा' जैसे अतीव तत्त्व की कल्पना नही कर सकते और न किसी निराकार वस्तु से लाखो प्रकार की साकार वस्तुओं का उत्पन्न होना जिनकी समझ मे आ सकता है। बुद्धिमान व्यक्ति पहले भी सृष्टि, देवी-देवता और अवतार आदि की वास्तविकता को जानते थे और आज भी जानते हैं। पर अल्प विकसित बुद्धि के व्यक्तियो को सदैव इसी प्रकार उपमा, रूपक, दृष्टान्त, उदाहरण द्वारा समझाया जाता रहा है। इस प्रकट

क्व चाहं मानुषी दीना क्वासौ देवो जनार्दनः ।
निगृहीता विधात्राहं शिवेन परिवञ्चिता ॥६॥
विष्णुना च परित्यक्ता मदन्या कात्र जीवति ॥७॥
इति नाना विलपिता वचनं शोचनाश्रयम् ।
पद्मायाश्चारुचेष्टाया शुश्रावाथ स्तवान्तिके ॥८॥
शुकस्य वचनं श्रुत्वा कल्किः परमविस्मितः ।
स प्रसादं पुनर्याहि यथा बोधयितुं प्रियाम् ॥९॥
मत्सन्देशहरो भूत्वा मद्रूपगुणकीर्तनम् ।
श्रावयित्वा पुन कीर ! समायास्यसि बोधव ॥१०॥

कहाँ तो मैं दीन मानुषी और कहाँ वे जनार्दन प्रभु—इन दोनों में विवाह की कल्पना करने से ही मैं तो यह समझती हूँ कि विधाता मुझ से विमुख है, तभी तो शिवजी ने मुझे ऐसा वर देकर ठग लिया है-।६। भगवान श्री हरि के द्वारा परित्यक्त होकर मेरे अतिरिक्त और कौन जीवित रह सकता है ।७। सुन्दर चरित्र वाली पद्मावती इस प्रकार से विलाप करती थी । उसके शोकयुक्त वचनों को सुनकर ही मैं आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ ।८। शुक के यह वचन सुनकर अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुए कल्कि जी ने शुक के प्रति कहा—हे शुक मेरी प्रिया पद्मा को आश्वासन देने के निमित्त तुम पुनः सिंहल देश को प्रस्थान करो ।९। हे शुक ! तुम हमारे सन्देश वाहक होकर पद्मा को हमारे रूप गुण का वृत्तान्त सुनाना और फिर हे खग ! तुम शीघ्र ही यहाँ लौट आना ।१०।

सा मे पतिरहं तस्या दैवविनिर्मितः ।
मध्यस्थेन त्वया योगयावयोश्च भविष्यति ॥११॥
सर्वज्ञोऽसि विधिज्ञोऽसि कालज्ञोऽसि कथामृते ।
तामाश्वास्य समाश्वासमुक्त्वास्तस्याः समाहरः ॥१२॥
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा शुकः परमहर्षितः ।
प्रणम्य तं प्रीतमनाः प्रययौ सिंहलं त्वरन् ॥१३॥

तथ्य को समझकर अथवा न समझने का बहाना करके जो लोग पुराणों में वर्णित अवतारों के चरित्रों का 'खण्डन' करने लग जाते हैं उनकी बुद्धिमत्ता को हम सदिग्ध ही कह सकते हैं। अन्यथा एक बार नहीं अनेक बार विभिन्न शब्दों में इस बात को कहा गया है जिससे पाठक के हृदय में शंका न रहे—

> अव्यक्तो व्यक्त लिङ्गस्थो [redacted] एष भगवान् प्रभुः ।
> नारायणो जगच्चक्रे प्रभवाप्यय संहितः ॥

"जो अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त शरीरों में स्थित हैं, सृष्टि और प्रलयकाल में भी स्थिर रहते हैं, उन्हीं सर्व शक्तिमान भगवान नारायण ने इस जगत की रचना की है।"

आगे चल कर जहाँ विभिन्न अवतारों की चर्चा की गई है वहाँ वाराहवतार के शरीर का जो वर्णन किया गया है उसमें पूर्ण रूप से सम्पूर्ण विश्व रूपी यज्ञ और उसके प्रमुख पदार्थों को ही चित्रित कर दिया गया है—

> वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भावो महात्मनः ।
> यत्र विष्णु सुरश्रेष्ठो वाराह रूपमास्थित ॥
> उज्जहार महीं तोयात् सशैल वन काननाम् ।
> वेदपादो यूपदंष्ट्र क्रतुदन्तश्चितीमुख ॥
> अग्नि जिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातप ।
> अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्ग श्रुतिभूषणः ।
> आज्य नास स्रुवतुण्ड सामघोष स्वनो महान् ॥
> धर्म सत्यमयः श्रीमान् कर्मविक्रमसत्कृत ।
> प्रायश्चित्तनखो घोर पशुजानुर्महावपु ॥

"भगवान श्रीहरि का जो 'वाराह' नामक अवतार है, उसमें भी प्रधानतः वैदिक श्रुतियाँ ही प्रमाण हैं। भगवान ने वाराह रूप धारण करके पर्वतों और वनों सहित सारी पृथ्वी को जल से बाहर निकाला था। उस समय चारों वेद ही अवतार के चार पैर थे, यूप ही उनकी दाढ़ थे। क्रतु (यज्ञ) ही दाँत और 'चिति' (इष्टकाचयन) ही मुख

शुक ने कहा—हे वरारोहे ! हे रूप यौवन सम्पन्ने तुम कुशल पूर्वक तो हो ? तुम अपने चचल नेत्रों से सुशोभित द्वितीय लक्ष्मी ही प्रतीत होती हैं ।१६। तुम कमल जैसे मुख वाली, कमलपत्रा, कमलाक्ष या कमल के समान हाथों वाली हो । अपने हाथ से तुमने कमल धारण किया हुआ है, यह लक्षण तुम्हारा लक्ष्मी होना सूचित करता है ।१७। हे वरारोहे ! विधाता ने क्या सम्पूर्ण विश्व का रूप लावण्य तुम्हीं में भर कर तुम्हें ही सब जीवों को मोहित करने वाली बना दिया है ।१८। शुक के यह अद्भुत वचन सुनकर पद्मपत्रधारिणी रम्भा ने हँस कर कहा ।१९। तुम कौन हो ? कहाँ से आगमन हुआ है ? तुम इस रूप वेश से देवता हो अथवा मानव ? तुम यहाँ आकर किसलिए ऐसी चपलता प्रदर्शित कर रहे हो ।२०।

सर्वज्ञोऽहं कामगामी सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
देवगन्धर्वभूपालानां सभासु परिपूजिता ।२१।
चरामि स्वेच्छया ते स्वामीशाणायंमिहागतः ।
त्वामहं हृदि सततं स्वकामोग मनस्विनीम् ।२२।
हास्यालाप-सखी-राज्ञ देहाभरण-वर्जिताम् ।
विलोकयाहं दोमचेता पृच्छामि श्रोतुमोरितम् ।
कोकिलालाप-सन्ताप-जनक मधुर मृदु ।२३।
तव दन्तोष्ठजिह्वाग्रललितालापसंचय.
यत्कर्णकुहरे मग्नास्तेषां किं वर्ण्यते वत ।२४।
सौकुमार्यं शिरीषस्य क्व कान्तिर्वा निशाकरे ।
पीयूष क्व वदनेन्दोर्वानन्द यद्यासि ते सुधाः ।२५।

शुक ने कहा—देवी ! मैं सब कुछ जानने वाला तथा सब शास्त्रों का तत्त्वज्ञानी हूँ । मैं स्वेच्छापूर्वक सर्वत्र गमन करने में समर्थ हूँ । देवता, गन्धर्व अथवा राजाओं की सभा में मेरा पूर्ण सम्मान होता है ।२१। मैं स्वर्ग भवन में अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करता हूँ । तुम हृदय

है। अग्नि उनकी जिह्वा, दर्भ रोम है, ब्रह्म मस्तक है, दिन और रात्रि ही आँखें हैं और वेदाङ्ग कानों के आभूषण हैं। घी उनकी नासिका, स्रुवा उनकी थूथुन और सामवेद का स्वर ही उनकी भीषण गर्जना थी। धर्म और सत्य उनका स्वरूप था, वे अलौकिक तेज से सम्पन्न थे। वे विभिन्न कर्मरूपी विक्रम से सुशोभित हो रहे थे। प्रायश्चित उनके नख थे, वे घोर स्वभाव से युक्त थे, पशु उनके घुटनों के स्थान में थे और महान वृषभ (१ में) उनका श्री विग्रह था।"

इसी प्रकार वामन-भगवान के स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा है—

तस्य गात्रे जगत् सर्वमानीतमिव दृश्यते।
न किंचिदस्ति लोकेषु यद् व्याप्तं महात्मन ॥
तद्धि रूप महेशस्य देव दानव मानवा।
दृष्ट्वा त मुमुहुः सर्वे विष्णु तेजोभि पीड़िता ॥

"भगवान वामन के शरीर में सारा संसार इस प्रकार दिखाई देता था, मानो उसमें लाकर रख दिया गया हो। संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो उन परमात्मा से व्याप्त न हो। परमेश्वर भगवान विष्णु के उस रूप को देखकर उनके तेज से दब कर देवता, दानव और मानव सब हतप्रभ हो गये।"

भगवान राम के सम्बन्ध में लिखा है—

लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः।
प्रसादनार्थं लोकस्य विष्णुस्तस्य सनातनः ॥
धमार्थमेव कौन्तेय जज्ञे तत्र महायशाः।
तमप्याहुर्मनुष्येन्द्र सर्वभूतेस्तनुम् ॥

"वे भगवान सूर्य के समान तेजस्वी राजकुमार जगत में 'श्रीराम' के नाम से विख्यात हुये। हे युधिष्ठिर! जगत को प्रसन्न करने तथा धर्म की स्थापना के लिये ही महायशस्वी सनातन भगवान विष्णु वहाँ

सप्तम अध्याय

विष्णोश्चार्चनं शिवेनोक्तं श्रोतुमिच्छाम्यहं शुभे ।
धन्यासि कृतपुण्यासि शिवशिष्यात्वमागता ॥१॥
अहं भाग्यवशादत्र समागम्य तवान्तिकम् ।
शृणोमि परमाश्चर्यं कोकाकारनिवारणम् ॥२॥
भगवद्भक्तियोगञ्च जपध्यानविधिं मुदा ।
परमानन्द-सन्दोह-दानदक्षं श्रुतिप्रियम् ॥३॥
श्रीविष्णोरर्चनं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ।
श्रद्धयानुष्ठितस्य श्रुतस्य गदितस्य च ॥४॥
अघं पापहरं पुंसां गुरुगोब्रह्मघातिनाम् ।
समाहितेन मनसा शृणु कीर यथोदितम् ॥५॥

शुक बोला—हे शुभे ! शिवजी ने भगवान् विष्णु की जो पूजा-विधि तुम्हें बताई थी, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। तुम धन्य हो, तुम अपने पुण्य कर्म द्वारा भगवान् शिव की शिष्या हो गई हो ।१। मैं भाग्यवशात् ही यहाँ आ पहुँचा हूँ। अब मैं अपने शुक-शरीर का निवारण करने वाली आश्चर्यमयी पूजन विधि का श्रवण करूँगा ।२। भगवान् विष्णु का जप-ध्यान एवं पूजन की यह विधि भगवद्भक्ति के देने वाली, श्रवण में सुखद एवं परमानन्ददायिनी है ।३। पद्मा ने कहा—शिव-वर्णित विष्णु के पूजन की विधि अत्यन्त पुण्यमयी है। इसके श्रद्धापूर्वक सुनने, अध्ययन करने या कहने से गोहत्या, गुरुहत्या और ब्रह्महत्या के पाप भी नष्ट हो जाते हैं। हे कीर ! इसका वर्णन शिवजी ने जिस प्रकार किया था, उसे समाहित चित्त से सुनो ।४-५।

प्रकट हुये थे। मनुष्यों के स्वामी श्रीराम को साक्षात सर्वभूतपति श्रीहरि का ही स्वरूप बतलाया जाता है।"

उपरोक्त अवतार—वर्णन के अन्त में भगवान 'कल्कि' का भी परिचय दिया गया है—

कल्की विष्णुयशा नाम भूयश्चोत्पत्स्यते हरिः ।
कलेर्युगान्ते सम्प्राप्ते धर्मे शिथिलतां गते ॥
पाखण्डिनां गणानां हि वधार्थं भरतर्षभ ।
धर्मस्य च विवृद्धयर्थं विप्राणां हितकाम्यया ॥

"कलियुग के अन्त में जब धर्म में अधिक शिथिलता आने लगेगी तो उस समय भगवान श्रीहरि पाखंडियों के निर्मूल करने, धर्म की वृद्धि और सच्चे ब्राह्मणों की हित-कामना से पुनः अवतार लेंगे। उनके उस अवतार को 'कल्कि विष्णु यशा' कहा जायगा।"

इस प्रकार अवतारों के वर्णन को समाप्त करके महाभारतकार ने फिर इस बात को स्मरण करा दिया है कि केवल जिन थोड़े से अवतारों का यहाँ वर्णन किया गया है, वे ही सब नहीं है। संसार की रक्षा के लिये प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अवसर पर भगवान किसी न किसी रूप में उपस्थित रहते ही हैं—

एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगणैर्युताः ।
प्रादुर्भावाः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥

"भगवान के ये तथा और भी बहुत से दिव्य अवतार देवताओं के साथ होते हैं, जिनका ब्रह्मपरायण महापुरुष पुराणों में वर्णन करते हैं।"

महाभारत में अवतार-सिद्धान्त और उनके स्वरूप के सम्बन्ध में जो विवेचन किया गया है, उससे इस विषय की सभी शंकाओं तथा प्रश्नों का समाधान हो जाता है। चाहे इसको सृष्टि का नियम कहा जाय और चाहे भगवान की लीला माना जाय, दैवी-शक्ति समय

उन्हीं भुजाओं का मन में स्मरण करता हूँ।१८। हाथी की सूँड जैसी जिन भुजाओं में मणिमय आभूषण और शंख पद्म आदि विभूषित हैं, जिन भुजाओं को भक्त गण भागी व मुक्तिदाई जानु स्पर्श कर रही हैं, जन कमलासना पद्मा को प्रसन्न करने वाली भुजाओं का मैं स्मरण करता हूँ।१९। पूगफल के समान जिस कंठ में मुखारविन्द की तीन रेखायें और वनमाला सुशोभित है तथा जो कंठ कौस्तुभ-मणि के धुकधुकी का सुख-स्थल है, उस श्रीहरि-कंठ का मैं स्मरण करता हूँ।२०।

रक्ताम्बुज स्मितहासविकाशरम्य रक्ताधरोष्ठवर
कोमलवाक्सुधाढ्यम्। मन्दमानसोद्भवचलेक्षणपक्ष्मविभ्र
लोकाभिरामनयनञ्च हरेः स्मरामि।२१
गुरुरात्मजावसथगन्धविदसुनाशा भ्रूपल्लव स्थितिल-
यात्मकमंगलम्। कर्णान्तमच्च कपलाह्ववप्रका-
श संचिन्तयामि हरिमकविलासदक्षम्।२२
कर्णौ लसन्मकरकुण्डलमण्डलो गण्डादिशाच्च
नभस्तव विकाशपेढ्ही। लोलालकवयचुम्बितकु-
न्चितग्रो लग्नौ हरेर्मणिकिरीटतटे स्मरामि।२३
भाल विचित्रतिलक प्रियचारुगन्धगोरोचनारचनया
ललनाक्षिसख्यम्। ब्रह्मैकधामर्माणिकान्तकिरीट
जुष्ट ध्यायेन्मनोनयनहारकमीश्वरस्य।२४।

लाल कमल के समान लाल अधरों के मध्य मुस्कराते हुए दाँत, शोभायम कोमल वचन, मन को प्रसन्नता प्रदान करने वाले चंचल नेत्र, जिस मुखमण्डल में सुशोभित हैं, प्रभु के उस मुखारविन्द का मैं स्मरण करता हूँ।२१। जिन भृकुटि पर्वों की कृपा से अप सदन की गध सी नहीं जाती जिनके समीप ही नासिका सुशोभित रहती है, जिनके संकेत से सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय निहित हैं, जो मदनोत्सव को प्रकट करने वाले एवं

समय पर विभिन्न रूपों में प्रकट होकर संसार की रक्षा और मार्ग-दर्शन के कार्य में सहयोग देती रहती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। ऐसी घटना भूतकाल में अनेक बार हो चुकी है और भविष्य में भी होगी। 'कल्कि अवतार' जिनका रूपक और चमत्कार युक्त वर्णन इस पुराण में किया गया है, इसी घटना के एक अंग माने जाते हैं।

अवतार

पिछले कुछ सौ वर्षों में जिस रचना ने अवतारवाद का सबसे अधिक प्रचार किया है और इसकी महिमा का विस्तार किया है, वह 'रामायण' ही है। पहले तो वाल्मीकि-रामायण ने ही राम-चरित्र को बहुत ऊँचा उठाकर उन्हें श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का पात्र बनाया, फिर गोस्वामी तुलसीदासजी ने उसी के आधार पर तथा अन्य अनेक पुराणों की कथाओं का भी सार लेकर जिस रामचरित मानस की रचना की उसने तो भारतवर्ष की, विशेषतया उत्तर भारत की सामान्य जनता में 'राम-भक्ति' को इतना लोकप्रिय बना दिया जिसका अनुमान कर सकना भी कठिन है। यदि यह कहा जाय कि आज तुलसीदासजी की यह अमर-रचना झोंपड़ी से लेकर राज-महलों तक में व्याप्त है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त बंगाली, गुजराती, तामिल तेलुगू आदि भाषाओं में भी वहाँ के महाकवियों ने 'कृत्तिवास रामायण' 'गिरधरकृत गुजराती रामायण' 'कम्ब रामायण' 'रङ्गनाथ रामायण' के नाम से रामचरित्र सम्बन्धी विशाल ग्रन्थों की रचना की है, और उन प्रदेशों में उनका पर्याप्त प्रचार है। फिर 'रामायण से प्रेरणा लेकर संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में 'रघुवंश' 'उत्तर रामचरित्र' 'हनुमन्नाटक' 'प्रसन्नराघव' 'अध्यात्म रामायण' 'आनन्द रामायण' 'चम्पू रामायण' 'सेतुबन्ध', 'रामचन्द्रिका' 'रामरसायन आदि जो रामचरित्र पर अन्य सैकड़ों उच्च-कोटि के ग्रन्थ रचे गये हैं उनका प्रभाव भी विद्वानों तथा सामान्य

चंचल चपल कमल-वन को हिलाती हुई हवा चल रही थी ॥५॥

रेवावारिविहारात्त परागास्य सुधागतम् ।
मुक्तनीर रसगतं जिघ्रन्ती पवनं प्रियम् ॥६॥
शुकः सकरुणः साधु-वचनैस्तामतोषयत् ।
हा, त्वमेहि हि, ते स्वस्ति स्वागतं? स्वस्ति मे शुभे! ॥७॥
श्रीते त्वय्यतिव्यग्राह शान्तिस्तेऽस्तु रसायनात् ।
रसायनं दुर्लभं मे, सुलभं ते शिवाश्रमे ॥८॥
क्व मे भाग्यविहीनायाः इहैव वरवर्णिनि ।
देवि! त्वं सरस्तीरे प्रतिज्ञाप्याऽऽगता वयम् ॥९॥

परागमय कमलवन से आता हुआ प्रिय पवन उस समय पद्मा के द्वारा जिघ्रा को प्राप्त हो रहा था ॥६॥ तभी शुक ने करुणामय सुन्दर वचन कह कर पद्मा को आश्वासन दिया। जिसे सुन कर पद्मा बोली—तुम्हारा स्वागत है। यहाँ आओ, तुम्हारा मंगल हो। शुक बोला—हे शुभे! मेरा सब प्रकार से मंगल ही है ॥७॥ पद्मा बोली—हे शुक! तुम्हारे जाने से मैं अत्यन्त व्यग्र रही हूँ। शुक ने कहा—तुम्हारे सब दुःख ताप रसायन के द्वारा शान्त हो जायेंगे। पद्मा ने कहा—मेरे लिए तो रसायन भी दुर्लभ है। शुक ने कहा—हे शिवजी की शिष्ये! रसायन तुम्हारे लिए सुलभ ही है ॥८॥ पद्मा बोली—मुझ भाग्यहीना की कामना किस प्रकार और कहाँ पूर्ण होगी? शुक बोला—हे वरवर्णिनि! तुम्हारी अभिलाषा यहीं पूर्ण होगी। मैं उन्हें सरोवर के तट पर विश्राम करा के तुम्हारे पास उपस्थित हुआ हूँ ॥९॥

एवमन्योन्यसम्वाद-मुदितात्मसखीरथे ।
शुक मुखेन नमन् मयने साहसा उदौ ॥१०॥
विमलामालिनी लोला कमला कामकन्दला ।
विलासिनी चारुमती कुमुदेत्यष्ट नायिका ॥११॥
सख्य एता मतास्तासां जलक्रीडार्थमुत्सुकाः ।
पद्मा प्राह, सरस्तीरमायान्तु ता मया स्त्रियः ॥१२॥

जनता पर कम नहीं पड़ा है। तुलसीकृत रामायण का तो बहुत वर्षों पहले रूसी और अंगरेजी भाषाओं में अविकल अनुवाद हो चुका है, जिससे उसकी अपूर्व लोकप्रियता पर प्रकाश पड़ता है।

'रामायण' में भगवान् राम का ईश्वरीय अवतार होना इतने साङ्गोपाङ्ग रूप में वर्णन किया गया है, कि उससे पाठक के नेत्रों के सम्मुख समस्त घटना एक चित्र की तरह उपस्थित हो जाती है। 'रामायण' के लेखक भगवान् के साकार रूप के अनुयायी हैं, इसलिये उन्होंने भगवान के श्रीरामचन्द्र के रूप में अवतार लेने का ऐसा विशद वर्णन किया है जैसे यह हमारे नर-लोक की ही किसी सभा-समिति में हो रहा हो। जब राक्षसराज रावण के आतङ्क से पीड़ित होकर समस्त देवता पृथ्वी के साथ ब्रह्मलोक में पहुँचे और ब्रह्माजी ने इस विषय में अपने को असमर्थ पाया, तो उन सबने सहायता के लिये जगतपिता परमात्मा की प्रार्थना की। संसार की कठिन समस्या और मानव-जाति की दुरवस्था से द्रवित होकर वह महाविभु साकार रूप में उनके सम्मुख उपस्थित हो गई—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः॥
ब्रह्मणा च समागत्य तत्र तस्थौ समाहितः।
तमब्रुवन् सुराः सर्वे समभिष्टूय सन्नताः॥

(बाल० १५।१५।१८)

"उसी समय भगवान विष्णु शङ्ख, चक्र, गदा को हाथों में लिये, पीताम्बर धारण किये, गरुण पर आरूढ़ होकर वहाँ इस प्रकार आ गये जैसे किसी मेघ के ऊपर सूर्य का दर्शन होता है। उनकी भुजाओं में तप्त सुवर्ण के केयूर शोभित थे। सम्पूर्ण देवताओं ने उनकी वन्दना

लोलाक्षि ! लावण्य-रसामृतं ते कामार्दितस्यास्य विधातु रक्ष्य ।
मनोऽस्तु शान्तिसुकृतेन कृत्या सुदुर्लभा जीवनसाधितस्य २७॥
यद्भूकुटेतो कुम्भा मनोज्ञो हृदि स्थित कामभृदन्तवासम् ।
चार्वीयतो चारुस्वांकुशेन द्विप यथा क्वादिविदीर्णकुम्भम् २८
पादाम्बुजं तेऽङ्गुलिपत्रचित्रितं वर मरालस्वरणनूपुरा-
रवम् । कामार्दितस्य ममास्तु शान्तये हृदि स्थितं प-
द्मपलेषुशोभने ॥२९॥

श्रुत्वैतद्वचनामृतं कविकुलाब्जांशस्य कान्तोऽन्ते
दृष्ट्वा सत्पुरुषस्तमन्य मुदिता पद्मा सखीभिर्वृता ।
कान्तं यत्नान्तमनाः कृताञ्जलिपुटा प्रोवाच तत्सादरं
धीरं धीरपुरन्दरं विनमिता स्वेवा समरकन्धरा ॥३०॥

हे कान्ते ! तुम मेरे पास आओ, तुम्हारे मिलने से मेरा मंगल हुआ है। तुम्हारे चन्द्रमुख को देखकर मेरा सन्ताप मिट गया ॥२६॥ हे चपलाक्षि ! तुम संसार के रचने वाले को इस समय कामना कर्म ने दलित किया है। तुम्हारे लावण्य-रस रूपी अमृत के पान से उसकी शान्ति संभव है। वह शान्ति सुकृतों से भी दुर्लभ और जीवन के लिए आश्रय स्वरूप होगी ॥२७॥ जैसे महावत अपने अंकुश से गजराज का कुम्भ भेदन करता है ठीक वैसे ही तुम्हारी यह सुरम्य भृकुटि रूपी अंकुश के द्वारा मेरे हृदयस्थ कामरूपी हाथी के कुम्भ का भेदन करे ॥२८॥ मेरे हृदयोदधि के स्वच्छ नीर में स्थित अंगुलि रूपी कमल-पत्र द्वारा चित्रित हंस जैसा गमन करने वाले एवं नूपुरों से सुशोभित मंजु घोष करने वाले पादाम्बुज के द्वारा काम-जनित विष का दमन हो ॥२९॥ कविकुल विध्वंसक कवियों के वचनामृत सुनकर और उन्हें सत्पुरुषार्थ से युक्त जान कर पद्मा अत्यन्त हर्षित हुई। फिर वह प्रसन्न मन हुई पद्मा सखियों सहित मस्तक झुकाकर अपने पति श्रेष्ठि भगवान् से मंद स्वर में कहने लगी ॥३०॥

की ओर जब वे अपने स्थान पर विराजमान हो गये तो देवगण ने विनीत भाव से प्रार्थना की—

त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया।
राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो॥
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः।
अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्।
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम्॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्॥

"हे भगवन् ! हम तीनों लोकों के हित की दृष्टि से आपके ऊपर एक महान् कार्य का भार डाल रहे हैं। प्रभो ! अयोध्या के राजा दशरथ धर्मज्ञ, उदार और महान् तेजस्वी हैं। उनकी तीन रानियाँ ह्री, श्री और कीर्ति—इन तीन देवियों के सदृश्य हैं। हे भगवन् ! आप अपने चार स्वरूप बनाकर उन रानियों के गर्भ से दशरथ के पुत्ररूप में अवतार ग्रहण कीजिये। इस प्रकार मनुष्य रूप में प्रकट होकर आप समस्त जगत के लिये कष्टकारक रावण को, जो, देवताओं के लिये अवध्य है, संहार कर डालिये।"

एवं स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदश पुंगवः।
पितामहपुरोगास्तान् सर्वलोकनमस्कृतः।
अब्रवीत् त्रिदशान् सर्वान् समेतान् धर्मसंहितान्॥
भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम्॥
हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्।

"देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर सर्वलोक वन्दित देवाधिदेव भगवान् विष्णु ने वहाँ पर समवेत ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं से कहा—'देवगण ! अब तुम भय त्याग दो। मैं

मर्त्यलोक या पाताल लोक में कहीं भी, किसी के द्वारा भी मरने वाला नहीं था। इन सब बातों पर विचार करके आपने नृसिंहावतार धारण किया और जब आपके उस रूप को देख क्रोधित हुआ दैत्य आपसे युद्ध करने लगा, तब आपने अपने नखाग्रों से उसका देह विदीर्ण कर डाला ।२४। फिर त्रैलोक्य विजयी राजा बलि के यज्ञ में आपने इन्द्र के अनुजात्मा बन कर वामनावतार धारण कर बलिराज से सम्मोहनार्थ तीन पद पृथिवी माँग ली। अर्थ के लिये रूप छोड़ते ही आपने सुस्पष्ट विराट विग्रह धारण किया। फिर आप त्रैलोक्यदान से प्रसन्न हुए राजा बलि के द्वारपाल बन गये ।२५। फिर जब महाबल-पराक्रम वाले हैहय आदि राजाओं ने धर्म की मर्यादा को तोड़ा, तब आपने उनके विनाशार्थ भृगुवंश में परशुराम का अवतार लिया और अपने पिता की होमधेनु के हर लिये जाने पर आपने इक्कीस बार इस पृथिवी को क्षत्रियों से रहित कर दिया ।२६।

पुनरिह पुलस्त्यवंशावतंसस्य विश्रवसः पुत्रस्य निशाचरस्य रावणस्य लोकत्रयतापनस्य निधनमुररीकृत्य रविकुलजातदशरथात्मजो विश्वामित्रादस्त्राण्युपलभ्य वने सीताहरणाद्धाररोषपूर्णमन्युना अम्बुधि वानरनिबद्ध सेतुना दशकन्धरं हत्वा-नसि रामावतार ।२७।

पुनरिह यदुकुल जलधिकलानिधि सकलसुरगणसेवितपादारविन्दद्वन्द्व, विविधदानवदैत्यदलनलोकत्रयदुरितवापनो वसुदेवात्मजो रामावतारो बलभद्रस्त्वमसि ।२८।

पुनरिह विधिकृत-वेदधर्मानुष्ठान-विहित-नानादर्शनसघृणसंसारकर्मत्यागविधिना ब्रह्माभासविलासचातुरी प्रकृतिविमाननामसम्पादयन् बुद्धावतारस्त्वमसि ।२९।

फिर पुलस्त्यवंशावतंस विश्रवापुत्र रावण ने अपने तप से तीनों लोकों को संतप्त कर दिया, तब आपने उसका विनाश करने के लिये सूर्यवंशी राजा दशरथ के यहाँ अवतार लिया और विश्वामित्र से अस्त्र-

तुम्हारे हितार्थ रावण से सग्राम करके पुत्र, पौत्र, ग्रमात्य, मत्री, और जाति बन्धुओं सहित नष्ट कर दूँगा ।"

इस विषय में यह विवाद उठाना कि क्या वास्तव में ऐसी कोई 'कान्फरेंस' ब्रह्मलोक में हुई थी या नहीं, और देवताओं ने भगवान विष्णु के दरबार में रावण के विरुद्ध सचमुच कोई शिकायत की थी या नहीं, हमारी सम्मति में बेकार है, और हम इस प्रकार के तर्क-वितर्क करने वालों की स्पष्ट रूप से उपेक्षा करते हैं। हम तो एकबार कह चुके कि कथा-उपाख्यानों में, वह भी कविता में लिखे गये ग्रन्थों में गणित के समान प्रमाण ढूँढना, अपनी हठधर्मी अथवा अल्पज्ञता को प्रमाणित करना है प्रत्येक कवि न्यूनाधिक मात्रा में कल्पना से काम लेता है और काव्य के विभिन्न रसों का उद्दीपन करने के लिये साधारण बातों को बढ़ा-चढ़ाकर लिखता है। जैसे युद्ध का वर्णन करते हुए प्राय लिख दिया जाता है कि 'रक्त की नदी बह चली जिसमें मरे हुये सैनिक और घोड़े जलजन्तुओं के समान बहते दिखाई पडते थे।' जहाँ तक हम जानते हैं आज तक ससार की किसी लड़ाई में इस प्रकार रक्त की नदी नहीं बही, जिसमें लाशें तैर सकें, पर कविगए युद्ध के वातावरण को वीभत्स रूप देने के लिये ऐसे रूपक बांधा ही करते हैं। अब यदि कोई आलोचक सज्जन इस वर्णन को अक्षरश सत्य सिद्ध करने की माँग करें तो यह कैसे सम्भव होगा ? पुराणोंमें देवासुर सग्राम और दुर्गा के युद्धों का वर्णन इसी प्रकार बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया है। उस सबको समझदार पाठक कवि की कल्पना का ध्यान रखकर ही पढ़ता और समझता है। यही बात अन्य पौराणिक कथाओं में भी ध्यान में रखनी चाहिए।

अनेक लोग कहा करते हैं कि वाल्मीकि रामायण में श्रीराम चन्द्रजी का एक आदर्श नरेश मानकर ही उनका गुणानुवाद किया गया है, उनको भगवान का अवतार नहीं कहा है। उपरोक्त वर्णन

चतुर्थ अध्याय

श्रुत्वा नृपाणां भक्तानां वचनं पुरुषोत्तमः ।
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्र-वर्णानां धर्ममाह यत् ॥१॥
प्रवृत्तानां निवृत्तानां कर्म यत्परिकीर्तितम् ।
तच्च श्रावयामास वेदानामनुशासनम् ॥२॥
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा राजानो विशदाशयाः ।
प्रणिपत्य पुनः प्राहुः पूर्वान्तु गतिमात्मनः ॥३॥
स्त्रीत्वं वाप्यथवा पुंस्त्वं कस्य वा केन वा कृतम् ।
जरा-यौवन-बाल्यादि सुखदुःखादिकं च यत् ॥४॥
कस्मात्कुतो वा कस्मिन् वा किमेतदिति वा विभो ।
अनिर्णीतान्यविदितान्यपि कर्माणि वर्णय ॥५॥

सूतजी बोले—राजाओं के यह वचन सुन कर पुरुष श्रेष्ठ कल्कि-जी ने उनके प्रति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के धर्म का वर्णन किया।१। संसार में आसक्त एवं संसार से विरक्त दोनों के ही जो कर्म हैं, उनका वर्णन उन्होंने किया।२। कल्किजी का उपदेश सुनकर राजाओं के हृदय पवित्र होगये। फिर उन्होंने प्रणाम करके कल्किजी से अपनी पूर्वावस्था के विषय में पूछा।३। हे प्रभो! स्त्रीत्व और पुरुषत्व भेद से मनुष्यों की निवृत्ति किस प्रकार होती है? जरा, यौवन और बाल्यावस्था एवं सुख, दुःखादि के कारण क्या हैं? इनके अतिरिक्त भी जिन विषयों से हम अनभिज्ञ हैं, उनका भी वर्णन कीजिये।४-५।

(तदा तदाऽर्थ्ये कल्किराजन्त मुनिमस्मरत्)।

से उनकी शंका का निवारण हो सकता है। यहाँ तो कथा के रूप में देवताओं के कथन द्वारा उनको ईश्वरावतार बतलाया गया है, पर कुछ आगे चलकर वाल्मीकिजी ने स्वयं भी इस तथ्य को स्वीकार किया है—

सर्वं एव तु तस्येष्टाश्चत्वार: पुरुषर्षभा: ।
स्वशरीराद् विनिर्वृत्ताश्चत्वार इव बाहव: ॥
तेषामपि महातेजा रामो रतिकर: पितु: ।
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तर: ॥
स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभि: ।
अर्थितोमानुषे लोके जज्ञे विष्णु सनातन: ॥

"महाराज दशरथ को चारों पुत्र अपनी भुजाओं के समान ही अत्यन्त प्रिय थे। परन्तु उनमें भी महातेजस्वी श्रीराम सबसे अधिक प्रिय जान पड़ते थे। इसका एक कारण यह भी था कि वे साक्षात् सनातन विष्णु हैं और परम प्रचण्ड रावण ने वध के उद्देश्य से देवताओं की प्रार्थना पर मनुष्य-लोक में अवतीर्ण हुये हैं।"

तुलसीकृत रामायण में तो यह बात और भी प्रभावशाली रूप में कही गई है। वनवास होने पर चित्रकूट की ओर जाते हुये जब भगवान राम बाल्मीकिजी के आश्रम में पहुँचे तो महर्षि ने उनसे कहा—

जग पेखन तुम देखनि हारे।
विधि हरि सम्भु नचावन हारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तिहारा।
और तुम्हहि को जाननिहारा॥

राम सरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥

पुरिकायां पुरि पुरा पिता मे वेदपारगः ।
विद्रुमो नाम धर्मज्ञः ख्यातः परहिते रतः ॥१४॥
सोमा मम प्रिया माता पतिधर्मपरायणा ।
तयोर्वंशः परिणतो काले षण्ढाकृतिस्त्वहम् ॥१५॥

राजाओं ने कहा—हे प्रभो ! मुनि ने आपसे क्या कहा और आपने क्या उत्तर दिया ? आपका कथोपकथन किस विषय में हुआ था ? यह सुनने की हमें इच्छा है ॥१०॥ राजाओं की जिज्ञासा सुनकर भगवान् कल्कि ने कहा—हमारे कथोपकथन के विषय में इन शान्त हृदय वाले मुनि से ही प्रश्न करो ॥११॥ कल्किजी के वचन सुनकर वे सब श्रेष्ठ राजागण प्रश्न का भेद जानने के लिए मुनि को प्रणाम करके पूछने लगे ॥१२॥ राजाओं ने कहा—हे मुने ! भगवान् कल्कि से आपका कथोपकथन सूक्ष्म से क्यों हुआ ? हे प्रभो ! इसका रहस्य हमें बताइये ॥१३॥ मुनि बोले—पूर्वकाल की बात है—पुरिका नाम पुरी में वेदों में पारगत विद्रुम नामक एक धर्मज्ञ मुनि रहते थे, वही मेरे पिता थे ॥१४॥ हे विप्रो ! मेरी माता का नाम सोमा था, उसी पतिव्रता से मेरा जन्म हुआ, परन्तु मैं पुंसत्वहीन था ॥१५॥

समात शोकदः पित्रोलोकानां निन्दिताकृतिः ।
मामालोक्य पिता क्लीबदुःखशोक भयाकुलः ॥१६॥
त्यक्त्वा गृहं शिववनं गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ।
सपूज्येशं विधानेन धूपदीपानुलेपनैः ॥१७॥
शिवं शान्तं सर्वलोकैकनाथं भूतावासं वासुकीकण्ठभूषम् ।
जटाजूटाबद्धगङ्गा तरङ्गवन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ॥१८॥
इत्यादि बहुभिः स्तोत्रैः स्तुतः स शिवदः शिवः ।
वृषारूढः प्रसन्नात्मा पितरं प्राह मे शृणु ॥१९॥
विद्रुमो मे पिता प्राह मत्पुत्रस्त्व तापतापितः ।
इत्यभिप्रायो ददौ पुंस्त्वं पार्वत्या पुलकोदितः ॥२०॥

"हे भगवान् ! तुम्हीं इस समस्त जगत को जानने और प्रेरित करने वाले हो और ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन देवताओं को भी इच्छानुसार चलाते हो। पर ये भी तुम्हारे रहस्य को पूर्ण तरह नहीं जानते, तब अन्य कोई तुमको कैसे जान सकता है ? हे राम ! तुम्हारा स्वरूप वाणी और बुद्धि से वर्णन नहीं किया जा सकता। वह ऐसा अव्यक्त अकथनीय और अपार है कि वेदों ने भी उसका कथन 'नेति-नेति' कहकर ही किया है।"

वाल्मीकिजी के अतिरिक्त अन्य सब महाज्ञानी ऋषियों ने भी भगवान राम को ईश्वरावतार बतलाया है। इनमें से कोई साकारवादी है और कोई निराकारवादी भी, पर अवतार के सिद्धान्त की सचाई और उसकी महिमा सबने अनुभव की थी। भगवान राम का अवतार हुये थोड़ा ही समय बीता था कि महामुनि विश्वामित्र को उनकी आवश्यकता पड़ गई और उन्होंने विचार किया—

गाधितनय मन चिंता व्यापी।
हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी॥
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा।
प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥
एहुँ मिस देखौं पद जाई।
करि बिनती आनौं दोउ भाई॥
ग्यान बिराग सकल गुन अयना।
सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥

"गाधि नरेश के पुत्र (विश्वामित्रजी) के मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि हमारे धर्मकार्य में विघ्न डालने वाले पापी राक्षसों को श्री हरि के अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता। फिर उनको यह विचार आया कि पृथ्वी का भार मिटाने के लिये भगवान का अवतार तो हो चुका है, अब क्यों न उनके पास जाकर दर्शन करूँ और विनय

ब्रह्माण्डानि क्षियन्मूते पुरुष प्रकृती स्वयं ।
माया सम्बन्धमास महान्त कालयोगतः ॥१४॥
कालस्वभावकर्मात्मा सोऽहंकारस्ततोऽभवत् ।
त्रिवृद्विष्णु-शिव-ब्रह्म मयः संसारकारणम् ॥१५॥

विश्वमान्वित हृदय से विशुद्ध परमहंस ने मुझसे इतना ही कहा। फिर उन्होंने मार्कण्डेय से कहा — हे मार्कण्डेय ! हे महाभाग ! मैं अब तुम्हें महिमा की बात सुनाता हूँ ॥१०॥ प्रलयकाल में उस परम पुरुष के उदर में स्थित जल में, वट के पत्ते वाली शक्तिरूप के समान, सब से मोह उत्पन्न करने वाली माया निवास करती है ॥११॥ समोगुण रूप हुई वही माया मनाद समस्त उत्पन्न करने वाली और इन मिथ्या जगत से इस की शक्ति करने वाली है। वही माया दोनों लोकों में व्याप्त होकर सर्वत्र स्थित करती है। मायाका आत्म सम्भव नहीं है ॥१२॥ प्रलयकाल में दोनों लोकों के बीच अदेखने पर सर्वत्र अन्धकार छा जाता है, तब दिशा देश और काल आदि का भी कोई चिह्न नहीं रहता। तब मायब ब्रह्म ने सृष्टि करने की इच्छा से, अपनी ही महिमा द्वारा प्रकृति और पुरुष इन दो रूपों में विभक्त हो जाते हैं। तब काल के सह-योग से प्रकृति और पुरुष का संयोग होने पर महत्तत्त्व उत्पन्न होता है ॥१३-१४॥ प्रकृति से काल और स्वभाव उत्पन्न हुए। महत्तत्त्व से अहं-कार हुआ। वही अहंकार तीनों गुणों से विभक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव का उत्पन्न करने वाला हुआ। वही ब्रह्मा, विष्णु और शिव सम्पूर्ण विश्व के कारण हैं ॥१५॥

तन्मात्राणि तथ पञ्च कर्मिरे गुणवन्ति च ।
महाभूतान्यपि तथ प्रकृतौ ब्रह्मसमयात् ॥१६॥
नाना देवासुरनरा ये चान्ये जीवजातयः ।
ब्रह्माण्डाण्डसंसार-जन्मनाशक्रियात्मिकाः ॥१७॥
सा यथा मायया जीव-पुरुषः परमात्मनः ।
संसारजरणश्यो न वेदात्मगति कर्हिचित् ॥१८॥
यहो भगवती माया महामाया यहूदे स्थिता ।

करके उनको यज्ञ-रक्षार्थ साथ में ले आऊँ। अब मैं अवश्य वहाँ चल कर ज्ञान और विराग के भंडार उन प्रभु को मन भर के देखूँगा।"

परशुराम जी ने भी धनुष यज्ञ के अवसर पर बड़ा रोष प्रकट किया, पर जब रामचन्द्र जी से वार्तालाप हुआ और उनकी शक्ति का अनुमान किया तो उन्होंने यही कहा—

न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति ।
त्वया त्रैलोक्य नाथेन यदहं विमुखीकृत ॥

(वा० रा० बाल० ७६।१०)

"हे काकुत्स्थकुल भूषण श्रीराम! आपके सामने मेरी जो असमर्थता प्रकट हुई, वह मेरे लिये लज्जाजनक नहीं हो सकती, क्योंकि आप त्रिलोकीनाथ श्रीहरि ने मुझे पराजित किया है।"

वशिष्ठ जी ने भी भगवान राम के सिंहासनासीन हो जाने पर एक बार कहा था कि मैं इस पुरोहित कर्म को निन्दित समझता हूँ, पर मैंने इसको ब्रह्माजी के यह कहने पर स्वीकार कर लिया कि इस वंश में आगे चलकर साक्षात् परमात्मा का अवतार होगा जिसकी कृपा से समस्त योग, यज्ञ, जप, दान आदि धर्मों का फल अनायास ही प्राप्त हो जायगा —

परमात्मा ब्रह्म नर रूपा । होइहि रघुकुल भूषन भूपा ॥
तब मैं हृदय बिचार किय, योग यज्ञ जप दान ।
जेहि हित करिअ सो पाइहौं, धर्म न दूसर आन ।

इसी प्रकार वाल्मीकि, तुलसीदास तथा अन्यान्य महात्मा कवियों की रचनाओं में श्रीरामचन्द्र के अवतार होने के वक्तव्य भरे पड़े हैं। यह सत्य है कि इनमें जो शब्द प्रयुक्त किये गये हैं वे कवियों के ही हैं, पर तो भी इससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि उन्होंने जो कुछ लिखा उसके मूल विचार और उस प्रकार की भावनाएँ उस समय बहुसंख्यक लोगों में पाये जाते थे। जैसा कि कहा गया है कवि अपने

परं प्राप्स्यसि निर्वाणं कल्केरालोकनात्त्वया ।
इत्यहं बोधितस्तेन भक्त्या सम्पूज्य केशवम् ॥३८॥
कल्किं दिदृक्षुरायातः कृष्णं कलिकुलान्तकम् ॥३९॥
दृष्टं रूपमरूपस्य स्पृष्टस्तत्पदपल्लवः ।
अपदस्य श्रुतं वाक्यमवाच्यस्य परात्मनः ॥४०॥

इसलिए यदि मन का निग्रह करना है तो भगवान् विष्णु की भक्ति करो। क्योंकि वही सब कर्मों को दारिद्र्य और भोग-सुख के देने वाली है ॥३६॥ हरि-भक्ति ही द्वैत-अद्वैत का ज्ञान एवं आनन्द और सन्तोष के देने वाली है, उसी के द्वारा जीवकोष का दमन सम्भव है।३७। परमहंस का यह उपदेश सुनकर मैं भक्ति सहित भगवान् केशव का पूजन करके कलिकुलनाशक कल्किरूप श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ॥३८-३९। यहाँ आकर निराकार ईश्वर के रूप का मुझे दर्शन हुआ है। चरण-रहित परमात्मा के चरण स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हुआ और अवाच्य प्रभु की वाणी सुनाई दी।४०।

इत्यनन्तः प्रमुदितः पद्मानाथं निरीश्वरम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं नमस्कृत्य ययौ मुनिः ॥४१॥
राजानो मुनिवाक्येन निर्वाण-पदवीं गताः ।
कल्किमाज्ञावशं पद्मामाभ्य नमस्कृत्य मुनिवराः ॥४२॥
अनन्तस्य कथामेतामज्ञातजन्मान्त-नाशिनीम्
मायानियन्त्री प्रपठन् शृण्वन्वाऽपि मुच्यते ॥४३॥
सभाराजित-विलासमानससमतिः श्रीविष्णुसेवादरो
भवव्याहरणामिदं स्वमेव-रहितं निर्माय धर्मात्मना ।
ज्ञानोल्लास-निवास-सङ्गमुदित. सद्भक्ति-सुर्गोत्रयः
षड्वर्गोजयवादयोपजगतामात्मस्थितो वेदव्यासः ॥४४॥

यह सुन कर अत्यन्त हर्षित हुए मुनिवर अनन्त पद्मापति एवं पद्मा के पति भगवान् कल्कि को नमस्कार करके वहाँ से चले गये।४१।

जमाने के लोकमन का दर्पण होता है, वाल्मीकि, तुलसी तथा अन्य विद्वानों की रचनाओं से यह सिद्ध होता है कि मध्य-काल में भी राम-कृष्ण के सम्बन्ध में लोगों की अवतार-भावना काफी बढ़ी-चढ़ी थी और विश्व के रक्षक तथा दुष्ट-तत्वों के संहारक के रूप में उनका सम्मान किया जाता था।

रामायण में और भी अनेक अवसरों पर सभी देवताओं और ऋषि-मुनियों के कथनों द्वारा श्रीराम के ईश्वरावतार होने का समर्थन किया गया है और अवतार के स्वरूप तथा महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है। सर्व प्रथम तो इसके समर्थक शिवजी हैं जो सदा भगवान राम का ध्यान करते रहते हैं।

जासु कृपा सब भ्रम मिट जाई।
गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई।
आदि अंत कोउ जासु न पावा।
मति अनुमान निगम जस गावा।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करे विधि नाना।
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइहि बरनी॥

जब भगवान राम वन में चलते हुये महर्षि अगस्त के आश्रम में मे पहुँचे तो उनने भी यही कहा-

ऊमरि तरु विशाल तव माया।
फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया।
जद्यपि ब्रह्म अखड अनन्ता।
अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता।
अस तव रूप बखानउँ जानउँ।
फिर फिर सगुन ब्रह्म रति मानउँ।

पञ्चम अध्याय

गते नृपगणे कल्किः पद्मया सह सिंहलात् ।
शम्भलग्राम-गमने मतिं चक्रे स्वसेनया ॥१॥
ततः कल्केरभिप्रायं विदित्वा वासवस्त्वरम् ।
विश्वकर्माणमाहूय वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥२॥
विश्वकर्मञ्छम्भलेत्र गृहोद्यानाट्ट-घट्टितम् ।
रत्नस्फटिक-वैदूर्यं नानामणि-विनिर्मितैः ।
तथैव शिल्पनैपुण्यं तव यच्चास्ति तत्कुरु ॥४॥
श्रुत्वा हरेर्वचो विश्वकर्मा शर्म निजं स्मरन् ।
शम्भले कमलेशस्य स्वस्त्यादि-प्रमुखान्गृहान् ॥५॥

सूतजी बोले—फिर जब वे राजागण चले गए तब भगवान् कल्कि ने पद्मा और सेना के सहित सिंहलद्वीप से प्रस्थान करने का विचार किया ।१। जब इन्द्र ने उनका यह अभिप्राय जाना, तब उसने शीघ्र विश्वकर्मा को अपने पास बुला कर कहा ।२। इन्द्र बोले—हे विश्वकर्मन् ! तुम शम्भल ग्राम में जाकर वहाँ पर अट्टालिकाओं से युक्त भवन और उद्यान आदि का निर्माण करो और उन्हें रत्न, स्फटिक तथा वैदूर्यादि विविध प्रकार की मणियों से जड़ कर अपना शिल्प-नैपुण्य दिखाओ ।३-४। इन्द्र के वचन सुन कर विश्वकर्मा अपना कल्याण जानता हुआ शम्भल ग्राम पहुँचा और वहाँ उसने पद्मापति के निमित्त स्वस्ति आदि नाम जिन्हों से युक्त सुन्दर भवनादि का निर्माण किया ।५।

हंससिंहसुपर्णादिमुखांश्चक्रे स विश्वकृत् ।

सीता की खोज करते समय जब समुद्र को बाँधे जाने का अवसर आया और वन्दरों को इससे घबड़ाते देखा तो जामवन्त ने उनको समझाया—

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुण ब्रह्म अजित भज जानहु॥
हम सब सेवक अति बड़भागी। सतत सगुन ब्रह्म अनु रागी॥

जब भगवान राम सैनिक तैयारी करके लंका पर आक्रमण करने को समुद्र के किनारे आ पहुँचे तब विभीषण ने युद्ध द्वारा राक्षस कुल के नाश की सम्भावना देखकर रावण को श्रीराम की अलौकिकता को समझा कर समझौता करने की सलाह दी और कहा—

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता। व्यापक अजित अनादि अनन्ता॥

जब भगवान लंका के निकट पहुँच गये और युद्धारम्भ होने का अवसर आ पहुँचा तो मन्दोदरी ने रावण को उनसे सुलह करने को समझाया और कहा कि श्रीराम ही जगत का सचालन करने वाली सर्वव्यापी शक्ति के अवतार हैं, उनसे कोई किसी प्रकार नहीं जीत सकता। उसने भगवान राम के विराट् रूप को बतलाते हुवे कहा—

विश्व रूप रघुवंस मनि, करहु वचन विस्वासु।
लोक कल्पना वेद कर, अंग-अंग प्रति जासु॥

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग-अँग विश्रामा॥
भृकुटि विलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घनमाला॥
जासु घ्रान अश्विनी कुमारा। निसि और दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस वेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥
रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि शैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहुत कल्पना॥

स तु त्वामसमये वर्ण्य क्षयं निन्येऽर्कवद्धिमम् ॥२०॥

तू मेरे बाणों से आहत होकर अभी परलोक को प्राप्त होगा। तब तेरा साथ कोई भी नहीं देगा। इसलिए अब तू अपने बन्धु-बान्धवों का सुन्दर मुख देख ले। १६। कल्किजी के वचन सुन कर वह बौद्ध किंचित् हँसता हुआ बोला—अदृष्ट कभी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। हम बौद्ध मत प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं मानते। हमारा शास्त्र कहता है कि हम धर्म को नष्ट कर देंगे। १७। यदि तुम देव रूप हो तो हम तुम्हारे सामने खड़े हैं। यदि तुम हमें बाण से आहत करोगे तो हम बौद्ध गण तुम्हें छोड़ देंगे। १८। जो तुम हमारे प्रति तिरस्कार के वचन कहते हो, वे वचन तुम पर ही लौट जायेंगे, अब तुम सावधान होजाओ। यह कह कर जिन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से कल्किजी को समावृत कर दिया। १९। जैसे सूर्य के दिखाई देने पर हिमजाल नाश को प्राप्त होता है, वैसे ही जिन द्वारा की गई बाण-वर्षा कल्किजी के स्पर्श से क्षीण होने लगी। २०।

ब्राह्मं वायव्यमाग्नेयं पार्जन्यं चान्यदायुधम्।
कल्केर्दर्शनमात्रेण निष्फलान्यभवन् क्षणात् ॥२१॥
यथोषरे बीजमुप्तं दानमश्रोत्रिये यथा।
यथा विष्णौ सतां द्वेषाद् भक्तिर्येन कृताप्यहो ॥२२॥
कल्किस्तु तं नृपाक्रम्य पद्भ्यां तस्य कचेऽग्रहीत्।
जिनो धैर्यभूमौ तत्र वृक्षाविव क्रुधा ॥२३॥
पतित्वा स कल्किकच आग्राह कल्कर करे ॥२४॥
ततः समुत्थितौ क्रुद्धौ यथा वानरकेसरी।
धृतहस्तौ धृतकचौ ऋक्षाविव महाबलौ।
युयुधाते महावीरौ जिनकल्की निरायुधौ ॥२५॥

जिन द्वारा प्रेरित ब्रह्मास्त्र, वायव्यास्त्र, आग्नेयास्त्र, मेघास्त्र और अन्यान्य सभी अस्त्र कल्किजी के दर्शन मात्र फल-हीन हो गये। २१। जैसे

अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज वास सचराचर, रूप राम भगवान॥

अर्थात् "इस बात को खूब अच्छी तरह समझ लो कि श्रीराम उस परब्रह्म के अवतार हैं, जिसके समस्त अंगों में वेदों ने विभिन्न लोकों की कल्पना की है। उनके पैर ही पाताल है और सिर बैकुन्ठ लोक है। इसी प्रकार अन्य लोकों का समावेश अन्य-अन्य अंगों में है। उनकी भृकुटि का चलना ही भयंकर काल स्वरूप है, नेत्र सूर्य रूप हैं और केश बादलों के रूप में है। उनकी घ्राण अश्विनी कुमार है और पलकों का चलना दिन रात का होना है। दशों दिशायें उनके कानों के रूप में है, उनकी श्वास ही वायु है और वाणी ही वेद रूप है। उनके अधर सबको ग्रहण करने वाले और दाँत ही यम है, हँसना माया रूप और भुजायें दिक्पाल है। मुख अग्नि स्वरूप है, जीभ, वरुण है, और संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय ही उनकी चेष्टा क्रिया है। अठारह प्रकार की असंख्यों वनस्पतियाँ रोमावलि हैं, पर्वत उनके अस्थि-रूप और नदियाँ नस-नाड़ियों के तुल्य हैं। उनका उदर ही समुद्र रूप और अधोभाग नर्क स्वरूप है। इस प्रकार प्रभु के विश्व रूप का बहुत तरह से वर्णन किया गया है। उनका अहंकार का भाव ही शिव है बुद्धि ब्रह्मा है और मन चन्द्रमा रूप है। इस प्रकार भगवान राम मनुष्य के रूप में समस्त चराचर जगत के आश्रयस्थल परमात्मा हैं।"

इस प्रकार रामायण में सभी पात्रों के मुख से यही कहलाया गया है कि श्री रामचन्द्र पृथ्वी का भार हरण करने के लिये ही पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं और उनके 'अवतारी स्वरूप' को समझ कर मनुष्य सद्गति का अधिकारी बन सकता है। और तो क्या स्वयं रावण भी, जिसके संहार करने को श्री रामचन्द्रजी का आविर्भाव हुआ था, इस सत्य को अनुभव करता था। सीता हरण का विचार करते हुए उसने कहा था—

खरदूषण मो सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥

कल्किजी के पार्श्ववर्ती बौद्धगण प्रतिमा के समान चेष्टाहीन तथा ज्ञानहीन होगए।४१। फिर कल्किजी ने जब अपने बन्धु, जाति-बान्धव और सुहृदों को मायारूपिणी अपनी माया के द्वारा मोहित होते देखा तो वे उसके समक्ष पहुँचे।४२। जैसे ही उन्होंने करुणापूर्ण अपनी उस दिशा की ओर देखा, वैसे ही वह मायादेवी उनके देह में प्रविष्ट हो गई।४३। तब अपनी उस माता माया देवी को न देख कर सभी प्रमुख बौद्ध गण पौरुष से रहित होकर रुदन करने लगे।४४।

विस्मयाविष्टमनसः क्व गतेयमथाब्रुवन् ।
कल्किः समालोकनेन समुत्थाप्य निजाञ्जनान् ।४५।
निशातमसिमादाय म्लेच्छान्हन्तुं मनो दधे ।
सन्नद्ध तुरगारूढ दृढहस्तधृतत्सरुम् ।४६।
धनुर्निषङ्गमनिशं बाणजालप्रकाशितम् ।
धृतहस्ततनुत्राणगोधाङ्गुलि वराजितम् ।४७।
मेघोघपुञ्जताराभ दशनस्वर्णबिन्दुकम् ।
किरीटकोटिविन्यस्त-मणिरश्मिविराजितम् ।४८।
कामिनीनयनानन्दसन्दोहरसमन्दिरम् ।
विपक्षपक्षविक्षोभविलसत्कटाक्षकम् ।४९।
निजभक्तजनोल्लास-समासक्तपदाम्बुजम् ।
निरीक्ष्य कल्किं ते बौद्धास्तत्र मुदं तिलकाः ।५०।

माया को न देख वे आश्चर्य चकित होकर परस्पर कहने लगे "ये माता देखो कहाँ चली गई ? इधर कल्किजी ने अपनी सेना पर दृष्टि डाली तो वह स्वस्थ और सचेत हो गई तथा म्लेच्छों का संहार करने की इच्छा से कल्किजी तीक्ष्ण खड्ग लेकर घोड़े पर सवार हुए।४५-४६। उस समय बाणों से परिपूर्ण तरकस एवं धनुष, कवच एवं अंगुलित्राण से सुशोभित कल्किजी अद्भुत छटा वाले दिखाई देने लगे।४७। कवच के ऊपरी भाग में जड़ा हुआ स्वर्ण बिन्दु, घनमाला में तारे के समान चमकता

सुर रंजन भजन महि भारा। जो भगवत लीन्ह अवतारा ॥
तो मैं जाइ बैरु हठ करिऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ॥

अर्थात्—"खर और दूषण तो मेरे समान ही बलवान थे, उनको सिवाय भगवान के और कौन मार सकता है? इसलिए देवताओं की प्रसन्नतार्थ पृथ्वी का भार हरण करने के निमित्त यदि भगवान ने अवतार लिया है तो मैं जान बूझ-कर उनसे वैर करूँगा, जिससे उनके द्वारा मारा जाकर मेरी मुक्ति हो सके।"

इस प्रकार जिसको जैसी भावना और परिस्थिति थी उसने उसी दृष्टि से श्री रामचन्द्र के अवतारत्व को समझा और स्वीकार किया। उन सबके विचारों का आधार यही है कि संसार पर जब कोई बहुत बड़ी आपत्ति आती है और मानवता कष्टों से पीड़ित होकर कराहने लगती है तो उसके उद्धार के लिए किसी रूप में ईश्वरीय शक्ति का विशेष रूप से प्राकट्य होता है। श्री रामचन्द्रजी में उनके सम्पर्क में आने वाले सब व्यक्तियों को वैसे ही लक्षण दिखाई पड़ते थे, इसलिए सब ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार उनके दैवी रूप को अनुभव किया।

'पद्म-पुराण' के 'पातालखण्ड' में भी रामचरित्र विस्तार पूर्वक दिया गया है। उसमें राज्याभिषेक के अवसर पर देवताओं द्वारा श्री रामचन्द्रजी की स्तुति करते हुए कहा गया है—

तव यद्दनुजेन्द्रनाशन कवयो वर्णयितुं समुत्सुका ।
प्रलये जगतां ततो पुनर्य ससे त्व भुवनेश लीलया ॥
जय जन्म जरादि दुःखकैः परिमुक्ता प्रबलोद्धरोद्धर ।
जय धर्मैकरान्वयाम्बुधौ कृतजन्म जरामराच्युत ॥
यदा यदा नो दनुजा हि दुःखदास्तदा तदा त्व भुवि
अजोऽव्ययोऽपीश वपोऽपि सन्निधो स्वभावमाणास्थाय
निजं निजार्चितः ॥

प्रथम अध्याय

ततः कल्किर्म्लेच्छगणान् करवालेन कालितान् ।
बाणैः सन्ताडितानन्यान् अनयद्यमसादनम् ॥१॥
विशाखयूपोऽपि तथा कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः ।
गार्ग्यभार्ग्यविशालाद्या म्लेच्छानिन्युर्यमक्षयम् ॥२॥
कपोतरोमा काकाक्ष काककृष्णादयोऽपरे ।
बौद्धाः शौद्धोदना याताः युयुधुः कल्किसैनिकैः ॥३॥
तेषां युद्धमभूद्घोरं भयदं सर्वदेहिनाम् ।
भूतेशानन्दजननं रुधिराहवकर्दमम् ॥४॥
गजाश्वरथसंघानां पतता रुधिरस्रवैः ।
सञ्जातो केशशैवाला ... सुशाद्विका ॥५॥

सूतजी बोले—फिर कल्किजी ने कुछ म्लेच्छों को बाणों द्वारा बींध दिया और कुछ को तलवार से मार कर यम लोक में भेज दिया ॥१॥ विशाखयूपनरेश, कवि, प्राज्ञ, सुमन्त्रक, गार्ग्य, भार्ग्य और विशालादि ने भी उन म्लेच्छों को यमपुरी पठाया ॥२॥ फिर कपोतरोमा, काकाक्ष, काककृष्ण और शुद्धोदन आदि बौद्ध योद्धागण कल्कि-सेना से युद्ध में तत्पर हुए ॥३॥ उस घोर संग्राम को देख कर सभी प्राणी भयभीत हुए। रक्त युक्त हाथ कीचड़ से रणभूमि ढक गई, यह देख कर भूतनाथ हर्षित हो उठे ॥४॥ युद्धस्थल में गिरे हुए हाथियों, घोड़ों और रथियों के

"आपके द्वारा जो दनुजेन्द्र (रावण) का विनाश हुआ है, उस अद्भुत कथा का समस्त नविगण सदैव उत्कण्ठा पूर्वक वर्णन करते रहेंगे। हे भुवनेश्वर! प्रलय काल में आप ही सम्पूर्ण लोकों को लीलापूर्वक ग्रस लेते हैं। प्रभो! आप जन्म और जरा आदि से सदा मुक्त हैं। आप सर्वोपरि शक्ति सम्पन्न हैं। हे परमात्मन्! आपकी जय हो, आप हमारा उद्धार करें। हे नाथ! जब-जब दानवी (दुष्टतापूर्ण) शक्तियाँ हमें दुःख देने लगें तब तब आप इस पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करें। हे प्रभो! यद्यपि आप सब से श्रेष्ठ, अपने भक्तों द्वारा पूजित अजन्मा तथा सबके स्वामी हैं, तो भी अपनी माया का आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते रहते हैं।"

"अध्यात्म रामायण" में भी भगवान राम का अनादित्व और और सच्चिदानन्द स्वरूप अनेक स्थानों पर वर्णन किया गया है—

राम परात्मा प्रकृतेरनादिरा नन्द एक पुरुषोत्तमो हि।
राम विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्द मद्वयम्।
सर्वोपाधि विनिर्मुक्त सत्तामात्र मगो ऽरम्॥

"श्रीराम प्रकृति से परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय एवं पुरुषोत्तम हैं। वे ही सच्चिदानन्द समस्त उपाधियों से रहित, सत्तामात्र, वाणी और मनसे अगोचर परमब्रह्म हैं।"

'आनन्द रामायण' में कहा गया है कि श्री रामचन्द्र के दैवी चरित्रों को देखकर महाराज दशरथ ने उनसे एकान्त में कहा—राम! तुम साक्षात् नारायण हो। तुमने भूमि का भार मिटाने के लिए मेरे यहाँ अवतार लिया है, ऐसा सब लोग कहते हैं। मैं भी तुम्हारी माया से मोहित हो रहा हूँ, अतः मुझे ज्ञानोपदेश देकर मेरे अज्ञान को दूर करो।' तब भगवान राम ने उनको संसार की मृग मरीचिका का रहस्य समझाते हुए अन्त में कहा—

पूर्वंत्वया तपस्तप्तं पुत्रत्व या चित मम।
तस्माज्जातोऽस्मि त्वत्तोऽहं कौसल्यायां नृपोत्तम॥

'आपने पूर्वकाल में तप करके मुझे पुत्र रूप में माँगा था।

तेषां स्त्रियो रथारूढा गजारूढा विहङ्गमा ।
अश्वारूढा हयारूढा खरोष्ट्रवृषवाहना ॥१॥
योद्धुं समाययुस्त्यक्त्वा सर्वा गार्हस्थ्यसुखाश्रयान् ।
रूपवत्योऽतियौवन्य पतिव्रताः ॥२॥
नानाभरणभूषाढ्याः कन्यका विशदप्रभाः ।
खड्ग शक्तिधनुर्बाणवलयाकाकराम्बुजा ॥३॥
स्वैरिण्योऽप्यभिसारिण्यो पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः ।
मनुष्योऽपि कश्चित् पतीनां नियतातुरा ॥४॥
मृत्युमार्गमहर्निशग्रा प्रभुत्वमन्यायशासनात् ।
सास्मात्पतीनां निधनं किं युवत्योऽपि सेहिरे ॥५॥

उन म्लेच्छों की रूपवती यौवनवती, पतिव्रता युवती स्त्रियाँ भी गार्हस्थ्य-सुख को और उनके आश्रय को त्यागना छोड़ कर कोई रथ पर चढ़ कर, कोई हाथी पर चढ़ कर, कोई विहग पर चढ़ कर, कोई घोड़े, गधे, ऊँट पर, कोई बैल पर [redacted] कर युद्ध करने के लिए अपने-अपने पति के पास पहुँची ॥१-२॥ इन्होंने अनेक प्रकार के उज्ज्वल आभूषण एवं उत्तमोत्तम धारण कर रखे थे। इनके हाथों के कमलों के साथ ही खड्ग और बाण भी सुशोभित थे ॥३॥ सुन्दर लावण्यमयी यह स्त्रियाँ कोई स्वैरिणी, कोई अभिसारिणी अथवा कोई पतिव्रता थी। यह पति-वियोग से व्याकुल हुई जिनकी बलिष्ठ सेना से युद्ध करने को तत्पर हुईं ॥४॥ क्योंकि मनुष्य स्त्री, बाल एवं दास भी वस्तु पर भी प्राण देने को तत्पर हो जाते हैं। इसी प्रकार अपने प्राणों के समान पति का मरण सहन करना युवतियों के लिए भी सम्भव नहीं होता ॥५॥

ता: स्त्रियः रणपतीन्वारणमिन्नान्याकुलितेऽभ्युपान् ।
ईक्षत्य पश्चाच्च युधिरे कान्तसंरम्भप्लुताः ॥६॥
ताः स्त्रीस्त्रोऽपि ते सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः ।
अरिकामायत ते योधा कथयामासुरादरात् ॥७॥

इसी कारण मैं आपके यहाँ कौशल्या माता के गर्भ से पुत्र रूप से प्रगट हुआ हूँ।"

इस प्रकार भगवान राम ने तथा अन्य ऋषि-मुनियों ने समय समय पर 'रामावतार' के स्वरूप और उद्देश्य को प्रकट किया है।

कृष्णावतार की महानता—

शास्त्रों में जितने अवतारों का वर्णन किया गया है उनमें प्रथम स्थान भगवान कृष्ण को मिला है और इस लिये 'कलाओं' का हिसाब बतलाया गया है। भगवान की समस्त कलाओं की संख्या १६ मानी गई है। अवतारों में से कोई ८ कला का कोई १० का, १२ का कहा गया है; पर भगवान कृष्ण 'षोडशकलावतार' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भगवान राम का भी महत्व बहुत अधिक है और समस्त जगत उनका सम्मान करता है; पर भगवान कृष्ण ने जितनी अधिक पेचीदा समस्याओं को सुलझाया उससे उनका महत्व बहुत बढ जाता है। श्री रामचन्द्रजी को मुख्यतः रावण का ही सामना करना पड़ा और उसका आतंक समाप्त कर देने पर वे जीवन के अन्त तक शांतिपूर्वक राज्य-संचालन करके प्रजा को धर्ममार्ग पर चलाते रहे। पर भगवान कृष्ण आजीवन अन्याय और दुष्टता का दमन करते रहे। एक के बाद एक पाशविक शक्ति पर विश्वास रखने वालों का सामना करके लोककल्याण साधन करने में उनको अपनी समस्त शक्ति और समय लगाना पड़ा, उसका पूरा वर्णन कर सकना भी कठिन है। जन्म लेते ही कंस की क्रूरता के लक्ष्य बने और बाल्यावस्था से ही उसके भयंकर-कर्मा दूतों से संघर्ष करना पड़ा। किशोरावस्था में वे सब तरह से इतने शक्ति शाली बन गये कि थोड़े से अनुयाइयों के सहयोग से कंस का अन्त कर दिया। फिर वे उसके ससुर जरासंध से भिड़े जो समस्त देश का सम्राट बनने की योजना कर रहा था। शिशुपाल जैसे उच्छृंखल राजा को उन्होंने भरी सभा में यमलोक पहुँचा दिया और बाणासुर की महम्मन्यता को नीचा दिखा दिया। जब देखा कि इस प्रकार एक-एक को

कस्माद्यूयं समायाताः केन वा भीषिता वत ।
तमहं निहनिष्यामि यदि वा स्यात्पुरन्दरः ॥६॥
इत्याश्रुत्य कल्किवाक्यं तेनोल्लासितमानसाः ।
जगदुः पुण्डरीकाक्षं निकुम्भदुहितुः कथाम् ॥७॥
शृणु विष्णुयशःपुत्र ! कुम्भकर्णात्मजात्मजा ।
कुथोदरीति विख्याता गगनार्द्धसमुत्थिता ॥८॥
कालकञ्जस्य महिषी विकञ्जजननी च सा ।
हिमालये शिरः कृत्वा पादौ च निषधाचले ।
शेते स्तनं पाययन्ती विकञ्जं प्रस्नुतस्तनी ॥९॥
तस्या निःश्वासवातेन विवशा वयमागताः ।
दैवेनैव समानीताः सम्प्राप्तास्त्वत्पदाश्रयम् ।
मुनयो रक्षणीयास्ते रक्ष तु नः विपत्सु नः ॥१०॥

आप कहाँ से आ रहे हैं ? किससे डरे हुए हैं ? यह सब वृत्तान्त मुझे बताओ, फिर यदि आपका अपकार करने वाला इन्द्र भी होगा, तो मैं उसे नष्ट कर दूँगा ।६। पुण्डरीकाक्ष कल्किजी के वाक्य सुनकर आनन्दित हुए मुनियों के हृदय प्रफुल्लित हो गये और तब उन्होंने दैत्यराज निकुम्भ की पुत्री की कथा सुनाई ।७। मुनियों ने कहा— हे विष्णुयश के पुत्र ! हे प्रभो ! सुनिये, कुम्भकर्ण का एक पुत्र निकुम्भ था, उसकी एक कन्या कुथोदरी नाम की है । उसका आकार गगनमंडल से भी ऊँचा है ।८। वह कालकञ्ज नामक दैत्य की पत्नी है, उसका पुत्र विकञ्ज है । वह राक्षसी अपना मस्तक हिमालय पर और पाँव निषध पर्वत पर रखकर विकञ्ज को स्तन पिला रही है ।९। हे देव ! हम उसकी श्वासवायु से उत्पीड़ित होकर देव-प्रेरणा वश यहाँ उपस्थित हुए हैं । अब हम आपके चरणाश्रय को प्राप्त हो चुके हैं अतः उससे हमारी रक्षा कीजिये ।१०

इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः परपुरञ्जयः ।

सम्म करते तो सारी आयु बीत जायगी तब भी काम पूरा न होगा, तो 'महाभारत' रचा दिया और कलि के मतवाले राजाओं को परस्पर में ही नष्ट कराके प्रजा को उनके असह्य भार से मुक्त किया।

भगवान कृष्ण की इस लोक-कल्याण वृत्ति का सम्यग् जनता पर अपूर्व प्रभाव पड़ा और उसके अन्तःकरण में स्वतः यह भावना भर गई कि वे वास्तव में लोक रक्षक थे और उन्होंने इसी हेतु जन्म ग्रहण किया था। किसी को यह विश्वास नहीं होता था कि कोई एक व्यक्ति ऐसे अनेक असम्भव कामों को सिद्ध करके दिखा सकता है, इसलिए सबको ही निश्चय हो गया कि वे वास्तव जगतपति भगवान ही थे, जो संसार की रक्षार्थ प्रकट हुये थे और इस उद्देश्य की पूर्ति करके अस्तगत हो गये।

महाराज युधिष्ठिर के ईश्वर भक्ति और अवतार आदि के सम्बन्ध में अत्यन्त विनयपूर्वक पूछने पर एक बार भगवान कृष्ण ने अपने प्राकट्य का रहस्य इस प्रकार बतलाया था–

इदं मे मानुषं जन्म कृतमात्मनि मायया।
धर्मं संस्थापनार्थाय दुष्टानां नाशनाय च ॥
मानुष्यं भावमापन्नं ये मामवज्ञाय ।
संसारार्तिह ते मूढास्तिर्यग्योनिष्वनेकशः ॥
ये च मां सर्वभूतस्थं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ।
मद्भक्तास्तान् सदा युक्तान् मत्समीपं नयाम्यहम् ॥
स्थित्युत्पत्त्य व्ययकरं मे मां ज्ञात्वा प्रपद्यते ।
अनुग्रहणान्यहं त वै संसारान्मोचयामि च ॥

"इस समय धर्म की स्थापना और दुष्टों का विनाश करने के लिये ही मैंने अपनी माया से मानव रूप में अवतार लिया है। जो लोग मुझे केवल मनुष्य ही समझकर अवज्ञा का भाव रखेंगे, वे मूर्ख हैं और संसार के भीतर बारम्बार तिर्यक् योनियों में भटकते फिरेंगे। इसके विपरीत जो ज्ञानदृष्टि से मुझे सब भूतों में स्थित देखते हैं, वे

एकं स्तनं पाययति विकञ्जं पुत्रमादरात् ।
न जानेऽस्याः शरीरस्य प्रमाणं कति वा भवेत् ॥१९॥
बलं चास्याः निशाम्यैवं शम्भुर्मुनिसमर्पितात्मनः ।
कल्किः परात्मा सन्नह्य सेनाभिः सहसा ययौ ॥२०॥

हे प्रभो ! हे कल्के ! इस पर्वतस्थमी नदी की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं, उसे सुनिये । एक कुथोदरी नाम की राक्षसी के स्तनों से निकला हुआ दूध हिमालय पर्वत से गिरता हुआ नदी रूप में बह रहा है ॥ १६ ॥ हे महामते ! साथ घड़ी के पश्चात् इसी प्रकार को एक मध पदविनी नदी प्रवाहित होगी । इसके पश्चात् यह नदी सूख कर सरोवर में परिवर्तित हो जायगी ॥१७॥ सेना सहित सुशोभित कल्किजी मुनियों के वचन सुनकर बोले—अहो, कैसे विस्मय का विषय है कि राक्षसी के स्तनों से निर्गत हुए दूध से इतनी बड़ी नदी उत्पन्न होकर बह रही है ॥१८॥ वह अपना एक स्तन अपने पुत्र विकुञ्ज को पिला रही है तो इसके देह का परिमाण क्या होगा ? वह किस प्रकार जाना जा सकता है ? ॥१९॥ तब सभी आश्चर्य से भर कर बोल उठे—अहो ! इस राक्षसी में कितना बल है ? तदनन्तर सेना से सुसज्जित हुए कल्कि जी उस राक्षसी की ओर चल पड़े ॥२०॥

मुनिदर्शितमार्गेण यत्रास्ते सा निशाचरी ।
पुत्रं स्तनं पाययन्ती गिरिमूर्ध्नि घनोपमा ॥२१॥
श्वासवाताभिवातेन दूरक्षिप्तवनद्विपा ।
यस्याः कर्णविलावासं प्रसुप्ताः सिंहसंकुला ॥२२॥
मुखपोशकृतां गिरिगह्वरवि भ्रमाः ।
केशमूलमृणालाढ्य हरिणा शेरते चिरम् ॥ २३ ॥
यूका इव न च व्यग्रा लुब्धकास्तद्भुवा भृशम् ।
तामालोक्य गिरेमूर्ध्नि गिरिस्तारसमाद्भुताम् ॥२४॥
कल्किः कमलपत्राक्षः सर्वास्ताश्चाह सैनिकान् ।
सर्वोद्विग्नानुद्विग्नोऽनल्पकोपामप्रमपरिच्छदान् ॥२५॥

क्रोध पूर्वक अट्टहास किया ॥ २८ ॥ उस घोर निनाद को सुन कर सभी भयभीत हो गये तथा सब सेनापति मूर्च्छित एवं धराशायी हो गये ॥२९॥ तब वह राक्षसी कुथोदरी अपने भयंकर मुख को खोल कर अपने प्रश्वास के द्वारा ही रथ, अश्व, गजादि को खींच-खींच कर उदर करने लगी ॥ ३० ॥

सेनागणास्तदुदरं प्रविष्टाः कल्किना सह ।
यथा स्वमुखवातेन प्रविशन्ति पिपीलिकाः ॥३१॥
तद्दृष्ट्वा देवगन्धर्वा हाहाकारं प्रचक्रिरे ।
तत्रस्था मुनयः शेपुर्जेपुरन्ये महर्षयः ॥ ३२ ॥
निपेतुरन्ये तु स्वार्ता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
सदु शिष्यौघा ये बहुपुत्त्वानिशाचरा ॥ ३३ ॥
जगता कदन दृष्ट्वा मत्तानात्मानमात्मना ।
कल्किः कमलपत्राक्षः सुरारातिनिषूदन ॥ ३४ ॥
वारणाजिन चेलचर्माभ्यां कुम्भैनदीनदाश्मि ।
प्रज्वाल्यादरमध्येन करवालं समाददे ॥ ३५ ॥

जैसे चींटी के अत्यन्त वेग से चींटियाँ आकर्षित होकर उसके मुख में प्रवेश करती हैं, वैसे ही अपनी सेना के सहित भगवान कल्कि उस राक्षसी के मुख में प्रविष्ट हो गये ॥३१॥ यह देख कर सब देवता-गन्धर्व हाहाकार कर उठे, मुनिगण ने उस राक्षसी को शाप दिया और महर्षिगण कल्कि जी को कुशल के निमित्त मन्त्र-जाप में संलग्न हुए ॥३२॥ कुछ ब्राह्मण दुःख से अचेत हो गये, शत्रु-पक्ष और राक्षस गण आनन्द से निमग्न हो गये ॥ ३३ ॥ देव शत्रुओं के नाशक भगवान कल्कि ने जब सम्पूर्ण विश्व को इस प्रकार दुःखी देखा तो वे स्वयं अपना ही स्मरण करने लगे ॥३४॥ फिर कल्कि जी ने राक्षसी के उस अन्धकार मय उदर में अपने शस्त्र द्वारा अग्नि उत्पन्न की और चर्म तथा रथ के काष्ठादि के द्वारा उस अग्नि को प्रज्वलित कर हाथ में तलवार ग्रहण की ॥३५॥

एव भवान् केवल आत्मयोनिरवात्मऽऽत्मतन्त्रो बहुधा
विभाति ॥
सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं, रजस्तम सत्वगुणैं
स्वशक्तिभि' ।
न वध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वाज्ञानात्मनस्ते क्वच बन्धहेतु ॥
देहाद्युपाधेरनिरुपितत्वाद् भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मन.
स्यात्
अतो न बन्धस्तव नैव मोक्ष स्याता निकामस्त्वयि
नोऽविवेक. ॥

आप जगत के कारण जगत-रूप और आदि पुरुष है। आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु नही है न कारण है और न कार्य। हे परमात्मन्! आपने ही अपनी शक्तियो से इसकी रचना की है। आप अपनी काल, माया आदि शक्तियो से इसमे प्रविष्ट होकर, जितनी वस्तुएँ देखी और सुनी जाती हैं, उनके रूप में प्रतीत हो रहे हैं। जैसे पृथ्वी आदि की रचना उनके कारण तत्वो से ही होती है, पर कार्य रूप में अनेक प्रकार के प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार आप है तो केवल आत्मा तत्व में ही, पर कार्यरूप जगत मे स्वेच्छा से अनेक रूपो मे प्रतीत होते है। प्रभो! आप रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण रूप अपनी शक्तियो से क्रमश. जगत की रचना, पालन और सहार करते है, किन्तु उन गुणो अथवा उनके द्वारा होने वाले कर्मों बन्धन मे नही पड़ते क्योकि आप शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। ऐसी स्थित मे आपके लिये बन्धन का कारण ही क्या हो सकता है? आत्मा मे किसी प्रकार की स्थूल अथवा सूक्ष्मदेह की उपाधि नही होती इसलिये उसमे न तो जन्म मृत्यु होती है, न कोई भेदभाव होता है। यही कारण है कि आप बन्धन और मोक्ष दोनो से परे हैं। हम अपने अज्ञान के कारण ही अपनी गति के अनुसार आप के बन्धनग्रस्त या मुक्त होने की कल्पना किया करते है।'

धनुषा पञ्चवर्षीयं राक्षसं शरमाददे ।
तेनास्त्रेण शिरस्तस्य छित्वा भूमावपातयत् ॥४४॥
मेघराक्षस धार्मुचर्मं गिरिशृङ्गमिवद्भुतम् ।
सपुत्रां राक्षसीं हत्वा मुनीनां वचनाद्विभुः ॥४५॥

जब विकुञ्ज ने अपनी माता की यह दशा देखी तो वह क्रोध से कातर होकर निरस्त्र ही सेना में घुस पड़ा ॥ ४१ ॥ उसके हृदय में हाथियों की माला, सब अंगों में चीतों के आभूषण, मस्तक पर महा-सर्प का मुकुट और अंगुलियों में सिंहों की मुद्रिकाएं थीं ॥ ४२ ॥ वह अपनी माता के शोक से व्याकुल होकर कल्कियों की सेना का उद्वेलन करने लगा । तब कल्किजी ने उस पाँच वर्ष के राक्षस-बालक को मारने के लिए ब्रह्मास्त्र ग्रहण किया और उससे उसका मस्तक काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ४३-४४ ॥ इस प्रकार मुनियों द्वारा निवेदन करने पर कल्किजी ने श्रेष्ठ अस्त्रों से निर्मित किये के समान उस राक्षसी पर्वत पर पुत्र सहित राक्षसी को नष्ट कर दिया ॥४५॥

गङ्गातीरे हरिद्वारे निवासं समकल्पयत् ।
देवानां कुसुमासारैर्मुनिस्तोत्रैः सुपूजितः ॥४६॥
निनाय तां निशां तत्र कल्किः परिजनावृतः ।
प्रातर्ददर्श गङ्गायास्तीरे मुनिगणान्बहून् ।
तस्याः स्नानव्याजनिमुत्तारदन्तगा स्वतो प्रकुपात् ॥४७॥
हरिद्वारे गङ्गातटनिकटपिप्पलारकवने ।
वसन्तः श्रीमन्तः निजगणवृता वा मुनिगणाः ।
स्तवं. स्तुत्वा स्तुत्वा विविधविदिर्जन्हुतनया ।
अपश्यत् कल्किं मुनिजनगणा द्रष्टुमयमन् ॥४८॥

तदनन्तर उन्होंने देवताओं द्वारा पुष्प-वृष्टि और मुनियों के स्तोत्रों से भले प्रकार पूजित होते हुए वहाँ चल कर हरिद्वार में गङ्गा के

इसी प्रकार जब भगवान कृष्ण कालयवन को धोखा देकर मुचुकुन्द के पास ले गये और उसे भस्म करा दिया तो मुचुकुन्द द्वारा नाम, वंश, निवास स्थान आदि पूछने पर अपना परिचय देते हुए उसमें अपने ईश्वरत्व को पूर्ण रूप से प्रकट किया है–

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ।
न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥
क्वचिद् रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥
कालत्रयोपपन्नानि जन्म कर्माणि मे नृप ।
अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥
तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम ।
विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराहं धर्म गुप्तये ॥
भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ।
अवतीर्णो यदुकुले गृह आनक दुन्दभे ॥
वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ।

"हे मुचुकुन्द ! मेरे हजारों जन्म, कर्म और नाम हैं। वे अनन्त हैं इसलिये मैं भी उनकी गिनती करके नहीं बतला सकता। यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने जन्मों में पृथ्वी के धूलकणों की गिनती कर डाले, परन्तु मेरे जन्म, गुण, कर्म और नामों का कोई कभी किसी प्रकार नहीं गिन सकता। सनक-सनन्दन आदि परमर्षिगण मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म और कर्मों का वर्णन करते रहते हैं, परन्तु कभी उनका पार नहीं पाते। ऐसा होने पर भी मैं तुमको बतलाता हूँ कि पहले ब्रह्माजी ने मुझसे धर्म की रक्षा और पृथ्वी का भार बने हुए असुरों का संहार करने के लिये प्रार्थना की थी। उन्हीं की प्रार्थना से मैं ने यदुवंश में वसुदेवजी के यहाँ अवतार ग्रहण किया है। अब मैं वसुदेव जी का पुत्र हूँ, इसलिये मुझे वासुदेव कहते हैं।"

तृतीय अध्याय

सुखागतान्मुनीन् दृष्ट्वा कल्किः परम धर्मवित् ।
पूजयित्वा च विधिवत्सुखासीनानुवाच तान् ॥१॥
कयूय सूर्यसङ्काशा मम भाग्यादुपस्थिता. ।
तीर्थाटनोत्सुका लोकत्रयाणामुपकारका. ॥२॥
अद्य लोके पुण्यवन्तो भाग्यवन्तो यशस्विन. ।
यत् कृपाकटाक्षेण युष्माभिरवलोकिता. ॥३॥
ततस्ते वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो गालवो भृगु ।
पराशरो नारदोऽश्वत्थामा राम. कृपस्तथ. ॥४॥
दुर्वासा देवल: कण्वो वेदप्रमितिरङ्गिरा: ।
एते चान्ये च बहवो मुनय. संशितव्रता. ॥५॥
कृत्वाग्रे मरुदेवापी चन्द्रसूर्यकुलोद्भवौ ।
राजानौ तौ महावीर्यौ तपस्याभिरतौ चिरम् ॥६॥
ऊचु प्रहृष्टमनस कल्कि कल्कविनाशनम् ।
महोदधेस्तीरगत विष्णु सुरगणा यथा ॥७॥

परम धर्मवित् कल्किजी ने उन मुनिगण को सुखपूर्वक वहाँ आये हुए देखकर स्वागत, आसन और विधिवत् पूजन करके उनसे बोले ॥१॥ सूर्य के समान भास्कर तेजस्वी, तीर्थाटन में उत्सुक एवं तीनों लोकों के कल्याण रूप उपकार की कामना वाले आप कौन हैं? जो मेरे सौभाग्यवश यहाँ पधारे हैं ॥२॥ आपके द्वारा कृपा-कटाक्ष पूर्वक देखे जाने से मैं आज इस लोक में अपने को पुण्यवान्, भाग्यवान्

जब बाणासुर ने श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को अवरुद्ध कर लिया तो उन्होंने बाणासुर की राजधानी शोणितपुर पर आक्रमण किया और बड़े-बड़े प्रसिद्ध दैत्यों तथा उनके सहायक भगवान शंकर के गणों को हरा कर भगादिया। जब वे बाणासुर की भुजाओं को काटने लगे तो भगवान शंकर ने स्वयं वहाँ आकर उनसे बाणासुर की रक्षा की प्रार्थना की। उस अवसर पर शंकरजी ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा था।

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये।
य पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥
नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौ शीर्षमाशा श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी।
चन्द्रो मनोयस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठर भुजेन्द्रः ॥
तवावतारोऽयमकुण्ठधामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय।
वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥
त्वमेक आद्य पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यं स्वदृग्घेतुरहेतुरीश।
प्रतीयसेऽथापि यथाविकार स्वमायया सर्वगुणं प्रसिद्धयै ॥
यथैवसूर्य पिहितश्छायया स्वया छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति।
एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥
(स्कन्द १० अ० ६३)

"प्रभो! आप वेदमन्त्रो मे तात्पर्य रूप से छिपे हुये परम ज्योति स्वरूप परब्रह्म है। शुद्ध हृदय महात्मागण आपके आकाश के समान सर्वव्यापक और निर्विकार स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं। आकाश आपकी नाभि है, अग्नि मुख है, जल वीर्य है, स्वर्ग सिर, दिशाएँ कान और पृथ्वी चरण हैं। चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र, और मैं (शिव) आपका अहंकार हूँ। समुद्र आपका पेट है और इन्द्र भुजा स्वरूप है। हे अखण्ड ज्योतिस्वरूप परमात्मन्! आपका यह अवतार धर्म की रक्षा और

जोड़ कर विनय पूर्वक अपने वंश का वर्णन करने लगे ॥ १२ ॥

सर्ववेत्ता परात्मापि अन्तर्यामिहृदि स्थिति ।
तथाप्यहं सर्वमेतत्कथयामि शृणु प्रभो ॥१३॥
तव नाभेरभूद्ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् ।
ततो मनुस्तत्सुतोऽभूदिक्ष्वाकुः सत्यविक्रम ॥१४॥
युवनाश्व इति ख्यातो मान्धाता तत्सुतोऽभवत् ।
पुरुकुत्सस्तत्सुतोऽभूदनरण्यो महामति ॥१५॥
त्रसदस्युः पिता तस्माद्धर्यश्वश्चारुणस्ततः ।
त्रिशङ्कुस्तत्सुतो धीमान्हरिश्चन्द्र प्रतापवान् ॥१६॥
हरितस्तत्सुतस्तस्माच्चम्पकस्तत्सुतो वृकः ।
तत्सुतः सगरस्तस्मादसमञ्जास्ततोंऽशुमान् ॥१७॥

मनु बोले—हे प्रभो ! आप तो अन्तर्यामी एवं घट-घट निवास करने वाले हैं आपसे क्या छुपा बात है। मैं आपकी आज्ञा के अनुसार सब कहता हूँ, उसे सुनिये ॥१३॥ आपके नाभि कमल से ही ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के मनु और मनु के सत्य विक्रम इक्ष्वाकु हुए। १४॥ इक्ष्वाकु का पुत्र युवनाश्व, युवनाश्व का मान्धाता, मान्धाता का पुरुकुत्स और पुरुकुत्स का पुत्र अनरण्य हुआ ॥१५॥ अनरण्य का त्रसदस्यु, त्रसदस्यु का हर्यश्व, हर्यश्व का अरुण, अरुण का त्रिशङ्कु हुआ तथा त्रिशङ्कु के पुत्र महा-प्रतापी राजा हरिश्चन्द्र हुए ॥ १६॥ राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र हरित, हरित का चम्पक, चम्पक का वृक, वृक का सगर, सगर का असमंजा और असमंजा का पुत्र अंशुमान हुआ ॥१७॥

ततो दिलीपस्तत्पुत्रो भगीरथ इति स्मृतः ।
येनानीता जाह्नवीयं ख्याता भागीरथी भुवि ।
स्तुता नुता पूजितेयं तव पादसमुद्भवा ॥१८॥
भगीरथात्सुतस्तस्मान्नाभस्तस्मादभूद्बली ।
सिन्धुद्वीपस्सुतस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥१९॥

पृथक् संस्कार किया ॥३७॥ सीताजी के वियोग से व्याकुल हुए धनुर्धरों में श्रेष्ठ श्रीराम लक्ष्मण के सहित नव-परिचय प्राप्त वानर सेना से मिले और उनकी सूर्य पुत्र वालि के छोटे भाई सुग्रीव द्वारा भेजे हुए उसके सखा हनुमान से भेंट हुई ॥३८॥

ततस्तदुदित मत पवनपुत्रसुग्रीवयो-
स्तृणाधिपतिभेदन निजनृपासनस्यापितम् ।
विविच्य व्यवसायकैर्निजसदाप्रिय वालिनम्
निहत्य हरिभूपति निजसख स रामोऽकरोत् ॥३९॥
अथोत्तरमिमां हरिजनकजा समन्वेषयन्
जटायुसहजोदितैर्जलनिधि तरन्वायुज. ।
दशाननपुरं विलङ्घनकजां समानन्दय
सशोक्यनिकाश्रमे रघुपति पुन. प्राययौ ॥४०॥
ततो हनुमता बलादमितरक्षसां नाशन
ज्वलज्ज्वलनसङ्कुलस्खलितदग्धसद्मापुरम् ।
विविच्य रघुनायको वरुणनिधि धिया शोषयन्
भजन्ध हरियूथप. परिवृतो नगैरीश्वर. ॥
प्रभञ्ज्य पुरपत्तन विविधसत्वदुर्गक्रमम्
निशाचरपते. कृपा रघुपतिः कृतो सद्गतिः ॥४१॥

फिर सुग्रीव और हनुमान की प्रार्थना पर उन्होंने ताल के सात वृक्षों को काट गिराया और वालि का वध करके सुग्रीव को वानरों का राजा बना कर उससे मित्रता स्थापित की ॥३९॥ फिर पवनपुत्र हनुमान सीता की खोज में गये और सम्पाति की प्रेरणा पर लङ्कापुरी में स्थित अशोक वाटिका पहुँच कर उन्होंने सीताजी को राम-सन्देश से आनन्दित किया और रामचन्द्रजी के पास लौट आये ॥ ४० ॥ फिर श्रीरामचन्द्र ने हनुमानजी के द्वारा अनेकों राक्षसों का मारा जाना और शहर का जलाया जाना सुना तो वे विचारों द्वारा समुद्र पर सेतु बाँध

"हे व्यासजी ! मेरे विषय में लोगों की अनेक प्रकार की धारणा है। कोई मुझे 'प्रकृति' कहते हैं, कोई 'पुरुष' कोई 'ईश्वर' कोई 'धर्म' या 'अधर्म'। किन्हीं के मत में मैं भय रहित मोक्षस्वरूप हूँ, कोई भाव (सत्वस्वरूप) मानते हैं और कोई कल्याणमय सदाशिव बतलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे लोग मुझे वेदान्त प्रतिपादित 'अद्वितीय सनातन ब्रह्म' मानते हैं। किन्तु जो वास्तव में सत्तास्वरूप और निर्विकार है, जो दिव्य सच्चिदानन्द विग्रह रूप है, तथा जिसका रहस्य वेदों से भी छिपा हुआ है, अपने उस पारमार्थिक स्वरूप को अब तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ।"

यह कह कर भगवान ने व्यासजी को अपना बालकृष्ण स्वरूप दिखलाया, जिसमें वे एक दिव्य बालक के रूप में गोप बालक और कन्याओं से घिरे हुए एक कदम्ब वृक्ष की जड़ पर बैठे हुए थे। भगवान ने कहा—

यदिह मे त्वया दृष्टं रूपं दिव्यं सनातनम् ।
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं सच्चिदानन्द विग्रहम् ॥
पूर्णं पद्मपलाशाक्षं नातः परतरं मम ।
इदमेव वदन्त्येते वेदाः कारणकारणम् ॥
सत्यं नित्यं परानन्दं चिद्घनं शाश्वतं शिवम् ।

"हे मुनिवर ! तुमने जो इस दिव्य सनातन रूप का दर्शन किया है, यही मेरा निष्कल, निष्क्रिय, शान्त और पूर्ण सच्चिदानन्दमय विग्रह है। इस कमल लोचन स्वरूप से बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट तत्व नहीं है। वेद इसी स्वरूप का वर्णन करते हैं और यही कारणों का भी कारण है। यही सत्य, नित्य, परमानन्द स्वरूप; चिदानं घन, सनातन शिवतत्व है।"

आदि पुराण में भगवान का भक्ति-तत्त्व कथन—

'आदि पुराण' में भक्तिमार्ग और भक्तों की महिमा का कथन

ततो दशमुखो रणे भवरथाश्वपत्तीश्वरैः
रलङ्घ्यबलकोटिभिः परिवृतो युयोधाग्रणीः ।
कपीश्वरसमूपतेः प्रतिमनल्पदिव्यायुधः
रघूद्वहमनिन्दितं सपदि सङ्गतो दुर्जयः ॥४५॥

दशाननमरिं ततो विविधरत्नधाराद्दितम्
महाचलपराक्रमं गिरिमिवाचलं संयुगे ।
जघान रघुनायको निशितसायकैरुन्नतम्
निशाचरचमूपतिं प्रबलकुम्भकर्णं ततः ॥४६॥

तयोः खरतरैः शरैर्गगनमच्छमाच्छादितं
यथो घनघटासमं पुलरमत्तडिद्भिर्निभिः ।
धनुर्गुणमहाशनिध्वनिभिराकुलं भूतलं
भयङ्करमिवाभवद् रघुपतेश्च रक्षःपतेः ॥४७॥

फिर रावण अपने करोड़ों गज, रथ, अश्व, पुरुष तथा पदाति सैनिकों के सहित रणभूमि में उपस्थित हुआ और उसने कपीश्वर सुग्रीव के भी स्वामी दिव्यायुध धारी श्रीराम से घोर संग्राम किया ॥४५॥ तब रघुनायक श्रीराम ने अपने तीक्ष्ण बाणों से प्रबल हुए महापराक्रमी और युद्ध में पर्वत के समान अडिग रहने वाले राक्षसपति रावण और उसके भाई कुम्भकर्ण को अपने बाणों से नष्ट कर दिया ॥४६॥ फिर राम-रावण के उस युद्ध में तीक्ष्ण बाणों से गगन उसी प्रकार आच्छादित हो गया, जिस प्रकार मेघों की घटा से हो जाता है। बाणों के परस्पर टकराने से जो अग्नि की चिनगारियाँ निकलती थीं, वह ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे गर्जन करती हुई बिजली चमक उठती है। विद्युत्-गर्जन के समान धनुष की टङ्कार से व्याप्त हुई रणभूमि अत्यन्त भयानक लगने लगी ॥४७॥

ततो धराणकाया विनिकरामबाणोत्तमा
पपात भुवि रावणस्त्रिदशदानवाद्यद्रावणः ।
ततोऽतिप्रमुदितो हरिजनैर्नरसिताः जानकी

करते हुए भगवान कृष्ण ने कहा—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

'हे नारदजी ! मैं न तो वैकुण्ठ में वास करता हूँ और न योगियों के हृदय में ही रहता हूँ। मेरे भक्त जहां मेरा गुण-कीर्तन या स्मरण करते हैं मैं वहीं रहता हूँ।'

इस एक ही श्लोक में भगवान ने उस तत्व को प्रकट कर दिया है जिसको कोई योग काल में नहीं कर सकता। वैकुण्ठ के योग्य धर्म-साधन अथवा योग-साधन न्यूनाधिक सांसारिकता से सम्बन्धित हैं और इनमें मनुष्य जो कुछ कर्म करता है वह फल प्राप्ति की इच्छा से होता है। पर भगवान की निष्काम भक्ति एक ऐसी चीज है जिसमें भला-बुरा कोई उद्देश्य नहीं होता वरन्-भक्ति-भक्ति के लिये ही होती है, और उस मार्ग पर चलने वाला निश्चित रूप से जीवन को सफल कर लेता है। भक्त के लिए भगवान हर जगह और हर रूपमें उपस्थित रहते हैं। उनको वैकुण्ठ में, या मन्दिरों में या किसी विशेष विधि के द्वारा ही प्राप्त करने की चेष्टा आवश्यक नहीं है। वे भक्त मात्र हैं और इस लिए सर्वत्र और सभी रूपों में उनको पाया जा सकता है।

भविष्य पुराण में अवतार कथन—

महाभारत युद्ध के पश्चात जब महाराज युधिष्ठिर राज्यसंचालन कर रहे थे, एक समय व्यास, मार्कण्डेय शाण्डिल्य आदि अनेक मुनि उनके पास आये। उस अवसर पर उन्होंने धर्म सिद्धान्त को जानने की जिज्ञासा की तो श्री व्यासजी ने उन्हें बतलाया—

पार्श्वोऽस्यास्ते हृषीकेशो केशवो केशिसूदनो ।
कस्यचित्कथने जिह्वा तव सम्परिवर्तते ॥
कर्ता पालयिता हर्ता जगतां यो जगन्मयः ।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य धर्मान्पृच्छसि तव ॥

भगवान केशिसूदन श्रीकृष्ण यहां हमारे सामने सब के

यथा पुरजनाः प्रियं निजसुतैः प्रजा रञ्जयन्
स्थितो रघुपतिः श्रिया निजमनोभवं मोहयन् ।
मुनीन्द्रगणसंयुतोऽप्ययजदादिदेवान्मखै-
रनेकविपुलदक्षिणैर्नरतुरङ्गवाजिमेधैरपि ॥१२-१३॥

फिर अपने जनों से आवृत होकर दुःख से कातर हुए भरत जी को सान्त्वना दी और माताओं की आज्ञा से अपने पिता के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उस समय वसिष्ठ आदि महर्षियों ने उनका अभिषेक किया और तब वे लोगों के स्वामी श्रीराम इन्द्र के समान शोभा पाने लगे ॥११॥ फिर प्रजाजन धन से सम्पन्न हो गए, निरन्तर उत्सवों में मग्न रहने लगे। सभी परस्पर प्रेम-भाव पूर्वक भय-रहित चित्त से रहते हुए अपने-अपने धर्म में तत्पर हो गए। मेघों द्वारा समय पर वृष्टि होने से पृथिवी मुदित हो गई। इस प्रकार अत्यन्त पराक्रमी श्रीराम के राज्य को प्राप्त होने से सम्पूर्ण विश्व सत्पथ का अनुगामी हो गया ॥१२॥ भगवान् श्रीराम अपने गुणों से प्रजा को प्रसन्न रखते और अपनी प्राणप्रिया सीताजी के मन को भी आनन्दित करने लगे। उन्होंने महर्षियों के सहयोग से बहुत प्रकार की दक्षिणा और दान-पुण्यादि के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते हुए तीन अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न रूप से पूर्ण किये। इस प्रकार उन्होंने दस हजार वर्ष तक राज्य किया ॥१३॥

ततः किमपि कारणं मनसि भावयन्भूपति-
र्महीं जनकजां वने रघुवरस्तदा निर्घृणः ।
ततो निजमतं स्मरन्सभनयत्सचेतः सुतौ
निवाश्रममुदारघोरभुवनेः प्रिया 'दुःखिताम् ॥१४॥
ततः कुशलवौ सुतौ प्रसुषुवे धरित्रीसुता
महाबलपराक्रमौ रघुपतेर्यशोगायनौ ।
स तामपि सुतान्वितां मुनिवरस्तु रामान्तिके
समर्पयदनिन्दितां सुरवरैः सदा वन्दिताम् ॥१५॥

उपस्थित हैं। इन के रहते हुए धर्म के सम्बन्ध में कोई अन्य क्या कह सकता है? ये तो संसार के कर्ता-हर्ता, पालन कर्ता और स्वयं ही जगतरूप हैं। ये धर्म के प्रत्यक्ष द्रष्टा हैं। इस धर्म के सम्बन्ध में ये ही तुम को सब कुछ बता सकेंगे।

ब्रह्मवैवर्त पुराण—

ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा कृष्ण के युगल स्वरूप की उपासना को सर्वोच्च मान कर उसका दिव्य रूप में बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। पर उसमें भी भगवान को सबका कर्ता और सर्वव्यापी मान कर अवतार के स्वरूप का वर्णन पाया जाता है। जब नन्द बाबा भगवान कृष्ण के मथुरा में ही ठहर जाने के कारण उनके वियोग से अत्यन्त कातर हो रहे थे, तब भगवान ने स्वयं उनको बतलाया था—

निबोध नन्द सानन्द त्यज शोकं मुद लभ।
ज्ञान गृहाण मद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा॥
मद्दत्त च शेषाय गणेशायेश्वराय च।
दिनेशाय मुनीशाय योगीशाय च पुष्करे॥
ममैव मायया सर्वे सानन्दा विषयेषु च।
देहत्यागे विषण्णाश्च विच्छेदे बान्धवस्य च॥
मद्भक्तो भक्तियुक्तश्च मद्याजी विजितेन्द्रियः।
मन्मन्त्रोपासकश्चैव मत्सेवानिरतः शुचिः॥
मद्भयाद्वाति वातोऽयं रविर्भाति च नित्यशः।
भाति चन्द्रो महेन्द्रश्च कालभेदे च वर्षति॥
वह्निर्दहति मृत्युश्च चरत्येव हि जन्तुषु।
बिभर्ति वृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च॥

हे नन्द बाबा! मेरे वचनों को आनन्द पूर्वक सुनो, शोक को त्यागकर वर्षे को हृदय में स्थान दो। मैं जो विश्व ब्रह्माण्ड सम्बन्धी रहस्य बतलाता हूँ उसे सुनो और समझो। पूर्वकाल में यही ज्ञान मैंने

है। यह मद नाशक सुधर्म की नरेश हैं। तुम्हें यह विदित ही है कि मैंने ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थित होकर ही यह देह धारण किया है।२४। कीटक में योद्धों का दमन किया और जो तुम्हारे प्रति अधिक उपद्रव करने में तत्पर रहते हैं तथा जो वैष्णव नहीं है, उन्हें नष्ट करने के लिए मैं ऐसा कठिन विचार कर रहा हूँ। अब तुम भी भय-रहित होकर पृथिवी पर अनिदीन रहो।२५।

का भीतिस्ते क्व मोहोऽस्ति यज्ञदानतपोवतैः।
सहितः सचर विभो। मयि सत्ये ह्युपस्थिते।२६।
अहं यामि त्वयागच्छ स्वपुत्रैर्बान्धवैः सह।
विधा जायार्थं त्व शत्रुनिग्रहार्थं जगादिमम्।२७।
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा धर्मः परमहर्षितः।
गन्तु कृतमतिस्तेन प्राधिपत्यमनु स्मरन्।२८।
सिद्धाश्रमे निजस्थानत्यक्त्वा हिरण्यस्व ततः।२९।
रथाड्ः साधुसत्कारवेदब्रह्ममहारथः।
नानाशास्त्रान्वेषणेषु स कल्पनरकार्मुक।३०।
सप्तस्वराश्वो भूदेवसारथिर्वह्निराश्रयः।
क्रिया भेदबलोपेतः प्रवत्रीधर्मसाधकः।३१।

हे धर्म! मैं स्वयं उपस्थित हूँ, सत्युग भी आ ही चुका है, तब तुम भयभीत क्यों हो? तुम व्यर्थ मोहित क्यों हो रहे हो? अब तुम यज्ञ, दान और तप के सहित पृथिवी पर स्वच्छन्द विचरण करो।२६। हे धर्मप्रिय! तुम अपने पुत्र एवं बांधवों सहित शत्रुओं के निग्रह और दिग्विजय के उद्देश्य से प्रस्थान करो। मैं भी तुम्हारा साथ दूंगा।२७। कल्किजी के यह वचन सुन कर धर्म अत्यन्त आनन्दित हुआ और अपने आधिपत्य का स्मरण करता हुआ, कल्किजी के साथ प्रस्थान में तत्पर हुआ।२८। उस समय उ[illegible] अपनी स्त्री को सिद्धाश्रम में स्थित किया।२९। धर्म का युद्ध-वेश साधु-सत्कार था। वेद और ब्रह्म महारथ के रूप में साकार हुए तथा विविध शास्त्रों के अन्वेषण ने धनुष का रूप धारण किया।३०। वेद के सात स्वर उसके रथ के अश्व हुए, ब्राह्मण

ब्रह्मा, शेष, गणेश, महेश, जिनेश, मुनीशों और योगीशों को भी प्रदान किया था। यह मेरी माया ही है जिसके प्रभाव से सब प्राणी संसार के सुखों को प्राप्त करके प्रसन्न होते रहते हैं और देह त्याग तथा कुटुम्ब-परिवार से छूटने का समय आता है तो विषाद करने लगते हैं। पर जो मेरा भक्त परमात्मा-तत्व को समझता होगा, मेरे भजन में लगा रहता होगा, इन्द्रियों को वश में रख कर मेरी उपासना करता होगा, निरन्तर मेरी सेवा में संलग्न होगा, वह सदैव परम पवित्र माना जायगा और कभी किसी कारण से दुःखी नहीं हो सकेगा। आप अच्छी तरह विश्वास करलो कि विश्व का नियन्ता मैं ही हूँ। मेरे भय से ही वायु चलती है, सूर्य और चन्द्रमा प्रतिदिन प्रकाशित होते हैं, इन्द्र समय पर वर्षा करते हैं, आग जलती है, मृत्यु सब जीवों को हटाती रहती है और वृक्ष समयानुसार पुष्प फल आदि धारण करते हैं।"

अहमात्मा च सर्वेशः सर्वज्ञानात्मकः स्मृतः।
मनो ब्रह्मा च प्रकृतिर्बुद्धिरूपा सनातनी ॥
प्राणा विष्णुश्चेतना सा यथा तु चाधि देवता।
मयिस्थिते स्थिताः सर्वे गतास्तेऽपि गते मयि ॥
अस्मादिभश्च बिना देहः सद्यः पतित निश्चितम्।
पाञ्चभूतो विनीनश्च पंचभूतेषु तत्क्षणम् ॥
एवं देहे प्रविष्टोऽहं न लिप्तः सर्व कर्मसु।
जीवन्मुक्तस्य मद्भक्तो जन्ममृत्युजराहरः ॥

"मैं सर्वेश्वर पूर्ण ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ। ब्रह्मा मन है, सनातनी प्रकृति बुद्धि है, प्राण विष्णु है, तथा चेतना उसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी है। शरीर में जब तक मैं चेतन आत्मा रूप से स्थित रहता हूँ, तभी तक वह भी स्थिर रहता है। मेरे चले जाने पर वे भी सब हट जाते हैं, क्योंकि सब मेरे ही रूप हैं। इन सबके चले जाने पर देह तत्काल निस्सार हो जाता है। जिन पंच भूतों से वह बना होता है वे भी समयानुसार अपने मूल तत्वों में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार मैं

समयादभयः क्रोधो भयं सुखमुपोययौ ।
निरयो मुदमासाद्य युयुधे विविधायुधैः ।३८।
आधिर्व्याधिं च व्याधिं क्षेमेण च बलीयसा ।
प्रश्रयेण तथा ग्लानिर्जरा स्मृतिमुपाह्वयत् ।३९।
एवं वृत्तो महाघोरो युद्धः परमदारुणः ।
तं द्रष्टुमागता देवा ब्रह्माद्याः स्वे विभूतिभिः ।४०।
मरुः शकांश्च काम्बोजैर्युयुधे भीमविक्रमः ।
देवापिः समरे चीनान्बर्बरांस्तद्गणानपि ।४१।
विशाखयूपभूपालः पुलिन्दैः श्वपचैः सह ।
युयुधे विविधैः शस्त्रैरस्त्रैर्दिव्यैर्महाप्रभैः ।४२।
कल्किः कोकविकोकाभ्यां वाहिनीभिर्वरायुधैः ।
तौ तु कोकविकोकौ च ब्रह्मणो वरदर्पितौ ।४३।

क्रोध के साथ अभय और भय के साथ सुख का युद्ध होने लगा। निरय ने प्रीति के पास जाकर उस पर शस्त्रों से प्रहार किये।३८। आधि ने रोग का, व्याधि ने क्षेम का, ग्लानि ने प्रश्रय का और जरा ने स्मृति का आह्वान होने लगा।३९। इस प्रकार अत्यन्त घोर एवं दारुण संग्राम उपस्थित हो गया। ब्रह्मादि देवगण अपनी-अपनी विभूतियों के सहित नभमण्डल में स्थित होकर युद्ध देखने लगे।४०। भीषण पराक्रमी शक और काम्बोजों के मरु का युद्ध हुआ। देवापि ने चीन और बर्बरों की सेना से संग्राम किया।४१। विशाखयूप नरेश पुलिन्द और श्वपचादि से महा पराक्रमी विविध अपने दिव्यास्त्रों के सहित भिड़े हुए थे।४२। कोक-विकोक के साथ स्वयं भगवान् कल्कि श्रेष्ठ अस्त्रशस्त्र लेकर सेना सहित युद्ध में तत्पर हुए। यह कोक-विकोक ब्रह्मा जी से वर प्राप्त करने के कारण अत्यन्त अहंकारी हो गए थे।४३।

भ्रातरौ दानवश्रेष्ठौ मत्तौ युद्धविशारदौ ।
एकरूपौ महासत्त्वौ देवानां भयवर्द्धनौ ।४४।
पदातिकौ गदाहस्तौ वज्राङ्गौ जयिनौ दिवाम् ।

आत्मा रूप से समस्त शरीर में व्याप्त रहता हूँ, पर उनके द्वारा किये जाने वाले कर्मों से निर्लिप्त रहता हूँ। मुझे इस रूप में जानने वाला मेरा भक्त जीवन्मुक्त होता है और उस पर जन्म-जरा, मृत्यु का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।"

विष्णु पुराण में अक्रूरजी का भगवद्दर्शन-

अक्रूरजी जब कंस की आज्ञा से कृष्ण और बलराम को वृन्दावन से लिवाकर मथुरा ला रहे थे तो मार्ग में सन्ध्या-वन्दन के निमित्त वे यमुना में स्नान करने को उतरे। वहाँ उनको शेष शैया पर भगवान कृष्ण के दर्शन हुये तो वे आश्चर्य चकित हो गये क्योंकि वे उसी समय उनको रथ पर बैठा हुआ छोड़ आये थे। फिर जब वे जल से बाहर आये तो उन्होंने दोनों भाइयों को उसी प्रकार बैठा पाया। जब दूसरी बार भी ऐसा ही दृश्य दिखलाई पड़ा तो वे भगवान कृष्ण के वास्तविक परात्पर रूप को पहिचान गये और स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—

नमो विज्ञान पाराया पराय प्रकृते प्रभो।
भूतात्मा नेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान्॥
आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पञ्चधा स्थितः।
प्रसीद सर्व सर्वात्मन् क्षराक्षरमयेश्वर।
ब्रह्माविष्णुशिवाख्याभिः कल्पना भिरुदीरितः॥
अनाख्येयस्वरूपात्मन्ननाख्येय प्रयोजनम्।
अनाख्येयाभिधान त्वां नतोऽस्मि परमेश्वर॥
न यत्र नाथ विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः।
तद् ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानज॥
न कल्पनामृतेऽर्थस्य सर्वस्याधिगमो यतः।
ततः कृष्णाच्युतानन्तविष्णु संज्ञा भिरीड्यते॥

"हे प्रभो! आप विज्ञान और प्रकृति से परे को नमस्कार है। आप एक ही भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, जीवात्मा और पर-

सप्तम अध्याय

एवं प्रवृत्ते संग्रामे धर्म परमकोपन ।
कृतेन सहितो वीर युयुधे कलिना सह ॥१॥
कलिर्दम्भशराघौघसंत्यापि कृतस्य च ।
पराभूत. पुरी प्रायात्त्यक्त्वा रासभवाहनम् ॥२॥
छिन्नभिन्नपेचकरथ स्रवद्रक्ताङ्गमन्वथ ।
छछुन्दरः नाशकालस्य स्त्रीस्वामिकमयाद्गृहम् ॥३॥
दम्भ सम्भोगरहितोद्धृतबाणगणाहत ।
व्याकुल स्वकुलाघातो लि मार प्राविशद्गृहम् ॥४॥
लोभ. प्रसादाभिहतो गदया भिन्नमस्तक: ।
सारमेयरथ छिन्न रथस्थानाद् शिर वमन् ॥५॥
अभयेन जित क्रोध. कषायीकृतलोचन. ।
गन्धासुवाह विच्छिन्न स्पर्शस्या विशमन शर: ॥६॥

सूत जी ने कहा— इस प्रकार भयंकर युद्ध होता देख कर सतयुग सहित धर्म ने परमक्रोधपूर्वक कलि से युद्ध प्रारम्भ किया ।१। तब धर्म और सतयुग की भीषण बाण वर्षा को न सह कर हारा हुआ कलि अपने वाहन गधे को वहीं छोड़ कर भागता हुआ अपनी पुरी में घुस गया ।२। उल्लू की ध्वजा वाला उसका रथ चकनाचूर हो गया । उसकी देह से रक्त बहने लगा, जिससे छछुन्दर की गन्ध निकल रही थी । मुख पर म्लानता छा गई थी । इस अवस्था को प्राप्त हुआ कलि अपनी स्वामिनी नारी के भवन में प्रविष्ट हुआ ।३। इस प्रकार बाण वर्षा से आहत एव व्याकुल हुआ कलि दम्भ सम्भोगादि से रहित होकर

आत्मा—इन पाँच रूपों में स्थित है। सर्वात्मन ! हे क्षर-अक्षरमय परमेश्वर ! आप एक ही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के रूपों में कल्पित किये जाते हैं। हे भगवान ! आपके नाम, रूप प्रयोजन—सभी अकथनीय हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ आप न हों। आप जाति आदि कल्पनाओं से परे नित्य, निर्विकार एवं अजन्मा परब्रह्म हैं। पर बिना किसी विधि के आपका दर्शन संभव न होने से ही लोग कृष्ण, अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामों से आपकी आराधना करते हैं।

सर्वार्थस्त्वमज विकल्पनाभिरेतै —
र्देवाद्यैर्भवति हि यैरनन्त विश्वम् ॥
विश्वात्मा त्वमिति विकारहीन मेत ।
त्सर्वस्मिन्न हि भवतोऽस्ति किञ्चिदन्यत् ॥
त्वं ब्रह्मा पशुपतिरर्यमा विधाता ।
धाता त्वं त्रिदशपतिस्समीरणोऽग्नि ॥
तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको ।
भिन्नार्थैर्जगदभिपासि शक्ति भेदैं ॥
विश्वं भवान्सृजति सूर्यगभस्तिरूपो ।
विश्वेश ते गुणमयोऽयमतः प्रपञ्च ॥
रूपं परं सदिति वाचकमक्षरं य—
ज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥

"हे अजन्मा ! जिन देवादि कल्पना वाले पदार्थों से यह संसार उत्पन्न हुआ है, वह आप ही हैं। आप ही विकारहीन आत्मावस्तु होने से विश्वात्मा हैं। इन सब में आपसे भिन्न कोई भी पदार्थ नहीं है। आप ही ब्रह्मा, पशुपति, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, समीर, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम के रूप में विभिन्न कार्यभेद के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का संचालन करते हैं। हे विश्वेश्वर ! आप ही सूर्य रश्मियों के रूप में होकर जगत की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार यह गुणमय सम्पूर्ण प्रपंच आपका ही स्वरूप है। जिसका वाचक मन्त्र है, वह प्रणव आपका

से अन्य सर्प के समान कर दिया ॥१०॥ अपने दिव्यास्त्रों के तेज से राजा मरु ने भी शक और कम्बोजों का संहार कर दिया तथा राजा देवापि ने चोल और बर्बरों को मृत्यु के घाट उतार दिया ॥११॥ महा-बली विशाखयूप नरेश ने अपने दिव्य बाणों के द्वारा पुलिन्द और पुक्कसों को नष्ट किया ॥१२॥

अथाग्निविमलप्रज्ञः खड्गपातेन भूरिशः ।
नानास्त्रशस्त्रवर्षैस्ते योधा नेमुलकथा ॥१३॥
कल्किः कोकविकोकाभ्यां गदापाणिर्युधां पतिः ।
युयुधे विस्मयाविष्टो लोकानां भयदं भयम् ॥१४॥
वृकासुरस्य पुत्रौ तौ नप्तारौ शकुनेर्हरः ।
तयोः कल्किः स युयुधे मधुकैटभयोर्यथा ॥१५॥
तयोर्गदा प्रहारेण चूर्णिताङ्गस्तु तटाले ।
कराच्च्युतायुधस्तद्भूमौ हरिर्वोच्चुरस्यहो यथा ॥१६॥
ततः पुनः कथा विष्णुर्जगत्त्राणमहाभुजः ।
मल्लकेन शिरस्तस्य विकोकस्याच्छिनत्प्रभुः ॥१७॥
मृतो विकोकः कोकस्य दर्शनादुत्थितो बली ।
तद्दृष्ट्वा विस्मिता देवाः कल्किश्च परवीरहा ॥१८॥

श्रेष्ठ बुद्धि वाले विशाखयूप-नरेश ने निरन्तर अपने खड्ग एवं अनेकानेक शस्त्रास्त्रों के द्वारा शत्रुओं को विनष्ट किया। इस प्रकार पर-पक्ष के बहुत सारे वीर मृत्यु को प्राप्त हुए ॥१३॥ गदा-युक्त कल्कि जी गदा लिये हुए ही कोक विकोक से संग्राम कर रहे थे, जिससे सब लोक भयभीत हो रहे थे ॥१४॥

ये दोनों भाई शकुनि के पौत्र और वृकासुर के पुत्र थे। पुरा-काल में जैसे विष्णु का मधु कैटभ से युद्ध हुआ था, वैसे ही इन दोनों के साथ कल्कि भी घोर संग्राम कर रहे थे ॥१५॥ तभी कोक-विकोक के गदाघात से कल्किजी का देह चूर्ण जैसा हो गया। उनके हाथ से गदा छूट गई। यह दृश्य सभी उपस्थित व्यक्ति आश्चर्य पूर्वक देख

ही रूप है। आपके उस ज्ञानात्मक सत्स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।"

'विष्णुपुराण' के प्रारम्भ में ही मैत्रेय के जिज्ञासा करने पर महर्षि पाराशर ने कहा था—

विष्णो सकाशादुद्भूतम् जगत्तत्रैव च
स्थितम् स्थिति संयमकर्ता सो जयमगतोऽस्य जगच्च सः ॥
अविकाराय शुद्धाय, नित्याय परमात्मने ।
सदैक रूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च ।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्त कारिणे ॥
एकानेक रूपाय स्थूल सूक्ष्मात्मने नमः ।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे-मुक्ति हेतवे ॥

"यह समस्त जगत भगवान विष्णु से ही उत्पन्न हुआ है और उन्हीं में स्थित है। इसकी स्थिति और संचालन के कर्ता वही हैं और वस्तुतः वे ही जगत रूप हैं। ऐसे विकाररहित, शुद्ध, तीनों काल में अविनाशी, परमात्मा, सर्वदा एक रूप, सर्व विजयी विष्णु ही हरि, हिरण्यगर्भ और शंकर के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन सृष्टि स्थिति और विनाश के कारण भगवान विष्णु को नमस्कार है। अनेकानेक स्वरूप, स्थूल, सूक्ष्ममय, कर्मकारणभूत, मुक्तिप्रदाता, समस्त जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय के मूलभूत जगतमय परमात्मा विष्णु को नमस्कार है।" भगवान कृष्ण को कहीं विष्णु का और कहीं विष्णु-ब्रह्मा-शिव आदि त्रिदेवों के भी उत्पत्तिकर्त्ता परब्रह्म का अवतार कहा गया है। वास्तव में विश्व की सर्वोच्च सत्ता चैतन्य-तत्त्व है। जो उसके मूल स्वरूप को समझ लेता है और उसी में स्थित हो जाता है उसे विष्णु, महाविष्णु परमात्मा सब कुछ कहा जा सकता है।

हरिवंश पुराण—

'हरिवंश पुराण' में भी कई स्थानों पर श्री कृष्ण जी के

कल्कि पर घोर प्रहार करने लगे ।२२। युद्ध में दुर्धर्ष कोक-विकोक कल्कि जी के घोड़ों के द्वारा किये गये आघात से अत्यन्त आहत होकर क्रोधित हो उठे और रथ एवं अश्व नष्ट करके कल्कि जी पर खोखलु आक्रमण में तत्पर हुए ।२३। तब कल्कि जी के अश्व ने अत्यन्त क्रोध पूर्वक कोक-विकोक के मुखमूल छिन्न कर दिये, उनकी भुजाओं की हड्डियाँ चूर्ण हो गईं । पशुपति की बाहुओं के सहित वह कट गिर गये । तब जैसे कोई शिशु गौ की पूंछ पकड़ लेता है, वैसे ही उन्होंने अश्व की पूंछ को पकड़ लिया ।२४।

धृतपुच्छौ तु तौ ज्ञात्वा कल्किः परमकोपनः ।
पश्चात्पदभ्यां हृदये जघ्ने तयोर्वक्षसि वज्रवत् ।२५।
ध्वस्तपुच्छौ मूर्च्छितौ तौ अस्ताग्रास्त्रकवचौ ।
पुनः कल्किमभ्येत्य समाहन्तौ रुषान्वितौ ।२६।
ततो ब्रह्मा समभ्येत्य कृताञ्जलिपुटः पुनः ।
प्रणम्य कल्किं देवानां धर्मार्थं वचमब्रवीत् ।२७।
कराघातादेकाले ह्यनयोर्निर्मितो वधः ।
उभयोरेकदा देव नोभयोरन्यथा क्वचित् ।
विभिन्नेऽपि पुनरनयोर्भवत्यनयोर्वधम् ।२८।
इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा कल्किस्तुरगवाहनः ।
ततो प्रहरतोः स्वैरं कल्किर्दोर्मध्ययोः क्रुधा ।
मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यां वमन्तौ विरसौ तयोः ।२९।
तौ तत्र भग्नमस्तिष्कौ महत्शृङ्गाविव ।
पेततुर्दिवि देवानां भयदौ भुवि बाधको ।३०।

जैसे ही उन्होंने अश्व की पूंछ पकड़ी वैसे ही अश्व ने अत्यन्त क्रोधित होकर अपने पिछले पैरों के द्वारा कोक-विकोक के वक्षस्थल में वज्र के समान प्रहार किये ।२५। जिससे वे दोनों राक्षस अश्व की पूंछ भी छोड़ कर पृथिवी पर गिरते हुए मूर्च्छित हो गए । परन्तु, उन्हें तुरन्त ही चेत हो गया और वे कल्कि जी को सामने देख कर युद्ध के

अवतारत्व का विशेष रूप से प्रतिपादन किया है और समस्त दैवी और पार्थिव शक्तियों का केन्द्र उन्हीं को बतलाया गया है। जब उन्होंने बाणासुर को मारने के लिये उस पर चढ़ाई की तब भगवान शंकर बाणासुर की तरफ से लड़ने को आये। दोनों में ऐसा भीषण युद्ध हुआ कि पृथ्वी भय से काँपने लगी और ब्रह्माजी की शरण में पहुँची। उसकी रक्षा के लिये ब्रह्माजी ने शिवजी के पास जाकर कहा—

"हे भगवान्! आपने स्वयं ही इस महादैत्य के निधन का उपाय किया था, फिर आप इसकी रक्षा को क्यों तत्पर हैं? श्रीकृष्ण तो आपकी ही आत्मा हैं, इसलिये उनके साथ युद्ध करना आपको शोभा नहीं देता।" यह सुनकर भगवान शंकर ने श्रीकृष्ण की देह में घुसकर तीनों लोकों के दर्शन किये। उस समय उन्होंने योगस्थ होकर अपने जृम्भास्त्र को निष्क्रिय देखा, फिर द्वारका में बाणासुर की मृत्यु विषयक अपने वर का भी स्मरण किया। तब ब्रह्माजी की बात मान कर वे कहने लगे—अब मैं श्रीकृष्ण से नहीं लड़ूँगा, अच्छा हो कि पृथ्वी का भार हलका हो जाय। अन्त में जब श्रीकृष्ण ने बाणासुर को पराजित करके मारना चाहा तो शंकर जी ने उसकी प्राण रक्षा का आग्रह करते हुये कहा—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो जाने त्वां पुरुषोत्तमम्।
मधु कैटभ हन्तारं देवदेव सनातनम्॥
लोकानां त्वं गतिर्देव त्वत्प्रसूतमिदं जगत्।
अजेयस्त्वं त्रिभिर्लोकैः ससुरासुर पन्नगै॥
तस्मात्संहर दिव्यं त्वमिदं चास्त्रं समुद्यतम्।
बाणस्यास्याभयं दत्तं मया केशिनिषूदनम्।
तन्मे न स्याद्वृथा वाक्यमतस्त्वां क्षामयाम्यहम्॥

"हे महाबाहो! हे पुरुषोत्तम! हे देवाधिदेव कृष्ण! आप ही मधुकैटभ को मारने वाले सनातन पुरुष हैं। आपही संसारी जीवों की एकमात्र गति हैं, और यह सम्पूर्ण विश्व आप से ही उत्पन्न हुआ है।

नृत्य-गान में तत्पर हुए तथा वेश्या, मुनिपत्नी, विद्याधर और चारणादि प्रसन्न हृदय से पुष्प बरसाने लगे ।३१। क्रोध-विशेष का प्रहार हुआ देख कर कवि ने उत्साह पूर्वक अपने और शत्रु-पक्ष के दस हजार महारथियों को नष्ट कर दिया ।३२। भाग्य के द्वारा एक लाख और तीस लाख और मुनक्का के द्वारा पचास रथी मृत्यु को प्राप्त हुए ।३३। इसी प्रकार गन्धर्व, यक्ष और विद्याधरादि में भी निषाद, म्लेच्छ और बर्बरों का क्रोध पूर्वक संहार कर दिया ।३४। इस प्रकार विजय को प्राप्त हुए कल्कि अपनी विशाल सेना के सहित युद्ध के निमित्त आगे बढ़े । उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे । शंख तत्पश्चात चारों ओर उनके कान्त-प्राय चल रहे थे । अनेक प्रकार के वाहन उस सेना में आ गये थे । सब ओर से कल्कि पर चमर ढोरे जा रहे थे ।३५-३६।

०००

इसलिये कोई देवता, दैत्य, मनुष्य अथवा अन्य प्राणी आपको परास्त नहीं कर सकता। अतः आप कृपा करके अपने अमोघ चक्र को रोक लें। हे केशव ! मैंने वाणासुर को अभय प्रदान किया हुआ है, इसलिये आप ऐसा करें जिससे मेरे वचनों की रक्षा हो सके।"

इसी प्रकार वाणासुर पर विजय प्राप्त करके वहाँ से लौटते समय उनका संघर्ष वरुण से हो गया। उस समय श्रीकृष्ण की शक्ति से अपनी सेना को नष्ट होते देख कर उसने कहा—

अजेय शाश्वतो देह स्वयम्भूभूतभावनः।
अक्षरश्च क्षरश्चैव भावाभावौ महाद्युते॥
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं त्वयाऽनघ नमोस्तुते।
आदिकर्त्तासि लोकानां त्वयैतद् बहुलीकृतम्॥
विक्रीडसि महादेव बाल क्रीडनकैरिव।
न ह्यहं प्रकृतिद्वेषी नाहं प्रकृति दूषकः॥
प्रकृतिर्या विकारेषु वर्त्तते पुरुषर्षभ।
तस्या विकार शमने वर्त्तसे त्वं महाद्युते॥
विकारो वा विकाराणां विकाराय न तेऽनघा।
तान धर्मविदो मन्दान्भवान्वि कुरुते सदा॥
परावरज्ञ सर्वज्ञ ऐश्वर्यविधिमास्थिति।
किं मोहयसि न सर्वान्प्रजापतिरिव स्वयम्॥

"हे भगवन् ! आप अजेय, शाश्वत, स्वयम्भू, भूतभावन, अक्षर-क्षर, भाव-अभाव हैं और आपही सर्वत्र व्याप्त है। हे एक से अनेक होने की सामर्थ्य रखने वाले परमात्मन् ! मैं तो आपसे रक्षा किये जाने का पात्र हूँ। हे लोकों के कर्त्ता जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है। जैसे बालक खिलौनों के साथ खेलते हैं वैसे ही आप इस विश्वरूपी खिलौने से खेलते रहते हैं, पर उसका तात्पर्य किसी की समझ में नहीं आता। जब प्रकृति में कोई महाविकार उत्पन्न हो जाता है, तो उसको दूर करने के निमित्त ही आपका अवतार होता है। उस समय

और सर्वान्तर्यामी हैं। आप उन पर प्रहार कैसे कर सकेंगे? ।५। मणिध्वज बोले—हे सुभान्ते! प्रजापति ब्रह्माजी ने जो धर्म निश्चित किया है, उसके अनुसार युद्धोन्मुख गुरु, शिष्य अथवा नारायण ही क्यों न हो, उन सब पर प्रहार करना चाहिए।६।

जीयतो राज्यभोगः स्यान्मृतः स्वर्गं प्रमोदते ।
युद्धे जयो वा मृत्युर्वा क्षत्रियाणां सुखावहः ।७।
देवत्वं भूपतित्वं वा विषयाविष्टकामिनाम् ।
उभयदाः भवेदेव न हरेः पादसेविनाम् ।८।
सेवकः स चापीशस्त्वं निष्कामः स चापदः ।
युवयोर्द्वन्द्वमिलनं कथं मोहाद्भविष्यति ।९।
द्वन्द्वं लोके यदि द्वन्द्वमीश्वरे सेवके तथा ।
देहावेशाल्लीलयैव सा सेवा स्यात्तथा मम ।१०।
देहावेशाद्देश्वरस्य कस्मात्तु दैहिका गुणः ।
मायान्तु यदि जायन्ते विषयास्ते न किं तथा ।११।
यथात्मा चात्मवेशस्य शरीरित्वे शरीरिता ।
सेवकस्याभेददृष्ट्यैव तन्मयत्वमोदयः ।१२।

यदि युद्ध भूमि में सन्मुख लौट आवे तो वह पश्चात् राज्य का भोगने वाला होता है और यदि मृत्यु हो जाय तो स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इस प्रकार क्षत्रियों के लिये विजय और मरण दोनों में ही सुख की उपलब्धि है।७। सुबान्धव ने कहा—हे नाथ! कामी अथवा विषयासक्त पुरुषों के लिए ही युद्ध में विजय पश्चात् राज्य के देने वाली और मृत्यु देवत्व प्रदान करने वाली होती है। परन्तु हरि-चरणों के सेवकों को उससे क्या प्रयोजन है? ।८। आप हरि-सेवक हैं। वह ईश्वर आप निष्काम को फल प्रदान नहीं करेंगे। तब आप दोनों में परस्पर युद्ध कैसे सम्भव है? ।९। मणिध्वज बोले—परम पुरुष परमात्मा तो सुख दुःख आदि सब द्वन्द्वों से परे हैं। परन्तु उनके देह धारण कर लेने पर उन ईश्वर और सेवक में युद्ध होने में तो उसे

मान की खोज करते हैं, उसकी उत्पत्ति केवल दुष्टों और अधार्मिकों का अच्छी तरह मर्दन करने के लिये ही होती है। हे सर्वज्ञ! आप अपने महान् दैवी ऐश्वर्य में स्थित होकर प्रजापति के समान हम सबको मोहित क्यों करते हैं?"

भरत ने अपने वक्तव्य में जो कुछ कहा वह शास्त्रों के इसी सिद्धान्त के आधार पर कहा गया है कि जब पृथ्वी पर दुष्ट लोगों का उत्थान होता है और वे धर्म तथा नीति का उल्लंघन करने लगते हैं, तभी भगवान अवतार लेकर उस स्थिति का सुधार करते हैं। यद्यपि उस समय वे भी सामान्य मनुष्यों की तरह ही युद्ध और संधि करते हैं, पर वस्तुतः उनका यह कार्य केवल एक खेल के समान ही होता है।



अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं ।।५।। सुमान्ता के यह विनम्र वचन सुन कर राजा के नेत्रों में दुर्बोध छा गये और वे अपने को परम वैष्णव मानते हुए भगवान् विष्णु का स्मरण करने लगे ।।६।। उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी को हृदय से लगा लिया और फिर अपने वीर वैष्णव सैनिकों के सहित विष्णु नाम का स्मरण करते हुए रण भूमि के लिये कूच किये ।।७।। उन्होंने कल्कि-सेना में प्रविष्ट होकर उसकी विशाल-सेना को क्षुब्ध कर दिया। उस समय महाबली अध्यः कर्णापत आयुधों से सुसज्जित हुए उनसे युद्ध में तत्पर हुए ।।८।।

शशिध्वजसुतः श्रीमान्सूर्यकेतुर्महाबलः ।
मरुभूपेन युयुधे वैष्णवो धन्विनां वरः ।।९।।
तस्यानुजो बृहत्केतुः कान्तः कोकिलनिःस्वनः ।
देवापिना स युयुधे गदायुद्ध विशारदः ।।१०।।
विशाखयूपस्तु नृपवत् शशिध्वजनृपेण च ।
रुधिराश्वो धनुर्धारी समुद्धत्त प्रतापवान् ।
रक्तमनेन स युधे मध्ये शान्तेन धन्विना ।।११।।
मूर्ध प्रअंधदायार्थवांश्वरथपत्तितोमरैः ।
भल्लैः खड्गैर्भुशुण्डीभिः कुन्तैः समभवद्रणः ।।१२।।
पताकाभिर्ध्वजैश्छत्रैः स्तोमैरुद्धमवासरे
अश्वपूतधूलिपटलैरन्धकारो महानभूत ।।१३।।

यह बली, धनुर्धारी एवं परम वैष्णव राजपुत्र सूर्य केतु राजा मरु से युद्ध करने लगा ।।९।। सूर्यकेतु का छोटा भाई बृहत्केतु कोकिल के समान मधुरवाणी वाला और अत्यन्त कमनीय होते हुए भी गदा युद्ध में पारंगत था, वह राजा देवापि के साथ संग्राम में तत्पर हुआ ।।१०।। हाथियों से सम्पन्न और विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित विशाखयूप-नरेश राजा शशिध्वज से युद्ध करने लगे ।।११।। श्याम अश्व पर आरोहण किये हुए हस्त लाघव सम्पन्न धनुर्धारी एवं प्रतापी पार्थ रुधिराश्व नृपति का धनुर्धारी शान्त से युद्ध में भिड गया ।।१२।। इस

चौथा अध्याय

अवतार के विषय में मतभेद

इस बात को तो सभी शास्त्र तथा विद्वान् स्वीकार करते हैं कि इस समस्त दृश्य जगत की संचालिका और प्रेरिका कोई अदृश्य और अव्यक्त शक्ति है, और संसार में जब कोई बहुत बड़ा परिवर्तन होता है, या मानवता की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तब उसी शक्ति के हस्तक्षेप से अन्त में उसका निवारण होता है। इस निवारण करने की क्रिया को कुछ लोग अदृश्य दैवी शक्तियों अथवा संसारव्यापी नवीन भावनाओं के रूप में अनुभव करते हैं और कुछ किसी 'महामानव' की लोकोत्तर नर-लीलाओं में उसका दर्शन करते हैं। फिर अवतारों की नरलीलाओं के मानने वाले उनका वर्णन अपनी मान्यताओं के अनुसार विभिन्न रीति से करते हैं। इससे सर्व साधारण को शंका उत्पन्न होती है कि ऐसी घटनाओं को निराकार परमात्मा की दैवी शक्तियों का परिणाम माना जाय या मनुष्य शरीर धारण करके सांसारिक रूप में जगत की व्यवस्था और संशोधन करने वाले 'अवतार' की लीलाएँ कहा जाय ?

इसी मतभेद और तरह-तरह के पृथक वर्णनों के कारण आलोचकों को इनका खण्डन करने का अवसर मिलता है और वे समस्त अवतार सिद्धान्त को ही काल्पनिक या असम्भव कह कर उसकी तरफ ध्यान न देने की प्रेरणा करने लगते हैं। हम भी अवतार सम्बन्धी विस्तृत वर्णनों को धार्मिक उपाख्यान ही मानते हैं, और उनमें वर्णित प्रत्येक घटना को अक्षरशः सत्य सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं समझते। पर इसका यह अर्थ नहीं कि संसार-संकट के अवसर पर परांशक्ति

धनुश्च नीत्वा देवापिर्मूर्ध्नि सूर्यध्वजोऽग्रहीत् ।
मुष्ट्या वज्रपातेन सोऽपतन्मूर्च्छितो भुवि ।
मूर्च्छितस्य रिपुः क्रोधात्सेनागणमताडयत् ॥४४॥
ददृशे च सर्वजनाभिरामं कल्किं पुरस्तादभिसूर्यवर्चसम्
श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणं ।
बृहद्भुजं चारुकिरीटभूषितम् ॥४५॥
नानामणिव्रातविताङ्गशोभया निरस्तलोकेक्षणहृत्तमोमयम्
विशाखयूपादिभिराश्रितं प्रभुं सत्येन धर्मेण कृतेन पूजितम् ॥४६

फिर उस घोर युद्ध में बृहत्केतु ने देवापि के घोड़े और सारथि को मार डाला। तब देवापि ने भी धनुष छोड़ कर शत्रु पर घूंसों का प्रहार किया ॥४२॥ फिर उसे दोनों भुजाओं से दबा कर मर्दन करने लगा। उस समय अट्ठाईस वर्षीय वह राजपुत्र बृहत्केतु पीड़ित होता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥४३॥ अपने छोटे भाई की ऐसी दशा देखकर सूर्यकेतु ने देवापि के मस्तक पर वज्र के समान मुष्टिका-प्रहार किया, इससे देवापि मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। तब शत्रु को मूर्च्छित जान कर सूर्यकेतु उसकी सेना पर प्रहार करने लगा ॥४४॥ इधर राजा शशिध्वज ने उस रणक्षेत्र में सूर्य के समान तेजोमय, श्यामाकार, कमलाक्ष, पीताम्बरधारी, विशाल भुजा वाले और सुरम्य किरीट से सुशोभित कल्किजी को अपने सामने देखा ॥४५॥ अनेक मणियों से सुसज्जित अङ्ग वाले, प्राणियों के नेत्रों और हृदयों के अन्धकार को नष्ट करने वाले कल्किजी के चारों ओर विशाखयूप नरेश जैसे अनेक राजागण नत-मस्तक खड़े हैं तथा सत्य और धर्म उनका पूजन कर रहे हैं ॥४६॥

पड़े अपने घर, वे भी और सोचने लगे कि मेरे दोनों पुत्रों को भी युद्ध में कोई भला जीत नहीं सकता है ॥१७॥

कल्किः सुराधिपपतिः पृथने विजित्य धर्मं कृतञ्च ।
निजवशमुपनीय । हृष्टोऽद्भुतपदधूतरजसुलक ।
धर्मात्मा गत्वा गृहं हरिगृहे ददृशे सुशान्ताम् ॥१८॥
दृष्ट्वा तस्याः मुखकलितमुग्ध चन्द्रबिम्बानन्तं मध्ये
मायाक्रोडे हरिगुणकथारतामथ आह राजा ।
देवाद्यानां विजयवचसा दाम्पते चन्द्रलाता ।
विहारस्थानं परिगणविधि म्लेच्छपाषण्डनाशम् ॥१९॥
कल्किः स्वयं हृदि समायातिहानोऽहा मूर्च्छितः
तेन तव सेवनोत्सवार्थम् । धर्मं कृतञ्च मम यशः
पुत्रे सुशान्ते ! कान्ते विलोकय गमनं सविधेऽहि ॥२०॥
इति नृपवचनमाविनोदपूर्णं हरिकृत धर्म यत् प्रहृष्य नाथ
मह निजसखिमिनन्दं रामा हरिगुणकीर्तनवर्तना विसज्ज

इस प्रकार देवराज इन्द्र के भी स्वामी कल्किजी को जय कर और धर्म तथा सत्युग को स्थापित करा कर राजा शशिध्वज प्रसन्न हृदय से सेनाओं का मर्दन करता हुआ अपने घर को गया और वहाँ उसने अपनी भार्या सुशान्ता को विष्णु मन्दिर में स्थित पाया ।१८। उसके चारों ओर कन्याएँ सखियाँ बैठ कर विष्णु गुण-गान में तन्मय थी। राजा ने सुशान्ता का सुन्दर मुख देखते हुए कहा—हे सुशान्ते ! देवताओं की प्रार्थना पर जो शम्भल ग्राम में अवतीर्ण हुए हैं और जिन्होंने विजय प्राप्त कर म्लेच्छों और पाखंडियों को नष्ट कर दिया है, वही हृदय में विहार करने वाले कल्कि भगवान अपनी माया द्वारा मूर्च्छा रूप से आवृत होकर तुम्हारी भक्ति की परीक्षा लेने के निमित्त यहाँ पधारे हैं। मेरी आँखों से यह धर्म और सत्युग दोनों देखे हुए हैं तुम इनका पूजन करो ।१९-२०। राजा के यह विनोदपूर्ण वचन सुन कर रानी बड़ी प्रसन्न हुई और धर्म तथा सत्युग के सहित कल्किजी को उसने प्रणाम किया। फिर अपनी लज्जा को छोड़ कर सखियों के सहित हरि नाम संकीर्तन और नृत्य करने में तत्पर हुई ।२१।

में श्री शिव जी के मुख से कहलाया है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई।
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम-जन्म कर हेतु॥

अर्थात् "भगवान का अवतार क्यों होता है इसको निश्चयपूर्वक कोई नहीं कह सकता। परमात्मा और उसकी क्रियाएँ मनुष्य की बुद्धि, मन और वाणी से परे की बात है, उसमें तर्क से काम नहीं चल सकता। तो भी शास्त्रों के मतानुसार यही कहा जा सकता है कि जब-जब धर्म पर आघात होता है, संसार में अहंकारी, दुष्ट लोगों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है और वे अनीतिपूर्वक सज्जन पुरुषों, गायों, ब्राह्मणों तथा पृथ्वी को कष्ट देने लगते हैं, तभी-तभी भगवान विभिन्न रूप धारण करके सज्जनों की विपत्ति को दूर करते हैं। उस अवसर पर भगवान दुष्टों का नाश कर फिर से देव-पुरुषों की स्थापना करते हैं और इस तरह से धर्म-नीति की मर्यादा को सुदृढ़ बनाते हैं। यही भगवान के अवतार का मुख्य हेतु है।'

इस वक्तव्य में 'शिवजी' ने अवतार का मूल स्वरूप बता दिया है कि जब कभी संसार में अनीति और अधर्म की अत्यधिक प्रबलता हो जाती है और आसुरिक शक्ति से मदान्ध दुष्ट प्रवृत्ति के व्यक्ति सात्विक वृत्ति के सज्जनों को आतंकित करने लगते हैं तभी परमात्म-शक्ति उसके सुधार की कोई योजना करती है। इस योजना का कर्त्ता 'अवतार' कहलाने लग जाता है। आगे चल कर उन्होंने दृष्टान्त रूप में इसके कुछ उदाहरण भी दिए हैं—

राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका।
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥

एकादश अध्याय

सभाजुस्ते समागत्य वैष्णवं तं शशिध्वजम् ।
मुनिभि कथिताशेष-भक्तिव्यासक्तविग्रहम् ॥१॥
सुशान्तास्य कृतेनापि धर्मेण विधिवृताम् । २॥
युवा नारायणास्यास्य कल्के: श्वसुरता गतौ ।
वय नृपा इमे लोका ऋषयो ब्राह्मणाश्च ये ॥३॥
प्रेक्ष्य भक्तिवितान वां हरे: विस्मितमानसा: ।
पृच्छामस्त्वामियं भक्ति: क्व लब्धा परमात्मन: ॥४॥
कस्य वा शिक्षिता राजन् ! किंवा नैसर्गिकी तव ।
श्रोतुमिच्छामहे राजन् ! त्रिजगज्जनपावनीम् ।
कथा भागवती त्वत्त: संसाराश्रमनाशिनीम् ॥५॥

सूतजी ने कहा—मुनियों के द्वारा अशेष कहे गए भक्तिमय देह वाले, विष्णु भक्त, धर्म और प्रभुत्व के साथ स्थित एवं रानी सुशान्ता के सहित श्रीमान् राजा शशिध्वज की ओर देखते हुए आगत राजा आदि व्यक्तियों ने कहा। १–२। राजागण बोले—अब आप साक्षात् नारायण के अवतार भगवान् कल्कि के श्वसुर-पद को प्राप्त हुए हैं। परन्तु हम सब राजागण, ऋषिगण और विप्रगण तथा अन्यान्य सभी उपस्थितजन आपकी भक्ति को ऐसे विस्तृत रूप में देख कर अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुए हैं। हम आपसे यह पूछते हैं कि परमात्मा की

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ॥
विप्र श्राप ने दुनउ भाई। तामस असुर देह तिन पाई॥
कनकसिपु और हाटक लोचन। जगत विदित सुरपति मदमोचन।
बिजई समर वीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुन मारा। जन प्रह्लाद सुजस बिस्तारा॥
भये निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभ करन रावन सुभट सुर बिजई जगजान॥
एकबार तिन्हके हित लागी। धरेउ शरीर भगत अनुरागी॥
कस्यप अदिति तहां पितुमाता। दशरथ कौशल्या बिख्याता॥
एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलधर सन सब हारे॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुन मुनि बरनी कबिन घनेरी॥

"इसके सिवाय भगवान के अवतार के और भी अनेक कारण हैं, जो एक से एक बढ़कर अत्यन्त विचित्र होते हैं। मैं उनमें से दो-एक का वर्णन यहाँ करता हूँ। जय और विजय नाम के भगवान के दो द्वारपाल थे। ऋषि ने उनको तामसी योनि में जाने का शाप दे दिया। इससे वे हिरण्याक्ष और हिरनाकुश के नाम वाले दो महावीर दैत्य बन गये, जिनके भय से इन्द्र भी अपना राज्य छोड़कर भाग गया। वे संसार-विजयी वीर थे। उनमें से हिरण्याक्ष को भगवान ने 'वाराह' अवतार धारण करके मारा। दूसरे हिरनाकुश को नष्ट करने के लिये उन्हें 'नरसिंह' रूप धारण करना पड़ा। ये दोनों दैत्य यहाँ मारे जाकर फिर से रावण और कुम्भकरण के रूप में राक्षस बने। उनसे भक्तों की रक्षा करने के लिये भगवान को फिर अवतार लेना पड़ा। इसबार उनके माता-पिता कस्यप और अदिति थे, जिन्होंने पृथ्वी पर दशरथ और कौशल्याके रूपमें जन्म लिया था। एक अन्य कल्पमें समस्त देवगण जलधर नामक दैत्य से हार कर बहुत दुःखी हो गये। तब भगवान ने बड़े कौशल से जलधर को मारा। वही जलधर दूसरे जन्म

प्रकृष्टानि देवास्त्वेषान्तु नामानि विदितान्युत ।
विष्णोः फलैकनाम्नस्य तान्येवान्यन्न विद्यते ।३७।
सेव्यः कृष्णः सेवकोऽहमन्ये तस्यात्ममूर्त्तयः ।
अविद्योपाधयो ज्ञानद्वदन्ति प्रभावदयः ।३८।
भक्तस्यापि हरौ द्वैतं सेव्यसेवकतत्तदा ।
नान्याद्विना समिन्द्रेव यत्र किञ्चन विद्यते ।३९।
भक्तः स्मरति तं विष्णुं तन्नामानि च गायति ।
तत्कर्माणि करोत्येव सदानन्दसुखोदय ।४०।

इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् वाणी, मन, बुद्धि और इन्द्रियों के सहित हृदय को ओंकार में समर्पित कर दे ।३६। स एवम् भूत परमेश्वर एवं अनन्त स्वरूप भगवान् विष्णु ये सब हैं। जो सब नाम आपको विदित हैं, वह भगवान् ओंकार के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।३७। भगवान् श्री कृष्ण सेव्य और मैं उनका सेवक हूँ तथा संसार भर के सभी प्राणी उन्हीं के मूर्त रूप हैं। ज्ञानियों का कहना है कि अविद्यारूपी कर्मादि के वश में पड़ कर ही यह सब उत्पन्न होते हैं ।३८। भक्तों के निमित्त सेव्य-सेवक भाव रूप द्वैत का आविर्भाव होता है। इस प्रकार ओंकार के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ।३९। उन्हीं भगवान् विष्णु का भक्त सदा स्मरण करता, नाम-गुणों का कथन तथा सभी कर्म उनके ही निमित्त किया करता है। इसी कारण उसके लिए आनन्द और सुख की उत्पत्ति होती है ।४०।

कृथत्युद्धतयत्रोति हसति प्रेति सन्मनाः ।
विलुण्ठत्यात्मविस्मृत्या न वेत्ति कियदन्तरम् ।४१।
एवंविधा भगवतो भक्तिरव्यभिचारिणी ।
पुनाति सहसा लोकान्सदेवासुरमानुषान् ।४२।
भक्तिः सा प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मसम्पत्प्रकाशिका ।
शिवविष्णुब्रह्मरूपा वेदाद्याता वरापि वा ।४३।
भक्ताः सत्त्वगुणाध्यासाद्वशेन्द्रियमानसाः ।

में रावण बना। उसको भगवान ने राम का अवतार ग्रहण करके युद्ध में मारा था। इस प्रकार भगवान के प्रत्येक अवतार की अलग-अलग कथा है, जिनका ऋषि मुनियों ने वर्णन किया है और उसे सुनकर कवियों ने उसका विस्तार करके बड़े-बड़े ग्रंथ रच डाले हैं।"

पुराणों में एक ही अवतार की कथा को विभिन्न रूपों में वर्णित है उसका कारण बतलाते हुये गोस्वामी जी ने एक नहीं अनेक स्थलों पर कहा है कि इस अन्तर का कारण अलग-अलग कल्पों से उनका सम्बन्ध होना है। संसार में बीच-बीच में स्वार्थ प्रधान मार्ग के अनुयायी दुष्टों का जोर बढ़ना और धर्म तथा नीति के नियमों का ह्रास हो जाना तो एक प्राकृतिक नियम-सा ही है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ तथा सामाजिक प्रणाली काल-प्रभाव से एकाध हजार वर्ष में विकृत तथा अनुपयोगी हो जाती है। पर जिनका लाभ उसी से होता है वह उसके सुधार अथवा परिवर्तन का विरोध करते हैं और इससे संसार में अन्याय तथा लड़ाई-झगड़े का बाजार गर्म हो जाता है। तब उस दूषित परिस्थिति का सुधार करने को भगवान का 'अवतार' होता है। यह सम्भव है कि भिन्न-भिन्न कल्पों में उन दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियों (दैत्यों) तथा 'अवतारों' के नाम भी कुछ और रहे हों, पर अब हम दस-बीस हजार वर्ष पुराने राजाओं और महान पुरुषों के नाम तथा परिचय आदि नहीं जानते और केवल अनुमान से ही थोड़ा बहुत काम चलाते हैं तो बहुत वर्ष पहले के 'कल्प' की घटनाओं का यथातथ्य वर्णन अथवा नामों आदि का उल्लेख कैसे सम्भव हो सकता है? इसलिये कवि एक प्रकृति के लोगों का वर्णन एक ही नाम से करने लगता है, और समझता है कि इससे कोई हानि नहीं हो सकती। लोग तो अन्याय के दमन और सज्जनता की रक्षा की कथा सुनकर शिक्षा ग्रहण करते हैं, नाम कुछ भी हो, उसका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ सकता।

रजोजुषः कर्मनराः हरिपूजापराः सदा ।
तन्नामानि प्रगायन्ति तद्गुणस्मरणोत्सुकाः ॥२१॥

राजा बोले—हे मुने ! गुरु वशिष्ठ के शापवश राजा निमि ने देह छोड़ा था। परन्तु उनके इस शापवश देह में वैराग्य की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? यज्ञ के अन्त में देवताओं ने उनको स्तुति करते हुए उस देह में प्रवेश करने की आज्ञा की, तब भी वे अपने छोड़े हुए देह में प्रविष्ट होने में सहमत न हुए, इसका क्या कारण था ? ॥१५॥ सुना जाता है कि निमि के शाप से गुरु वशिष्ठ ने देह त्याग कर पुनः देह को प्राप्त कर लिया। परन्तु, भक्त तो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, तब वह उस विमुक्तता को छोड़ कर अन्य किस प्रकार धारण करे ? ॥१६॥ इस प्रकार भगवद् माया के प्रपंच में ज्ञानीजन भी बचने को असमर्थ पाते हैं। क्योंकि वह माया इन्द्रजाल के समान समस्त लोक में विस्तीर्ण होती हुई लोगों को अमोहित करती रहती है ॥१७॥ वक्ता श्रेष्ठ [illegible] शाण्डिल्य उनके वचन सुन कर भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए बोले ॥१८॥ उन्होंने कहा—तीर्थ, क्षेत्रादि के योग को प्राप्त हुआ प्राणी अन्य जन्मान्तरों में भगवत्कृपा से साधु सङ्ग को पाता है और उसी साधु सङ्ग के प्रभाव से उसे ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं ॥१९॥ फिर वह सालोक्य पद को प्राप्त होकर हर्षित हृदय से हरि-भजन में तत्पर होता है। इस प्रकार भोग्य वस्तुओं का उपभोग करता हुआ वह मनुष्य लोक में भक्त हो जाता है ॥२०॥ रजोगुणी पुरुष अपने कर्म द्वारा सदा हरिपूजा-परायण रहते तथा उनके नाम और रूपादि का स्मरण करने में सदा उत्सुक रहते हैं ॥२१॥

अवतारानुकरणपर्वव्रतमहोत्सवाः ।
भगवद्भक्तिपूजाद्याः परमानन्दसम्प्लुताः ॥२२॥
अतो मोक्षं न वाञ्छन्ति दृष्टमुक्तिफलोदयाः ।
भुक्त्वाऽऽलभन्ते जन्मानि हरिभावरसात्मकाः ॥२३॥

निर्गुण और सगुण का विवाद निरर्थक है—

इसी प्रसंग में पार्वती जी के यह प्रश्न करने पर कि निर्गुण, निराकार परमात्मा मनुष्य शरीरधारी अवतार कैसे बन सकता है, शिवजी ने उसका समाधान इस प्रकार किया है—

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे।
जल हिम उपल बिलग नहि जैसे॥

इस प्रकार अवतार सम्बन्धी अधिकांश शंकाओं तथा भ्रमों का निराकरण प्राचीन 'अवतारवादी' विद्वानों ने स्वयं ही कर दिया है और इस गूढ़ विषय को जहाँ तक बन सका है स्पष्ट और बोधगम्य भी बना दिया है। पर कठिनाई यही है कि लोग उनकी रचनाओं को भी निष्पक्ष भाव से, मूल तथ्य को समझने की चेष्टा करते हुये नहीं पढ़ते। अन्ध श्रद्धा वाले तो बिना सोचे-समझे प्रत्येक सम्भव-असम्भव, रूपक-अलंकारयुक्त बात को भी ज्यों का त्यों अक्षरशः मानने में ही 'धर्म' मानते हैं, और विरोधी या खण्डनात्मक मनोवृत्ति वाले उसके वास्तविक आशय और उद्देश्य को ठुकरा कर इधर-उधर के दो-चार वाक्य ऐसे ढूँढ़ते हैं, जिनका 'अनर्थ' करके वे उस पर दोषारोपण कर सकें। पाठक देखेंगे कि हमने भागवत, रामायण, महाभारत और विविध पुराण ग्रंथों से ही ऐसे कथन प्रस्तुत किये हैं, जिनसे अवतार की युक्तियुक्त स्थिति सबकी समझ में आ सकती है। भक्त शिरोमणि गो० तुलसीदास जी भी यह कहते हैं कि मनुष्य की क्या चलाई देवगण भी भगवान के 'अवतार' का निश्चित कारण और रहस्य नहीं समझ सकते। पर मुनि और ऋषियों ने इस सम्बन्ध में अपनी विशद बुद्धि से अनुमान करके जो कुछ बतलाया है उसी के आधार पर विद्वान् कवियों और लेखकों ने कवि-कल्पना और लेखन

चतुर्दश अध्याय

ततः कल्किर्महातेजाः श्वशुरं तं शशिध्वजम् ।
समामन्त्र्य वचश्चित्रैः सह भूपैर्ययौ हरिः ।१।
शशिध्वजो वरं लब्ध्वा यथाकामं महेश्वरीम् ।
स्तुत्वा मायां त्यक्तमायः सप्रियः प्रययौ वनम् ।२।
कल्किः सेनागणैः सार्द्धं प्रययौ काञ्चनीं पुरीम् ।
गिरिदुर्गावृतां गुप्तां भोगिभिर्विषवर्षिभिः ।३।
विदार्य दुर्गं सगणः कल्किः परपुरञ्जयः ।
छित्वा विषायुधान्व्यालांस्तां पुरीं ददृशेऽच्युतः ।४।
मणिकाञ्चनचित्राढ्यां नागकन्यागणावृताम् ।
हरिच्चन्दनवृक्षाढ्यां मनुजैः परिवर्जिताम् ।५।

सूतजी बोले—फिर अत्यन्त तेज वाले कल्किजी ने अपने अद्भुत वचनों के द्वारा अपने श्वसुर राजा शशिध्वज को सन्तुष्ट किया और राजाओं के सहित उठ कर चले गये ।१। राजा शशिध्वज भी इच्छानुसार वर प्राप्त करके, महेश्वरी माया का स्तव करते हुए अपनी पत्नी सहित विषय-बन्धन से मुक्त होकर वन को गये ।२। इधर कल्किजी ने पर्वत रूपी दुर्ग से आवृत काञ्चनीपुरी को प्रस्थान किया इस पुरी की रक्षा विष-वर्षक सर्प करते हैं ।३। शत्रुओं के पुर के विजेता कल्किजी अपनी सेना सहित आगे बढ़े और उस कठिन दुर्ग को तोड़ कर तथा विष वर्षक सर्पों को मार कर पुरी में प्रविष्ट हुए ।४। वहाँ उन्होंने देखा कि वह नगरी सर्वत्र मणियों और स्वर्ण से युक्त है तथा सब ओर नाग

कला के अनुसार उनके अनेकानेक चरित्रों की लोक कल्याणार्थ रचना की है—तो इससे बढ़कर स्पष्ट वक्तव्य और क्या हो सकता है ?

हम यह जानते है कि सभी पुराणों में और रामायण में भी अवतारों के सम्बन्ध में ऐसे अनेक कथा-प्रसंग लिखे गये हैं, जिनका 'चमत्कार' के सिवाय और कोई उद्देश्य नहीं और उनके प्रत्येक कार्य और शक्ति का वर्णन भी प्रायः बहुत बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है। इससे अनेक स्थानों में एक समझदार पाठक को 'निराधार गप्पें' लिख मारने का अनुभव होता है और ऐसी रचनाओं के प्रति उसके मन में 'दुर्भाव' उत्पन्न हो जाता है। यह स्थिति खेदजनक अवश्य है, पर इसका उत्तरदायित्व अधिकांश में मूल लेखकों पर न होकर उन कथा-वाचकों तथा प्रचारकों पर है जिन्होंने अपने किसी लाभ की दृष्टि से अथवा निम्न श्रेणी के श्रोताओं का मनोरंजन करने के उद्देश्य से उनमें प्रक्षिप्त अंश सम्मिलित कर दिये हैं। यह हानिकारक प्रवृत्ति केवल पुराणों तक ही सीमित नहीं है, वरन् हिंदू धर्म के अन्य अनेक शास्त्रों में भी परिलक्षित होती है। अन्य धर्मों के प्रधान ग्रंथ भी इससे अछूते नहीं कहे जा सकते। पर उनकी संख्या अत्यल्प होने से उनमें इतनी अधिक 'मिलावट' नहीं की जा सकी है।

कबीरदास जी का अवतार-सिद्धांत—

महात्मा कबीरदास का भारतवर्ष के मध्यकालीन तथा आधुनिक धार्मिक-इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। उनके धर्म-सिद्धांतों में निर्गुण परमात्मा की उपासना का उपदेश दिया गया है और अन्ध-विश्वास पर आधारित अनेक प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों का भी उन्होंने खण्डन किया है। 'सन्त-मत' के आदि प्रवर्तक वे ही हैं और नानक, दादू, रैदास, प्राणनाथ आदि सन्तों से लेकर वर्तमान राधास्वामी सम्प्रदाय तक का मूल स्रोत किसी न किसी रूप में कबीरसाहब की शिक्षाएँ ही हैं। वे एक कट्टर निर्गुणोपासक की दृष्टि से सगुण अवतारों की उपासना का समर्थन नहीं कर सकते थे, पर ईश्वरीय-शक्ति और

संसारेऽस्मिन् नमन्तोऽसिरहशोऽस्तदेहा
लोका भूपाः कति कति गता मृत्युमत्युग्रवीर्याः ।
साहं दीनासुरसुरनरैश्चापि प्रेमहीना
ते नेत्राम्बुदवरसुधाप्लाविता त्वां नमामि ॥११॥
यथाहं विषसङ्घातदीना यथामृतेक्षणमञ्जुम ।
अपेक्षितं न्याय्यहीनायाः केनाहो तपसा कृतः ॥१२॥
कासि कन्यासि सुश्रोणि कस्मादेषा गतिस्तव ।
दृष्टिः मा कर्मणा केन विषनेत्रा समाभवत् ॥१३॥
चित्ररथोऽस्य भार्याहं गन्धर्वस्य महामते ।
सुलोचनेति विख्याता पत्युरत्यन्तकामदा ॥१४॥
एकदाहं विमानेन पत्या पीठेन सङ्गता ।
गन्धमादनकुञ्जेषु रेमे कामकलाकुला ॥१५॥

विषकन्या ने कहा—इस संसार में अत्यन्त पराक्रमी अनेक राजागण तथा अन्यान्य मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। इस विष से अत्यन्त दुःखित हूँ। देवता, दैत्य और मनुष्य किसी के साथ भी मेरा परिणय सम्भव नहीं है। मैं आपके अमृत के समान दृष्टि प्रवाह से भरती हुई आपको नमस्कार कर रही हूँ॥११॥ मैं मन्द भाग्य वाली और विष-दृष्टि से युक्त हूँ और आपकी दृष्टि अमृतमयी है। मैं किस तपस्या के प्रभाव से आपका दर्शन प्राप्त कर सकी हूँ॥१२॥ कल्किजी ने कहा—हे सुश्रोणि! तुम कौन हो किसकी कन्या हो? तुम इस अवस्था को किस प्रकार प्राप्त हुई हो? किस कर्म-दोष से तुम्हें यह विष दृष्टि मिली है॥१३॥ विषकन्या ने कहा—हे महामते! चित्ररथ नामक जो गन्धर्व हैं मैं उनकी पत्नी सुलोचना हूँ। मेरे द्वारा मेरे पति का मन अत्यन्त आनन्दित रहता था॥१४॥ एक समय की बात है—जब मैं अपने पति के साथ विमानारूढ़ होकर गन्धमादन पर्वत के एक कुञ्ज में शिला पर बैठ कर विहार-रत हो गई॥१५॥

तत्र यक्षमुनिं दृष्ट्वा विकृताकारमातुरम्।१६।
रूपयौवनगर्वेण कटाक्षेणाहसं मदात् ॥१७॥

जीवात्मा के विकास क्रम को ध्यान में रखते हुये सिद्धान्त रूप से 'अवतार' को उन्होंने भी माना है। उन्होंने कहा है—

एक राम है सब से न्यारा। एक राम ने जगत पसारा॥
एक राम घट-घट में बोले। एक राम अवतारी डोले॥
जासु कृपा भव दुख मिट जाही। सद्गुरु एक राम रघुराई॥

कबीरदास जी ने परमात्मा की चैतन्य-सत्ता के विकास और विस्तार के पाँच दर्जे बतलाये हैं। आरम्भ में उसका स्वरूप सर्वथा अव्यक्त और अज्ञेय होता है। उसके लिये कोई ठीक नाम या रूप बतला सकना सम्भव नहीं होता। उसी को शास्त्रों में निराकार, निर्गुण 'परब्रह्म' बतलाया गया। फिर जब उस अव्यक्त शक्ति में सृष्टि रचना की प्रवृत्ति प्रारम्भ होती है तो वह ऐसे रूप में आ जाती है जिसके कार्य और रूप का अनुमान मानव-बुद्धि कर सकती है। शास्त्रकारों ने उसे 'ईश्वर' कहा है, जो सृष्टि का कर्त्ता माना जाता है। उससे आगे चलकर वह 'एकोऽहम् बहुस्याम्' के सिद्धान्त के अनुसार असंख्य जीवात्माओं के रूप में प्रकट होता है और उससे प्राणी-जगत की रचना प्रारम्भ हो जाती है। इस विकास-क्रम में जो जीवात्मा अपने कर्मों द्वारा विशेषरूप से उन्नति कर लेता है और विकास के सर्वोच्च शिखर पर जा पहुँचता है वह जीवनमुक्त होकर अन्य जीवात्माओं के लिये मार्ग-दर्शक बन जाता है और 'अवतार' की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त अन्य जीवनमुक्त आत्मायें भी, जो अपनी शक्तियों को लोक कल्याण के लिये अर्पण कर देती हैं, सद्गुरु या महान सन्तों के रूप में माननीय होती हैं। यद्यपि चैतन्य-सत्ता के इन पाँचों विभागों में शक्ति और कर्मों की निगाह से बड़ा भेद है, पर ये सब एक ही श्रेणी में गिने जा सकते हैं और अन्त में कभी न कभी एक ही स्थान पर मिल जाते हैं।

सारा स्तव को सुनो ।१। शुकदेव जी बोले —विष्णु भक्त महाराज धर्ति-ध्वज ने जब अपने अस्पाटकवर को छोड़ कर संसार से विमुख होने के उद्देश्य से माया-स्तव किया ।२। धर्मध्वज बोले—हे, ह्रींकार मयी, शब्दसार रूपिणी, विमुक्ता मायादेवी ! आप ब्रह्मादि देवताओं की जननी हैं। वेद भी आपकी महिमा का बखान करते हैं। समस्त भुवन और उनमें आपकी कोख में स्थित रहते हैं। आप देव, गन्धर्व और सिद्धगणों से वन्दित, सूक्ष्म स्वरूप तथा स्वाहा रूपिणी हैं, मैं आपको वन्दना करता हूं ।२।

लोकातीता द्वैतभूता समीडे भूतैर्भव्या व्यापसामानिकार्थं ।
विद्वद्गीता कालकल्लोललोला लीलापाङ्गक्षिप्तसंसारदुर्गाम् ।३।
पूर्णां प्राप्या द्वैतलभ्या शरण्यामाद्ये शेषे मध्यतो या विभाति
नानारूपैर्देवतिर्यङ्मनुष्यैस्तामाधारां ब्रह्मरूपां नमामि ।७।
यस्या भासा त्रिजगद्भाति भूतैर्न भात्येतत्तदभावे विधातु ।
कालोद्देककर्मे बोधायथो ये तस्यां मायां तां विशिष्टां नमामि
भूमौ गन्धो रसताप्सु प्रतिष्ठा रूप तेजस्येव वायौ स्पृशत्वम् ।
खे शब्दो वा यच्चिदाभाति नाना
मतास्मैतां विश्वरूपां नमामि ।६।
सावित्री त्वं ब्रह्मरूपा भवानी भूतेशस्य श्रीपतेः श्रीस्वरूपा ।
शचीशक्रस्यापि नाकेश्वरस्य पत्नी श्रेष्ठा भासि माये जगत्सु

आप लोकों से परे, द्वैतभूता, सबका तथा सामादि ऋषियों के द्वारा वन्दिता हैं। भगवान् विष्णु भी आपका सेवन करते हैं। आप काल को लहरों में लहराती रहती हैं। सभी लोग आपकी विलास लीला में पड़े हैं। ऐसी आप संसार दुर्ग से तारने वाली को नमस्कार करता हूं ।३। सृष्टि के आदि, मध्य और लय काल में आप ही स्थित रहती हैं। आप सब की आधारभूता को पूर्ण भाव या द्वैतभाव से ही पाया जा सकता है। देवता, तिर्यक् और मनुष्यादि योनियों में आप ही स्थित होकर प्रकाशित हैं। आप संसार की आधारभूता एवं ब्रह्म-

गीता और अवतारवाद—

'गीता' को अधिकांश लोग व्यावहारिक वेदान्त तथा दर्शन-शास्त्र की एक रचना मानते हैं। वैसे भी उसको 'ब्रह्म विद्या शास्त्र' कहा गया है, जिसका आशय अध्यात्म-ज्ञान तथा उसके अनुकूल व्यवहार से है। यद्यपि 'गीता' मुख्य रूप से अवतार-सिद्धान्त का प्रतिपादन करने या किसी अवतार का चरित्र वर्णन करने के उद्देश्य से नहीं लिखी गयी है, तो भी उसके वक्ता भगवान कृष्ण हैं और उन्होंने अपनी विशेष शक्तियों से ही अर्जुन को प्रभावित किया था। इसलिये उसमें अवतार-वाद की चर्चा अनिवार्य रूप से आगई है और जो कुछ कहा गया है, वह बड़े प्रामाणिक रूप में कहा गया है।

चौथे अध्याय के प्रारम्भ में ही भगवान कृष्ण ने यह कहा है कि "इस अनासक्त कर्मयोग का उपदेश सर्व प्रथम मैंने सूर्य को दिया था। सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। उनके द्वारा यह परम्परागत रूप से राजर्षियों में प्रचलित रहा।" इस पर शंका करके अर्जुन ने पूछा कि "आप ने इस योग का उपदेश सूर्य को कैसे दिया होगा? क्यों कि आपका जन्म तो अभी हुआ है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है।" इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

"हे अर्जुन मेरा जन्म प्राकृत (सामान्य) मनुष्यों की तरह नहीं होता। मैं अविनाशी स्वरूप, अजन्मा होने पर भी, तथा सब सांसारिक प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को आधीन करके योग-माया से प्रकट होता हूँ। इसलिये मेरा जन्म और कर्म दिव्य अथवा अलौकिक है। इस बात को जो पुरुष तत्त्वपूर्वक समझ लेता है, वह भव-बन्धन से छुटकारा पाजाता है।"

गत्वा भवनं शुक्रं प्राह शर्मिष्ठया कृतम् ।
तच्छ्रुत्वा कुपितं विप्रं वृषपर्वाह सान्त्वयन् ॥११॥
दण्डयं मां दण्डय विभो कोपो यद्यस्ति ते मयि ।
शर्मिष्ठां वाप्यपकृतां कुरु यन्मनसेप्सितम् ॥१२॥
राजानं प्रणतं पादे पितुर्दृष्ट्वा यथाब्रवीत् ।
देवयानी स्थिता कन्या मम दासी भवत्विति ॥१३॥
तथाऽमानीय तदा राजा दास्ये तां विनियुज्य सः ।
ययौ निजगृहं ज्ञानी दैवं परमकं स्मरन् ॥१४॥
ततः शुक्रस्तमामीय ययाति प्रतिलोमकम् ।
तस्मै ददौ तां विधिवद्देवयानीं तया सह ॥१५॥

इधर देवयानी ने अपने घर पहुँच कर शुक्राचार्यजी को शर्मिष्ठा की सब करतूत सुनाई, जिससे वे अत्यन्त क्रोधित हुए। तब दैत्यराज वृषपर्वा ने उन्हें सान्त्वना दी ।११। वह बोला—हे विभो ! यदि आप मुझ पर कुपित हों तो मुझे दण्ड दीजिए अथवा अपकार करने वाली शर्मिष्ठा को दण्ड देना चाहें तो उसे दण्डित करिये ।१२। दैत्येश्वर वृषपर्वा को अपने पिता के चरणों में पड़ा हुआ देख कर देवयानी ने उससे कहा—हे राजन् आपकी पुत्री शर्मिष्ठा मेरी दासी बने ।१३। यह सुन कर दैवगति को प्रबल मानते हुए दैत्यराज ने शर्मिष्ठा को बुला कर उसे देवयानी की दासी बना दिया और फिर अपने घर को चला गया ।१४। फिर शुक्राचार्य ने राजा ययाति को विधि विधान सहित अपनी पुत्री देवयानी का कन्यादान कर दिया। उसके साथ उसकी दासी शर्मिष्ठा भी प्रदान कर दी गई ।१५।

तदा प्राह नृपं विप्रोऽप्येना राजसुतां यदि ।
शयने ह्वयसे सद्यो जरा त्वामुपभोक्ष्यति ॥१६॥
शुक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा राजा तां वरवर्णिनीम् ।
गृहस्था स्थापयामास देवयान्यनुगां प्रियाम् ॥१७॥
सा शर्मिष्ठा राजपुत्री दुःखशोकभयाकुला ।

थियोसोफी की संस्थापिका मैडम ब्लैवटस्की ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सीक्रेट डाक्टरिन' (गुप्त रहस्य) में लिखा है कि संसार में जन्म तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम जन्म सामान्य जीवात्माओं का सृष्टि विकास क्रम के अनुसार होता है। दूसरा जीवन्मुक्त आत्माओं को जन्म होता है जो वे अपनी इच्छा से किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये लेते हैं। और तीसरा जन्म भगवान के अवतारों का होता है, जो यद्यपि सब लोगों को सामान्य मनुष्यों के समान ही जान पड़ता है, पर जिसे वे अपनी योगमाया के प्रभाव से ग्रहण करके ठीक अवसर पर कहीं भी प्रकट होजाते हैं। 'गीता' में भगवान का कथन इसी तथ्य की पुष्टि करने वाला है। यद्यपि 'भागवत' और 'हरिवंश' के अनुसार अनेक पटरानी और रानियों से विवाह करके बहुसंख्यक पुत्र उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्ण चन्द्र महाराज घोर संसारी जीव जान पड़ते हैं, पर साथ ही आवश्यकता पड़ने पर वे भक्तों की रक्षा और दुष्टों के नाश के लिये ऐसी अलौकिक शक्ति भी दिखलाते हैं जो अन्य नर तन धारी के लिये संभव नहीं। इसी लिये वे एक बार नहीं बार-बार अर्जुन को अपनी ईश्वरीय सत्ता का विश्वास दिलाते रहे और परिचय देते रहे। सातवें अध्याय में उन्होंने कहा है कि यद्यपि लोग अपने अज्ञान के कारण मेरे अविनाशी स्वरूप को नहीं समझ पाते पर जो व्यक्ति श्रद्धा और भक्ति पूर्वक मेरा आश्रय ग्रहण करते हैं मैं सदा उनका कल्याण करता हूं।

अन्तवत्तु फलं तेषाम् तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यते माम बुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

"जो अल्प बुद्धि लोग सांसारिक लाभ की आशा से विभिन्न

पाद्यमध्वश्रमहरं शीतलं सुमनोहरम् ।
परमानन्दजनकं गृहाण परमेश्वर ।२१।

उन्होंने वेदी पर अष्टदल कमल बनाया और वेदी के चार कोणों में कलशों युत स्थापित किये ।२२। खम्भों से बने हुए मण्डप में एक स्वर्ण निर्मित आसन पर भगवान् वासुदेवकी विविध रत्नाभूषणोंसे भूषित प्रतिमा प्रतिष्ठित की ।२३। उन्होंने पुरुष सूक्त का पाठ करते हुए विविध सुगन्धों से युक्त जल, पञ्चामृत, पञ्चगव्य आदि सिद्ध किया और ब्राह्मणों के द्वारा उच्चारण किये हुए मन्त्र से भद्रपीठा सिंहासन कर्णिका पर भगवान् श्रीवासुदेव को विराजमान किया। फिर षोडश पञ्च अथवा दश उपचारों से उनका पूजन किया ।२३-२४। हे परमेश्वर ! आपका श्रम दूर करने के निमित्त यह परमानन्द का देने वाला सुन्दर पाद्य निवेदित है। इसे स्वीकार कीजिये ।२५।

दूर्वाचन्दनगन्धाढ्यमर्घ्यं युक्तं प्रयत्नतः ।
गृहाण रुक्मिणीनाथ प्रसन्नस्य मम प्रभो ।२६।
नानातीर्थोद्भवं वारि सुगन्धि सुमनोहरम् ।
गृहाणाचमनीयं त्वं श्रीनिवास श्रिया सह ।२७।
नानाकुसुमगन्धाढ्यं सुवासितमुत्तमम् ।
वस्त्रं शोभाकरं चारु माल्यं नव सुरेश्वर ।२८।
तन्तुसन्तानसञ्चाररचित बन्धन हरे ।
गृहाणावरणं सूक्ष्मं निरावरण सन्निधि ।२९।
मधुपर्कमिदं देव ! प्रजापतिविनिर्मितम् ।
गृहाण वासुदेव त्वं रुक्मिण्या रमया सह ।३०।

हे रुक्मिणी नाथ ? हे वासुदेव प्रभो ! दूर्वा से युक्त यह चन्दन-चर्चित अर्घ्य यत्न पूर्वक स्थापित किया है, इसे प्रसन्न होकर स्वीकार कीजिये ।२६। हे श्रीनिवास ! यह अनेक तीर्थों का पवित्र जल ग्रहीत है। आप इस सुरम्य जलको आचमनीय द्वारा लक्ष्मी के सहित ग्रहण कीजिये ।२७। हे सुरेश्वर ! यह माला अनेक प्रकार के पुष्पों से निर्मित

देवताओं की उपासना किया करते है, वे स्थाई लाभ प्राप्त नही कर सकते क्योंकि संसार त्यागने पर वे उन्ही देवताओं के लोकमे जाते हैं, जहां से फिर वापस आना पड़ता है। पर भगवान के भक्त उनके पास जाकर सदैव को मुक्त हो जाते हैं। ऐसे मूढ़ लोग मेरे 'भगवान' के श्रेष्ठ उत्तमोत्तम और अव्यय रूप को न जानकर मुझे व्यक्त रूप मे अर्थात् मनुष्य ही मानते हैं। मैं भी अपनी योगमाया से आच्छादित रह कर सबको अपना वास्तविक रूप नही दिखाता, इससे मूढ़ लोग यह नही जान पाते कि मैं अजन्मा और अव्यय हूं।"

इसमे भगवान कृष्ण ने अर्जुन के सामने अपने ईश्वरत्व को प्रकट करते हुए कहा है कि मैं अनधिकारी लोगो के सामने अपने वास्तविक अविनाशी और अनन्त रूप को प्रकट नही करता। इससे वे मुझे सामान्य मनुष्यो की तरह जन्म-मरण और पाप-पुण्य मे बँधा हुआ मानते रहते है। ऐसे लोग समझते हैं कि भगवान की भक्ति से तो केवल मोक्ष ही प्राप्त हो सकती है। सांसारिक वैभव, अधिकार, शक्ति देने का कार्य तो अन्य देवताओं का है। इस लिये वे उन्ही की उपासना मे लग जाते हैं। अगर वे सच्चे हृदय से उपासना करते है तो उसका फल भी उनको मिलता है। पर चूँकि वे देवगण स्वयं अस्थाई है, इसलिये उन सबके पास घूम फिर कर मनुष्य को भगवान के पास ही आना पड़ता है और उन्ही की श्रद्धाभक्ति द्वारा अपने जीवन को सार्थक बनाना पड़ता है। वैसे सामान्यता भगवान की उपासना मूर्ति आदि की पूजा जप, ध्यान आदि के द्वारा ही की जाती है, पर जो लोग सौभाग्य से किसी 'अवतार' के युग मे जन्म लेकर उसका सान्निध्य प्राप्त कर लेते है वे तो भवसागर से तर ही जाते हैं। जीवन्मुक्त महात्माओ की कृपा का भी ऐसा ही फल होता है, क्योंकि वे भगवान को प्राप्त कर चुके होते है और इस लिये अन्य जीवात्माओं का मार्ग-दर्शन करके उन्हे भी लक्ष्य तक पहुंचा सकते हैं बडे या छोटे (पूर्ण अपूर्ण) अवतारो का यह महत्व संसार के कल्याण की दृष्टि साधारण नही है।

अष्टदश अध्याय

एतद्वः कथितं विप्रा यत् त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अतः परं कल्किकृतं कर्मं शृणुत द्विजाः ॥१॥
शम्भले वसतस्तस्य सहस्रपरिवत्सराः ।
व्यतीताः भ्रातृपुत्रस्वज्ञातिसम्बन्धिभिः सह ॥२॥
शम्भले शुशुभे यत्रो सभापणकचत्वरैः ।
पताकाध्वजचित्राढ्यै यथेन्द्रस्यामरावती ॥३॥
यत्राष्टषष्टितीर्थानां सम्भवः शम्भलेऽभवत् ।
मृत्योर्मोक्ष स्थितो कल्केरकस्य पदाश्रयात् ॥४॥
वनोपवनसन्तानानां कुसुम सकुलैः ।
शोभितं शम्भल ग्राम मन्ये मोक्षपद भुवि ॥५॥

सूतजी बोले— हे ब्राह्मणो ! तीनों लोक में प्रसिद्ध इस चरित्रको मैंने आपके प्रति कहा है। इसके पश्चात् कल्किजी ने जो कार्य किये थे, उन्हें कहता हूं, सुनिये ।१। इस प्रकार कल्किजी अपने भाई, पुत्र, बान्धव और स्वजनों के साथ एक हजार वर्ष तक शम्भल ग्राम में निवास करते रहे ।२। उस समय वह शम्भल पुरी ध्वजा-पताकादि से विभूषित हुई जिस प्रकार इन्द्र की अमरावती के समान शोभायमान प्रतीत होती थी ।३। शम्भल ग्राम में जब अड़सठ तीर्थ एकत्रित हो गए थे निष्कलंक कल्किजी की महिमा से शम्भल ग्राम में मृत्यु होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती थी ।४। वहां के वन-उपवन आदि अनेक प्रकार के सुन्दर पुष्पों

नौवें अध्याय में भगवान ने यह स्पष्ट किया है कि यद्यपि मैं समस्त जड भूतो, सांसारिक पदार्थो को उत्पन्न करता हूँ, उनका पालन-पोषण भी करता हूँ फिर भी अपनी योगमाया के प्रभाव से अपनी आत्मा को उन भूतों से सदैव पृथक ही रखता हूँ–

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूत भावनः ॥५
यथाकाश स्थितो नित्यं वायु सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६
सर्व भूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्प क्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात ॥८
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

"मेरी योग सामर्थ्य का यह चमत्कार है कि मेरी आत्मा उन भूतों को उत्पन्न करती है, उनका पालन भी करती है पर उनमें सर्वथा पृथक रहती है। जिसप्रकार वायु सर्वत्र बहती हुई आकाश में ही रहती है, उसी प्रकार समस्त भूत सदैव मेरे भीतर ही रहते हैं। वे सृष्टि रचना के समय विभिन्न पदार्थों का रूप धारण करते हैं, पर अन्त में सब मेरी प्रकृति में ही आ मिलते हैं। प्रत्येक कल्प के आरम्भ में मैं इसीप्रकार उनका निर्माण करता हूँ। पर यह कार्य मैं स्वयं नहीं करता, वरन अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृति द्वारा ही सब काम कराता हूँ। इस प्रकार यह जगत का बनना-बिगड़ना सदैव चलता रहता है।"

भगवान का यह कथन है कि समस्त भूत मेरे भीतर हैं, पर मैं उनसे सर्वथा पृथक रहता हूँ, एक पहेली की तरह जान पड़ता है इसमें पाठक को एक विरोधाभास [redacted] प्रसंग दिखाई पड़ता है। पर परमात्मा का विषय ही ऐसा है कि मानव बुद्धि कभी उसको ठीक रूप में ग्रहण

में यह भगवान् श्रीहरि के मुख से निसृत होकर इस प्रकार से विस्तार को प्राप्त हुआ है ।२८।

फिर इस पुराण को ब्राह्मण रूप से पृथिवी पर अवतरित होकर भगवान् वेदव्यासजी ने कहा । इसमें कल्कि स्वरूप भगवान् विष्णु के अत्यन्त अद्भुत प्रभाव का वर्णन किया गया है ।२९। सभी पुराणों के सार रूप [illegible] कल्कि पुराण का जो व्यक्ति भगवान् विष्णु के भक्ति भाव से युक्त होकर किसी आश्रम या पुण्यक्षेत्र में स्थित होकर यथा भूषणों द्वारा ब्राह्मणों का सत्कार करते हुए तथा उन्हें गौ, वस्त्र, भूमि आदि धन दान देते हुए श्रवण अथवा कीर्तन करेंगे उनको अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति हो जायगी ।३०।

श्रुत्वा विधान विधिवद्ब्राह्मणो वेद पारग ।
क्षत्रियो भूपतिर्वैश्यो धनी शूद्रो महान्भवेत् ।३१।
पुत्रार्थी लभते पुत्र धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्या पठनाच्छ्रवणादपि ।३२।
इत्येतत्पुण्यमाख्यानं लोमहर्षणजो मुनिः ।
श्रावयित्वा मुनीन्सर्वान् ययौ तीर्थाटनादृतः ।३३।
शौनको मुनिभिः सार्द्धं श्रुत्वा सत्कथयाथवित् ।
पुण्यारण्ये हरिं ध्यात्वा ब्रह्म प्राप महर्षिभिः ।३४।
लोमहर्षणजं सर्वपुराणज्ञ यतव्रतम् ।
व्यासशिष्य मुनिवर त सूत प्रणमाम्यहम् ।३५।

इस पुराण के विधि पूर्वक श्रवण करने वाला ब्राह्मण वेद में पारंगत होता है, क्षत्रिय को राज्य की प्राप्ति होती है, वैश्य धनी और शूद्र महान् हो जाता है ।३१। यदि पुत्र की कामना से इसका श्रवण करे तो पुत्र-प्राप्ति, धन की इच्छा वाले को धन प्राप्त और विद्या के अभिलाषियों को विद्या की प्राप्ति होती है ।३२। लोमहर्षणसुत मुनिवर सूतजी ने भक्ति भाव सहित यह पुण्य आख्यान शौनकादि मुनियों को सुनाया

नहीं कर सकती, न उसका निश्चयात्मक रूप से वर्णन कर सकती है। इसका विवेचन करते हुए लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' में लिखा है—

"उपनिषदों में परमात्मा का स्वरूप अव्यक्त माना है और उसे तीन प्रकार का बतलाया है अर्थात् सगुण, सगुण-निर्गुण और अन्त में केवल निर्गुण। अब प्रश्न यह है कि अव्यक्त और श्रेष्ठ स्वरूप के उक्त तीन परस्पर विरोधी रूपों का मेल किस तरह मिलाया जाय? यह कहा जा सकता है कि इन तीनों में जो सगुण-निर्गुण अर्थात् उभयात्मक रूप है, वह सगुण से निर्गुण (अथवा अज्ञेय) में जाने की सीढ़ी या साधन है। क्योंकि, पहले सगुण रूप का ज्ञान होने पर ही धीरे-धीरे एक एक गुण का त्याग करने से निर्गुण स्वरूप का अनुभव हो सकता है, और इसी वृत्ति से ब्रह्म-प्रतीक की चढ़ती हुई उपासना उपनिषदों में बतलाई गई है। उदाहरणार्थ 'तैत्तिरीय उपनिषद' में वरुण ने भृगु को यही उपदेश दिया कि 'अन्न ही ब्रह्म है' फिर क्रम से प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द इन ब्रह्म रूपों का ज्ञान उसे करा दिया। दूसरी बात यह भी है कि गुण-बोधक विशेषणों से निर्गुण रूप का वर्णन करना असम्भव है, अतएव परस्पर-विरोधी विशेषणों से ही वर्णन करना पड़ता है।

"इसका कारण यह है कि जब हम किसी एक वस्तु के सम्बन्ध में 'दूर' या 'सत्' शब्दों का प्रयोग करते है तब हमें किसी दूसरी वस्तु के 'समीप' या 'असत्' होने का भी अप्रत्यक्ष रूप से बोध हो जाया करता है। परन्तु यदि एक ही ब्रह्म सर्वव्यापी है तो परमेश्वर को 'दूर या सत्' कह कर 'समीप या असत्' और किसी दूसरी वस्तु को कहे? ऐसी अवस्था में दूर नहीं समीप नहीं "सत् नहीं असत् नहीं" इस प्रकार के परस्पर विरुद्ध विशेषणों की भाषा का ही उपयोग करना पड़ता है।"

यही सिद्धान्त स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने 'गीता' में प्रतिपादित किया है—

बहिरन्तश्च भूतानाम चरं चरमेव च ।
सूक्ष्म त्वात्तदविज्ञेय दूरस्थं चान्तिके चतत् ॥

"वह परमात्मा सब भूतों के भीतर और बाहर भी है, अचर है चर भी है, सूक्ष्म होने के कारण वह जानने में नहीं आता, और दूर होकर भी समीप है।" 'विष्णु-पुराण' के अन्त में भी भगवान की इन परस्पर विरोधी जान पड़ने वाली विशेषताओं का उल्लेख मिलता है—

तस्यैव योऽनु गुणभुग्बहुधैक एव
शुद्धो ऽ प्यशुद्ध इव भाति हि मूर्तिभेदैः ।
ज्ञानान्वितः सकलसत्वविभूति कर्ता
तस्मै नमोऽस्तु पुरुषाय सदाव्ययाय ॥

"जो ईश्वर के सदृश ही विशेषताओं से सम्पन्न है, एक होकर भी अनेक रूप है, शुद्ध होकर भी अनेक रूपों के कारण अशुद्ध 'विकारवान जैसे' प्रतीत होते हैं, जो ज्ञानस्वरूप और समस्त तत्वों और विभूतियों के कर्ता हैं, उस नित्य 'अविनाशी' तथा अव्यय पुरुष को नमस्कार है।"

जो व्यक्ति इस परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण को समझ लेता है और यह विश्वास कर लेता है कि जब भगवान को 'सर्व शक्तिमान' कहा जाता है तो उसके लिये निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में विश्व की व्यवस्था कर सकना असम्भव नहीं, वे 'अवतार' के तत्व को भी सहज में हृदयगम कर सकते हैं। वास्तव में मानव बुद्धि और ज्ञान अभी जहाँ तक विकसित हो सका है, उसके आधार पर परब्रह्म के स्वरूप का समझ सकना अथवा उसके कार्यों के गलत अथवा सही होने का फैसला कर डालना अबुद्धिमत्ता का प्रमाण है। इस लिये यदि कोई राम, कृष्ण कल्कि आदि को पूर्ण परमात्मा का अवतार मानता है और दूसरा उनको आत्म विकास के सर्वोपरि पर शिखर पर पहुँची हुई जीवात्मा ही बतलाता है, तो इस पर झगड़ना व्यर्थ की बात है। सभी जीवात्मा परमात्मा के अंश माने गये हैं। "ईश्वर अंश जीव अविनाशी" 'रामायण'

के अनुसार जो जीवात्मा अपने पुरुषार्थ से अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच जाता है उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रहता। इसलिये 'अवतारों' को चाहे किसी ऊपर के लोक से स्वेच्छापूर्वक 'धर्म रक्षार्थ' आई हुई दैवी आत्मा माना जाय और चाहे जीवन्मुक्त अवस्था को पहुँची हुई कोई आत्मा उससे तत्वतः कोई अन्तर नहीं पड़ता। ये दोनों एक ही परमात्मा के अत्यन्त विकसित अंश हैं, जो चाहें तो अपने को बिना किसी भूल के 'परमात्मा' कह सकते हैं क्योंकि वे परमात्मा में से ही प्रकट हुए हैं और उसी में जब चाहेंगे चले जायेंगे। उनमें और साधारण जीवात्माओं में यही अन्तर होता है कि जीवात्मा स्वेच्छापूर्वक चाहे जहां नहीं जा सकते, वरन् कर्म बन्धनों में बंधे रहने के कारण उनको विवश होकर बार-बार जन्म मरण के चक्र में भ्रमण करते रहना पड़ता है। वे भी उद्योग करके 'अवतारों' के समान जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं, पर यह केवल सुन लेने या समझ लेने की चीज नहीं। जो वास्तव में उतना ऊँचा परमार्थ, त्याग, तप कर सकेगा और संसार के सर्वोच्च ज्ञान को प्राप्त करलेगा, वही एक या अनेक जन्मों के प्रयत्न से उस स्थिति को पहुँच सकेगा।

इस सम्बन्ध में हम एक विचित्र अवस्था आजकल अपने देश में देख रहे हैं। एक तरफ तो नवशिक्षित कहलाने वाले अवतार आदि को 'गपोड़ा' अथवा अन्धविश्वास के सिवाय और कुछ मानने को तैयार नहीं और दूसरी तरफ कुछ लोग आत्मा, परमात्मा, कर्म-फल तप,जीवन्मुक्ति आदि की बातों को पढ़ या सुनकर, अपने भीतर कुछ अनुभव करने लगते हैं, और थोड़ा जप, तप या किसी प्रकार का योग साधन करके अपने को दैवी-पुरुष-अवतार समझने, कहने लगजाते हैं। वे अपने को स्वयं इस रूप में प्रकट करते हैं और उनके सहयोगी भी, कुछ अन्धश्रद्धा से और कुछ किसी स्वार्थ-भाव के कारण इसका प्रचार करने लगजाते हैं। ऐसे एक नहीं बहुसंख्यक व्यक्ति इस समय हमारे देश में मौजूद हैं और प्रत्येक को हजार-दो हजार या कुछ सौ

अनुयायी भिन्न हो जाते हैं, जिनसे वे मिथ्या प्रचार करके हिंदू-समाज के धार्मिक वातावरण को दूषित बनाते हैं। पर यह एक अलग ही समस्या है, जिस पर किसी अगले अध्याय में विचार करेंगे।

गीता के अवतार सिद्धान्त की विशेषता

'गीता' में भगवान कृष्ण ने अपने भगवत्स्वरूप का जो उल्लेख स्थान-स्थान पर किया है, उसका ध्यानपूर्वक मनन और विश्लेषण करने पर अन्यग्रंथों की अपेक्षा उसमें एक विशेषता यह जान पड़ती है कि उनका मुख्य उद्देश्य अपने को भगवान का अवतार घोषित करना नहीं है, वरन् अर्जुन को 'ब्रह्मविद्या' (अध्यात्म शास्त्र) का मर्म समझाने के लिये वे अपने को ईश्वरीय-शक्ति के प्रतीक रूप में उपस्थित कर रहे हैं। उन्होंने अनेक स्थानों पर इस तरह के उद्गार प्रकट करते हुए एक स्थान में अपने को ईश्वर या अवतार के रूप में प्रकट किया है और दूसरे में परमात्मा की शक्ति का चित्र रूप में उल्लेख किया है। उदाहरण के लिये गीता का उपदेश समाप्त हो जाने पर १८ वें अध्याय के अन्त में उन्होंने अर्जुन से कहा है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५
सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥५७

"साधक को भक्ति के प्रभाव से मेरा तात्त्विक ज्ञान होजाता है। कि मैं जितना हूँ और कौन हूँ ? इस प्रकार मेरी तात्त्विक पहिचान होजाने पर वह मुझ में ही प्रवेश करता है और उस अवस्था में मेरा ही आश्रय लेकर, सब कर्म करते रहने पर भी मेरे अनुग्रह से उसे शाश्वत एवं अव्यय स्थान प्राप्त होता है। इसलिये हे अर्जुन! तू हृदय से सब कर्मों को मेरे में अर्पण करके मेरे परायण हुआ, समत्वबुद्धि रूप

निष्काम कर्मयोग को अवलम्बन करके निरन्तर मुझ में चित्त रखने वाला होता।"

इस प्रकार अपनी ईश्वरीय सत्ता को बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रकट करके उसी प्रसंग में पृथक भाव से भी ईश्वरत्व का उल्लेख करने लगते हैं

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥६१
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

"क्योंकि हे अर्जुन! शरीर रूप यंत्र में आरूढ हुए संपूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत प्राणियों के हृदय में स्थित रहता है। इसलिये हे भारत! सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को प्राप्त होकर उनकी कृपा से परम शान्ति और सनातन परम धाम को प्राप्त करो।".

इस प्रकार एक बार अपने को कर्ता बताकर दूसरी बार मानव-हृदय में स्थित 'ईश्वर' का उल्लेख करना यह प्रकट करता है कि श्री कृष्ण का आशय अपने ईश्वर होने पर जोर देना नहीं है, वरन् वे अर्जुन के सम्मुख नाटक में एक पात्र के समान 'ईश्वरत्व' का पार्ट अदा करके उसे अपने कथन का अर्थ भली भाँति समझा देना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त जब वेदान्त-शास्त्र निश्चित रूप से जीव के ब्रह्म होने का प्रतिपादन करता है और प्रत्येक मनुष्य के लिये 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा करता है, तो श्रीकृष्ण जैसे महाज्ञानी और योगीश्वर को यदि भगवान कहा जाय तो इसमें अनुचित क्या है? वे तो स्वयं अन्य जीवों से अपनी तुलना करते हुए अपनी यही विशेषता मानते हैं कि वे आत्मा और परमात्मा के वास्तविक रहस्यों को जान गये हैं जब कि अन्य लोग उसे नहीं जानते।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥

अर्थात् 'हे अर्जुन ! मेरे और तेरे भी बहुत से जन्म हो चुके हैं, परन्तु हे धनञ्जय उन सब को तू नहीं जानता और मैं जानता हूँ।"

इस कथन से यदि यह तात्पर्य निकाला जाय कि भगवान श्रीकृष्ण स्वयं अपने को भी मानव-श्रेणी में रखते थे और अपने ईश्वर-भाव को दैवी-सत्ता का विषय प्रभावशाली ढंग से प्रतिपादन करने के निमित्त ही प्रकट करते थे, तो यह सर्वथा अनुपयुक्त नहीं है। यों तो 'भागवत' 'महाभारत, 'हरिवंश' 'ब्रह्मवैवर्त' 'विष्णु पुराण' आदि में उनके चरित्र की घटनाओं में से अनेक आक्षेप योग्य बतलाई जा सकती हैं, पर श्रद्धालु भक्तगण उनका कारण 'भगवान की नर लीला' बतला कर मामला खत्म कर देते हैं। यदि हम 'अवतार' का आशय किसी 'महा मानव' या 'अति मानव' के स्वरूप अथवा उसकी विशेष विचार धारा को कार्य रूप में परिणित करने को ही (शाब्दिक 'अवतार') मानें तो फिर इस में बुद्धिवादी लोगों को भी कोई विरोध नहीं हो सकता। हम भगवान कृष्ण को सर्वोपरि दैवी सत्ता को मानने से इन्कार नहीं करते, पर हमने ऊपर 'अवतार-समस्या' का जो एक नया पहलू रखा है, वह भी 'अवतार का' एक रूप हो सकता है। संसार में तो कहीं न कहीं एकाध कठिन और भयंकर समस्या सदैव उत्पन्न होती ही रहती है, और उसका निवारण किसी नए आन्दोलन नई विचारधारा को प्रचारित करने से ही हो सकता है। ऐसी प्रभावशाली विचारधारा ईश्वर की प्रेरणा से ही उत्पन्न हो सकती और चारों तरफ फैल सकती है। इस लिए यदि उसे ही ईश्वर का एक 'भाव अवतार' कहा जाय तो इसमें कुछ अनुचित नहीं।

गीता का मनन करने से यह प्रकट होता है कि उसका मूल उद्देश्य मनुष्य को कर्त्तव्य परायण बनाना है, और उसका यह कर्त्तव्य पालन का भाव इतना सुदृढ़ होना चाहिये कि उसकी पूर्ति में वह सुख-दुःख हानि-लाभ, यश-अपयश और सगे सम्बन्धियों तक का ख्याल न करे।

भगवान कृष्ण का कहना था कि यह सिद्धान्त ईश्वरीय विधान के अनुकूल है, और इसपर चलकर मनुष्य सांसारिक जीवन व्यतीत करता हुआ भी मोक्ष और जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त कर सकता है। उनकी यह 'निष्काम कर्म' विचारधारा हजारों वर्षों से स्थिर है और इससे न मालूम कितने मनुष्यों का उद्धार हो चुका है। आज भी संसार भर में गीता' का जो आदर और प्रचार है, उससे यह विदित होता है कि यदि बहुसंख्यक व्यक्ति नहीं तो कुछ चुनी हुई आत्मायें अवश्य उससे प्रभावित होकर मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर हो रही होंगी। ऐसी सशक्त विचार-धारायें जो पाँच हजार वर्षों से जन-मानस पर अधिकार जमाए हुए हैं 'ईश्वरीय सत्ता का प्रकटीकरण' ही मानी जा सकती है।

अवतार के सम्बन्ध में सब से बुद्धिमत्त घोषणा भगवान कृष्ण ने गीता में ही की है कि "जब कभी 'धर्म' पर संकट आता है 'अधर्म' का उत्थान होने लगता है तभी उसका निराकरण करने को दैवी-सत्ता का प्रकटीकरण होता है।" यह विचारधारा इतनी स्वाभाविक और सुदृढ़ सिद्ध हुई है कि प्रत्येक विद्वान और धर्मशास्त्र ने इसको अपना लिया है। इस घोषणा में यह नहीं कहा गया है कि भगवद्-शक्ति अवश्यमेव मानवाकार और किसी व्यक्ति विशेष के रूप में ही प्रकट होगी। ईश्वर सर्व शक्तिमान और घट-घट व्यापी है, वह अपना उद्देश्य अनेक प्रकार से पूरा कर सकता है। जब गीता (१८।६१) के अनुसार ही ईश्वर प्रत्येक नर तन धारी के हृदय-देश में प्रतिष्ठित है और उसे निरन्तर भ्रमाता रहता है, तो वह किसी एक या अनेक व्यक्तियों को समयानुकूल प्रेरणा देकर ही महान कार्यों की पूर्ति करा सकता है। इसलिये गीता के अनुयाइयों को 'अवतार वाद' के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं विस्तृत रखना चाहिये [illegible] रूप अवतार' की तरह भाव रूप ईश्वरावतार के सिद्धान्त [illegible] सर्वथा बुद्धिसंगत और शास्त्रानुकूल मानना चाहिये।

कल्कि पुराण के अवतार वर्णन पर एक दृष्टि

'कल्कि-पुराण' के रचयिता ने भगवान कल्कि के प्रादुर्भाव का वर्णन बहुत सीधे-सादे ढंग से 'प्राचीन शैली' पर कर दिया है, कि "जब कलियुग में पाप बहुत बढ़ गये और धर्म कार्यों के बन्द हो जाने से देवगण कष्ट पाने लगे तब वे अपनी दुरवस्था का निवारण करने के लिये ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित हुए। ब्रह्माजी सब को लेकर विष्णु भगवान की सभा में उपस्थित हुए। भगवान ने धर्म की हानि होते देखकर अवतार लेना स्वीकार किया और 'शम्भल' ग्राम में विष्णुयशविप्र की भार्या के गर्भ में प्रविष्ट होगये, और यथा समय जन्म लेकर अपने लीला कार्य को सम्पन्न करने लगे।"

इस वर्णन में कोई नई बात नहीं है। अन्य सब पुराणों और रामायण आदि में यही अधिक विस्तार से साहित्यिक ढंग से वर्णन किया गया है। कल्कि पुराण का अवतार अपेक्षाकृत बहुत छोटा है, इसलिये उसमें दस-बीस श्लोकों में ही इस वर्णन को निपटा दिया है। तो भी उसमें दो-चार बातें ऐसी हैं जिन से कल्कि भगवान का जन्म लौकिक के बजाय दैवी सिद्ध हो सकता है। कल्कि भगवान का जन्म होने पर उनके प्रारम्भिक संस्कार कैसे सम्पन्न हुए इस सम्बन्ध में कहा गया है—

धातृमाता महाषष्ठो नाभिच्छेत्री तदम्बिका।
गंगोदक क्लेदमोक्षा सावित्री मार्जनोद्यता ॥
तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधा उपाहरत् सुधाम्।
मातृका माङ्गल्य वच कृष्णजन्मदिने यथा ॥

अर्थात्—"कल्कि भगवान के जन्म लेने पर भगवती महाषष्ठी ने धायी (दाई) का कार्य किया, अम्बिका देवी ने नाल काटा, भगवती भगीरथी ने अपने जल से गर्भक्लेद (शिशु के शरीर में लगे रक्त आदि) को दूर किया, और सावित्री देवी उनका मार्जन करने लगी। भगवान कृष्ण के जन्म के अवसर की भाँति भगवान कल्कि के

जन्म लेने पर भगवती यमुनाजी में दुग्ध धारा प्रवाहित की और मातृका भवानी ने मंगल गीत गाये।"

यह वर्णन लौकिक नहीं, अलौकिक ही कहा जा सकता है। वैसे यह तो हर शास्त्र में कह दिया गया है कि भगवान के अवतार रूप में जन्म ग्रहण करने का रहस्य कोई जान नहीं सकता। इसी प्रसंग में यह भी लिखा है कि 'उसी अवसर पर जब भगवान का नाम करण संस्कार किया जाने लगा तो उनके दर्शन के निमित्त परशुराम जी, कृपाचार्य, व्यासमुनि एवं द्रोणाचार्य-पुत्र अश्वत्थामा भिक्षुक भेष धारण करके वहाँ आये।' इस प्रकार के वर्णन स्थूल जगत की अपेक्षा सूक्ष्म-जगत अथवा दैवी-जगत के लिये अधिक उपयुक्त जान पड़ते हैं। कल्कि-पुराण के रचयिता ने श्री कल्कि के प्रकट होने का वर्णन परम्परागत रूप में कर दिया है। पर समस्त पुराण के कथानक पर ध्यान देने से कल्कि-भगवान का प्राकट्य व्यक्तिगत रूप में मानने की अपेक्षा भाव-रूप में मानना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। वैसे जब कभी धर्म और अधर्म के विरोधी पक्षों में संघर्ष प्रकट रूप में और विशाल परिमाण में होगा तो धर्म रक्षाय अग्रसर होने वालों में एक या दो-चार व्यक्ति भी प्रमुख हो सकते हैं, उनमें से किसी एक का आत्मोत्सर्ग और बलिदान सर्वोपरि भी माना जा सकता है, पर ज्ञानी जन इसको बहुत अधिक महत्व देना अनावश्यक बतलाते हैं। ऐसे संघर्ष में महत्व की वस्तु वह सिद्धान्त या विचार धारा ही होती है। जिससे प्रेरित होकर उसके सुयोग्य और शक्तिशाली व्यक्तित्व सांसारिक स्वार्थ को त्याग कर पारमार्थिक उद्देश्य के लिये धर्म के निरत उठ खड़े होते हैं, और इस कार्य की पूर्ति के लिये किसी भी त्याग या बलिदान को करने से पीछे पैर नहीं हटावें।

इसी प्रकार जब श्री कल्कि भगवान के पुनः वैकुण्ठ जाने का वर्णन किया है तो कहा गया है कि भगवान तो वास्तव में निराकार और रूपविहीन थे। संसार के प्राणियों को उनका जो रूप दिखाई दिया

वह उनकी माया की शक्ति ही थी—

तुष्टुवुर्मुमुहुः सर्वे लोकाः स्थावरजङ्गमाः ।
इति विष्णुयशःपुत्रे निर्याते वैष्णवं पदम् ॥

अर्थात् "जब भगवान कल्कि ने इस जगत को त्याग कर विष्णु-पद में प्रवेश किया तो उन अक्षय विष्णु भगवान के रूप दर्शन कर समस्त स्थावर और जंगम प्राणी मोहित होकर स्तुति करने लगे।"

अवतार के सम्बन्ध में निराकार ब्रह्म के साकार रूप में प्रकट होने की समस्या सदा से विवादास्पद रही है। इसी कारण निराकार-वादी और वेदान्ती विचारों वाले किसी अवतार को साक्षात् परमात्मा के रूप का स्वीकार नहीं करते, वरन् विशेष दैवी शक्ति से सम्पन्न देवपुरुष ही मानते हैं। यद्यपि सगुणवादियों ने जल जैसे निराकार तत्व के ठण्ड पाकर जम जाने पर साकार रूप में परिवर्तित होने का प्रमाण दिया है पर तर्क वादी लोगों का उससे संतोष नहीं होता। उनका कहना है कि जल और वायु के निराकारत्व तथा परमात्म तत्व के निराकार होने में बहुत अन्तर है। विज्ञान के अनुसार भौतिक तत्व-गैस, द्रव और ठोस तीनों अवस्थाओं में रह सकते हैं और रहते हैं। पर परमात्म तत्वों को किसी प्रकार पंच-भौतिक नहीं कहा जा सकता है। वह तो केवल शक्ति या सत्ता के रूप में है, उसका स्थूल रूप में भासकना सम्भव नहीं। जिस प्रकार उष्णता और विद्युत की शक्ति केवल किसी माध्यम से ही प्रकट होती और कार्य करती है, उसी प्रकार परमात्म-शक्ति भी आवश्यकतानुसार एक या अधिक लोगों का प्रेरणा करके ही दैवी लक्ष्य की पूर्ति करती है।

जैसा हमने ऊपर बतलाया है 'कल्कि पुराण' का कथानक बहुत सीधा सीधा और प्रारम्भ से अन्त तक एक उपाख्यान की तरह है। उसमें अन्य पुराणों की तरह सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, देव-ऋषि और राजवंशों, आदि का समावेश नहीं किया गया है। या तो रचयिता ने इसे संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है अथवा किसी अन्य विग्रह से उसका

यह संक्षिप्त संस्करण तैयार किया है यही समस्या 'विष्णु पुराण' के सम्बन्ध में भी उपस्थित है जिसको अन्य पुराणों की सूचियों में २३ हजार श्लोकों का बतलाया है, पर वर्तमान समय में जो ६॥ हजार श्लोकों का ही मिलता है। कुछ भी हो 'कल्कि पुराण' में अवतार के साकार और निराकार रूपों के सम्बन्ध कोई स्पष्ट विवेचन नहीं किया गया, पर जब हम 'रामायण' गीता 'भागवत' आदि के विवेचन को ध्यान में रखते हुए उसके कथानक पर विचार करते हैं, तो 'कल्कि भगवान का स्वरूप अधिकांश में 'भावात्मक' ही प्रतीत होता है।' हम जानते हैं कि जो लोग अवतार शब्द से केवल 'राम कृष्ण नरसिंह, 'वामन' आदि जैसे चमत्कारी दैवी पुरुषों का ही आशय समझते हैं और जो लोकोत्तर लीलाओं के कारण ही उनको 'भगवान' मानते हैं, वे अवश्य ही भावात्मक अवतार के सम्बन्ध में तरह-तरह की शंकाएँ करेंगे। उनसे हम इतना ही कह सकते हैं कि जिसप्रकार वेदव्यास, गो० तुलसीदास आदि महात्माओं ने भगवान के निराकार और साकार दोनों रूपों को यथार्थ स्वीकार किया है। उसी प्रकार 'शरीर धारी' अवतार और भाव रूपी अवतार दोनों ही सम्भव हो सकते हैं!



पाँचवा अध्याय

कल्कि अवतार का विश्वव्यापी प्रभाव

समस्त अवतारों का 'युग-परिवर्तन' से विशेष सम्बन्ध होता है। हम यह कह सकते हैं कि जब नये युग का आविर्भाव होने लगता है, तो उसकी प्रक्रिया किसी 'अवतार' नामधारी द्वारा प्रारम्भ की जाती है। इसी बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि जब संसार में किसी 'अवतार' का प्रादुर्भाव होता है, तो उसके परिणाम स्वरूप एक नवीन युग का जन्म भी होता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर आज लाखों व्यक्ति वर्तमान विश्वव्यापी हलचल में एक नये युग के सूत्रपात के चिन्ह देखकर भावी अवतार के आगमन की आशा भी कर रहे हैं।

'कल्कि' का कलियुग के साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनका नामकरण इसी आधार पर किया गया है। सभी पुराणों में यह वर्णन पाया जाता है कि जब कलियुग के प्रभाव से मानव समाज की अवस्था विशेष शोचनीय हो जायगी तब 'कलियुग' को नष्ट करके 'सतयुग' की स्थापना के निमित्त 'कल्कि भगवान' प्रकट होंगे। कुछ लोग इस घटना का समय अब से कई लाख वर्ष बाद मान रहे हैं और कितने ही वर्तमान चिन्हों को देखते हुए शीघ्र ही उनके प्रादुर्भाव की भविष्यवाणी कर रहे हैं। व गाल के एक स्वामी जी ने तो 'शास्त्रों के प्रमाण' और निजी 'यौगिक अनुभूतियों' के आधार एक बड़ा ग्रन्थ छपा कर सन् १९८५ में कल्कि के प्रकट होने की घोषणा ही कर दी है। हम इस स्थान पर 'कल्कि' के प्रकट होने की तारीख सम्बन्धी विवाद में पड़ना नहीं चाहते, पर जो लोग अवतार को लाखों वर्ष आगे की घटना मानते हैं, उनसे तो हमारा मतभेद स्पष्ट है। अधिकांश पुराणों और मनुस्मृति

आदि में भी कलियुग को १२०० वर्ष का लिखा है। पर पुराने ढर्रे के पंडित उसको देव-वर्ष बताकर ४ लाख ३२ हजार की संख्या बतलाते हैं, जब कि अन्य विद्वान् उसको मानव वर्ष मानकर चारों युगों का परिमाण १२ हजार वर्ष निश्चित करते हैं। वे इसके प्रमाण स्वरूप 'मनुस्मृति' का यह श्लोक उपस्थित करते हैं—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगं।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधि॥
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥

इन श्लोकों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कृतयुग (सतयुग) ४ हजार वर्षों का होता है और ४००-४०० वर्ष की उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश होते हैं। इसी प्रकार त्रेता, द्वापर तथा कलियुग क्रमशः ३ हजार, २ हजार और एक हजार वर्षों के होते हैं और उतने ही सौ वर्षों की उनकी दोनों सन्धियाँ (सन्ध्या और सन्ध्यांश) भी होती हैं।"

युगों की अवधि का निर्णय करने के लिए अब से ४० वर्ष पहले 'चेतावनी नामक पुस्तक' में लेखक पं० रामनारायणदत्त शास्त्री ने बड़ा परिश्रम और अनुसंधान किया था। उनकी 'चेतावनी' सामान्य जनता में बड़ी लोकप्रिय हो गई थी और हजारों की संख्या में छप कर बिकी थी। उन्होंने सारी बातें के युगों के सम्बन्ध में ज्योतिष, धर्मशास्त्र तथा महाभारत आदि के तथा स्वयं खोजकर बहुत से प्रमाण दिये थे। उनमें से एक का उल्लेख नीचे किया जाता है—

उदयपुर, जयपुर, जोधपुर तथा काश्मीर के महाराज अपने वंश का आदिपुरुष भगवान राम के सूर्यवंश से बतलाते हैं और इन्होंने अनेक विद्वान पंडितों को नियुक्त करके तथा समस्त प्राचीन ग्रन्थों तथा पुराणों से दी हुई वंशावलियों की खोज और मिलान कराके भगवान रामचन्द्र से अपने समय तक के समस्त राजाओं की नामावली तैयार कराई। इसके अनुसार श्रीरामचन्द्र से जयपुर के वर्तमान महाराज मानसिंह तक कुल २३१ राजा हो चुके हैं। अब अगर पुराने ढर्रे

के पीढ़ियों के हिसाब से माना जाय तो श्रीरामचन्द्र को करीब ९-१० लाख वर्ष पहले का मानना पड़ेगा। पर दस लाख वर्षों में २३१ पीढ़ियों का होना किसी हिसाब से ठीक सिद्ध नहीं होता। विद्वानों ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी का अन्तर सामान्यतया २५, ३० वर्ष का ही निर्धारित किया है। इस हिसाब से २३१ पीढ़ियों में ५-६ हजार वर्ष से अधिक का समय व्यतीत नहीं हो सकता।

इसमें अगर यह दलील दी जाय, जैसा कि अक्सर 'पंडित' नाम-धारी प्रायः दिया करते हैं कि पुराने जमाने में मनुष्यों की आयु हजारों वर्ष की हुआ करती थी, इसलिए एक-एक पीढ़ी का अन्तर बहुत अधिक हो सकता है, तो यह निरर्थक है। हजारों, लाखों वर्ष की आयु और सैकड़ों गज लम्बे चौड़े शरीर कथा और उपाख्यानों में सुनाये जा सकते हैं, पर जब गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो उन को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। प्राचीन और आधुनिक वाता-वरण और रहन-सहन में अन्तर पड़ गया है उसके आधार पर उस समय बहुसंख्यक लोगों की आयु अब से ड्योढ़ी दुगुनी तक मानी जा सकती है जैसा कि आजकल भी शहरों के कृत्रिम वातावरण से दूर ग्रामीण अथवा पहाड़ी स्थानों के निवासियों में अनेक व्यक्ति १२५, १५० या इससे भी अधिक आयु के पाये जाते हैं। धर्मशास्त्रों की दृष्टि से भी जो 'वेद' संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ स्वीकार किये गये हैं उनमें सब जगह 'जीवेम शरदः शतम्' कह कर परमात्मा से सौ वर्ष की आयु की प्रार्थना की गई है। पाठक इस पर विचार करके स्वयं वास्तविकता का अनुमान कर सकते हैं। ऐसी ही कथाओं में श्री रामचन्द्र जी का शासन-काल ग्यारह हजार वर्ष लिख दिया गया है, पर उनके विवाह के सम्बन्ध में यही कहा गया है कि उस समय 'रामचन्द्र जी की आयु २७ वर्ष और सीता की १८ वर्ष की थी।' इससे भी यह जाना जा सकता है कि हजारों वर्ष की आयु वाली बात ठीक नहीं है, कम से कम उसका सम्बन्ध वर्तमान 'मन्वन्तर' से नहीं हो सकता।

'चेतावनी' की दूसरी खोज यह है कि अनेक स्थानों पर चारों युगों को जो ४३ लाख २० हजार वर्षों का लिखा है,वे वास्तव में ३६० दिन वाले वर्ष नहीं है, वरन् सूर्याब्द (२४ घंटे का रात दिन) हैं। प्राचीन ग्रन्थों में बहुत से वर्णनों में इसी प्रकार 'सूर्याब्द' का उल्लेख किया गया है। इसका एक उदाहरण 'वाल्मीकि रामायण' में मिलता है। उसके उत्तरकाण्ड (सर्ग ७३) में एक ब्राह्मण का वर्णन मिलता है जिसने श्रीराम के दरबार में आकर अपने बालक के मर जाने की शिकायत की और कहा-

अप्राप्त यौवनं बाले पंच वर्ष सहस्रकम।
अकाले कालमापन्न मम दुःखाय पुत्रकम् ॥

इसमें कहा गया है कि "मेरा पाँच सहस्र वर्ष की आयु का बालक यौवनावस्था प्राप्त होने से पूर्व ही अकाल में काल-कवलित हो गया है, इससे मैं अत्यन्त दुखी हूँ।" इस स्थानक में ५ हजार वर्ष की आयु वाले को 'बालक' कहना बड़ा बेतुका जान पड़ता है पुराणों की कथाओं में महाराज दशरथ और श्री रामचन्द्रजी की आयु लगभग दस-ग्यारह सहस्र वर्ष की बतलाई है। थोड़ी देर के लिए उसको भी मान लिया जाय तो भी ५ हजार वर्ष की आयु वाला 'युवा' अथवा प्रौढ़ ही कहा जा सकता है, उसे बालक कहना तो गलत ही माना जायगा। इसलिये रामायण के एक विद्वान् टीकाकार प० रामाभिराम ने इसका अर्थ करते हुए लिखा है—

"पञ्च वर्ष सहस्रक वर्ष अहोरात्र दिन पर.।
चिच्छिन्नून चतुर्दश वर्ष मित्यर्थः।"

अर्थात् "यहाँ पर जो 'पंच सहस्र वर्ष' कहा गया है उसका आशय दिन से है। इस हिसाब से उस ब्राह्मण का बालक चौदह वर्ष से कुछ कम आयु का था।"

अगर कोई इस 'सूर्याब्द' की बात को मनगढ़न्त अथवा काल्पनिक कहे तो यह उसकी भूल और जानकारी की कमी है। वास्तव में क्या

कहने वाले या पूजा-पाठ कराने वाले 'पंडितों' में से एक प्रतिशत भी ऐसे नहीं होते जिन्होंने प्राचीन साहित्य का गहरा अध्ययन किया हो और उसका मर्म खोजने में परिश्रम किया हो। यदि वे खोज करते तो उनको मालूम हो जाता है कि वर्ष केवल ३६० या ३६५ दिनों का ही नहीं होता वरन् उससे बहुत कम और बहुत अधिक अनेक प्रकार का होता है। गणित ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूर्य सिद्धान्त' में नौ प्रकार के वर्ष बतलाये गये है—

ब्राह्मं दिव्यं यथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा।
सौरं च सावनं चान्द्रं मार्क्षं मानानी वै नव॥
(सू० १३-१)

अर्थात्—"ब्रह्म-वर्ष इस सृष्टि के बराबर होता है। 'दिव्य-वर्ष (यह सूर्य की उत्तर-दक्षिण गति से ३६० दिन का होता है)। 'पितृ वर्ष' 'यह हमारे एक महीने के बराबर होता है) 'प्रजापति वर्ष' (यह एक प्रतिसर्ग सृष्टि के समान कहा गया है।) 'गुरु वर्ष' (यह बृहस्पति के भ्रमण काल के अनुसार १२ वर्ष का होता है।) 'सौर-वर्ष' (३६५ दिन का।) 'सावन वर्ष' (सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक २४ घंटे का। इसी को 'सूर्य-वत्सर' या 'सूर्याब्द कहा गया है।) 'चान्द्र वर्ष' (यह तिथियों के हिसाब से ३५४ दिन का होता है।) 'नक्षत्र वर्ष' यह ५२ घड़ी कुछ पल का होता है।)

वेदों में 'युगों' का हिसाब भी कई प्रकार से बताया गया है और वेदांग-ज्योतिष के ग्रन्थों में छः-छः महीने के('देवयुग' और 'मनुष्य-युग) से लेकर पाँच, बारह, साठ, बारह हजार तथा लाखों वर्ष की संख्या वाले अनेक युगों का विवरण पाया जाता है। 'अथर्व वेद' में भी एक स्थान पर चारों युगों का परिमाण १२ हजार वर्ष का होने का वर्णन मिलता है—

शतंते युत हायता द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नि विश्वेदेवास्ते नुमन्यनामहंणीय माना॥

सायणाचार्य ने इस मन्त्र का भाष्य करते हुए लिखा है—

"चतुर्णां युगानां सन्धि संवत्सरान् विहाय युग चतुष्टय निमित्ता अयुत संवत्सराः स्युः तान् विभज्य कलि द्वापरादीनि त्रेता सहितानि चत्वारि कृतयुग सहितानि कुर्म इति आशास्महे।"

अर्थात् —"चारों युगों के सन्धि-संवत्सरों को छोड़ दस हजार वर्ष होते हैं। कलि द्वापर त्रेता और कृतयुग सहित ये चारों युग होते हैं।"

आचरण के आधार पर युग परिवर्तन—यहाँ तक हमने उन पाठकों को समझाने के लिये जो मानते हैं कि शास्त्रानुसार चारों युगों का क्रम से निरन्तर आते-जाते रहना अनिवार्य है, कुछ शास्त्रीय विवेचन किया। अन्यथा हम तो इस सम्बन्ध में वैदिक ऋषियों के उस सिद्धान्त को यथार्थ मानते हैं जिसमें कहा गया है कि 'युग' का आधार मनुष्य के कर्मों और विचारों पर है। जैसा भला-बुरा हमारा आचरण होगा वैसा ही 'युग' (समय) हमको जान पड़ने लगेगा। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में इन्द्र ने कहा था—

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥

अर्थात्—"जब समाज या व्यक्ति सोता रहता है (अकर्मण्य अवस्था में रहता है) तो उसे कलियुग की अवस्था कहना चाहिए) जब वह आँखें खोलकर जँभाई लेने लगे तो वह द्वापर की दशा होती है। जब उठ जाता है तो वह त्रेता में पग धरता है, और जब चलने लग जाता है (अपने कर्तव्य पालन में संलग्न होता है) तब वह सतयुग की अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

शासन और 'युग' का सम्बन्ध—

इससे भी अधिक व्यावहारिक बात इस सम्बन्ध में 'महाभारत' में भीष्म पितामह ने कही थी। उन्होंने युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए

प्रभाव नामसी बुद्धि वालों और मद्यपान व्यभिचार, जुआ आदि दुर्व्यसनों में लिप्त व्यक्तियों पर ही अधिक पड़ता है। अतएव अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को सबसे पहले 'कलियुग' की दूषित भावना को सर्वथा त्यागकर श्रेष्ठ युग के आगमन की ही भावना करनी चाहिए। हमारे विचार में यही 'कल्कि' का सबसे मुख्य और वास्तविक सन्देश और उपदेश है। युगों की वर्ष-संख्या के सम्बन्ध एक मध्यम मार्गीय दल उन लोगों का भी है, जो कहते हैं कि प्रत्येक महायुग में कम अवधि वाले चारों युगों की अन्तर-दशा में निरन्तर आती रहती है। इसी विचार के एक सज्जन ने 'सतयुग' मासिक पत्र (सितम्बर १९३६) में लिखा था कि 'कलियुग ४३२००० वर्ष तक रहता है, पर बीच-बीच में प्रत्येक ५०४१ वर्षों के बाद ८० वर्षों के लिये सतयुग आता रहता है।' इन दोनों में से किसी का खंडन न करते हुए वर्तमान परिस्थितियों को देख कर हम युग-परिवर्तन की सम्भावना पर निश्चित रूप से विश्वास करते हैं, और हमारी यह भी धारणा है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'कल्कि अवतार' की प्रक्रिया इस समय भी भी विश्वव्यापी वातावरण में चल रही है।

'महाभारत' (वन पर्व अ० १९०) में कल्कि-अवतार के प्रकट होने का वर्णन अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा विस्तारपूर्वक किया गया है। उसमें प्रारम्भ में कलियुग में समाज की दुरवस्था और लोगों में उत्पन्न होने वाले भयंकर दोषों का वर्णन करके कहा गया है—

कल्की विष्णुयशा नाम द्विज: कालं प्रचोदित: ।
उत्पत्स्यते महावीर्यो महा बुद्धि पराक्रम: ॥९३
सम्भूत: सम्भल ग्रामे ब्राह्मण वसथे शुभे।
(महात्मा वृत्तसम्पन्न: प्रजाना हितकृन्नृप)
मनसा तस्य सर्वाणि वाहनान्यायुधानि च ॥९४
उपस्थास्यन्ति योधाश्च शस्त्राणि कवचानि च ।
स धर्म विजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति ॥९५

विचरन्नाशुना क्षौण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ।
नृपलिङ्गच्छदो दस्यून् कोटिशो निहनिष्यति ॥२०
अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै ।
वासुदेवाङ्गरागातिपुण्यगन्धानिलस्पृशाम् ।
पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥२१
तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः सम्भविष्यति ।
वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥२२
यदावतीर्णो भगवान् कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ।
कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥२३

"जब अवतार के प्रकट होने का अवसर आयेगा उस समय सम्भल ग्राम में विष्णुयश नाम के एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे। उनका हृदय बड़ा उदार एवं भक्तियुक्त होगा। उन्हीं के घर में कल्कि-भगवान अवतार ग्रहण करेंगे। श्री भगवान ही अष्ट सिद्धियों के तथा समस्त सद्गुणों के एकमात्र आश्रय हैं। समस्त चराचर जगत के वे ही रक्षक और स्वामी हैं। वे देवदत्त नामक शीघ्रगामी घोड़े पर सवार होकर दुष्टों को अपनी जगत प्रसिद्ध तलवार के घाट उतारेंगे। उनके रोम-रोम में तेज छिटकता होगा। अपने शीघ्रगामी वाहन पर पृथ्वी पर सर्वत्र विचरण करके 'राजाओं के वेश में प्रच्छन्न करोड़ों लुटेरों का संहार करेंगे। जब भगवान के अंगराग से सुगन्धित हुई वायु लोगों को स्पर्श करेगी तो उनका हृदय पवित्र हो जायगा और पाप कर्मों का अन्त हो जायगा। इससे सबके हृदय में भगवद्भक्ति का संचार होगा और वे सुखी तथा पूर्ण स्वस्थ होने लग जायेंगे। प्रजा के नयन-मनोहारी श्री हरि ही धर्म के रक्षक और सब के स्वामी हैं। वे ही भगवान जब कल्कि रूप में प्रकट होंगे, तो कलियुग का अन्त होकर सत्युग (श्रेष्ठ युग) प्रारम्भ हो जायगा और सब मनुष्य तथा उनकी संतान स्वयमेव सत्त्वगुण युक्त बन जायगी।"

'उस अवसर पर पुराण, पुरुष, परमेश्वर 'कल्कि' प्रकट होंगे, जो दिव्य अश्व पर आरूढ़ और असि (तलवार), वर्म (कवच), चर्म (ढाल) आदि समस्त अस्त्रों से सुसज्जित होंगे। वे सारे म्लेच्छों को उनके दुष्कर्मों के फलस्वरूप नष्ट कर देंगे और उसके पश्चात् 'महासमाधि' ग्रहण कर लेंगे। उनके प्राकट्य के पहले यह भूमि धर्म-कर्म रहित धर्म विमुख लोगों से भर जायगी, पर भगवान् कल्कि के प्रभाव से वह फिर पुण्य-स्थली बन जायगी। जब कल्कि भगवान् धर्म रक्षार्थ महायज्ञ का अनुष्ठान करेंगे, तो देवगण अपना नियमित भाग प्राप्त करके शक्ति सम्पन्न हो जायेंगे और पृथ्वी निवासियों के कल्याण साधन में तत्पर होंगे।'

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के 'प्रकृतिखण्ड' में 'कल्कि' का वर्णन करते हुए कहा है—

एवं कलौ सम्प्रवृत्ते सर्वे म्लेच्छमयो भवेत्।
विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्र कल्किर्भविष्यति॥
नारायण कलांशश्च भगवान बलिना बली।
दीर्घेण करवालेन दीर्घं घोटक वाहनः॥
म्लेच्छशून्याश्च पृथिव्या त्रिरात्रेण करिष्यति।
निर्म्लेच्छां वसुधा कृत्वा अन्तर्धानं करिष्यति॥

'जब कलियुग की वृद्धि होकर समस्त जगत् म्लेच्छों (धर्म-द्रोहियों) से भर जायगा, तब भगवान् नारायण के अंशांश से विष्णु यश के गृह में 'कल्कि' का आविर्भाव होगा। वह बड़े-बड़े शक्तिशालियों की अपेक्षा भी अधिक शक्तिमान् होंगे। वे अपनी विशाल तलवार और विशाल अश्व द्वारा तीन रात्रि में अत्यन्त शीघ्र म्लेच्छों का मूलोच्छेदन कर डालेंगे और पृथिवी के धर्मयुक्त हो जाने पर पुनः वैकुण्ठ को चले जायेंगे।' ये ही श्लोक कल्कि अवतार का वर्णन करते हुए 'देवी भागवत' में भी मिलते हैं। 'विष्णु पुराण' (३—२) में कल्कि अवतार के विषय में कहा गया है—

वेदांस्तु द्वापरे व्यासः कलेरन्ते पुनर्हरिः।
कल्किस्वरूपो दुर्वृत्तान् मार्गे स्थापयति प्रभु ॥

अर्थात् 'भगवान् नारायण द्वापर में व्यासदेव के रूप में वेदों का विभाजन करके पुनः कलियुग के अन्त में 'कल्कि' के रूप में प्रकट होंगे और दुष्ट स्वभाव वालों को सन्मार्ग पर लगायेंगे।' आगे चलकर चतुर्थ अंश के चौबीसवें अध्याय में कल्कि अवतार का विशेष वर्णन करते हुए कहा है—

'श्रौते स्मार्ते च धर्मे विप्लवमत्यन्तमुपगते क्षीणप्राये च कलावशेषजगत्स्रष्टुश्चराचरगुरोरादि मध्यान्तर रहितस्य ब्रह्ममयस्यात्मरूपिणो भगवतो वासुदेवस्यांशश्शम्भलग्रामप्रधान-ब्राह्मणस्य विष्णुयशसो गृहेऽष्टगुणर्द्धिसमन्वित कल्किरूपी जगत्यत्रावतीर्य सकल म्लेच्छदस्युदुष्टा चरणचेतसामशेषाणामपरिच्छिन्न शक्तिमहात्म्य. क्षयं करिष्यति स्वधर्मेषु चाखिलामेव संस्थापयिष्यति ॥६८॥

अर्थात्—'जब श्रौत वैदिक और स्मार्त धर्म की अत्यन्त हानि हो जायेगी और कलियुग प्रायः समाप्ति पर होगा, तभी 'शम्बल' ग्राम में निवास करने वाले विप्रश्रेष्ठ विष्णु यश के यहाँ सम्पूर्ण विश्व के कारण, चराचर के स्वामी, आदि-मध्य-अन्त से हीन, ब्रह्ममय एवं आत्मरूप भगवान् अपने अंश से अष्टगुण युक्त कल्कि रूप से अवतार धारण करेंगे। वही अपनी शक्ति और महिमा से सम्पन्न होकर सब म्लेच्छों, दस्युओं और दुष्ट हृदयों और दुराचारियों को नष्ट कर सभी प्रजा को अपने-अपने धर्म में स्थापित करेंगे।'

'अग्नि पुराण' में कलियुग के कारण धर्म और समाज की दुरवस्था का चित्रण करते हुए 'कल्कि' के महत्व पर प्रकाश डाला गया है—

सर्वे कलियुगान्ते तु भविष्यन्ति च संकराः ।
दस्यवः शीलहीनाश्च वेदो वाजसनेयकः ॥
धर्मश्च कृशंवीता अधर्मश्चवरतथा ।
मानुषान् भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छान् पार्थिव रूपिणः ॥
कल्कि विष्णुयशा पुत्रो याज्ञवल्क्य पुरोहितः ।
उत्सादयिष्यति म्लेच्छान् गृहीतास्त्र कृतायुधः ॥
कल्कि रूपं परित्यज्य हरिः स्वर्गं गमिष्यति ।
तथा कृतयुग नाम पुर्ववत् सम्भविष्यति ॥

'कलियुग का अन्त होने के समय सब लोग वर्ण संकर हो जायेंगे। वे लुटेरे, शील रहित और वेद विरुद्ध आचरण करने वाले होंगे। उनकी रुचि धर्म की तरफ से हटकर अधर्म की तरफ चली जायगी। म्लेच्छ राजागण मनुष्यों का बहुत बुरी तरह शोषण करेंगे। [redacted] कल्कि भगवान् श्री विष्णु यश के यहाँ प्रकट होंगे और याज्ञवल्क्य उनके पुरोहित होंगे। वे शस्त्र लेकर अपनी शक्ति से म्लेच्छों को नष्ट कर डालेंगे। इसके पश्चात् जब पृथिवी पर फिर से सतयुग स्थापित हो जायगा तब भगवान् कल्कि पुनः अपने लोक को चले जायेंगे।'

'गरुड़ पुराण' (अध्याय—१४६) में भी 'कल्कि' का वर्णन बहुत संक्षेप में कर दिया गया है—

कल्कि विष्णुयश भाविता शम्भल ग्रामके पुनः ।
अश्वारूढोऽखिलान् लोकोस्तदामोतान करिष्यति ॥
एवं स भगवान व्यास धर्म संरक्षणाय च ।
दुष्टानां च वधार्थाय अवतारं करिष्यति ॥

'शम्भलग्राम में विष्णु यश के यहाँ भगवान् 'कल्कि' रूप में प्रकट होंगे। वे घोड़े पर चढ़कर समस्त संसार को प्रभावित करेंगे। जैसा भगवान् व्यास कह गये हैं उनका अवतार दुष्टों का वध करने के लिए होगा।'

'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में भी कल्कि के सम्बन्ध में निम्न-लिखित श्लोक मिलता है—

कलेरन्ते तु सम्प्राप्ते कल्किनं ब्रह्मवादिनम् ।
अनुप्रविश्य कुरुते वासुदेवो जगत्स्थितम् ॥

'जब कलियुग समाप्त होने लगेगा तो सर्वव्यापी भगवान् पृथ्वी पर 'कल्कि' रूप में प्रकट होंगे और ईश्वरीय सत्ता (धर्म) की स्थापना करेंगे।'

इस प्रकार प्रत्येक पुराण में 'कल्कि' का न्यूनाधिक परिमाण में उल्लेख मिलता है। सभी विद्वानों और ऋषि महर्षियों ने उनकी गणना प्रमुख अवतारों में की है और उनकी महिमा श्रद्धापूर्वक गाई है। यद्यपि 'कल्किपुराण' में 'कल्कि' का चरित्र-चित्रण साधारण रूप में ही किया गया है और अन्य पुराणों की तुलना में वह नाममात्र का ही ग्रंथ माना जा सकता है, पर इससे 'कल्कि' के महत्व में कोई अन्तर नहीं पड़ा और हम कह सकते हैं कि सब अवतारों में से राम, कृष्ण अतिरिक्त शायद ही कोई ऐसा अवतार हो जिसकी चर्चा प्राचीन और नवीन ग्रन्थों में 'कल्कि' की अपेक्षा अधिक मिल सके। कारण यही है कि 'कल्कि' का उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप में दुष्टों और अधर्मियों से मानवता का परित्राण करना माना गया है। इतना ही नहीं अनेक विद्वानों की यह भी धारणा है कि 'कल्कि' संसार की भावी सभ्यता, जो वर्तमान से बहुत भिन्न होगी, के संस्थापक होंगे। यही कारण है कि प्राचीन धार्मिक विद्वानों के साथ नये युग के विचारकों ने भी 'कल्कि' की तरफ अधिक ध्यान दिया है और इस विषय की पर्याप्त विवेचना की है। थियोसोफिकल सोसाइटी की विदेश स्थित शाखाओं के द्वारा 'कल्कि' की चर्चा वहाँ भी पहुँच गई है और विद्वानों में इस विषय पर विचार विमर्श हुआ करता है।

पुराणकारों के अतिरिक्त प्राचीन विद्वानों तथा कवियों में श्री क्षेमेन्द्र ने अपनी रचनाओं में 'कल्कि' का गुणगान और मानवता की

रक्षा करने के उपलक्ष मे उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। एक संस्कृत कविता मे जिसको शङ्कराचार्य की रचित बताया गया है, 'कल्कि' के सम्बन्ध मे कहा है—

दुराचार संसार संहारकारी
भवत्यश्वार कृपाणप्रहारी ।
मुरारिर्दशाकार धारोहि कल्की
करोतु द्विषां ध्वंसनं च स कल्कि ॥

'भगवान् कल्कि, जो दस अवतारों मे से है, हमको भीषण संसार-सागर से पार करें और कृपाण से दुष्टों का नाश करके हमारे कष्टों को मिटावें।'

काश्मीर मे सुप्रसिद्ध प्राचीन संस्कृत कवि क्षेमेन्द्र ने 'दशावतार चरित' नामक सुन्दर काव्य लिखा है। इसमे कल्कि भगवान् (क्षेमेन्द्र ने इसका उच्चारण 'कल्कि' किया है) की गुण गाथा विस्तार पूर्वक गाते हुए कहा है—

तस्मिन काले निरा लोके लोके पाप तमोदये ।
उत्पत्स्य तेऽर्क सकाशः शिशुर्कल्किकुले द्विजः ॥
विष्णुभूं'सार धान्यमर्या सोऽथ विष्णुयशः क्षितौ ।
परिभ्रमत्यश्वमारुह्य म्लेच्छ संक्षय दीक्षितः ॥

'उस अन्धकार युग में जब कि लोग पाप-कर्मों मे लिप्त होंगे, विष्णुयश नामक प्रमुख ब्राह्मणों के घर मे सूर्य के समान तेजस्वी एक बालक जन्म लेगा। वह 'कल्कि' नाम वाला भगवान् का अवतार होगा और पृथिवी को भारमुक्त करके सुखी बनायेगा। वह अश्व पर सवार होकर सर्वत्र दुष्टों का नाश करता हुआ फिरेगा।'

दशावतार सम्बन्धी एक अन्य रचना में कहा गया है—

कल्पावसाने तुरगाधिरूढो
सञ्चूर्णयामास निमेषमात्रात् ।

यस्तेजसातिद्हृतातिमोघ
स्तं कल्किनं विभर्पति प्रजामः ॥

'युग के समाप्त होने पर अश्व पर आरूढ़ 'कल्कि' प्रकट होंगे जिनका तेज अत्यन्त तीव्र और भीषण होगा, वे दुष्टों को देखते-देखते भस्म कर देंगे।'

'कल्कि' की भावना का प्रभाव भारत के अन्य धर्म-सम्प्रदायों पर भी पड़ा है। चाहे वे उनको किसी दृष्टि से क्यों न देखते हों पर उनके रूप में भावी अवतार की सम्भावनाओं को उन्होंने स्वीकार किया है।' 'जैन हरि वंश' (१०-२-६१) में कहा गया है—

मुक्तिगते महावीरः प्रतिवर्ष सहस्रकम्।
एकैको जायते कल्कि जैनमत विरोधकः॥

'जैन तीर्थङ्कर महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् प्रति एक हजार वर्ष पर एक 'कल्कि' प्रकट होता रहेगा, जो जैन मत का विरोधी होगा।'

इस वर्णन में एक हजार वर्ष का उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण है। कलियुग की अवधि अधिकांश पुराणों में एक हजार वर्ष ही बतलाई है और सूरदास आदि कई सन्त एक हजार वर्ष तक 'सतयुग' कायम रहने का कथन कर गए हैं। 'कल्कि' प्रकट होने का आशय 'युग-परिवर्तन' से निश्चित रूप से लिया जाता है। इसलिए प्रति एक हजार वर्ष पर संसार की अवस्था में एक नया विशेष परिवर्तन होने की सम्भावना का प्रतिपादन करना अवश्य ध्यान देने योग्य है।

एक आश्चर्यजनक बात [illegible] है कि कल्कि की भावना भारतवर्ष की धार्मिक रूढ़ियों में ओत-प्रोत जनता तक ही सीमित नहीं रही पर उसका प्रभाव अब से दो सौ वर्ष पूर्व इङ्गलैण्ड तक पहुँच गया। वहाँ के Thomas Cambell (थामस केम्बैल) नामक कवि ने सन् १७६६ में "Pleasures of Hope" शीर्षक जोरदार कविता में

'कल्कि' के महान् कार्यों का वर्णन करके उनके अवतारस्वरूप को बड़ी भक्ति भावना से नमस्कार किया था—

Nine times have Brahma's wheelsof lightning hurld,
His awful presence o'er the alarmed world.
Nine times hath guilt, through all his giant frame.
Convulsive trembled, as the mighty came.
Nine times hath Suffering, Mercy spread in vain.
But heaven shall burst her starry gates again!
He comes! dread Brahma shakes the sunless sky,
With murmuring wrath and thunders from on high,
Heaven's fiery horse, beneath his warrior form,
Paws the light clouds and gallops on the storm
Earth, and her trembling isles in oceans bed
Are shook, and Nature rocks beneath his tread.
The tenth Avtar comes! at heaven's command.
Shall Sarswati wave her hallow'd wand.
Come heavenly powers! prisneval peace restore
Loves!—Mercy!—Wisdom!—rule for ever more

अर्थात्—परमात्मा के रथ के विद्युत चक्र नौ बार घूम चुके हैं और भयभीत संसार उसकी दारुण सत्ता का अनुभव कर चुका है। नौ बार जब वह शक्तिशाली सत्ता प्रकट हुई समारव्यापि दुष्टता का

विशालकाय ढाँचा काँप उठा और ग्रस्त-व्यस्त हो गया। जो बार इस सत्ता ने जो दया दिखाई वह निरर्थक सिद्ध हुई, पर अब वैकुण्ठ का नक्षत्र-मंडित द्वार फिर एक बार खुलने वाला है। 'वह' आ रहा है। उसके भय से आकाश हिलने लगता है, दिशाओं में सन्नाटा छा जाता है और एक महा भयङ्कर गर्जना ऊपर से आती है। वैकुण्ठ लोक के अग्निमय अश्व पर आरूढ़ होकर वह दैवी योद्धा (कल्कि) बादलों पर कदम रखता है और तूफानों के कूद पड़ता है। तब समस्त पृथिवी और महासागरों में स्थित बड़े-बड़े टापू कम्पायमान हो उठेंगे और प्रकृति के शक्तिशाली चरण उनकी जड़ तक को हिला देंगे। दसवाँ अवतार महा-काल के आदेश से आ रहा है। भगवती सरस्वती अपने पवित्र हस्त-दंड से उसका अभिवादन करेगी। हे दिव्यलोकवासी सर्वशक्तिमान्! प्रकट होकर फिर से शान्ति को प्रतिष्ठित करो, जिससे संसार में एक बार पुनः प्रेम, करुणा और ज्ञान का राज्य स्थापित हो जाय।'

यद्यपि हम इन उद्गारों का आशय भावात्मक रूप में ही ग्रहण करते हैं और हमारा अनुमान है कि इस अवसर पर दैवी-सत्ता (कल्कि) अदृश्य रूप से ही युग-परिवर्तन का ध्येय पूरा करेगी। तो भी प्रत्यक्ष-वादी जन समूह के लिए उसका मानवाकार में दिखाई देना भी सर्वथा असम्भव नहीं है। संसार संकट के निवारण के लिए कोई न कोई महान् आत्मा अग्रसर होगी ही। उसे सब देश के न्यायप्रिय लोगों का सहयोग भी प्राप्त होगा, जिससे वह दुष्टता की शक्तियों का अन्त कर सके। पर हम इसको अधिक महत्व इसलिए नहीं देना चाहते कि यह तो सृष्टि का अटल नियम है और सदा से होता आया है। पर ऐसे अव-सर पर एक नहीं अनेक महापुरुष सम्मुख आकर उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं। उनमें से कौन प्रमुख है, सर्वोच्च दैवी सत्ता का प्रतीक है इसे शीघ्र ही जान सकना सम्भव नहीं होता। इसीलिए हमारी दृष्टि में तो सर्वाधिक महत्व और आश्चर्य की बात वह 'अवतार भावना' है, जो कम से कम दो-डेढ़ हजार वर्ष से हमारे देश में प्रभु पूर्ण

चली आई है और जिसकी प्रतिध्वनि दो सौ वर्ष पूर्व योरोप जैसे सुदूरवर्ती महाद्वीप में भी उठने लग गई।

इतना ही नहीं इसी भावना के प्रभाव से यहूदी, ईसाई, बौद्ध, शिंटोमत [जापान का धर्म] इस्लाम आदि सभी प्रमुख मजहबों में 'अवतार' की चर्चा आरम्भ हो गई है। ईसाइयों में ईसामसीह के 'द्वितीय आगमन' की चर्चा दिन पर दिन जोर पकड़ती जाती है, और अमरीका आदि में इस सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए 'सैविन्थ एड-वेंटिस चर्च' का पृथक् ही संगठन हो गया है। मुसलमानों में 'हजरत मेंहदी' के प्राकट्य का विश्वास लाखों व्यक्ति कर रहे हैं और उसके लिए बहुत कुछ कष्ट सहन कर चुके हैं, क्योंकि कट्टरपंथी मुसलमान ऐसी चर्चा को 'अधर्म' मानते हैं। बौद्धों में 'मैत्रेय' के रूप में बुद्ध भगवान् के नवीन अवतार की सम्भावना गम्भीरता पूर्वक स्वीकार की जा रही रही है। इस प्रकार 'कल्कि-भावना' ने दुनिया भर का ध्यान आकर्षित किया है और जगह-जगह के लोग किसी अदृश्य प्रेरणा के वशीभूत होकर 'उस आने वाले' की राह उत्सुकता पूर्वक देख रहे हैं।

इसका आशय यही है कि समस्त मानवता इतने समय से निरन्तर किसी 'उद्धारकर्ता' की राह देख रही है और उसके स्वागत के लिये हर तरह की तैयारियाँ भी कर रही है।

समय के चिन्हों को देखकर हम कह सकते हैं कि जन-समुदाय की उस चिर-अभिलाषित कामना की पूर्ति का समय बिल्कुल समीप आ चुका है। जिन लोगों को किंचित भी दैवी-प्रकाश प्राप्त है वे इस समय 'कल्कि' के अश्व की टापों का शब्द,अपने कानों से सुन रहे हैं और उसकी कृपाण की चमक सुदूर आकाश में देख रहे हैं। समस्त शास्त्रों, भविष्य वेत्ताओं, सन्तों, भक्तों ने आत्मा से जो उद्गार प्रकट किए हैं उनके पूरा होने में अब विलम्ब नहीं। इस-लिए हम सब भी उन सबके स्वर में स्वर मिलाकर गगन-भेदी स्वर में कहें—

" कल्कि की जय "

छठा अध्याय

कलियुग और कल्कि

कल्कि अवतार का नामकरण कलियुग के आधार पर ही हुआ है। कलियुग का नाश करने वाला होने से ही उनको 'कल्कि' कहा गया है। कलियुग को पाप-पुरुष से उत्पन्न माना गया है और सर्व-साधारण में आम तौर से यह धारणा पाई जाती है कि जब तक कलियुग रहेगा लोगों का झुकाव अधिकांश में पाप-कर्मों की तरफ ही रहेगा और धर्म दुर्दशा होती रहेगी। यह भावना चाहे किसी कारण उत्पन्न हुई हो, पर इसने समाज की बड़ी हानि की है और दोषों तथा दुर्गुणों का प्रतिकार करने की प्रवृत्ति को निरन्तर निर्बल किया है।

फिर हम जिस पुराण या शास्त्र को देखें उसमें कलियुग की पापपूर्ण अवस्था और दूषित सामाजिक वातावरण का वर्णन अवश्य पाते हैं। सभी पुराणों ने यह कहा है कि ब्राह्मण ही समाज में सर्वाधिक पूज्य हैं, उनकी महिमा देवताओं से भी अधिक है पर कलियुग में वे ही ब्राह्मण पथभ्रष्ट हो जायेंगे और इसके फलस्वरूप समस्त समाज का पतन हो जायगा—वह अनगिनती छोटे-बड़े दोषों का भण्डार बन जायगा। हमारी सम्मति में भी कलियुग संबन्धी भविष्यवाणियों में सबसे सच्ची बात यही है।

आज हम निस्संकोच कह सकते हैं कि ब्राह्मणों का पतन हो जाने से ही भारतीय समाज वर्तमान दुर्दशा को प्राप्त हुआ है। जब तक ब्राह्मण सच्चे अर्थों में 'राष्ट्र के कर्णधार' थे और अपने तुच्छ स्वार्थ के बजाय जन समुदाय को वास्तविक कल्याणकारी मार्ग दिखलाने में ही

अपनी शक्ति और साधनों का उपयोग करते थे, तब तक यह देश सब तरह से सुखी और अधिकार सम्पन्न बना रहा। पर जब वे स्वार्थ के वशीभूत हो अपने कर्तव्य से विमुख हो गये और लोगों को सन्मार्ग दिखाने के बजाय अपनी पूजा-पाठ की कमाई की खातिर उनको अन्ध-विश्वास के गर्त में धकेलने लगे, तो समाज को गिरते हुए देर न लगी। इस दूषित वातावरण का वर्णन करते हुए 'कल्कि पुराण' में कहा गया है—

यज्ञाध्ययनदानादिवेद तन्त्र विनाशका।
आधिव्याधि जराग्लानि दुःख शोक भयाश्रया॥

'जब कलियुग ने अपना प्रभाव फैलाया तो देश में दल के दल धर्म निन्दक पैदा होने लगे। ये आधि-व्याधि, जरा, ग्लानि, दुख, शोक, भय का आश्रय लेकर यज्ञ, स्वाध्याय, दानादि, धर्म कार्य एवं वेद तन्त्रादि धर्म शास्त्रों के विनाश करने वाले हुए।'

आगे चल कर कहा गया है कि 'ऐसे लाखों समाज को नष्ट करने वाले कलिराज के अनुयायियों ने क्षण भंगुर और कामुक मानव-शरीरधारण किया। वे अत्यन्त दम्भी दुराचारी, माता-पिता-हिंसक कलि-युगानुयायी ब्राह्मण योनि में जन्म लेकर वेद-शास्त्र से विमुख, दरिद्र और शूद्र जाति के उपासक हुए। धर्म बेचने वाले, वेद बेचने वाले, रस और मांस बेचने वाले, संस्कारहीन, अत्यन्त कुतर्कवादी, शिश्नोदरपरा-यण, उन्मत्त, परपत्नीरत, अधम, वर्ण सङ्करों के जनक असंख्यों पैदा हो गए। विवाद और कलह में सुदक्ष, केश विन्यास में निपुण, धनी और ब्याज खाने वाले ब्राह्मण कलियुग में पूज्य माने जाने लगे। उस समय सन्यासी गृहस्थों की तरह रहने लगे, सब मनुष्य गुरुजनों के निन्दक हो गए और धर्मध्वज धारण करने वाले साधु ठगों का धन्धा करने लगे। धनवान् पुरुष ही सज्जन समझे जाने लगे, दूर देश का जल ही तीर्थ हुआ, यज्ञोपवीत—मात्र से ही ब्राह्मणत्व माना जाने लगा और

केवल दण्ड ही सन्यासी का चिन्ह रह गया। पराम्नलोलुप ब्राह्मणगण चाण्डाल-गृह में यजन करने लगे, मेघों ने अल्प जल बरसाना प्रारम्भ किया, पृथ्वी थोड़ा अन्न उपजाने वाली हुई, राजा प्रजा का भक्षण करने लगे और प्रजा करों के भार से व्याकुल होने लगी। कलियुग के प्रथम में ही साधारण जन भगवान की निन्दा करने लगे। दूसरे चरण में भगवान् का नाम तक लेना उन्होंने छोड़ दिया।'

अन्य ग्रन्थों में भी कलियुगीन स्थिति का ऐसा ही चरित्र-चित्रण किया, और यद्यपि उनके रचयिता अधिकांश में ब्राह्मण ही थे, पर उन्होंने कलियुगी ब्राह्मणों के सम्बन्ध में ऐसी कड़ी आलोचनात्मक बातें लिखी हैं। नीचे हम पाठकों के अवलोकनार्थ 'महाभारत' (वन पर्व अ० १९०) में दिए गए 'कलियुग वर्णन' का कुछ अंश उद्धृत करते हैं, जिससे पाठकों को अनुमान हो सकेगा कि अब से सैकड़ों-हजारों वर्ष पूर्व जिन विद्वानों ने इन वर्णनों को लिखा था, वे निस्सन्देह मानव-प्रकृति और समाज के उत्थान और पतन के कारणों के कितने सच्चे ज्ञाता थे—

व्याजैर्धर्मं चरिष्यन्ति धर्मवैतंसिका नराः।
सत्यं संक्षेप्स्यते लोके नरैः पण्डितमानिभिः॥
सत्यहान्या ततस्तेषामायुरल्पं भविष्यति।
आयुषः प्रक्षयाद् विद्यां शक्ष्यन्त्युपजीवितुम्॥
विद्याहीनानविज्ञानाल्लोभोऽप्यभिभविष्यति।
लोभक्रोधपरा मूढाः कामासक्ताश्च मानवाः॥
वैरबद्धा भविष्यन्ति परस्पर वधेप्सिवः।
ब्राह्मणाः क्षत्रीया वैश्या संकीर्यन्तः परस्परम्॥
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपःसत्यविवर्जिताः।
अन्त्या मध्या भविष्यन्ति मध्याश्चान्त्या न संशयः।

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी जातियों के लोग कपट-पूर्वक धर्म का आचरण करेंगे और धर्म का जाल बिछाकर दूसरे लोगों

को ठगने लगेंगे। 'पण्डित' कहलाने वाले लोग भी सत्य का परित्याग कर देंगे। सत्य की कमी हो जाने से उनकी आयु भी घट जायगी, और आयु कम होने के कारण वे जीवन-निर्वाह के योग्य विद्या प्राप्त नहीं कर सकेंगे। विद्या के बिना ज्ञान का होना कैसे सम्भव है? इसलिए उनमें लोभ की प्रबलता हो जायगी। लोभ और क्रोध के वशीभूत हुए मनुष्य कामनाओं के फँसकर आपस में वैर करने लगेंगे और शत्रु भाव से एक दूसरे को मारने को तत्पर होंगे। सब ही चारों वर्णों के स्त्री-पुरुष आचार-भ्रष्ट होकर परस्पर वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न करने लगेंगे। वे तपस्या और सत्य से रहित होकर नीच लोगों के समान हो जायंगे। छोटी जाति वाले ऊँचे वर्णों के कार्य करने लगेंगे और ऊँचे कहलाने वाले नीच कर्मों में सकोच अनुभव अनुभव नहीं करेंगे, इसमें संशय नहीं।'

मार्याभिनाश्च पुरुषा भविष्यन्ति युगक्षये।
मत्स्यामिषेण जीवन्तो दुहन्तश्चाप्यजैडकम्॥
गोषु नष्टासु पुरुषा येऽपि नित्य धृतव्रत।
तेपि लोभसमायुक्ता भविष्यन्ति युगक्षये॥
अन्योन्य परिमुष्णन्तो हिंसयन्तश्च मानवाः।
अजपा नास्तिकाः स्तेना भविष्यन्ति युगक्षये॥
श्राद्धे दैवे च पुरुषा येऽपि नित्यं धृतव्रता।
तेऽपि लोभसमायुक्ता भोक्षयन्तीह परस्परम्॥
न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेदनिन्दका।
न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवाद विमोहिता.।
निम्नेप्वीहां करिष्यन्ति हेतुवादविमोहिताः॥

'उस समय लोग स्त्रियों से ही मित्रता करने वाले होंगे। अनेक लोग मछली मांस से जीविका चलाने वाले होंगे। गायों के नष्ट हो जाने से भेड़, बकरी का दूध व्यवहार में लाने लगेंगे। जो व्यक्ति व्रतों का पालन करने वाले हैं वे भी युग-प्रभाव से लोभी बन जायेंगे। लोग एक दूसरे

को लूटने-मारने लगेंगे और उनमें से अधिकांश भजन-साधन से रहित नास्तिक, परहरणकर्त्ता बन जायेंगे। जो लोग सदैव पराक्रम का त्याग करके शीलशील रहते हैं वे लोभवश देवयज्ञ और मृतक श्राद्धों में खाने लग जायेंगे। ब्राह्मण लोग व्रतों का पालन त्याग कर उल्टा वेदनिन्दक बन जायेंगे, वे यज्ञ और होम को छोड़ बैठेंगे और झूठे तर्कवाद में फँस कर नीच कर्म करने को उद्यत हो जायेंगे।'

प्रायशः कृपणानां हि तथा बन्धुमतामपि।
विधवानां च वित्तानि हरिष्यन्तीह मानवाः॥
स्वल्प वीर्यबलाः स्तब्धा लोभमोहपरायणाः।
तत्कथादान संतुष्टा दुष्टनामपि मानवाः॥
परिग्रहे करिष्यन्ति मायाचार परिग्रहाः।
समाह्वयन्तः कौन्तेय: राजानः पाप बुद्धयः॥
परस्परवधोद्युक्ता मूर्खाः पण्डित मानिनः।
भविष्यन्ति युगस्यान्ते क्षत्रिया लोककण्टकाः॥
अरक्षितारो लुब्धाश्च मानाहंकार दर्पिताः।
केवलं दण्डरुचयो भविष्यन्ति युगक्षये॥

'अर्थपिशाच मनोवृत्ति के मनुष्य दीनों, असहायों और विधवाओं का भी धन भी हड़प लेंगे। उनके शारीरिक बल और पराक्रम क्षीण हो जायेंगे। वे उद्दंड होकर लोभ और मोह में ग्रस्त रहेंगे। वैसी ही चर्चा, प्रशंसा करने और उनसे दान लेने में प्रसन्नता अनुभव करेंगे। कपटपूर्ण आचरण करते हुए वे बुरे लोगों के दान को भी ग्रहण कर लेंगे। राजा लोग पाप-परायण होकर एक-दूसरे का प्राण लेने को उद्यत होंगे और ब्राह्मण मूर्ख और नीच होते हुए भी पण्डिताई का दावा करेंगे। क्षत्रीय लोग (शासक-वर्ग) जगत के लिए कंटक स्वरूप बन जायेंगे। उस समय उनको प्रजा की रक्षा की ओर जरा भी चिन्ता न होगी केवल उनसे रुपया एँठकर अपना घर भरने का ध्यान रखेंगे। सदा मान और अहङ्कार के

मद में चूर रहेंगे और प्रजा को अनावश्यक रूप से दण्डित करते रहेंगे।

आक्रम्याक्रम्य साधूनां दारांश्चापि धनानि च।
भोक्ष्यन्ते निरनुक्रोशा रुदतामपि भारत॥
न कन्यां याचते कश्चिन्नापि कन्या प्रदीयते।
स्वयंग्राहा भविष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥
म्लेच्छीभूतं जगत् सर्वं भविष्यति न संशयः।
हस्तो हस्तं परिमुषेद् युगान्ते समुपस्थिते॥
सत्यं संक्षिप्यते लोके नरैः पण्डितमानिभिः।
स्थविरा बालमतयो बालाः स्थविरबुद्धयः॥
एकहार्यं युगं सर्वं लोभ मोह व्यवस्थितम्।
अधर्मो वर्द्धते तत्र न तु धर्मः प्रवर्तते॥

'लोग ऐसे हुए हो जायेंगे कि सीधे-सादे भले मानसों पर बलात्कार करके उनके धर्म और स्त्री आदि का बल पूर्वक अपहरण करने लगेंगे और उनके रोने-पीटने पर भी कुछ ध्यान न देंगे। उस समय न तो कोई किसी से कन्या की याचना करेगा। और न कन्यादान ही करेगा वर-कन्या स्वयं ही एक दूसरे को पसन्द कर लेंगे। तब सारा जगत म्लेच्छमय हो जायगा और एक हाथ दूसरे हाथ को लूटेगा—अर्थात् सगा भाई ही भाई के धन को हड़प लेगा। अपने को पण्डित मानने वाले मनुष्य सत्य को मिटा देंगे। बूढ़ों की बुद्धि बालकों जैसी और बालकों की बूढ़ों के समान हो जायगी। सब कोई लोभ और मोह में फंसकर भक्ष्याभक्ष्य का विचार किए बिना सम्मिलित भोजन करने लगेंगे। अधर्म बढ़ेगा और धर्म विदा हो जायगा।'

न कश्चित् कस्यचिच्छ्रोता न कश्चित् कस्यचिद् गुरुः।
तमोग्रस्तस्तदा लोको भविष्यति जनाधिप॥
अल्प स्वल्पा गृहालिंग च प्रभविष्यति।

न कश्चित्कस्यचिद् दाता भविष्यते युगक्षये ।
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।
केशशूलाः स्त्रियश्चापि भविष्यन्ति युगक्षये ॥

क्रयविक्रय काले च सर्वः सर्वस्य वञ्चनम् ।
युगान्ते भरतश्रेष्ठ वित्तलोभात् करिष्यति ॥
आरामांश्च व वृक्षाश्च नाशयिष्यन्ति निर्व्यथाः ।
भविता संशयो लोके जीवितस्य हि देहिनाम् ॥

'उस समय कोई किसी का उपदेश नहीं सुनेगा और न कोई किसी को गुरु मानेगा। समस्त जगत् एक प्रकार के अन्धकार से ग्रस्त होगा। लोगों के पास सम्पत्ति का अभाव होगा, वे दिखावे के लिए साधु वेश धारण कर लेंगे हिंसा की भावना बढ़ जायगी और कोई किसी को कुछ देने वाला न होगा। उस समय सभी ग्राम नगर आदि अन्न बेचेंगे ब्राह्मण वेद बेचने वाले होंगे, स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति अपना लेंगी। लोग बगीचों के वृक्षों को भी काट डालेंगे और इससे उनको किसी प्रकार का खेद नहीं होगा। उस समय लोगों के जीवित रहने में भी शङ्का हो जायगी।'

दस्युभिः पीडिता राजन् काका इव द्विजोत्तमाः ।
कुराजभिश्च सततं करभार प्रपीडिता ॥
धैर्य त्यक्त्वा महीपाल दारुणे युगसंक्षये ।
विकर्माणि करिष्यन्ति शूद्राणां परिचारकाः ॥
निर्विशेषा जनपदास्तथा विष्टिकरार्दिताः ।
आश्रमानुपलयस्यन्ति फलमूलोपजीविनः ॥
भर्तृणा वचने चैव न स्थास्यन्ति ततः स्त्रियः ।
पुत्राश्च मातापितरौ हनिष्यन्ति युगक्षये ॥
जन परिजनं चापि युगान्ते पर्युपस्थिते ।

अथ देशान् दिशश्चापि पत्तनानि पुराणि च।
क्रमशः संश्रियष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते॥

'श्रेष्ठ ब्राह्मण भी लुटेरों से पीड़ित होकर व्याकुल-भाव से चारों तरफ फिरने लगेंगे। राजाओं (शासक-वर्ग) के कर भार से दुःखी और धैर्यहीन होकर वे शूद्रों की नौकरी करने लगेंगे। उस समय सभी मुआश्रमों के निवासी एक-सी वेषभूषा बना लेंगे। लोग बेगार लेने वालों और कर वसूल करने वालों से पीड़ित होकर निर्जन स्थानों में चले जायेंगे और वन के फल-फूल खाकर गुजर करने लगेंगे। स्त्रियाँ पति के वचनों पर कुछ भी ध्यान न देंगी और पुत्र माता-पिता को मारने में संकोच न करेंगे। उस समय लोग अपने परिवार वालों को भी त्याग देंगे। बहुसंख्यक लोग स्वदेश छोड़कर दूसरे देशों, दिशाओं, नगरों, गाँवों का आश्रय लेंगे।'

'श्री मद्भागवत' भी 'महाभारत' की तरह ही महत्वपूर्ण और मौलिकता से युक्त है। उसका कलियुग वर्णन है तो इससे मिलता-जुलता ही, पर उसकी शैली में कुछ भिन्नता है और कई बातें उसकी आजकल प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रही हैं। उसमें कलियुगी धर्म (स्कन्ध १२ अ० २) का वर्णन करते हुए कहा गया है—

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया।
कालेन बलिना राजन् नङ्क्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः॥
वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः।
धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि॥
दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि॥
लिङ्गमेवाश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम्।
अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः॥

अनाढ्य एवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥

'समय बड़ा बलवान् है। जैसे-जैसे कलियुग बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे ही धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरण शक्ति का लोप होता जायगा। कलियुग में जिसके पास धन होगा, उसी को लोग कुलीन, सदाचारी और सद्गुणी मानेंगे। जिसके हाथ में शक्ति होगी वही धर्म और न्याय की व्यवस्था अपने अनुकूल करा सकेगा। विवाह-सम्बन्ध के लिए कुल, शील, योग्यता आदि की निरख-परख नहीं रहेगी, युवक-युवती का मन मिल जाने से ही विवाह सम्पन्न हो जायगा। जो जितना छल-कपट कर सकेगा वह उतना ही व्यवहार-कुशल माना जायगा। स्त्री-पुरुष की श्रेष्ठता का आधार उनका शील-संयम न होकर उनका रति-कौशल ही रहेगा। ब्राह्मण की पहिचान उनके गुण-स्वभाव से नहीं यज्ञोपवीत से हुआ करेगी। वस्त्र, दण्ड-कमण्डल आदि से ही ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि की पहचान होगी, और एक दूसरे का चिन्ह स्वीकार कर लेना ही एक से दूसरे आश्रम में प्रवेश का स्वरूप होगा। जो घूस देने या धन खर्च करने में असमर्थ होगा उसे अदालतों में ठीक न्याय न मिल सकेगा। बात-चीत में चालाक होने से ही पण्डित माना जायगा। गरीब होना ही असाधुता, दोषी होने का चिन्ह होगा और जो जितना दम्भ कर सकेगा वह उतना ही साधु मान लिया जायगा। विवाह परस्पर की स्वीकृति से हो जायगा और शृङ्गार कर लेने से ही स्नान करना मान लिया जायगा।'

दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम्।
उदरम्भरता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि ॥
दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम्।
एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ॥
ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः।

प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निघृं र्णदस्युधर्मभिः ॥
अनावृष्ट्या विनंक्ष्यन्ति दुर्भिक्षकर पीड़िताः ।
शीत वातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ॥
क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तप्स्यन्ते च चिन्तया ।
त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥

'लोग दूर के तालाब को ही तीर्थ मान लेंगे, सिर पर बड़े-बड़े बाल रखना ही सुन्दरता का चिन्ह समझा जायगा, अपना पेट भर लेना ही बड़ा पुरुषार्थ होगा, जो जितनी ढिठाई से बात कर सकेगा वह उतना ही सच्चा मान लिया जायगा। अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण कर लेना ही सबसे अधिक योग्यता मानी जायगी, 'धर्म' [redacted] सेवन यश के लिए किया जायगा। इस प्रकार जब पृथिवी में सर्वत्र दुष्टों की प्रधानता हो जायगी, तब राज्य व्यवस्था भी दूषित हो जायगी। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र आदि में से जो भी शक्तिशाली, बलवान पुरुष होगा वही शासक बन जायगा। ये शासक अत्यन्त लोभी, निर्दय और लुटेरे होंगे। वे जन-साधारण के धन तथा स्त्रियों तक को लूटने में संकोच न करेंगे। इसके फलस्वरूप सर्वसाधारण सदैव भूख-प्यास, चिन्ता, रोग आदि से दुःखी रहेंगे। उनकी आयु भी बहुत थोड़ी—बीस, तीस वर्ष की ही रह जायगी।

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलि दोषतः ।
वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥
पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ।
चौर्यानृतवृथाहिंसानाना वृत्तिषु वै नृषु ।
शूद्रप्रायेषु वर्णेषु च्छागप्रायासु धेनुषु ।
गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौन प्रायेषु बन्धुषु ॥
इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मिणि ।
धर्मं त्राणाय सत्वेन भगवानवतारिष्यति ॥

'कलियुग के दोषों से लोगों के शरीर भी क्षीण हो जायेंगे और वर्णाश्रम धर्म का प्रकाशक वेद-मार्ग नष्ट हो जायगा। धर्म में पाखण्ड बहुत अधिक बढ़ जायगा, शासक-वर्ग लुटेरों की तरह बन जायगा और लोग जीवन-निर्वाह के लिए सामान्यतः चोरी, झूँठ, हिंसा का व्यवहार करने लगेंगे। सब वर्णों के मनुष्यों का आचरण शूद्रों जैसा मर्यादा रहित हो जायगा, गायें बकरियों की तरह दूध देने वाली हो जायेंगी। संन्यासियों के आश्रम गृहस्थियों के घरों की तरह बन जायेंगे और जिनसे विवाह-सम्बन्ध होगा उन्हीं को सच्चा सम्बन्धी माना जायगा। इस प्रकार का कलियुगी वातावरण छा जाने पर लोग गधों की तरह भार ढोने वाले और विषयी हो जायेंगे। ऐसी तामसी अवस्था हो जाने पर भगवान पुनः सतोगुण लाने के लिए स्वयं अवतार लेंगे।'

वर्तमान दशा को देखते हुए इस वर्णन में कितनी यथार्थता है, इसे पाठक स्वयं अनुभव करते होंगे। समाज में जो नीचतापूर्ण स्वार्थ-भावना तथा स्त्री-पुरुषों में भ्रष्टाचार और चरित्रहीनता का व्यवहार इसमें वर्णन किया गया है वह आज प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि आज सभी लोग ऐसे ही हो गये हैं, क्योंकि भले-बुरे व्यक्ति तो सब कालों में रहेंगे, पर आज ऐसे 'कलियुगी' व्यक्ति लाखों-करोड़ों की संख्या में प्रत्येक देश में मिल सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

'विष्णु पुराण' में महर्षि पाराशर ने बतलाया है कि जिस समय कलियुग की प्रबलता होगी तो समस्त सामाजिक व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी और नर-नारियों में बहुत से दोष बढ़ जायगे। यद्यपि काम, क्रोध, लोभ आदि के दुर्गुण किसी परिमाण में मनुष्यों में सदा ही बने रहते हैं, पर प्राचीन समय में जब उनको पाप की तरह माना जाता था, तो लोग यथासम्भव इन प्रवृत्तियों को दबाकर रखते थे। पर कलियुग में छोटे-बड़े सभी लोगों में उनका प्राबल्य हो जाने से सामाजिक मर्यादा भङ्ग

हो जायगी और लोग इन बातों में किसी प्रकार के संकोच या पाप का अनुभव नहीं करेंगे। जिसके मन में जो आवेगा उसी तरह करने में सब अपने को स्वतन्त्र समझेंगे। पुराणकार ने इस स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए कहा है–

सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचनं द्विज।
देवता च कलौ सर्वा सर्वस्सर्वस्य चाश्रमः।।
उपवासस्तथायासो वित्तोत्सर्गस्तपः कलौ।
धर्मो यथाभिरुचिरैरनुष्ठानैरनुष्ठितः।।
वित्तेन भविता पुंसां स्वल्पेनाढ्यमदः कलौ।
स्त्रीणां रूपमदश्चैव केशैरेव भविष्यति।।
परित्यक्ष्यन्ति भर्त्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः।
भर्त्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम्।।
यो वै ददाति बहुलं स्वं स स्वामी सदा नृणाम्।
स्वामित्वहेतुस्सम्बन्धो न चाभिजनता तथा।।
गृहान्ता द्रव्यसंघाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः।
अर्थाश्चाशेषोपभोगान्ता भविष्यन्ति कलौ युगे।।

'कलियुग में जिसके मुंह से जो निकल जाय वही 'शास्त्र' मान लिया जायगा, सब कोई देवता बन बैठेंगे और जो जिस आश्रम को चाहेगा उसी को अपना लेगा। उपवास व्रत आदि ही बहुत बड़ा काम मान लिया जायगा, धन दे देना ही बड़ा तप हो जायगा और अपनी पसन्द से जो जिस अनुष्ठान को कर लेगा वही 'धर्म' हो जायगा। लोग थोड़े से धन से ही अपने को सेठ, साहूकार समझने लगेंगे और स्त्रियाँ केश विन्यास से ही सौन्दर्य का गर्व करने लगेंगी। वे धनहीन पति का त्याग कर देंगी, जो अधिक धन दे सकता है वही स्त्रियों का वास्तविक पति होगा। उस समय पुराने सम्बन्ध अथवा कुलीनता का ख्याल न करके जो अधिक धन देगा उसी को स्वामी माना जायेगा। गृह-संचालन के

लिए ही समस्त द्रव्य होगा, और द्रव्य कमाने में ही मनुष्य की समस्त बुद्धि संलग्न रहेगी, और उस द्रव्य का उद्देश्य स्वयं आराम से जीवन बिताना ही होगा।'

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः।
अन्याय वाप्तवित्तेषु पुरुषः स्पृहयालवः॥
अभ्यर्थितापि सुहृदा स्वार्थं हानिं न मानवाः॥
पणार्धोर्द्धमात्रेऽपि करिष्यन्ति कलौ द्विज॥
समान पौरुषं चेतो भावि विप्रेषु वै कलौ।
क्षीरप्रदानसम्बन्धि भावि गोषु च गौरवम्॥
यो योऽश्वरथनागाढ्यस्स स राजा भविष्यति।
यश्च यश्चाबलस्सर्वस्स स भृत्य कलौ युगे॥
वैश्याः कृषिवाणिज्यादि सन्त्यज्य निजकर्म यत्।
शूद्रवृत्या प्रवत्स्यन्ति कारुकर्मोपजीविनः॥

'उस समय स्त्रियाँ प्रायः स्वेच्छाचारिणी होकर सुन्दर वेषभूषा वाले पुरुषों को ही चाहेंगी और पुरुष अन्यायपूर्वक अधिकाधिक धन कमाने में ही योग्यता समझेंगे। निकट सम्बन्धियों को प्रार्थना करने पर भी कोई अपनी थोड़ी सी भी स्वार्थ हानि के लिए तैयार न होगा। छोटी जाति वाले ब्राह्मणों के साथ समानता का दावा करेंगे और गायों का भी दूध देने की निगाह से ही आदर किया जायगा। जिसके पास हाथी, घोड़ा, सवारी आदि बहुमूल्य सामग्री होगी वही राजा या शासक बन जायगा और साधन विहीन मनुष्य सज्जन होकर भी उनका सेवक बन कर ही रहेगा। वैश्य लोग अपने स्वाभाविक कर्म – खेती और व्यापार को त्याग कर शिल्प, कारीगरी आदि के कार्यों से जीवन निर्वाह करने लगेंगे।'

'शिव-पुराण' का तो कथारम्भ ही कलियुग वर्णन से हुआ है। जब पुराण-मर्मज्ञ सूतजी प्रयाग में पहुँचे तो वहाँ के दीर्घ-यज्ञ में उपस्थित

ऋषियों-मुनियों ने कलियुग की भयङ्करता का वर्णन करते हुए उनसे उद्धार होने का मार्ग पूछा। उसी समस्या का समाधान करते हुए उन्होंने शिवाराधन का उपदेश दिया था। मुनियों ने कलिकाल में आध्यात्मिक पतन का वर्णन करते हुए कहा था—

प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः।
दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखाः॥
परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः।
परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः॥
देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः।
मातृपितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवाः कामकिंकराः॥
विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः।
धनार्जनार्थमभ्यस्त विद्यामदविमोहिताः॥
क्षत्रियाश्च तथा सर्वे स्वधर्मत्यागशीलिनः।
असत्सङ्गाः पापरता व्यभिचारपरायणाः॥
वैश्याः संस्कारहीनास्ते स्वधर्मत्यागशीलिनः।
कुपथाः स्वार्जनरताः तुलाकर्म कुवृत्तयः॥
तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद् ब्राह्मणाचार तत्पराः।
उज्ज्वलाकृतयो मूढाः स्वधर्मत्यागशीलिनः॥

'कलियुग में मनुष्य पुण्य पथ को त्यागकर दुराचार में प्रवृत्त हो रहे हैं और सत्य व्यवहार से दूर हटते आ रहे हैं। वे दूसरों की निन्दा करने में निपुण हैं और इसी टोह में रहते हैं कि दूसरे के धन को किस प्रकार हड़पा जाय। साथ ही परस्त्रीगामी और निरपराध व्यक्तियों की हिंसा करने वाले बन गये हैं। अध्यात्म तत्त्व को भूल कर वे देह को ही आत्मा मानने लगे हैं और इस कारण पशुओं की तरह विवेक रहित आचरण करने लगे हैं। वे स्त्री के वशीभूत होकर माता-पिता से द्वेष-भाव रखते हैं और इस प्रकार विषय भोगों के दास बने हुए हैं। ब्राह्मण

धन के लोभी होकर धर्म को बेचने लग गए हैं। वे धन कमाने की विद्या ही सीखते हैं और उसी विद्या का बड़ा गर्व दिखाते हैं। क्षत्रियों ने भी प्रजा संरक्षण का कर्तव्य त्याग दिया है और वे कुसङ्ग में रहने वाले पाप कर्मों में लीन और महाव्यभिचारी हो गए हैं। वैश्यों ने अपने जातीय संस्कारों को त्यागकर ठेईमानी का व्यापार अपना लिया है और तोल-नाप में छल करके धन कमाने को ही बड़ा गुण समझ रहे हैं। शूद्र परिश्रम के कार्यों से विमुख होकर ब्राह्मणों के ढंगों को अपना रहे हैं, वैसी ही वेषभूषा बनाकर लोगों को भ्रम में डालना चाहते हैं।"

इस प्रकार सभी पुराणों ने 'कलियुगीन-समाज' की भ्रष्टता के प्रति घृणा और निन्दा का भाव प्रकट किया है और उसका दोषारोपण मुख्यतया ब्राह्मण-वर्ग पर किया है, क्योंकि वे ही समाज के अगुआ हैं। यह तो प्रत्यक्ष है कि इस गिरी-गुजरी हालत में भी अधिकांश भारतीय जनता उनको पूज्य मानती है। प्राचीन काल में जब भारत उन्नति के उच्च सोपान पर स्थित था और उसे जगद्गुरु की पदवी प्राप्त हुई थी, तो उसका श्रेय यहाँ के विद्वान् और त्यागी, तपस्वी ब्राह्मणों को ही दिया गया था। फिर जब उनका पतन हुआ, उसे अपने दोषों के कारण विधर्मी और विदेशियों की दासता स्वीकार करके अपने मस्तक पर कलंक का टीका लगाना पड़ा तो वह उत्तरदायित्व भी ब्राह्मणों का ही माना गया। वास्तव में भारतीय समाज पर उनका प्रभाव इतना अधिक था कि उन्होंने जब जो कुछ निर्णय किया—जो आदेश दिया जो मार्ग दिखलाया, देश के निवासी बिना किसी प्रकार का विरोध किये भले-बुरे का विचार किए उसी के अनुसार चले। इसीलिए पुराण के लेखकों ने, जो प्रायः सभी ब्राह्मण थे, न्यायपरतार्थ ब्राह्मणों को ही देश और समाज की दुर्दशा के लिए दोषी ठहराया। इसका एक उद्देश्य यह भी है, कि ब्राह्मण अपनी भूल को समझें, और जनता को फिर से सही रास्ता दिखलाने के लिए तत्पर हों।

ऊपर धर्मशास्त्रों से कलियुग वर्णन के जो उदाहरण दिए गए हैं, उनके अतिरिक्त अन्य सभी पुराणों में इस सम्बन्ध में इसी प्रकार के भाव प्रकट किए गए हैं। पर उनमें कोई विशेषता नहीं, वरन् कई में तो ऐसा जान पड़ता है कि एक दूसरे की नकल करदी गई है। उन सबका साराश देश-भाषा में गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में बड़े प्रभावशाली रूप में लिख दिया है। साथ ही यह वर्णन स्वाभाविक भी है, और सामान्य बुद्धि के व्यक्ति भी उसका आशय भली प्रकार समझ लेते हैं। गोस्वामी जी ने उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्ड और गरुड़ सम्वाद में किसी प्राचीन कल्प के कलियुग का नामोल्लेख करके उसके दोषों का वर्णन इस प्रकार किया है—

तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नरनारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन
मारग सोई जा कहुँ जो भावा। पण्डित सोई जो गाल बजावा॥
सोई सयान जो परधन हारी। जो करि दंभ सो बड़ आचारी॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥
असुभ बेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं॥
तेई जोगी तेई सिद्ध नर, पूज्यते कलियुग माहिं॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव विप्र श्रुति संत बिरोधी॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥
ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं विप्र गुर घात॥

काकभुशुण्डिजी ने कहा—"उस कलियुग में मैंने अयोध्याजी में जन्म लिया था। वह बड़ा ही दारुण-युग था और उस समय समस्त स्त्री, पुरुष भाँति भाँति के पापों में लिप्त रहने वाले थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय अधर्म पर चलने वाले हो गए थे और कोई शास्त्राज्ञा की तरफ

ध्यान नहीं देता था। सभी मनुष्य मनमाने मार्ग पर चलते थे। जो बहुत बातें बनाता उसी को पण्डित समझा जाता। दूसरों का धन हड़प लेना बड़ी होशियारी की बात मानी जाती थी और जो जितना दम्भ-द्रोह करता वह उतना ही आचरणवान माना जाता। बड़े-बड़े नाखून और विशाल जटायें तपस्वियों के चिन्ह मान लिए गये थे। गन्दा वेष और गन्दा आहार करने वाले योगी और सिद्ध मान लिए जाते थे। अधि-कांश व्यक्ति काम और लोभ जैसे दुर्गुणों में ग्रस्त थे और वे सब आदर्शों तथा महात्माओं की शिक्षाओं का विरोध करने वाले थे। शिष्य गुरु की बातों को सुनते न थे और गुरु शिष्य के आचरणों की तरफ से बेखबर रहते थे। वे गुरु कहलाने वाले शिष्य के धन पर तो अधिकार जमा लेते थे पर उसके अज्ञानान्धकार के दूर करने का प्रयत्न नहीं करते थे। उस युग में सभी लोग ब्रह्मज्ञान, अध्यात्म की बात तो बड़ी-बड़ी करते थे, पर जरा से लोभ के लिए गुरुजनों की हिंसा करने को भी तैयार हो जाते थे।"

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदवादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलियुग कर ॥
नारी मुई गृह सम्पति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी ॥
ते विप्रन सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी ॥
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितहीं ॥
कलि बारहिंबार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥

'कलियुगी मनुष्य दुराचारी और कपटी हो गए और सदैव मोह, मद, ममता आदि में फंसे रहने लगे। तो भी अपने को बड़ा वेदान्त-वादी और ज्ञानी समझते थे। स्त्री के मर जाने और घर की सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर उच्च जातियों के लोग साधु, संन्यासी बन जाते थे और

ब्राह्मणों से पैर पुजाते थे। उधर ब्राह्मण अनपढ़, लालची और चरित्र-हीन थे। वे नीच जाति की स्त्रियों से सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे। कलियुग की एक बड़ी अनोखी बात यह देखने में आई कि तपस्वी कहलाने वाले तो धन सम्पत्ति युक्त दिखलाई पड़ते थे और गृहस्थी दरिद्र थे। राजा लोगों को पाप-पुण्य का कोई ध्यान न था, प्रजा को लूटना-मारना ही उनका काम रह गया था। कलियुग में अकाल तो सदा ही बना रहता था और लोग प्रायः 'हाय अन्न' 'हाय अन्न' कहते हुए ही मरते रहते थे।'

जैसा हम युग परिवर्तन के सम्बन्ध में एक स्थान पर लिख चुके हैं बुरा और भला समय कभी एक-सा नहीं चलता। अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर दशा के रूप में समाज के उत्थान और पतन का चक्र चलता ही रहता है। यद्यपि सामान्य लोगों के मतानुसार राजा परीक्षित के समय से, जिसे ५००० हजार वर्ष हो चुके हैं, कलियुग ही चल रहा है और दिन पर दिन उसकी भयङ्करता बढ़ती जाती है। पर हम जानते हैं कि इसी बीच में महाराज विक्रमादित्य का समय भी आ चुका है जिसे सब कोई 'रामराज्य' मानते हैं और इसी आधार पर उनका संवत् आज तक सर्वत्र माननीय है। उनके कुछ समय बाद राजा भोज का शासन-काल भी 'स्वर्णयुग' के नाम से प्रसिद्ध है। इसीलिए हमको यह मानकर कलियुग के इन वर्णनों को पढ़ना चाहिए कि इन ग्रन्थों के लिखने वे या उनके परिचितों ने इस वर्णनों से मिलते-जुलते समय देखे थे और उन्हीं अनुभवों के आधार पर उन्होंने कलियुग का ऐसा चित्र खींचा है जो आजकल अधिकांश में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है।

पर इन वर्णनों का यह आशय हर्गिज नहीं कि हम इन सब बातों को कलियुग के नाम पर उचित या अनिवार्य मान लें। जहाँ तक हम समझ सकते हैं पुराण-लेखकों ने भी इन वर्णनों को इसी भाव से लिखा है कि पाठकों में इस प्रकार की जघन्य प्रवृत्तियों के प्रति विरक्ति और घृणा का भाव उत्पन्न हो और वे यथाशक्ति इनसे बचने की चेष्टा

करे। 'कलियुगी जीव' कहा जाना किसी के लिए सम्मान की बात नहीं हो सकती और कोई भी सज्जन, सभ्य पुरुष इस प्रकार के सम्बोधन को गर्हित ही मानेगा। चारों युगों का विभाजन शास्त्रकारों ने इसीलिए किया है कि लोग भलाई-बुराई के भेद को समझ जायें और सदैव इस विषय में सावधान रहें कि वे 'युग' की प्रचलित बुराइयों में ग्रस्त न हो जायें। यदि अधिकांश व्यक्ति इस प्रकार की भावना बनाये रहें और समाज के अग्रणी, देश के शासक भी इन बुराइयों को दबाते रहने का ध्यान रखें तो कोई कारण नहीं कि 'महाभारत' में व्यासजी का यह कथन कि 'राजा कालस्य कारणम्' (जैसा राजा होता है वैसा ही युग बर्तने लग जाता है) यथार्थ सिद्ध न हो।

कलियुग की इस दुरवस्था और महान् दोषों का निराकरण करके समाज में सुव्यवस्था और सद्‌गुणों का प्रसार करना ही 'कल्कि अवतार' का उद्देश्य माना गया है। 'अधर्म' का मूलोच्छेद और धर्म' की स्थापना ही पृथ्वी पर अवतरित भगवद् शक्ति का सर्वप्रधान लक्षण बतलाया गया है। इसलिए 'कल्कि' चाहे किसी 'भावनात्मक आन्दोलन' के रूप में प्रकट हों और चाहे किसी व्यक्ति या संस्था, समुदाय आदि के रूप में, यदि वह संसार में से वर्तमान भ्रष्टाचार को मिटाकर न्याय और नीति पर आधारित समाज की रचना में सफलता प्राप्त करके दिखा देंगे, तो यह निश्चय ही 'सबसे बड़ा चमत्कार' माना जायगा और भारत की 'भक्ति-प्राण' जनता ही नहीं योरोप अमरीका के साइंस [विज्ञान] का अभिमान रखने वाले भी उसके सम्मुख तुरन्त नतमस्तक होंगे।

सातवाँ अध्याय

कल्कि-पुराण पर एक दृष्टि और उसका तात्पर्य

पुराणों को दो श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है—महापुराण और उपपुराण। कुछ लोग इसका आशय बड़े और छोटे पुराणों से लगाते हैं, पर यह विचार ठीक नहीं। जिनको उपपुराण कहा गया है उनमें से कई महापुराणों की अपेक्षा बहुत अधिक बड़े और सर्वाङ्गपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए 'देवी भागवत' का उल्लेख किया जा सकता है, जो 'ब्रह्मपुराण', 'विष्णु पुराण', 'अग्निपुराण', 'वामनपुराण' आदि अनेक पुराणों से दुगुने से भी बड़ा है। यह विविध विषयों से युक्त है, पुराणों के पाँचों लक्षण इसमें विस्तारपूर्वक पाये जाते हैं। 'विष्णु धर्मोत्तर' तथा 'हरिवंश' भी काफी बड़े और विशाल ग्रंथ हैं। लेखक सभी महापुराण और उपपुराणों के 'व्यासजी' माने गए हैं। इसलिए केवल 'उपपुराण' कह देने से किसी को छोटा महत्वहीन नहीं माना जा सकता। जनता में तो 'देवी भागवत' 'हरिवंश' आदि का प्रचार अधिकांश पुराणों की अपेक्षा कहीं अधिक है और उनको 'पुराण' की दृष्टि से अधिक मान्यता प्रदान की गई है।

'कल्किपुराण' भी 'उपपुराणों' की सूची में ही आता है, और इस समय उसका जो संस्करण प्राप्त हो रहा है वह बहुत छोटा भी है। यद्यपि 'कल्किपुराण' में ही उसको छः हजार एक सौ श्लोकों का बतलाया गया है, पर इसका जो संस्करण काशी के 'श्रीभारतधर्म महामण्डल' द्वारा स्थापित 'श्री निगमागम पुस्तक भण्डार' द्वारा प्रकाशित किया गया है उसकी श्लोक संख्या डेढ़ हजार के आस-पास ही है। इसका

कारण शायद यह हो कि 'भारतधर्म महामण्डल' के पंडितों ने इसको संक्षिप्त करके 'कल्कि-कथा' सम्बन्धी सामग्री हो इसमें से संगृहीत की हो जैसे कई प्रकाशकों ने 'गरुड़-पुराण' के केवल 'प्रेतखण्ड' को ही पृथक करके उस पुराण के नाम से छाप दिया है। अथवा जैसे 'विष्णुपुराण' तथा 'कूर्मपुराण' आदि आजकल उनमें लिखी हुई श्लोक संख्या से चौथाई और तिहाई की संख्या में ही मिलते हैं, वैसा ही हाल 'कल्कि-पुराण' का भी हो गया हो। जो कुछ भी हो इस समय 'कल्कि पुराण' के नाम से केवल यही पुस्तक बाजार में उपलब्ध है। इसमें तीन अंश और ३५ अध्यायों में 'कल्कि' जन्म, विवाह, म्लेच्छ राजाओं से युद्ध तथा राज्य-शासन आदि का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। यद्यपि यह माना जाता है कि 'कल्कि अवतार' कलियुग के अन्त में होगा, पर इस ग्रन्थ में जितनी भी घटनायें वर्णन की गई हैं वे सब भूतकाल वाचक रूप में ही लिखी गई हैं। अर्थात् उनको इस शैली में लिखा गया है जिससे पढ़ने वाले को यह प्रतीत होता है कि ये सब से पहिले किसी समय हो चुकी हैं। इस सम्बन्ध में पुराणकार ने स्वयं एक स्थान पर स्पष्ट कर दिया है यह लेखन-शैली की ही एक विशेषता है जो पुराण-ग्रन्थों में प्रायः प्रयोग में लाई जाती है।

'कल्कि पुराण' के प्रारम्भ में ही 'दशम अवतार' की जो झांकी दिखाई गई है वह काफी प्रभावपूर्ण है और लेखक की कवित्व-शक्ति परिचायक है—

यद्दोर्दण्ड कराल सर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः।
नेतुः सत्करवालदण्डदलिता भूपाः क्षिति क्षोभकाः॥
शश्वत सैन्धव वाहनो द्विजजनि कल्कि परात्मा हरि।
पराद् सत्ययुगादिकृत स भगवान् धर्म प्रवृत्ति प्रियः॥

अर्थात् 'जिन राजाओं (शासकों) ने पृथ्वी की शान्ति को नष्ट किया है, वे जिसकी भुज-भुजङ्ग विषज्वाला से भस्म होंगे, जिनकी भयङ्कर

खड्ग-धारा से अत्याचारी यूथतों को अच्छी तरह दण्ड दिया जायगा ऐसे ब्राह्मण वंशोत्पन्न श्वेत अश्वारोही, सतयुग आदि विभिन्न युगों में अवतार धारण करने वाले, धर्म-रक्षक भगवान कल्कि तुम्हारी रक्षा करें।'

क्योंकि 'कल्कि' का प्रादुर्भाव कलियुग के दोषों और भीषणता को मिटाने के लिए होगा, इसलिए 'कल्कि-पुराण' में सबसे पहले कलियुग की विकारयुक्त अवस्था का ही वर्णन किया गया है। पुराणकार ने सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर दिया है कि कलियुग की उत्पत्ति 'अधर्म' और 'मिथ्या' के संयोग से होती है। इन दोनों के एकत्र हो जाने से दम्भ, माया, लोभ, निकृति, क्रोध, हिंसा आदि दोषों की उत्पत्ति होती है और ये ही सब आगे चल कर अत्यन्त विकार और भ्रष्टाचार युक्त 'कलियुग' जैसे समय की वृद्धि के कारण बनते हैं। इस प्रकार के दोष जब तक नीच वर्ग के थोड़े-बहुत व्यक्तियों तक सीमित रहते हैं तब तक तो उनका प्रभाव विशेष रूप से अनुभव नहीं होता, पर जब समाज के उच्च और शिक्षित वर्ग—ब्राह्मणों में उनका प्रवेश हो जाता है तो दशा बिगड़ने लग जाती है। उनके उदाहरण को देखकर अधिकांश लोग उसी मार्ग का अनुसरण करने लगते हैं और इससे सर्वत्र अनाचार और दुराचार का बोलबाला हो जाता है, और अन्त में धर्म का लोप होकर अधर्म की ही प्रतिष्ठा होने लगती है—

निःस्वाध्या—स्वधा—स्वाहा—मौषडोंकार वर्जिताः।
देवा. सर्वे निराहाराः ब्रह्माणं शरणं ययुः॥

अर्थात् 'जब यज्ञ, कर्म अथवा परमार्थ, परोपकार, उदारता, सेवा धर्म की भावनायें नष्ट हो जाती हैं [redacted] समस्त देवगण (सत्प्रवृत्तियाँ) भी क्षीण होने लगती हैं और वे विश्व संचालक शक्ति (ब्रह्म) की शरण ग्रहण करके समाज में फँसी दुरवस्था को दूर करने की प्रार्थना करती हैं।'

कल्कि-कथा का एक बहुत बड़ा भाग सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मा के साथ विवाह होने का है। उसमें लेखक ने एक शुक (तोता) को माध्यम बनाकर जिस प्रकार दोनों तरफ प्रेम का सूत्रपात कराया है और फिर विरह की अवस्था दिखलाकर दोनों का मिलन कराया है, वही भारतीय और अन्य देशों की भी अधिकांश प्रेम-कथाओं की शैली है। इसी प्रकार कल्किजी के युद्धों का वर्णन भी उन्हीं गिने-चुने शब्दों में किया गया है जो अन्य पुराणों में वर्णित सैकड़ों देव-दानवों के युद्धों अथवा राजाओं के प्रसिद्ध संग्रामों में पढ़ने को मिलते हैं। अन्त में अपनी कितनी ही रानियों के साथ उनके विहार और रमण आदि का जो दृश्य दिखलाया गया है वह भी अन्य कवियों के शृङ्गार रस वर्णनों से मिलता-जुलता ही है।

पुराण में कल्कि जी का प्रथम युद्ध बौद्धों के साथ दिखलाया गया है और बाद में कलियुग के साथ होने वाले युद्ध में भी शत्रु पक्ष को बौद्धों तथा यवनों के अनुरूप ही चित्रित किया है। अन्य स्थानों पर भी बौद्धों को मारने, हटाने का संकेत मिलता है। अब तो भारतवर्ष में बौद्धों का अस्तित्व एक प्रकार से समाप्त ही हो गया है, और भारतीय धर्म से उनके संघर्ष का वर्णन केवल इतिहास का विषय रह गया है। डेढ़ हजार वर्ष पहले ऐसा समय अवश्य था, जब दोनों दलों में निरन्तर लाग-डांट बनी रहती थी और उनके रक्त रंजित संग्राम भी हुए थे। इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि यह रचना उसी समय के आस-पास की है जब भारतवर्ष में बौद्ध युग प्रचलित था और उसे नष्ट करने के लिए हिन्दू धर्मानुयायियों का पक्ष भी कमर कसके उठ खड़ा हुआ था। उन घटनाओं को देखकर या सुनकर लेखक के दिमाग में उन्हीं युद्धों का नक्शा घूम रहा था और उन्होंने उन्हीं दृश्यों को कल्कि जी के युद्धों में प्रधानता दी है।

पर अन्य पुराणों के वर्णनानुसार उन्होंने उसका प्रारम्भ अश्वमेध यज्ञ के लिए किए जाने वाले युद्धों की तरह किया है और उसके लिए धन संग्रहार्थ कल्कि जी को सर्वप्रथम कीकट देश (मगध या वर्तमान समय का बिहार प्रदेश) पर आक्रमण करते दिखलाया गया है। वहाँ के शासक 'जिन' ने एक बार तो युद्ध में उनको भयङ्कर शस्त्राघात द्वारा संज्ञा शून्य कर दिया, पर वह उनको उठाकर नहीं ले जा सका, जैसे लक्ष्मणजी को शक्ति से मार देने पर भी मेघनाद उनको उठा नहीं सका था। पर अन्त में कल्किजी द्वारा बौद्ध पक्ष सर्वथा नष्ट कर दिया गया।

जब कल्किजी जगन्नाथपुरी पहुँचे तो मुनि-ऋषियों ने उनसे कुथोदरी राक्षसी को मारने का अनुरोध किया जो कुम्भकर्ण के पुत्र निकुम्भ की पुत्री थी। वह इतनी विशालकाय थी। कल्किजी और उनकी सेना उसकी साँस द्वारा खिंचकर उसके पेट में चली गई। पर वे भीतर से उसके पेट को फाड़कर बाहर निकल आये, जिससे कुथोदरी मर गई। ये सब वर्णन पुराणों के देव-दानवों की तरह ही हैं। जिस प्रकार तुलसीदासजी ने कुम्भकर्ण द्वारा लाखों बन्दरों को एक साथ निगल जाने की बात लिखी है उसी प्रकार कल्किजी और उनकी सेना के राक्षसी के पेट में चले जाने की बात कौतूहल का भाव उत्पन्न करने की दृष्टि से ही मानी जा सकती है। अन्यथा मानवाकार शरीरों में इतना अधिक अन्तर न कभी हुआ और न होगा।

कल्कि और कलियुग का संघर्ष—

कुथोदरी को मारकर कल्कि हरिद्वार आ गये, जहाँ उनकी भेंट मरु और देवापि नामक राजाओं से हुई जो अब तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहे थे। मरु ने अपने को रघुवंशी बतलाया और कल्किजी के पूछने पर समस्त राम-कथा का सारांश उनको सुना दिया। उस समय 'मर-

युग' और 'धर्म'' भी सम्राटों और ब्राह्मणों के रूप में वहाँ आ गये। ये चारों व्यक्ति कल्किजी के पक्के अनुयायी बनकर म्लेच्छों से युद्ध करने और धर्म-संस्थापन के कार्य में सदैव उनके साथ रहे। कहा गया है कि 'धर्म'' के साथ उसके अनुयायी भी थे। उनके नाम थे—ऋत (सत्य) प्रसाद, अभय, सुख, प्रीति, योग, अर्थ, स्मृति, क्षेम, प्रतिश्रय। इनके अतिरिक्त श्रद्धा, मैत्री दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा ह्री आदि भी मूर्तिमान रूप में उसके साथ थे।'

इस उद्धरण में कल्कि की सेना का वर्णन प्रतीकात्मक प्रकट होता है। ऋत, अभय श्रद्धा, मैत्री, दया आदि धर्म के अंग ही हैं और कल्कि (धर्म पक्ष) तथा कलियुग (अधर्मपक्ष) के संघर्ष में इनका कल्कि के साथ रहना स्वाभाविक ही है। जब धर्म कल्किजी के साथ शत्रुओं पर विजय-यात्रा के लिए उद्यत हुआ तो उसके शस्त्रों तथा रथ का जो वर्णन किया गया है वह भी प्रतीकात्मक होना चाहिए। इस विषय में लेखक कहते हैं—

साधु सत्कार ही युद्ध के लिए प्रस्तुत 'धर्म'' का वेष हुआ। वेद और ब्रह्म महाप्रभ स्वरूप से प्रकट हुए। अनेक शास्त्रों का अन्वेषण धर्म का धनुष हुआ। वेद के सात स्वर उसके रथ के अश्व, भूदेव सारथि अग्नि आसन हुआ। इस प्रकार धर्मरूप नायक ने अनेक क्रियानुष्ठानों के रूप में बड़े बल से युक्त होकर यात्रा की।' उधर कलियुग के जो सहयोगी कल्कि-सेना से युद्ध करने आये उनमें 'दंभ, लोभ, क्रोध, भय, निरय, आधि-व्याधि, ग्लानि, जरा' आदि के नामों का उल्लेख किया गया है। ये सब अधर्म के अंग ही हैं। इस प्रकार लेखक ने यहाँ पर इस बात का संकेत किया है कि कल्कि और कलियुग का संघर्ष एक प्रकार से भावात्मक माना जा सकता है और सूक्ष्म दृष्टि से विचार न किया जाय तो यह संसार में सदैव होता रहता है।

तो उसमें भी कोई दोष नहीं। शशिध्वज ने कहा कि कल्किजी दैवी पुरुष अवश्य हैं और हम उनकी पूजा भी करते हैं, पर जब वे एक विजयी योद्धा के रूप में हमारे नगर पर आते हैं तो हमको संग्राम भूमि में उनका मुकाबला भी करना चाहिए। इससे न उनके प्रति कोई शत्रुता का भाव होगा न हमारी श्रद्धा में कोई कमी आवेगी। हम केवल उन की बनाई मर्यादा का पालन करने वाले माने जायेंगे। युद्ध समाप्त होने पर फिर भी वे भगवान् और हम भक्त ही बने रहेंगे। कर्तव्य का प्रश्न आने पर एक बार भगवान् कृष्ण और अर्जुन के बीच भी युद्ध ठन गया था और इसी सिद्धान्त के आधार पर श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को भीष्म जैसे पूजनीय सम्बन्धी से लड़ने की प्रेरणा की थी।

'कल्कि-कथा' के अनुसार जब युद्ध करते हुए कल्किजी शशिध्वज के प्रहार से अचेतनसे हो गए तो वह उनको उठाकर अपने महलों में ले गया और पत्नी सहित सेवा सुश्रूषा करके उनको स्वस्थ किया। दोनों पक्षों में मेल हो जाने पर युद्ध बन्द कर दिया गया और शशिध्वज ने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कल्किजी के साथ कराके उनको सब प्रकार से सन्तुष्ट और प्रसन्न किया। उन्होंने अन्य राजाओं के प्रश्न करने पर यह भी प्रकट किया कि कृष्णावतार के समय भी सत्राजित के रूप में भगवान् कृष्ण के श्वसुर थे और अपनी कन्या सत्यभामा का विवाह भगवान् के साथ किया। उन्होंने कहा कि मैंने अनेक जन्मों में भगवान् की भक्ति करके ही यह महान् पदवी प्राप्त की है और भक्ति ही मानव जीवन का सार है। इस समय मैं उन्हीं भगवान् को कल्कि जी के रूप में अपने सम्मुख देख रहा हूँ। इसीलिए अपनी कन्या और सर्वस्व को उन्हें समर्पित करके मैं अन्त समय में उसी भक्ति-मार्ग का ही अनुसरण करता हूँ।

भगवान् कल्कि इसके पश्चात् भी अनेक दुष्कर्मरत व्यक्तियों का ध्वंस करके धर्म-संस्थापन का कार्य करते रहे। उन्होंने नागों की

इस समय केवल पृथ्वी-तल पर ही भीषण ध्वंस की तैयारियाँ नहीं हो रही हैं वरन जल, थल और अन्तरिक्ष तीनों में मृत्यु के अभूत-पूर्व यन्त्र इकट्ठे किए जा रहे हैं। अवस्था यहाँ तक गम्भीर हो गई है कि यदि आज किसी एक सत्ताधारी व्यक्ति को सनक सवार हो जाय तो वह किसी भी दिन इस 'बारूद के पर्वत' में चिनगारी छोड़कर समस्त जगत् को एक ज्वालामुखी के रूप में परिणित कर सकता है। उस समय न छोटा बच सकेगा और न बड़ा — न आक्रमण किया जाने वाला शेष रहेगा और न आक्रमण करने वाला, न हारने वाला जीवित रहेगा और न जीतने वाला। इस भीषण-भविष्य से भगवान् ही मानव-जाति की रक्षा कर सकते हैं। इसलिए किसी भी रूप में भगवत्-शक्ति का प्रकट होना आवश्यक है। चाहे प्रेम से और चाहे दण्ड से वे ही इस संसार की रक्षा कर सकते हैं। अगर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम 'कल्कि अवतार' की कल्पना करें तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं है। 'कल्कि' शब्द नवीन और उत्कृष्ट मानव सभ्यता का प्रतीक माना जा सकता है।

'कल्कि' के अनेक रूप—

'कल्कि' कहाँ होंगे, कब होंगे और किस रूप में होंगे? इसका निर्णय विचारशील लोग स्वयं कर सकते हैं। ऐसे संक्रान्ति-काल में दैवी शक्ति का प्रकट होना अनिवार्य है, इतना ही हा जानना हमारे लिए पर्याप्त है। वह शक्ति कब, कहाँ और कैसे सांसारिक मनुष्यों को अपना परिचय देगी? यह एक गौण प्रश्न है और इस विवाद को उठाना विशेष महत्व की बात नहीं। गुलाब का फूल किसी भी क्यारी में खिले वह बगीचे को सुरभित बनायेगा ही, उसकी सुगन्ध दूर-दूर के लोगों को कुछ लाभ पहुँचायेगी ही।

तो भी हमारे अनेक भाई कौतूहल पूर्वक यह पूछते ही रहते हैं कि 'अगामी अवतार' कब तक प्रकट हो जायगा? वह किस भूभाग को सुशोभित करेगा? हमारे सनातन धर्मी भाई तो परम्परागत बातों का

अधिक महत्व मानकर उत्तरप्रदेश के 'सम्भल' नामक कस्बे को 'भगवान् कल्कि' का जन्म-स्थान मान रहे हैं और वहाँ बहुत वर्षों से उनका एक मन्दिर भी बना रखा है। 'थियोसोफिकल सोसाइटी' की संस्थापिका मैडम ब्लैवटस्की ने अपनी 'सीक्रेट डाक्टरिन' पुस्तक में 'शम्भल' का पता चीन स्थित गोबी के रेगिस्तान में बतलाया है, जहाँ कोई मानव नहीं पहुँच सकता। 'सतयुग' मासिकपत्र (नवम्बर १९४०) के एक लेखक श्री भारद्वाज रघुनाथ ने उड़ीसा के सिद्धयोगी अच्युतानन्द दास रचित 'मालिका' ग्रन्थ के आधार पर, जो इस समय भी वहाँ के मन्दिरों में ताड़पत्र पर लिखा मिलता है, यह बतलाया था कि 'शंभल पुरी' उड़ीसा में है और वहीं पर 'कल्कि अवतार' होगा। इसके लिए उन्होंने 'मालिका' का एक उद्धरण दिया था जो उड़िया भाषा में है—

जाण भोसुक नदी शाउन्ति मेंघि।
प्रपुना गाईं चीर नाम ता दुधि।
भयतद्ध पेण्ट
गिरि उपरे देख उदय वट।
भगड़े नदी आसे उजाणि फेरी।
नदीर उत्तर कु शंभल पुरी।
पश्च पोखरी
पोखरी पश्चिम कु लिङ्ग बिहारी ॥

"इस पद्य के अनुसार इस समय भी उड़ीसा में 'दुधि' नाम की नदी मौजूद है। उदयगिरि नाम का पर्वत भी है और बिल्कुल पास ही एक वट वृक्ष है। इस स्थान से थोड़ी दूर उत्तर की तरफ शमलपुरी (वर्तमान नाम धारगपुर) है। इसके पास ही एक शिव-मन्दिर में 'लिंग-बिहारी' विराजमान हैं। दुधि नदी धारगपुर के दक्षिण और पश्चिम की तरफ बहती है और उसने 'सम्भल' को दो तरफ से घेर रखा है।

हमने यह लेख आज से २८ वर्ष पहले 'सत्युग' में प्रकाशित किया था, इस तरफ ज्यादा ध्यान इसलिए नहीं दिया था कि अनेक लोग इसी प्रकार अपने-अपने प्रदेशों को भावी अवतार की लीला भूमि बतलाते हैं। पर अब कल्कि पुराण' को 'श्रीभारतवर्ष महामण्डल' द्वारा प्रकाशित तथा काशी के प० दामोदर शास्त्री द्वारा सम्पादित और सन् १९०७ में प्रकाशित पुस्तक का अवलोकन करते समय हमको यह देखकर कुछ आश्चर्य हुआ कि उसमें भी उड़ीसा का जिक्र आया है। जैसा कि इस पुराण के कथा-भाग में वर्णित है श्री कल्कि भगवान् महेन्द्र पर्वत पर परशुरामजी पास वेदाध्ययन और शास्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करने गए थे।' यह महेन्द्र पर्वत कहाँ है, इस सम्बन्ध में उक्त पुस्तक में यह फुट नोट दिया गया है—

"पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ जी) में ऋषिकुल्या नाम की नदी है। यह गोन्दवन देश की पर्वतमाला से उत्पन्न हुई है। इसी स्थान में 'महेन्द्रमाली नाम से एक पर्वत' प्रख्यात है। यही महेन्द्र पर्वत है। यह महेन्द्र पर्वत माना उड़ीसा के उत्तर गञ्जाम जिले से गोन्दवन तक फैली हुई है। भारतवर्ष के सात कुलाचलों में से महेन्द्र पर्वत भी एक है।"

इससे विदित होता है कि जिन लोगों ने उड़ीसा स्थित 'शम्भल' को कल्कि का स्थान माना है उनके पास वैसा अनुमान करने का कोई कारण था। पर अन्य स्थानों वाले भी अपनी बात के लिये अन्य प्रकार के प्रमाण देते हैं। अभी बङ्गाल के स्वामी जगदीश्वरानन्द ने 'Kalki Comes in 1985' (कल्कि भगवार सन् १९८५ में होगा) नाम की पाँच सौ पृष्ठ की अंगरेजी पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि "हिन्दु शास्त्रों मे उल्लिखित दस अवतारों में से अब एक शेष रहे एक मात्र अवतार 'कल्कि', कोल वर्ष के बाद बङ्गाब्द १३६२ बैशाख शुक्ल द्वादशी (सन् १९८५ ईसवी के प्रथमार्ध)

भविष्य में ही कल्पना कर रहे हैं। हमारा अनुमान इस विषय में इतना ही है कि वर्तमान घोर अव्यवस्था और विश्व का नाश करने वाले महायुद्ध की प्रतिदिन बढ़ती हुई सम्भावना को देखते हुये किसी रूप में 'दैवी शक्ति' का हस्तक्षेप अनिवार्य है। इस विश्व रक्षा के कार्य-क्रम का प्रत्यक्ष संचालक कोई भी हो, सर्व साधारण उसे "जगत उद्धारक" ही मानेंगे।

उसे 'कल्कि', 'ईसा', 'मेंहदी', 'मैत्रेय', (बौद्ध) या यहूदी, पारसी आदि मजहब वालों की मान्यता के अनुसार किसी नाम से पुकारा जाय। हमारा कोई आग्रह नहीं। और न हम उनके प्राकट्य की कोई तिथि नियत करने को उचित कह सकते हैं। 'दैवी' घटनाओं का निश्चयात्मक ज्ञान मनुष्य को नहीं हो सकता। वह इस सम्बन्ध में शुभ अनुमान ही कर सकता है। हमारे अनुमान का आधार यही है है कि जब जब संसार पर कोई ऐसा घोर संकट आया है, कि मानव-सभ्यता का अन्त होने का भय उपस्थित हो जाय, तभी कोई न कोई दैवी शक्ति किसी व्यक्ति या घटना अथवा विचार के रूप में सम्मुख आई है और उससे मानवता की रक्षा हो सकी है। गीता में भगवान कृष्ण के आश्वासन का अर्थ भी यही है कि वे सत्य और न्याय की पूर्ण रूप से हत्या नहीं होने दे सकते और समय रहते उसकी रक्षार्थ अवश्य प्रकट होते हैं। इसलिये आगामी दस-बीस-तीस वर्षों में ऐसी किसी शक्ति के आविर्भाव पर विश्वास रखना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

'कल्कि पुराण' पर यदि घटनाओं की दृष्टि से विचार किया जाय तो वे सब प्राचीन-काल के वातावरण के अनुसार ही लिखी गई कथाएँ हैं और आज उनके उसी रूप में घटित होने की कोई आशा नहीं की जा सकती। इसमें हर जगह बाण, तलवार, गदा आदि से युद्ध होने का वर्णन किया गया है जिनको इस रायफल, मशीनगन, बम और

सभ्य पुरुष की तरह ही होगा। अगर 'अवतार' का कार्य-क्षेत्र अकेला भारतवर्ष ही होता तब भी थोड़ी देर के लिए इस सम्भावना पर विचार किया जा सकता था, पर इस समय जो कोई भी मानवता के उद्धार और उत्थान का प्रयत्न प्रारम्भ करेगा उसे समस्त संसार के लोगों से सम्बन्धित रहना पड़ेगा और सब देश वालों के साथ आत्मीयता का व्यवहार करके उनका विश्वास प्राप्त करना होगा। ऐसा व्यक्ति यदि किसी एक देश की प्राचीन सभ्यता और रहन-सहन के भीतर आबद्ध हुआ तो अन्य देश तथा धर्म वालों को कदापि प्रभावित नहीं कर सकता।

इन सब बातों पर विचार करने से हम स्वभावतः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'कल्कि पुराण' का मुख्य उद्देश्य कलियुग की दूषित भावना की बुराइयाँ दिखलाकर सर्व साधारण को उसके कुप्रभाव से बचाना है। यदि मनुष्यों के हृदय में यह विचार जड़ जमा ले कि कलियुगी व्यवहार वास्तव में अत्यन्त गर्हित और घृणित हैं और भगवान भी उसके विरुद्ध हैं, तो वे उससे दूर रहने की चेष्टा कर सकते हैं। पाप से बचने और पुण्य की तरफ आकर्षित होने का उपदेश यों तो सभी सद्ग्रन्थ और साधु देते हैं, पर सामान्य पाठकों पर उसका प्रभाव कम पड़ता है। पर जब उसको कथा रूप से कहा जाता है और पाप का दुष्परिणाम तथा पुण्य का शुभ सुखदायक परिणाम अन्य लोगों के उदाहरण के साथ वर्णन किये जाते हैं, तो वह बात उनकी समझ में जल्दी आ जाती है। इसलिए यदि कल्कि पुराण के लेखक ने "कलियुग तथा कल्कि" की कथा को मनोरंजक और प्रभाव वाली ढङ्ग से वर्णन किया, और उसे पुराने पुराणों की शैली पर ऐसे ढङ्ग से लिखा है कि जिससे धार्मिक तथा अन्य-विश्वासी दोनों का ध्यान उधर आकर्षित हो और वे उसे श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखें, तो इसके लिये हम उसे किसी तरह दोष नहीं दे सकते। हमारा कर्तव्य है कि हम कथा के साथ ही उसके मूल उद्देश्य [redacted] भी ध्यान रखें, और जहाँ तक सम्भव हो धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझ कर तदनुसार व्यवहार करें।

बतलाइये।' यह बात सुनकर राजा कुछ नहीं बोले। बाष्कलि ने फिर यही प्रश्न किया और राजा चुप ही रहे। जब चार-पाँच बार ऐसा ही हुआ तो उन्होंने बाष्कलि से कहा—"मैं तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर बराबर दे रहा हूँ, परन्तु वह तुम्हारी समझ में ही नहीं आता तो मैं क्या करूँ? ब्रह्म स्वरूप किसी तरह समझाया नहीं जा सकता, इसलिये चुप रहना ही सच्चा ब्रह्म लक्षण है।"

जब ज्ञान-मार्ग में इतनी कठिनाई है और निराकार अथवा अव्यक्त ब्रह्म को समझ सकना विरले ही लोगों के लिए सम्भव है, तब सामान्य जन उसे किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं और कैसे उस मार्ग का अनुसरण करके भगवान को प्राप्त कर सकते हैं? अव्यक्त अथवा निर्गुण ब्रह्म की उपासना का विवेचन करते हुए लो॰ तिलक ने लिखा है :—

'उपनिषदों में जिस श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, वह इन्द्रीयातीत, अव्यक्त, अनन्त, निर्गुण और "एकमेवाद्वितीय' है, इसलिए उपासना का आरम्भ उस रूप से नहीं हो सकता। जब श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का अनुभव होता है तब मन अलग नहीं रहता, वरन् उपास्य और उपासक, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों एक हो जाते हैं। निर्गुण ब्रह्म अन्तिम साध्य वस्तु है, साधन नहीं और जब तक किसी न किसी साधन से निर्गुण ब्रह्म के साथ एक रूप होने की पात्रता (योग्यता) मन को प्राप्त न हो जाय, तब तक श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हो सकता। अतएव साधक की दृष्टि से जिसे ब्रह्म-स्वीकार किया जाता है वह दूसरी श्रेणी का अर्थात् सगुण होता है।

मनुष्य के मन की स्वाभाविक रचना ऐसी है कि जो वस्तु अप्रत्यक्ष होती है अर्थात् जिसका कोई विशेष रूप रंग आदि नहीं, उसका हमेशा चिन्तन कर सकना इसके लिए दुस्साध्य होता है। मन को स्वभाव से ही चंचल माना गया है, इसलिये जब तक मन के सामने

करता है। अब इसमें यह विवाद उठाना कि "अब परमात्मा का वास्तविक स्वरूप निर्गुण या अव्यक्त है, तो ज्ञान-मार्ग ही अधिक ऊँचा है" व्यर्थ है। वास्तव में महर्षियों ने दोनों मार्गों का प्रतिपादन मनुष्यों की भिन्न रुचि और योग्यता के आधार पर किया है। जैसा हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं। अनेक मनुष्य 'बुद्धि-प्रधान' और अनेक 'श्रद्धा-प्रधान' देखने में आते हैं। बुद्धिवादी लोग स्वभावतः ज्ञान-मार्ग की ओर जाते हैं और निर्गुण, निराकार ब्रह्म की उपासना द्वारा मुक्ति प्राप्त का प्रयत्न करते हैं। श्रद्धावान सगुण, साकार भगवान की भक्ति द्वारा उसी मुक्ति या सायुज्य स्थिति तक पहुँचने का उद्योग करते हैं। इसी तथ्य को 'कल्कि पुराण' में नारद जी द्वारा इस प्रकार कहलाया गया है—

"नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा, त्वचा—इन पाँच ज्ञानेन्द्रिय और मन को एक कर परम-ज्ञान का आश्रय ले गुरु के चरणों में आत्मसमर्पण करना चाहिए। जब गुरु प्रसन्न, सन्तुष्ट रहते हैं तो स्वयं भगवान भी कृपालु हो जाते हैं। बुद्धिमान शिष्य को चाहिये कि प्रणवाग्नि के बोध 'ॐ' को अनन्य हृदय से स्मरण करते हुए सावधान होकर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि एवं स्नानीय वस्त्र-भूषणों से युक्त कर एकाग्र चित्त से नारायण जी के चरणकमलों की पूजा करे। अनन्तर हृदय-कमल के बीच विराजमान रमणीय सर्वाङ्ग सुन्दर भगवान नारायण का चिन्तन करें। इस प्रकार ध्यान करके मन, वचन, बुद्धि एवं इन्द्रियों सहित आत्मा को नारायण में समर्पण करें। देव मूर्ति को भगवान विष्णु का अनन्त रूप मान जिन नामों को जानता हो उनका स्मरण करें। क्योंकि नाम के सिवाय और कोई मार्ग लक्ष्य प्राप्ति का नहीं है।

भगवान कृष्ण सेव्य हैं, मैं सेवक हूं और समस्त जीव भगवान की ही मूर्ति (अंश) है—यह भेद-बुद्धि ज्ञान की दृष्टि से अविद्याजन्य

हुए हैं और सब प्राणी एक प्रकार से उनकी ही मूर्ति हैं। इस लिये इन प्राणियों में से किसी की भी सेवा-सहायता करना भगवान की सबसे श्रेष्ठ पूजा और भक्ति है।

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय अपने पृथक-पृथक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते रहते हैं, जिनमें से कोई अद्वैत, कोई द्वैत, कोई द्वैताद्वैत, कोई विशिष्टाद्वैत और कोई शुद्धाद्वैत कहलाता है। इन सब सिद्धान्तों की बारीकियों को समझना सामान्य लोगों का काम नहीं है। वे तो परम्परा पर चलते हुए भगवान की मूर्ति या किसी अन्य प्रतीक के सम्मुख विनीत भाव से अथवा मस्तक झुका देना, कुछ भेंट चढ़ा देना या पूजा आरती कर देना ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। वे नहीं जानते कि उनकी यह उपासना-प्रणाली धर्मशास्त्रों के अनुसार भी सबसे निम्न कोटि में आती है। 'योगवासिष्ठ' में एक स्थान पर कहा गया है—

अक्षरावगमलब्धये यथा स्थूलवर्तुलदृषत्परिग्रहः।
शुद्धबुद्धपरिलब्धये तथा दारुमृण्मयशिलामयार्चनम्॥

अर्थात्—"अक्षर-ज्ञान कराने के लिये जिस प्रकार छोटे बच्चों को छोटे-छोटे कङ्कड़, रेत आदि रख कर आकार दिखलाना पड़ता है, उसी प्रकार (नित्य) शुद्ध-बुद्ध परब्रह्म का ज्ञान कराने के लिए लकड़ी, मिट्टी या पत्थर की मूर्ति को स्वीकार किया जाता है।"

इस प्रकार इस समय लोग भक्ति-मार्ग के इस वास्तविक मर्म को भूल गये हैं कि "भगवान प्रत्येक प्राणी में समाया हुआ है, इसलिए प्राणियों की सेवा करना ही भक्ति का सबसे बड़ा लक्षण है।" गुजरात के महान भक्त नरसी मेहता के एक भजन की प्रथम पंक्ति में ही कहा गया है कि "वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे।" 'सच्चा विष्णु भक्त (वैष्णव) तो वही है जो पराये दुःख को अनुभव

करते हैं, बिना किसी प्रकार की स्वार्थ-भावना के समाज की प्रगति, उत्थान के लिए अपनी योग्यता और शक्ति को खर्च करते हैं। ईश्वर-भक्ति का सर्वोपरि लक्षण यह है कि मनुष्य अपनी शक्ति और साधनों का एक अंश अवश्य ही दूसरों की भलाई के लिए-समाज के उपकारार्थ खर्च करे।

भक्ति का स्वरूप और उसकी प्राप्ति—

भक्ति का यह परोपकार युक्त और प्रेममय रूप ही सर्वोत्कृष्ट और मनुष्य को देवता बना देने वाला है। जब मनुष्य अपने स्वार्थ को त्याग कर दूसरों के हित की कामना करता है, उनका कष्ट मिटाने के लिये स्वयं श्रम करना, कष्ट सहना स्वीकार करता है, और इसके उपलक्ष्य में किसी प्रकार की कामना नहीं रखता, तभी वह 'भक्त' की पदवी का अधिकारी बनता है। ऐसा भक्त चाहे बिल्कुल सामान्य वेष में रहे, माला, चन्दन, तिलक आदि कुछ भी धारण न करे, तो भी भगवान की दृष्टि में वही सर्वाधिक शुद्ध और पवित्र प्रतीत होता है। उसी को शाश्वत शांति और आत्म-सुख का उपहार प्राप्त होता है। इस प्रकार की भक्ति की महिमा 'श्रीमद्भागवत' में भी वर्णन की गई है जिसे भक्ति-मार्ग का सर्वोपरि ग्रन्थ माना गया है और जिसका सम्मान सामान्य जन से लेकर बड़े से बड़े विद्वान् भी करते हैं। उसमें देवहूति और भगवान कपिल के संवाद में भक्त के लक्षणों का वर्णन करते हुए तीसरे स्कन्द के अध्याय २६ में कहा है—

> निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा।
> क्रियायोगेन शस्तेन नाति हिंस्रेण नित्यशः॥
> मद्धिष्ण्य दर्शन स्पर्श पूजास्तुत्यभि वन्दनैः।
> भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासङ्गमेन च॥

का प्रकोप नहीं करते, और फिर भी वे अपने भक्त कहते रहते हैं। भागवतकार ने आगे चलकर स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि बिना परोपकार वृत्ति के केवल मूर्ति की पूजा-अर्चा निरर्थक है—

यथा वातरथो घ्राणमावृङ्क्ते गन्धआशयात् ।
एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥
अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुते ऽर्चाविडम्बनम् ॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः ॥
द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्ध वैरस्य न मनः शान्ति मृच्छति ॥

"जिस प्रकार पुष्प की गन्ध वायु द्वारा उड़ कर मनुष्य की नासिका तक पहुँचती है उसी प्रकार भक्तियोग में तत्पर और राग-द्वेष विकारों से शून्य चित्त परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। भगवान आत्मरूप से सभी जीवों में स्थित रहते हैं, इसलिये जो सर्वभूतस्थित परमात्मा [redacted] अनादर करके केवल प्रतिमा के रूप में ही उनका पूजन करते हैं, वह पूजा स्वाँग मात्र है। जो इस प्रकार जीवित परमात्मा की उपेक्षा करके प्रतिमा पूजन में ही लगा रहता है वह मानो भस्म में ही हवन करता है। जो भेददर्शी और अभिमानी पुरुष दूसरे जीवों के साथ बैर बाँधता है, और इस प्रकार उनके शरीरों में विद्यमान मुझ आत्मा से ही बैर करता है, उसके मन को कभी शान्ति नहीं मिल सकती।"

इस उद्धरण में भागवतकार ने 'भक्ति' का लक्षण सबका आदर करना, सबसे प्रेम भाव रखना, किसी को शत्रु मानकर चिन्तन न करना बतलाया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की भावनाओं के बिना मनुष्य कितना भी पूजा-पाठ करे वह सब ढोंग ही है। एक तरफ भगवान के प्रति आदर, श्रद्धा का भाव दिखलाना और दूसरी तरफ

उसी की प्रति-मूर्ति अन्य प्राणियों से द्वेष करना, उनका अपमान करना, स्पष्टतया परस्पर विरोधी बातें हैं। इस प्रकार की दुरंगी नीति वाला मनुष्य भगवान का कभी प्रिय नहीं हो सकता। वरन् वे तो ऐसे ढोंगी, भक्ति को बदनाम करने वाले व्यक्ति को किसी प्रकार का शुभ फल न देकर दण्ड के योग्य ही मानेंगे। इसीलिए 'भागवत' में कहा गया है—

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे ।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥
अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् ।
यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥
आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम् ।
तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥
अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ।
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा ॥

अर्थात्—"जो दूसरे जीवों का अपमान करता है वह यदि बहुत-सी बढ़िया बढ़िया सामग्रियों से अनेक प्रकार के विधि विधान के साथ मेरी मूर्ति का पूजन भी करे, तो भी मैं उससे प्रसन्न नहीं हो सकता। मनुष्य को चाहिये कि वह अपने धर्म का अनुष्ठान करता हुआ तब तक भगवान की प्रतिमा आदि का पूजन करता रहे जब तक उसे अपने हृदय में एवं सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित परमात्मा का अनुभव न हो जाय। जो व्यक्ति आत्मा और परमात्मा के बीच थोड़ा भी अन्तर करता है उस भेददर्शी को मैं मृत्युरूप से महान भय उपस्थित करता हूँ। अतएव समस्त प्राणियों के भीतर निवास करते हुए उन प्राणियों के ही रूप में स्थित मुझ परमात्मा का यथायोग्य दान, मान, मित्रता के व्यवहार तथा समदृष्टि के द्वारा पूजन करना चाहिये।"

जो लोग सदैव पुराणों पर 'पाषाण' और 'काठ पूजा' का ही आक्षेप करते रहते हैं उन्हें उपर्युक्त उद्धरण से समझना चाहिये कि उनमें केवल मूर्ति पूजा का विधान ही नहीं बतलाया गया है, वरन् कुछ और भी है। 'भागवत' जैसे पुराण में, जिस पर न मालूम कितने और कैसे आक्षेप किये जाते हैं, स्पष्ट कहा गया है कि 'जब तक मनुष्य अपने हृदय में तथा समस्त प्राणियों में पाये जाने वाले परमात्मा [redacted] अनुभव करने की स्थिति को प्राप्त न हो जाय तब तक वह ईश्वर की प्रतिमा का पूजन करके ही धर्मानुष्ठान करता रहे।"

यही बात कितने ही अन्य पुराणों और सनातन धर्म ग्रन्थों के में कही गई है। उनमें साफ-साफ बतलाया गया है कि 'अप्सु देवाः बालानाम् दिवि देवता मनीषिणाम्"—अर्थात् बाल बुद्धि के (अशिक्षित और अनाढ़) लोगों के लिए तीर्थों का जल और पाषाण आदि की मूर्तियाँ ही ईश्वर के रूप में उपासना के योग्य होती हैं। विद्वान् मनुष्य सूर्य, अग्नि, वायु आदि की ईश्वर रूप में उपासना करते हैं, और जिनको ज्ञान दृष्टि अथवा योग दृष्टि प्राप्त हो गई है वे केवल आत्मा को ही पर ब्रह्म स्वरूप स्वीकार करते हैं।" सच्चे भक्त का लक्षण यही बतलाया गया है कि वह सब जीवों में परमात्मा [redacted] अस्तित्व समझकर उनकी सेवा, सहायता, उपकार का प्रयत्न करता रहे, मूर्ति पूजा भले ही करता रहे या न भी करे। उपरोक्त उद्धरण के अन्त में भगवान कपिलदेव ने समस्त ज्ञान का सारांश बतलाते हुए अपनी माता देवहूति से यही कहा है—

"सब प्रकार के लोगों की अपेक्षा मुझे वे व्यक्ति ही उच्च और श्रेष्ठ जान पड़ते हैं जो अपने सम्पूर्ण कर्म, उनके फल तथा अपने शरीर को भी मुझे ही अर्पण करके भेदभाव छोड़कर मेरी उपासना करते हैं। इस प्रकार मुझे ही चित्त और कर्म समर्पण करने वाले अकर्ता और समदर्शी पुरुष से सर्वोपरि और कोई नहीं दीख पड़ता।

अतः यह मान कर कि जीव रूप से साक्षात् भगवान ही सब में अनुगत हैं, समस्त प्राणियों को बड़े आदर के साथ मन से प्रणाम करे।"

विष्णु भगवान के परम भक्त कहे जाने वाले प्रह्लाद जी ने भी दैत्य बालकों को यह उपदेश दिया था कि भगवान को प्राप्त करके संसार सागर से पार होने का उपाय समस्त प्राणियों में ईश्वर के दर्शन करके उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना है। जो इस सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार करेगा उसे संसार की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सभी वस्तुयें स्वयंव प्राप्त हो जायेंगी। उन्होंने कहा—

न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः ।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥
परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु ।
भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥
गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा ।
एकएवपरोह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ।
केवलानुभवानन्द स्वरूपः परमेश्वरः ।
माययान्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥
ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह
नारायणो नरसखः किल नारदाय ।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिञ्चनानां
पादारविन्दरजसाऽऽप्लुत देहिनां स्यात् ॥

"प्रह्लाद जी ने अपने सहपाठियों से कहा—मित्रो! भगवान को प्रसन्न करने के लिए कोई बहुत बड़ा परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता, क्योंकि वे समस्त प्राणियों के आत्मा हैं और सर्वत्र सबकी सत्ता के रूप में स्वयं सिद्ध वस्तु हैं। ब्रह्मा से लेकर तिनके तक छोटे-बड़े समस्त प्राणियों में, पञ्चभूतों से बनी वस्तुओं में, सूक्ष्म तन्मात्राओं में, महत्तत्त्व में, तीनों गुणों में और गुणों की साम्यावस्था प्रकृति में

एक ही अविनाशी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही समस्त सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यों की खान हैं। वे केवल अनुभव स्वरूप, आनन्द स्वरूप एक मात्र परमेश्वर ही हैं। गुणमयी माया के द्वारा ही उनका ऐश्वर्य छिप रहा है, इसके निवृत्त होते ही उनके दर्शन हो जाते हैं। यह नियम ज्ञान सर्वाधिक महत्व का है। इसका उपदेश सर्व प्रथम भगवान नर-नारायण ने नारद जी को किया था। पर जो लोग भगवान के अनन्य प्रेमी और अकिञ्चन (सम्पत्तिहीन) सच्चे भक्तों की चरणरज को शिरोधार्य करते हैं (अर्थात् उनके उपदेश को स्वीकार करके व्यवहार में लाते है) उनको यह ज्ञान सहज ही में मिल जाता है।"

प्रह्लाद ने भगवान को समस्त ऐश्वर्यो, धन, सम्पत्ति, महल, राज्य आदि का भण्डार बताया, पर अन्त में यह भी कह दिया कि जो कोई अपना जीवन दीन-हीन और अत्यन्त गरीब, उपेक्षणीय लोगों की सेवा करने में लगा देता है उसको सहज में ही भगवान के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उसका सब प्रकार का भ्रम मिट कर वह 'परम शक्तिशाली और सामर्थ्यवान' बन जाता है। मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने और सब तरह की सांसारिक सफलता प्राप्त करने का मार्ग यह नहीं है कि मनुष्य किसी एकान्त कोने में घुस कर केवल भगवान का नाम लेता रहे, उनकी प्रतिमा पर फूल-पत्ता चढ़ाता रहे वरन् समाज के पददलित अङ्ग—गरीब लोगों के उद्धार—उत्थान के लिये प्रयत्न करते रहना ही भगवान को प्रसन्न करने और प्राप्त करने का सच्चा उपाय है।

पुराणों में जगह-जगह जो समदर्शी और आत्मवेत्ता होने का उपदेश दिया गया है, वह केवल ग्रन्थ में पढ़ लेने अथवा कथा सुन लेने मात्र की वस्तु नहीं है वरन् उसके अनुसार सदैव आचरण करने—उन सिद्धान्तों के अनुसार हमेशा व्यवहार करने से ही मनुष्य को मानव

केवल भगवान का नाम जपते रहना चाहिये और सांसारिक झंझटों की उपेक्षा कर देनी चाहिये। इसके विपरीत 'कल्कि' ने यही उपदेश दिया है कि मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म और ईश्वर को प्रसन्न करने का उपाय आततायी से अन्याय और पाप कर्मों का विरोध करना उनको नष्ट करने के लिए जूझना ही है। इसका एक बहुत बड़ा उदाहरण राजा 'देवापि' और 'मरु' के साथ हुआ कथोप कथन है। वे लोग बहुत वर्षों से भगवान की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे थे। जब अनेक ऋषि-मुनियों के साथ वे 'कल्कि' के समीप आये तो उनका दर्शन करके उन्होंने अपने जन्म को सफल समझ लिया। उनको भक्ति-मार्ग द्वारा भगवान की उपासना करते हुए बहुत अधिक समय हो गया था और अब उनका वह उद्देश्य पूरा भी हो चुका था, इसलिए उन्होंने कल्कि जी के पूछने पर यही कहा—

मरुणाऽनेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाम्बुजम्।
तव काल करालास्याद्या स्मः ज्ञानवतां पदम्॥

देवापि ने कहा— मैंने मरु और इन समस्त मुनियों के साथ आपके चरण कमलों के दर्शन प्राप्त कर लिये हैं। इसलिये हमारा विश्वास है कि अब हमको काल के कराल गाल में—भव-बन्धन में नहीं गिरना पड़ेगा और हमको शास्त्रवेत्ता-ब्रह्मज्ञानियों का पद प्राप्त हो जायगा।"

इस प्रकार 'देवापि' और 'मरु' ने भक्तों की परम्परानुसार भगवान से केवल मुक्ति और वैकुण्ठ की प्राप्ति का 'वरदान' ही माँगा। उनका आशय यही था कि हम अनेक वर्षों से भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के निमित्त जप-तप कर रहे थे। आज आपका साक्षात्कार हो जाने से हम कृतार्थ हो गये और अब आप हमको अपने लोक में स्थान दीजिए।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयोभोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।

अर्थात् "इन गुरुजनों से साथ संग्राम करके उनकी हिंसा करने की अपेक्षा तो भिक्षुक बन कर जीवन निर्वाह करना ही अच्छा है।" पर भगवान कृष्ण ने इस भावना को गर्हित और कर्तव्य विमुखता की द्योतक बतला कर कहा—"क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।" 'हे अर्जुन ! इस प्रकार क्लैव्य से भागना तुमको शोभा नहीं देता।' धर्म, भक्ति या ज्ञान का यह तात्पर्य नहीं कि संकट के समय, कठिनाई या हानि लाभ की आशङ्का से कर्तव्य पालन से हटने की चेष्टा की जाय। वह भक्ति झूठी है जो मनुष्य को निष्क्रियता की ओर ढकेलती है। इसके विपरीत सच्ची भक्ति का लक्षण तो यह होना चाहिये कि जब स्वयं भगवान हमारा रक्षक है और हम प्रत्येक कार्य उसी के इङ्गित (इशारे) पर करते हैं तो हमको भय किस बात का ? 'गीता' में भगवान ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानिमायया।
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥
(अ० १८-६१, ६२)

"हे अर्जुन ! मनुष्य के शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ होकर अन्तर्यामी परमेश्वर सब प्राणियों को अपनी माया के द्वारा भ्रमित करता है, नचाता रहता है। इस लिए जो मनुष्य सब प्रकार से अनन्य भाव से उस परमेश्वर की शरण में जाता है वह उसकी कृपा से शान्ति और स्थिरता को प्राप्त होता है।"

सच्चे भक्त की स्थिति—मानसिक-भावना ऐसी ही होती है। वह अच्छी तरह समझता है कि इस संसार में किसी एक व्यक्ति को, चाहे वह भौतिक दृष्टि से कितना भी बड़ा और शक्तिशाली क्यों न

नाम पर दूसरों के ऊपर भारस्वरूप बन जाय। वरन् वे भक्ति और कर्म में पूरी तरह समन्वय रखने को ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाते हैं। वे कहते हैं कि न तो संसार के माया-मोह में, लोभ-लालच में इतने निमग्न हो जाओ कि तुमको आत्मा का भी ख्याल न रहे और धन, अधिकार की खातिर आत्मा का पतन करने वाले कार्य करने लग जाओ, और न जप-तप, भजन-उपासना में ही इस तरह लीन हो जाओ कि जीवन-निर्वाह के साधनों के लिए भी तुमको दूसरों का मुख ताकना पड़े। बुद्धिमान का लक्षण यही है कि धर्म और कर्म दोनों पक्षों को अपनी परिस्थिति के अनुसार संभालता रहे और सबका सूत्रधार उसी भगवान को समझ कर जैसी भी स्थिति आ जाय उसमें शान्त और निर्भय बना रहे।

इस सिद्धान्त की दृष्टि से 'कल्कि-पुराण' में वर्णित राजा शशिध्वज का उपाख्यान निस्सन्देह बहुत अधिक प्रेरणाप्रद है। वह भगवान का परम भक्त था और कल्कि जी को भगवान का अवतार भी मानता था। पर जब वे दिग्विजय करते हुए उसके राज्य में पहुँचे तो उसने एक क्षत्रिय और राज्य का रक्षक होने की हैसियत से युद्ध करने में जरा भी आनाकानी नहीं की। यद्यपि उसकी रानी ने यह शंका की कि "कल्कि जी तो विष्णु के अवतार हैं और हम विष्णु भगवान के उपासक 'वैष्णव' हैं। ऐसी दशा में आप उनके ऊपर शस्त्र-प्रहार कैसे करोगे?"

पर राजा शशिध्वज का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में सदैव बहुत स्पष्ट रहा। उसने यही कहा कि "जब कल्कि जी मानव रूप में नर-लीला करते हुए हमारे सम्मुख आक्रमणकारी के रूप में उपस्थित हुए हैं तो हमको भी अपने धर्म-कर्तव्य का पालन करते हुए पूरी शक्ति से उनका सामना करना चाहिये। चाहे हम हृदय में कभी उनके प्रति शत्रु-भाव नहीं रख सकते, पर इस कारण अपने लौकिक कर्तव्य-पालन से पीछे हटना कदापि उचित नहीं।"

नौवाँ अध्याय

'कल्कि-पुराण' का माया वर्णन

भारतीय इतिहास, पुराण और अन्य धर्मग्रन्थों में संसारी जीवों को भ्रमित करने वाली माया का वर्णन अवश्य पाया जाता है। हमारे अध्यात्म-शास्त्र में जीव को परमात्मा का अंश और शुद्ध-बुद्ध माना गया है। पर वही जीव इस संसार में आकर, विशेषतः सर्वश्रेष्ठ कही जाने वाली मनुष्य-योनि को पाकर धन, सम्पत्ति, परिवार की माया में ऐसा लिप्त हो जाता है कि अपने मूल स्वरूप को बिल्कुल भूल जाता है, और ऐसे-ऐसे कर्म करने लगता है जिनकी चर्चा करना भी उचित नहीं। इस अवस्था को देख कर अनेक लोग पूछा करते हैं कि परमात्मा का अंश होने पर भी जीव की ऐसी दुर्दशा, इतना पतन क्यों हुआ करता है?

प्राचीन भारतीय अध्यात्मवेत्ताओं ने इसका कारण 'माया' को ही बतलाया है। उनके कथनानुसार 'माया' ने ईश्वर तथा जीव के बीच एक ऐसा पर्दा डाल रखा है जिससे वह अपने चैतन्य तथा शुद्ध रूप को भूल कर सांसारिक प्रपन्चों में लिप्त होकर पतन की परिस्थितियों में पहुँच जाता है।

'कल्कि-पुराण' में माया का वर्णन अनन्त मुनि के उपाख्यान के रूप में दिया गया है। जिस समय सिंहलद्वीप में राजकुमारी पद्मा के साथ 'कल्कि' का विवाह हो रहा था उसी अवसर पे राज-सभा में आ

पहुंचे । शास्त्रकारों के अनुसार उनको 'कपिल' के दर्शन करके मुक्ति-लाभ करते थे । कपिल जी ने उनसे कहा—

कृत दृष्टं त्वया सर्वं मया निवर्तकम् ।
अहष्ट मन्त्रमर्थेति श्रुत्वा हृष्टमनाः मुनिः ॥

अर्थात्—"हमारे किये हुए समस्त कर्मों को तुमने देखा है और वे तुमको सब ज्ञात हैं । अदृष्ट (कर्मों) का बन्धन कोई नहीं [illegible] सकता और बिना कर्म किये किसी को उसके फल की प्राप्ति भी नहीं होगी । यह सुन कर अगस्त्य मुनि बहुत प्रसन्न हुए ।"

अगस्त्य मुनि ने बताया कि "मैं जन्म के समय शरीर (लघु'मक) पैदा हुआ । इस पर मेरे पिता ने शिवजी की आराधना करके उनसे वर प्राप्त करके मुझे पुंसत्व प्रदान कराया । पिता के देहान्त होने पर मैं बहुत दुःखी हुआ और विष्णु भगवान की आराधना करने लगा । उन्होंने मेरी भक्ति से सन्तुष्ट होकर स्वप्न में मुझ से कहा—

"इस संसार में स्नेह, ममता आदि की कल्पना हमारी माया है । 'यह हमारे पिता हैं, यह हमारी माता है' ऐसी ममता से जिसका मन व्याकुल होता है, वह मेरी माया [illegible] शोक, दुःख, भय, उद्वेग, जरा, मृत्यु आदि का क्लेश अनुभव किया करता है । भगवान की माया को देखने की कामना से मैं पुरुषोत्तम क्षेत्र में अत्यन्त तत्परता रहने लगा और अपनी आदमियों के विचार से भगवान की उपासना, ध्यान, जप आदि में अधिकांश समय लगाने लगा । एक दिन मैं अनु-ष्ठानों सहित एकादशी का पारायण करने के लिए समुद्र में स्नान करने गया । तो भयंकर लहरों में फँस कर दूर तक बह गया । इसलिए किनारे में पहुंचे दूर जाकर जिबारी लगा । वहां एक ब्राह्मण ने मेरी रक्षा की और कुछ समय तक मुझे अपने घर में रख कर अपनी कन्या का विवाह मुझसे कर दिया । उस स्थान में भी बहुत वर्षों तक निवास

करके मैं एक प्रसिद्ध धनी-मानी बन गया और मेरे पाँच पुत्र हो गये जिनमें से बड़े पुत्र का विवाह मैं धूमधाम के साथ करने लगा। इस उपलक्ष्य में मैं फिर समुद्र में स्नान करने गया, तो उसमें से बाहर निकलने पर मुझे फिर अपने सब पुराने बन्धु बान्धव दिखाई पड़े जो स्नान करके द्वादशी का पारण करने की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा— "अनन्त! तुम ऐसे व्याकुल क्यों दिखाई पड़ रहे हो। क्या तुमने जल के भीतर या स्थल में कोई आश्चर्यजनक प्रसंग देखा है?"

अनन्त ने कहा—मैं कुछ कह नहीं सकता। मुझे भी भगवान की माया ने विमूढ़ कर दिया है, जिससे मेरी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही हैं।" अब मैं अपने पुराने स्त्री-पुत्रों को सामने खड़ा देख रहा था और उधर मुझे अपनी नई भार्या, उसके पाँच पुत्रों और बड़े पुत्र के विवाह की चिन्ता सता रही थी। इस प्रकार मुझे पागल के समान अवाक् खड़ा देख कर मेरी स्त्री घबड़ा गई और कहने लगी— 'देखो, इनको क्या हो गया?'

उसी समय वहाँ एक तेजस्वी परमहंस आ गये। उन्होंने मुझसे कहा—'हे अनन्त! तुम्हारी चारुमती नाम की स्त्री, बुध आदि पाँच पुत्र तथा अटा-अटारियों से सुशोभित अपूर्व गृह, धन-भण्डार सब कहाँ गया? यहाँ तुम कैसे आ गये? आज तो तुम्हारे पुत्र का विवाह था और उसमें हमको भी निमन्त्रण दिया गया था? वहाँ तो तुम सत्तर वर्ष के वृद्ध दिखाई पड़ते थे और इस समय पच्चीस तीस के युवक जान पड़ रहे हो? और पास में तुम्हारी युवती पत्नी भी खड़ी है? यह क्या रहस्य है? क्या तुम वही अनन्त हो अथवा अन्य कोई हो? मैं भी क्या वही भिक्षुक हूँ अथवा अन्य कोई हूँ? हमारा तुम्हारा इस स्थान पर मिलना इन्द्र जाल के समान जान पड़ता है। तुम स्वधर्म-निष्ठ सम्मानीय गृहस्थ हो और मैं परमार्थ चिन्ता में तत्पर ब्राह्मण हूँ। पर इन सब लोगों के समक्ष हमारी बातें बालकों अथवा उन्मत्तों के

समान असङ्गत (बे सिर पैर की) जान पड़ती हैं। हे महान्! मुझे जान पड़ता है कि यह जगदीश्वर विष्णु की माया ही है। इससे ही त्रिलोकी के प्राणी मोहित हुए रहते हैं।"

पाठकों को भी यह वर्णन असङ्गत-सा ही जान पड़ेगा कि कोई व्यक्ति एक ही घण्टे के भीतर सत्तर वर्ष का वृद्ध और पच्चीस वर्ष का युवक कैसे दिखाई पड़ सकता है? साथ ही जितनी देर में अनन्त के पुरुषोत्तम क्षेत्र निवासी बन्धु-बान्धव स्नान करके द्वादशी के पारणे की तैयारी ही कर रहे थे, उतने ही समय में उसने नई स्त्री से विवाह, पाँच पुत्रों का जन्म और बड़े पुत्र के विवाह की तैयारियों की घटनायें एक स्वप्न की तरह कैसे देख लीं? वास्तव में इस उपाख्यान से लेखक का आशय यही है कि इस संसार में हम जो कुछ देखते, सुनते और करते हैं वह माया का एक खेल ही है। उसमें बहुत अधिक वास्तविकता मानना व्यर्थ है। यह दृश्य क्षण भर में किसी दूसरे रूप में बदल सकता है। इसलिए मनुष्य को सांसारिक व्यवहार करते समय अनित्यता और अस्थिरता की भावना सदैव, ध्यान में रखनी चाहिए और संसार के प्रपञ्चों में इतना अधिक लिप्त कभी नहीं हो जाना चाहिये कि जिससे जीवन के असली लक्ष्य परमार्थ और परलोक-सुधार में बाधा पड़ जाय।

ज्ञानी मनुष्य वही कहा जा सकता है जो दुनिया में रह कर और उसके समस्त व्यवहारों को करता हुआ भी यहाँ की माया के फन्दे में न फँसे और अपने को इस 'यात्री-निवास' में एक यात्री की तरह ही समझता रहे, जहाँ से [redacted] मालूम कब उठ कर चला जाना पड़ेगा। इसी भाव को प्रकट करने के लिये पुराणकार ने कहा है—

मायया मायया जीव-पुरुषः परमात्मनः।
संसार शरणं व्यग्रो न वेदात्मगतिं क्वचित्॥

अर्थात्—"परमात्मा की माया द्वारा सब प्रकार से हरे-बंधे रहने से यह प्राणी संसार के प्रपञ्चों में लिप्त रहता है और अपने उद्धार का कुछ भी उपाय नहीं सोच पाता।"

अनेक व्यक्ति इस माया को जीतने के लिए कठोर तपस्या का अवलम्बन करते हैं। वे सब प्रकार के भोगों को त्याग कर इन्द्रियों का दमन करने का प्रयत्न करते हैं। पर इस प्रकार का आचरण उपयोगी नहीं होता। जो लोग इस मार्ग पर बहुत कठोरता के साथ चलते हैं प्रायः उनके शरीर का क्षय हो जाता है। तब या तो उनकी मृत्यु हो जाती है, जो एक प्रकार की आत्महत्या के सदृश होती है, अथवा वे जड़वत् बन कर निकम्मा जीवन बिताते हैं। अनेक पौराणिक वर्णनों में ऐसी तपस्याओं का वर्णन किया गया है जिनमें तपस्वी व्यक्ति का शरीर सूख कर लकड़ी हो गया, उनके शरीर पर मिट्टी जम गई और केवल साँस चलना ही जीवन का एक मात्र चिन्ह शेष रह गया। यदि इन बातों को सत्य ही मान लिया जाय, और हम जानते हैं कि प्राचीन समय में कुछ 'ज्ञान मार्गी' सम्प्रदायों और अवधूत आदि श्रेणी के संन्यासियों में ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था, तो भी इससे उन तपस्वियों का अथवा संसार का कुछ हित हुआ हो, ऐसा विदित नहीं होता।

आज भी उस प्राचीन परम्परा का अनुसरण करके कुछ लोग वस्त्र तक त्याग कर बिल्कुल नग्न रहने लगते हैं, कठोर शीत और शरीर को झुलसा देने वाली गर्मी को सहन करते हैं, गर्मी में जलती हुई बालू या पत्थरों पर खड़े रह कर जप करते हैं और जाड़े में ठण्डे जल में खड़े होकर ध्यान लगाते हैं, पर उनमें भी माया, मोह, अहङ्कार, क्रोध आदि की मनोवृत्तियाँ बनी ही रहती है। इस दृष्टि से ऐसी तपस्या आत्मोन्नति के लिए बेकार ही सिद्ध होती है और उससे मनुष्य परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त नहीं कर सकता। इस तथ्य का समर्थन करते हुए राज-सभा में उपस्थित राजाओं में अनन्त मुनि ने कहा—

मते ! हरिभक्ति से ही जीवकोष का दमन होगा और भगवान का सान्निध्य प्राप्त करके तुम कृतार्थ हो सकोगे।"

पुराणकर्ता ने इस उपाख्यान द्वारा स्पष्ट रूप से कठोर व्रतों और शरीर को सुखा देने वाली तपस्या के स्थान पर भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन किया है जैसा कि उसने इसके अन्त में अलङ्कारमयी रचना द्वारा व्यक्त किया है—

संसाराब्धि विलासलालसमतिः श्री विष्णुसेवादरो।
भक्त्यानमिदं स्वभेद-रहित निर्माय धर्मात्मना।
ज्ञानोल्लास-निपात-खड्गमुदितः सद्भक्ति दुर्गाश्रयः।
षड्वर्ग जयतादशेष जगतामात्म स्थितं वैष्णवः॥

अर्थात्—'जो धर्मात्मा वैष्णव विष्णु सेवा परायण होने पर भी विलास-कामना से संसार मे आसक्त रहते हैं, वे इस आख्यान द्वारा अभेद ज्ञान-रूप उल्लसित तीक्ष्ण खड्ग को धारण कर भक्ति रूप दुर्ग के आश्रय से शरीर स्थित काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छः शत्रुओं को पराजित करें।

कठोरता पूर्ण ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग का यह विवाद बहुत पुराना है और हम इसका उल्लेख आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व होने वाले भगवान बुद्ध के चरित्र मे स्पष्ट रूप से पाते हैं। उन्होंने प्रारम्भ में आत्मज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से कठोर तपस्या का ही सहारा लिया था और खान-पान का अत्यन्त कड़ा संयम करके शरीर को अशक्त बना डाला था। पर इससे भी जब किसी प्रकार की आत्मोन्नति के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए तब उन्होंने समझा कि शरीर तो एक यन्त्र के समान है जिसमें संचालक मन, बुद्धि आदि हैं। इसलिए जब तक ज्ञान और भक्ति के समन्वय द्वारा मन को संयत और आज्ञाकारी न बनाया जायगा तब तक इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति होना असम्भव है। इसके बाद उन्होंने जङ्गल में रहकर तपस्या करने की

प्रणाली को त्याज्य मान लिया और लोकालय में रह कर सद्ज्ञान और सत्कर्म द्वारा अपना और दूसरों का उपकार करने को ही आत्मोद्धार का मार्ग स्वीकार किया।

इस अनन्त उपाख्यान में भी 'कल्कि' ने अनन्त मुनि को यही उपदेश दिया है कि "बिना कर्म किये किसी को उसके फल की प्राप्ति नहीं हो सकती।" अगर तुम मोक्ष के अभिलाषी हो तो उसके लिए भी तुमको कर्म द्वारा ही उसके योग्य बनना पड़ेगा। हां, यह आवश्यक है कि उन कर्मों में तुम आसक्त मत बनो, फल की आशा त्याग कर केवल कर्तव्य भाव से उन्हें करते रहो। इस प्रकार अनासक्त कर्म योग का साधन ज्ञान और भक्ति के समन्वय से ही उत्तमता पूर्वक हो सकता है और 'गीता' में भगवान कृष्ण ने इसी का उपदेश दिया है। 'कल्कि पुराण' ने भी उसी सिद्धान्त को अनन्त मुनि की कथा के रूप में प्रकट किया है और इसका माहात्म्य बतलाते हुए कहा है—

मनन्तस्य कथामेतामज्ञान ध्वान्त नाशिनीम्।
मायानियन्त्री प्रपठञ्छृण्वन्बन्धाद्विमुच्यते॥

अर्थात्—"अनन्त की इस कथा के पाठ करने तथा सुनने से संसार की माया छूट जाती है, अज्ञान रूप अंधकार दूर होता है और बंधन से मुक्ति प्राप्त होती है।"

'भागवत' का पुरञ्जन-उपाख्यान—

जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं माया के बन्धनों और उससे छुटकारा पाने के विषय में सभी पुराणकारों ने विचार किया है, क्योंकि यह अध्यात्म-मार्ग की एक मुख्य समस्या है। अध्यात्म केवल कहने सुनने की चीज नहीं है वरन् उसका असली उद्देश्य सांसारिक माया-मोह से ऊपर उठकर कर्तव्य-भावना से जीवन के कर्तव्यों का पालन करना ही

है। ऐसा होने पर ही मनुष्य को क्रमशः आत्मज्ञान अथवा अद्वैत ज्ञान होना सम्भव होता है। 'भागवत' का पुरञ्जन उपाख्यान भी इसी अभिप्राय से कहा गया है। उसमें कर्मकाण्ड को ही विशेषता देने वाले प्राचीन 'बर्हि' नामक राजा को नारद जी द्वारा ज्ञान-मार्ग का उपदेश दिया गया। नारदजी ने उसे पुरञ्जन नामक राजा का एक उपाख्यान सुनाया जो संसार की माया में अत्यधिक ग्रस्त होने के कारण बहुत अधिक दुःखों का भागी बना और अन्त में भगवान् की कृपा से ही उस दुरवस्था से छुटकारा पाने में समर्थ हुआ।

'राजा पुरञ्जन समस्त संसार में घूमते हुए अपने निवास योग्य स्थान ढूँढ रहा था। अन्त में उसे एक ऐसा नगर मिला जिसमें नौ द्वार थे और जो सब ओर से परकोटों, बगीचों, अटारियों, झरोखों और राजद्वारों से सुशोभित था। वहाँ एक सुन्दरी कन्या भी दिखलाई दे गई जिसके अनुपम सौन्दर्य ने उसे मोह ही स्ववश कर लिया। बस, वह राजा उस कन्या को पत्नी रूप में ग्रहण करके सौ वर्ष तक उसी पुरी में निवास करता रहा। वह स्त्री और पुत्रों के कारण होने वाले मोह, प्रसन्नता एवं हर्ष आदि विकारों का सदैव अनुभव करता रहा, उसका चित्त तरह-तरह के कर्मों में फँसा हुआ था और काम परवश होने के कारण वह मूढ़ रमणी द्वारा ठगा गया था। उसकी रानी जो-जो काम करती थी, वही वह भी करने लगता था। जब वह मद्यपान करती तब वह भी मदिरा पीकर उन्मत्त हो जाता, जब भोजन करती तब आप भी भोजन करने लगता, और जब वह चबाती तब आप भी वही वस्तु चबाने लगता था। इसी प्रकार उसके गाने पर गाने लगता, हँसने पर हँसने लगता, बोलने पर बोलने लगता।

'इस प्रकार कामातुर चित्त से उसके साथ विहार करते-करते राजा पुरञ्जन की युवावस्था आधे क्षण के समान बीत गई। उस पुरञ्जनी से राजा पुरंजन को अनेक सन्तानें हुई। इतने में उसकी आयु

यह सब देखकर पुरंजन अपार चिन्ता में डूब गया और उसे विपत्ति से छुटकारा पाने का कोई उपाय न दिखाई दिया। वह अपनी देह, परिवार में 'मैं और मेरा' का भाव रखने से अत्यन्त बुद्धिहीन और दीन हो गया था। अब जब इनसे बिछुड़ने का समय आया तब वह अपने पुत्र, पुत्री, पौत्र, पुत्र-वधू, दामाद, नौकर घर आदि सबके लिए बड़ी चिन्ता करने लगा कि 'मेरे पश्चात् इन सबका क्या होगा?' वह इसके लिए बहुत शोक करने लगा, पर उसका कुछ वश न चल सका और उसी समय यवन राज स्वयं आकर उसको बाँध कर ले गया।'

"क्योंकि राजा पुरंजन की आसक्ति अन्त समय तक अपनी स्त्री में रही थी, इसलिए उसने आगामी जन्म में विदर्भराज के यहाँ कन्या के रूप में जन्म लिया। युवती होने पर उसका वैदर्भी का महाराज मलय-केतु के साथ विवाह कर दिया गया। जब उनके पुत्र और पुत्रियों को उत्पन्न करके महाराज मलयकेतु तपस्या हेतु वन को चले तो उनकी स्त्री भी साथ जाकर वहाँ भी उनकी सेवा करती रही। पर आयु पूरी हो जाने पर मलयकेतु का देहान्त हो गया तो वह अत्यन्त शोक करने लगी और एक चिता बनाकर स्वयं भी उनके साथ जलने को प्रस्तुत हो गई। उस समय पुरंजन [illegible] एक मात्र पुराना मित्र 'अविज्ञात' ब्राह्मण वेश में वहाँ आया और उसने शोक करती वैदर्भी से कहा—

"'तू कौन है?' किसकी पुत्री है? जिसके लिए तू शोक कर रही है, यह लेटा हुआ पुरुष कौन है? क्या तू मुझे नहीं जानती? मैं वही तेरा मित्र हूँ जिसके साथ पहले तू विचरा करती थी। सखे! क्या तुम्हें यह [illegible] नहीं आता [illegible] किसी समय मैं तुम्हारा 'अविज्ञात' नाम वाला सखा था? तुम पृथ्वी के भोग भोगने के लिए निवासस्थान की खोज में मुझे छोड़कर चले गये थे। आर्य! पहले मैं और तुम एक दूसरे के मित्र और मानसरोवर निवासी हंस थे और सहस्रों वर्षों तक बिना स्थान के ही रहे थे। किन्तु मित्र! विषय भोगों की इच्छा से

'विष्णु-पुराण' का जड़भरत उपाख्यान—

पौराणिक कथानकों के अनुसार चौबीस अवतारों में से पांचवें अवतार माने जाने वाले ऋषभदेव के पुत्र राजर्षि भरत बड़े योगी और ज्ञानी थे। वे अपना राज्य पुत्रों को देकर तपस्या हेतु वन में निवास करने लगे थे और बहुत वर्षों तक उन्होंने तपस्या और आत्म चिन्तन किया था। पर फिर भी एक हिरन के बच्चे की माया में पड़ जाने से उनको बन्धन में पड़ना पड़ा। इसकी जो कथा 'विष्णु-पुराण' में श्री पराशर ऋषि ने वर्णन की है उसका सारांश इस प्रकार है—

'राजा भरत ने भगवान का ध्यान करते हुए चिरकाल तक शालग्राम क्षेत्र में निवास किया था। गुणियों में श्रेष्ठ उन भरत ने अहिंसादि गुणों के पालन पूर्वक, मन को संयम में रखकर परम श्रेष्ठता प्राप्त की। वह आसक्ति रहित योगी और तपस्वी राजा प्रभु पूजन के निमित्त समिधा, पुष्प और कुशा मात्र एकत्र करते और इनके अतिरिक्त अन्य कोई कर्म नहीं करते थे। एक दिन उन्होंने नदी पर स्नान करते समय एक हरिणी को जल पीते देखा। वह उस समय आसन्न प्रसवा थी। उस समय जङ्गल में से सिंहनाद का भयङ्कर शब्द आया। बहुत ऊँचे स्थान तक उछलने के कारण उसके गर्भ का बच्चा निकल कर नदी में गिर पड़ा और हिरनी भी पृथिवी पर गिर कर मर गई। यह दृश्य देख राजर्षि भरत को बड़ी करुणा हुई और वे उस मृग शावक को अपने आश्रम में लाकर पालन-पोषण करने लगे। जब वह कुछ बड़ा हो गया तो चरते-चरते जङ्गल में भी चला जाता। भरत से भी वह बड़ा प्रेम रखता था और भरत को भी उस मृगछौना को देखकर उससे हार्दिक स्नेह उत्पन्न हो गया था। इसलिए जब कभी उसे जङ्गल से लौटने में देर होती तो वे उसके लिए चिन्तित होने लगते कि उसे कोई भेड़िया या सिंह खा न गया हो।

कहा—'अरे यह क्या करते हो ? इस प्रकार विषम चाव से क्यों चल रहे हो ?' राजा द्वारा बार-बार टोके जाने पर श्रमिकों ने कहा—'हम में से यह एक व्यक्ति बहुत मन्द गति से चलता है। इसी कारण गति में समानता नहीं आती।' राजा ने कहा—'अरे, तूने तो अभी पालकी को बहुत थोडी दूर ही ढोया है, क्या इतने में ही थक गया ? देखने में तो तू इतना मोटा-ताजा है, फिर क्या तू इतना परिश्रम भी नहीं कर सकता ?' जड़भरत ने कहा—"राजन् ! मैं न तो मोटा-ताजा हूं और न मैंने आपकी पालकी ही उठाई हुई है, न मैं थका हूँ और न मुझे परिश्रम ही करना पड रहा है।" राजा ने कहा—'अरे, तू तो प्रत्यक्ष ही मोटा-ताजा दिखाई पड रहा है, इस समय भी यह पालकी तेरे कन्धे पर रखी है और भार वहन करने से परिश्रम भी होता ही है।"

जड भरत ने कहा—"राजन् ! तुम प्रत्यक्ष क्या देख रहे हो ? यही मुझे बताओ। तुम्हारा यह कहना बिल्कुल ठीक नहीं कि पालकी मेरे कन्धे पर रखी है। अब इस सम्बन्ध में मेरा मत सुनो। पृथ्वी पर दोनों पाँव, पाँवों पर जांघें, जांघों पर ऊरु और ऊरु पर उदर स्थित है। उदर पर वक्षःस्थल, बाहु और कन्धे हैं और उन कन्धों पर यह पालकी रखी है, तो इसका भार मेरे ऊपर कहाँ है ? इस पालकी में तुम्हारा बताया जाने वाला देह रखा है। यथार्थ में तो तुम वहाँ हो और मैं यहाँ हूँ।

'हे राजन् ! तुम या अन्यान्य सब प्राणी पञ्चभूतों द्वारा ही वहन किये जाते हैं और यह भूत-वर्ग भी गुणों के द्वारा प्रवाहित हो रहा है। यह सत्वादि तीनों गुण कर्मों के अधीन हैं और कर्मों की उत्पत्ति अविद्या अथवा माया से होती है। परन्तु आत्मा तो, जिसे 'मैं' कहा जाता है, शुद्ध, अक्षर, शान्त, गुणरहित तथा प्रकृति से परे है, तथा सब प्राणियों में एक ही तत्त्व ओत-प्रोत है, इसलिए उसकी न कभी वृद्धि है और न ह्रास है। तब तुम किस आधार पर कह सकते हो कि

का भी ध्यान रखना चाहिए। परोपकार एक साधन ही है, उसे साध्य नहीं बना लेना चाहिए।

'कल्कि पुराण' का माया-स्तव—

पर माया भली और बुरी दोनों तरह की होती है। जहाँ वह विषय-विकारों में फँसाकर मनुष्य को पतनोन्मुख करती है, वहाँ उसके प्रभाव से तरह-तरह के धर्म कार्य करके अनेक जीवों के साथ उपकार किया जा सकता है और उसके फलस्वरूप स्वयं भी उच्च गति को प्राप्त कर सकता है। वास्तव में भला-बुरा मनुष्य स्वयं होता है, माया तो उसके लिए एक निमित्त बन जाती है। यदि धन के सम्बन्ध में ही विचार करें तो मालूम होता है कि अनेक व्यक्ति उसे पाकर तरह-तरह के विकारों में ग्रस्त हो जाते हैं, अपने और दूसरों के पतन का कारण बनते हैं। पर अन्य व्यक्ति धन से बहुत से सत्कर्म करते हैं और अपने को तथा अन्य बहुत से जीवों को सुख पहुँचाते हैं। इसलिए धन को बुरा या भला कहना ठीक नहीं, उसका सदुपयोग या दुरुपयोग मनुष्य की मनोवृत्ति पर निर्भर है।

यही विचार करके 'कल्कि पुराण' के लेखक ने यद्यपि प्रारम्भ में 'माया' की तुलना वेश्या से की है, पर अन्त में उसे एक दैवी विभूति ही बतलाया है और उसके द्वारा संसार के कल्याण का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इसमें राजा शशिध्वज द्वारा एक माया-स्तव कहलाया है। जिसमें माया के ऊँचे स्वरूप की कल्पना की गई है और उसे सबके लिए हितकारी कहा है—

'शशिध्वज ने कहा—हे माया! तुम शुद्ध सत्त्वगुणमयी, विशुद्धरूपिणी एवं ब्रह्मा, विष्णु, शिव की भी माता हो। वेद में तुम्हारी ही महिमा प्रतिपादित हुई है। तुम्हारी कुक्षि में भूतगण और पञ्च-तन्मात्रा स्थित हैं। देव, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधर-गण तुम्हारी

वन्दना करते हैं। तुम लोक से परे हो, तुम्हारे स्वरूप में द्वैत-भाव लगाया गया है। व्यास आदि मुनिगण तुम्हारी वन्दना करते हैं। विष्णुजी तुम्हारा स्तव सङ्गीत गान करते हैं। तुम ही कलि रूपी समुद्र की कल्लोल में लहराती हो, जिससे समस्त प्राणी सांसारिक प्रपञ्च में पड़ जाते हैं सृष्टि के आदि, मध्य और अन्त में तुम ही विराजमान हो। तुम सब प्राणियों को आश्रय प्रदान करती हो। हंस अथवा पूर्ण भाव से उपासना करने पर तुमको प्राप्त किया जा सकता है। तुम देवता, तिर्यक और मनुष्य जाति में अनेक प्रकार से विभिन्न प्रकार से विभक्त हो रही हो। तुम सारे संसार को आधार हो। तुम ब्रह्म स्वरूपिणी हो। तुम्हारे प्रभाव से ही जिजगत भूतपञ्चक करके प्रकाशित हो रहा है। तुम्हारे प्रकाश के बिना काल, देव, कर्म उपाधि आदि विधाता का निगत किया हुआ कोई भाव प्रकाशित नहीं होता। तुम उसी प्रभा से प्रभावती हो रही हो।"

माया वास्तव में प्रकृति का ही एक नाम है। उस रूप में माया ही इस संसार का मूल है परमात्मा तो अपने मूल स्वरूप में पूर्णतः निस्पृह है। उसे जगत की रचना अथवा उसके कल्याण-अकल्याण से कोई प्रयोजन नहीं। संसार की उत्पत्ति, रचना और सञ्चालन माया द्वारा ही सम्भव होता है। काल, दैव, कर्म आदि ही वे बातें हैं जिनसे यह संसार स्थित जान पड़ता है, आगे बढ़ता रहता है और तरह-तरह के दृश्य उपस्थित करता है।

माया का मूल रूप शुद्ध और कल्याणकारी ही है, पर जब जीवात्मा विषयासक्त हो जाता है तब 'माया' उसके लिए पतनकारी बन जाती है। माया तो अग्नि, जल, वायु आदि जैसी शक्तियों की तरह है, जिनसे मनुष्य का जीवन कायम है और समस्त व्यवहार सम्भव हो रहे हैं, पर इन्हीं को अनेक लोग नाशकारी उद्देश्यों के लिए भी प्रयुक्त करते रहते हैं। अग्नि लगाकर किसी के घर को भस्मसात् किया

जा सकता है, जल में ढकेल कर मारा जा सकता है वायु को रोक कर प्राणान्त किया जा सकता है। इसी प्रकार माया का अच्छा और बुरा दोनों प्रकार का प्रभाव होता है, जिसे लोग अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण करते हैं। विषयासक्त सौन्दर्य का अनुभव वेश्याओं के कुटिल हावभावों से करता है और पवित्र भाव वाला उसका दिव्य दर्शन अपनी सती-साध्वी धर्म-पत्नी के प्रेमपूर्ण हाव-भाव में करता है। एक माता अपने पुत्र को स्वर्गीय स्नेह प्रदान करके उसका हर तरह से कल्याण करती है और अनेक विरोधी भाव रखने वाली नहिं लायें या पुरुष झूँठा स्नेह प्रकट करके किसी सम्बन्धी का सर्वस्व अपहरण कर लेने भी संकोच नहीं करते।

इसीलिए पुराणकार ने माया को स्वर्गीय और नारकीय दोनों रूपों में बतलाया है। आगे चलकर उसके सर्वव्यापी विविध रूपों का वर्णन करते हुए 'माया-स्तव' में कहा गया है

"तुम चिदाभास रूप से भूमि में गन्ध, जल में रस, तेज में रूप पवन में स्पर्श और आकाश में शब्द—इस प्रकार अनेक रूपों से विराजमान होकर संसार में प्रवेश कर रही हो, अतएव तुम विश्वरूपिणी हो। तुम ब्रह्म रूपिणी सावित्री हो, भूतेश्वर की भवानी हो, नारायण की लक्ष्मी हो, इन्द्र की इन्द्राणी हो। हे माया! समस्त जगत में तुम इसी प्रकार भासमान हो रही हो। तुम्हीं स्त्रियों को शैशवावस्था में बाला, यौवनकाल में युवती और वृद्धावस्था में वर्षीयसी के रूप से परिणत करती हो। तुम कल्प से कल्पित हो, ज्ञान से परे और कामरूपिणी हो। एवं अनेक प्रकार की मूर्तियाँ धारण करके प्रकाशमान हो रही हो। यज्ञ और योग से तुम्हारी पूजा की जाती है। तुम उपासकों को वर और अभीष्ट प्रदान करती हो। सब लोग तुम्हारा सम्मान करते हैं। तुम्हीं चण्डी, दुर्गा, कालिका आदि नाम धारण करके समयानुसार अनेक रूप और वेशों में प्रकाशित होती हो।'

निसन्देह 'माया' विविध रूपधारिणी है। श्रीरामकृष्ण काली देवी से कहा करते थे—"माँ! तू ही गृहस्थ के घर का सती-साध्वी नारी है और तू ही बाजार के कोठे पर बैठने वाली वेश्या है। एक रूप में तू माता बनकर मुझे स्नेह प्रदान करती है और दूसरे रूप में पत्नी बनकर रुचिकर भोजन बनाकर खिलाती है।" इसका आशय यही है कि संसार में कुछ भी यथार्थ रूप से भला-बुरा नहीं है, मनुष्य अपनी भावना से प्रत्येक वस्तु में भलाई-बुराई का भाव आरोपित कर लेता है। जो चाँदनी रात सब को सुन्दर जान पड़ती है वही चोर को बुरी जान पड़ती है। संसार के सब मनुष्य में लड़ाई-झगड़ा, शत्रुता, लड़ाई हत्या आदि का कोई कारण नहीं है, तत्व की दृष्टि से वे सब एक ही चैतन्य सत्ता के अंश रूप हैं और सबकी अन्तिम गति भी एक-सी होती है। पर केवल मनोवृत्तियों की भिन्नता के कारण एक मनुष्य अन्य लोगों को अपना विरोधी मानने लगता है और उनके साथ अधिक से अधिक क्रूरता का व्यवहार करता है। दूसरा मनुष्य उन्हीं परिस्थितियों में रहता हुआ सबको मित्र, आत्मीय मानता है और सबके हित साधन के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहा करता है। इसे हम 'माया' की लीला ही कह सकते हैं।

आजकल के नवशिक्षित और विज्ञानवादी मनुष्य 'माया' को एक काल्पनिक और धर्म शास्त्रों में वर्णित कथा-कहानियों का विषय ही मानते हैं। निसन्देह प्राचीन मुनि, पुरञ्जन, जड़भरत के उपाख्यान लोगों को माया का स्वरूप और उसका भला-बुरा प्रभाव समझाने के लिए ही रचे गए हैं, पर उनमें प्रदर्शित सिद्धान्तों को गलत नहीं बतलाया जा सकता। मनुष्य भ्रम, स्वार्थ और मूढ़ता के वशीभूत होकर बिना किसी यथार्थ कारण के भय, क्रोध, काम आदि का वातावरण उत्पन्न कर लेता है और परिणाम स्वरूप अपने और दूसरों के लिए तरह-तरह के संकट उत्पन्न कर लेता है। इसे यदि 'माया' की लीला कहें तो क्या अनुचित है?

हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि पुराणकर्त्ताओं के समय में तो 'माया' का प्रभाव मनुष्यों पर व्यक्तिगत रूप से ही हुआ करता था, वे झूठ-मूठ के कारणों से दुःख या सुख का अनुभव करने लगते थे। पर आज तो बड़े-बड़े प्रगतिशील और सर्व-साधन सम्पन्न राष्ट्र भी वैसा ही उदाहरण उपस्थित कर रहे हैं। रूस और अमरीका में लड़ाई-झगड़े का कोई कारण नहीं है, दोनों ही जीवन-निर्वाह के साधनों और आवश्यक धन सम्पत्ति से सम्पन्न हैं, पर केवल संसार में 'प्रधानता' प्राप्त करने के लिए अपने समस्त साधनों को सैनिक तैयारी के लिए झोंक रहे हैं। उनके उदाहरण से चीन, फ्रान्स, इङ्गलैण्ड आदि अन्य अनेक देश भी उसी मार्ग पर चल रहे हैं। परिणाम यह होता है कि संसार के आधे साधन युद्ध की निरर्थक तैयारी में खर्च हो रहे हैं और फलस्वरूप इन्हीं देशों के करोड़ों व्यक्ति उचित भोजन और वस्त्र से भी वञ्चित रहकर दुःख सहन करते हैं तब वे तरह-तरह के अनैतिक और हानिकारक उपायों का अवलम्बन करके अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न करने लगते हैं। इससे अन्य सैकड़ों प्रकार की समस्यायें और उलझनें पैदा होती हैं और मनुष्य स्वनिर्मित भय, भ्रम और मूढ़ता के कारण स्वर्ग सदृश पृथ्वी को नर्क के रूप में परिणित कर देते हैं।

यह बात हमी नहीं कहते, स्वयं योरोप, अमरीका के अनेक विचारशील व्यक्ति अपने देशवासियों की स्वार्थपरतापूर्ण मनोवृत्ति और भौतिक यन्त्रों के लिए पागलपन की दौड़ को देखकर बड़े चिन्तित हो रहे हैं और बार-बार चेतावनी दे रहे हैं कि यदि वहाँ के कर्त्ता-धर्त्ता और प्रमुख व्यक्ति इस प्रकार की हानिकारक प्रवृत्ति के निरोध का का कोई प्रयत्न न करेंगे तो उनकी सभ्यता शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट होकर अतीत की वस्तु बन जायगी। इस सम्बन्ध में 'Human Destiny' (मनुष्य का भाग्य) नामक पुस्तक के लेखक "Lecomte Du

निर्धारित करते हैं। इस प्रकार वे गोला-बारूद बेचकर इतना नफा कमाते हैं जिस पर जल्दी विश्वास करना कठिन होता है। उन्होंने योरोप अमरीका के शासनों की स्वार्थपरता पूर्ण नीति की आलोचना करते हुए कहा था –

"हम सबके सिरों के ऊपर एक विश्व-व्यापी सङ्कट का खतरा मँडरा रहा है। हम बराबर सुनते रहते हैं कि एक ओर विश्व युद्ध अनिवार्य है और लोग उसकी प्रतीक्षा करते ही रहते हैं। प्रत्येक देश में राष्ट्र की समस्त शक्तियाँ 'हत्या के साधनों' के प्रस्तुत करने में लगाई जा रही हैं, जिससे अन्य राष्ट्रों में रहने वाले अपने 'मानव-भाइयों' को मारा जा सके। शिक्षा-संस्थाओं के खर्च में कमी जा रही है और सार्वजनिक सेवा के विभिन्न मदों का व्यय भी घटाया जा रहा है, ताकि किसी प्रकार इन 'मौत के यन्त्रों' की कीमत चुकाई जा सके।"

"इससे भी शोचनीय बात यह है कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच भय और घृणा की दीवारें खड़ी की जा रही हैं। अनेक देशों में तो स्वयं सरकार ही इस प्रकार के अविश्वास का भाव फैला रही है और सहृदयता तथा भ्रातृभाव के कुयें को विषाक्त बना रही है। समाचार पत्र भी घातक-प्रचार-कार्य में सरकार के सहयोगी बने हुए हैं। परिणाम यह होता है कि अनेक राष्ट्रों में सिवाय कठोर शब्द और निन्दा की बातों के सिवा और कुछ सुनाई नहीं पड़ता। यही दूषित भावना-प्रवाह किसी भी समय भी समय युद्ध के रूप में फूट पड़ने को तैयार रहेगा और जगह-जगह सामूहिक नर-संहार के बीभत्स दृश्य दिखलाई पड़ने लगेंगे। न मालूम कब तक लोग इस घातक प्रक्रिया में लगे रहेंगे और अन्त में एक दिन उनको होश आवेगा। उन्होंने एक विकृत मस्तिष्क शराबी की तरह अपने ही घर में आग लगादी है और अनेक व्यक्तियों को जिनमें उनके प्रिय सम्बन्धी भी हैं, मार दिया है।'

सत्ता ने हिरनाकुश, रावण, कंस और दुर्योधन जैसे प्राचीन शोषण-कर्त्ताओं का मान मर्दन करके जड़मूल से नष्ट कर दिया वही अपनी माया से आज 'एटम बम' और 'हायड्रोजन बम' के अभिमानी राष्ट्रों की बुद्धि को विपरीत करके पारस्परिक संघर्ष द्वारा उनके गत पाँच सौ वर्षों के पापों का दण्ड देने का आयोजन कर रही है। मगर हमको आँखें हों और पुरातन ऋषि-मुनियों के अध्यात्मज्ञान का एक अंश भी हमको प्राप्त हुआ हो तो हम योरोप अमरीका की घातक 'वैज्ञानिक उन्नति' में परमात्मा की माया के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।



लगेंगी। एक मुल्क दूसरे मुल्क के और एक राज्य दूसरे राज्य के के विरुद्ध खड़ा होगा। उस समय अकाल पड़ेंगे, महामारी फैलेगी और जगह-जगह भूकम्प आयेंगे। यह दशा आरम्भ में होगी और इसके बाद भी भयङ्कर [redacted] भोगने पड़ेंगे।' (रिवेलेशन)

'बाइबिल' की भविष्य वाणियों के वक्ता महात्मा जान को एक योगी पुरुष माना गया है। उनका जो चित्र ईसाई धर्म की पुस्तकों में प्राप्त होता है उसमें वे जटाजूट और श्मश्रु [लम्बी दाढ़ी] से युक्त कम्बल लपेटे हुए किसी प्राचीन ऋषि की तरह ही दिखाई पड़ते हैं। अब तो विद्वानों ने यहाँ तक सिद्ध कर दिया है कि भारतवर्ष में आकर उन्होंने नाथ सम्प्रदायों वालों से योग की शिक्षा प्राप्त की थी और उनका नाम भारतीय-मठों में सुरक्षित 'नाथ-नामावली' को हस्तलिखित पुस्तकों में मौजूद हैं। उन्होंने 'बाइबिल' में 'रिवेलेशन' [दिव्य-वाणी] नाम का पूरा अध्याय ही लिखा है, जिसमें भविष्य-कथन के रूप 'युग-परिवर्तन' की समस्त घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और बतलाया है कि महायुद्ध और दैवी-प्रकोप से होने वाले नाश के पश्चात् दैवी-शक्ति (अवतार) का आविर्भाव होगा और वह अव्यवस्था को मिटाकर न्याय-शासन (रामराज्य) की स्थापना करेगी।

क्या अन्तिम समय आ पहुँचा ?

वर्तमान समय में युद्धों की अधिकता और भीषणता से घबड़ाकर अधिकांश धार्मिक ईसाई महात्मा जान की प्राचीन भविष्यवाणी के सत्य होने में विश्वास करने लगे हैं और जगह-जगह यह विचार प्रकट किये जा रहे हैं कि अब 'संसार के उद्धारकर्ता' के प्रकट होने का समय बिल्कुल समीप आ पहुँचा है। [redacted] विचारों का प्रचार करने वाले ईसाई धर्म के मासिक पत्र "New Jeru alem fellowship" (यूजरूसलम फेलोशिप) के मई १९५७ के अङ्क में श्री जान ब्रोकित नामक सज्जन ने निम्न सम्मति प्रकट की है—

क्या अन्तिम समय आ पहुंचा है। हमारे चारों तरफ अन्धकार गहरा हो ता जाता है, मण्डे झुक गये हैं, पाप की वृद्धि हो रही है और संसार 'न्यायकर्ता' (भगवान्) के सम्मुख फैसले के लिए बढ़ता जा रहा है। लोगों में तरह-तरह के अनुचित कर्मों के साथ समझौते की प्रवृत्ति बढ़ रही है। अब धर्म विरोधी अभियान चोटी पर पहुंच चुका है। इस अवसर पर भगवान् ही सत्य-मार्ग दिखलाकर हमारी रक्षा कर सकते हैं, अन्यथा हम पूरी तरह से शैतानियत (दानव-राज्य) में डूब जायेंगे।'

'शैतान का सबसे बड़ा हथियार लोगों को बहकाना है। वह असत्य के सहारे ही अपने समस्त कार्यक्रमों को पूरा करता है। इस समय संसार के राष्ट्र इतने अधिक हथियार बन्द होते जाते हैं, जैसे पहले कभी नहीं थे, क्योंकि सबने इस 'असत्य' पर विश्वास कर लिया है कि हम जितना अधिक अणु-बम तैयार करके रखेंगे उतना अधिक शान्ति कायम रह सकेगी। इस समय युद्ध के समर्थकों द्वारा चारों तरफ प्रचार किया जा रहा है—'तुम्हारा विरोधी दहाड़ते हुए शेर की तरह चारों तरफ घूम रहा है कि वह किसको खा जाय। इसलिए तुम भी जल्दी से जल्दी अपनी रक्षा का उपाय करो।' ऐसे प्रचार के प्रवाह में बड़े-बड़े धार्मिकों और ईश्वर-भक्तों के भी बह जाने की सम्भावना हो जाती है।

'यह अत्यावश्यक है कि ऐसे अवसर पर हम शान्ति चित्त से विचार करें और सोचें कि हमारा क्या कर्तव्य है ? हम जो कुछ निर्णय करेंगे वही हमारे भाग्य का फैसला करने वाला होगा। इस समय हम चौराहे पर खड़े हैं, और सही तथा गलत रास्ते का चुनाव करना हमारे ही ऊपर निर्भर है। अगर हम सत्य-मार्ग पर चले तो भगवान् के राज्य में पहुंच जायेंगे और गलत मार्ग ग्रहण किया तो धर्म विरोधी दल के भयङ्कर कुचक्र में फंसकर नष्ट हो जायेंगे।'

इस उद्धरण में धार्मिक ईसाइयों की चिन्तापूर्ण मन:स्थिति स्पष्ट प्रकट होती है। इस समय युद्ध की तैयारी करने वाले प्रमुख राष्ट्र ईसाई धर्म के अनुयायी ही माने जाते हैं। इङ्गलैण्ड फ्रान्स, अमरीका, जर्मनी के सभी लोगों की गिनती ईसाई मजहब वालों में ही की जाती है और उन्हीं में से कुछ लोग इस तरह युद्ध का प्रचार करके समस्त संसार को युद्धाग्नि की भट्टी में झोंकने की तैयारी कर रहे हैं। वहाँ अधिकांश जनता ईसा-मसीह के प्रेम-सन्देश और क्षमा-भावना को समझते हुए भी झूठी राष्ट्रीयता के प्रवाह में बहकर युद्ध की तैयारी में सहयोग कर रही है। इसी से व्यथित होकर उक्त सज्जन ने अपने भाइयों को यह चेतावनी दी है।

संसार की समस्या को भगवान् ही सुलझायेगा—

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण और अवतार में विश्वास रखने वाले उद्गार पादरी जान मेलार्ड के हैं, जो इङ्गलैण्ड से Healing Life (हीलिंग लाइफ) नामक पाक्षिक पत्रिका प्रकाशित करते हैं और आध्यात्मिक विषयों पर अपने भाइयों का मार्ग दर्शन करते रहते हैं। उन्होंने वर्तमान सभ्यता और लोगों की स्वार्थपरता को लक्ष्य करके कहा है—

'संसार की समस्या मनुष्य की बुद्धि द्वारा नहीं सुलझाई जा सकती। यह विशाल कार्य मनुष्य की ताकत के बाहर है। वर्तमान अवस्था ऐसी उलझनपूर्ण है, और अन्याय, अत्याचार इतने बढ़ गए हैं कि उनका सुधार कर सकना साधारण मनुष्य के लिए असम्भव है। तो भी हम निराश अथवा उत्साहहीन नहीं होते वरन् आशा से प्रसन्नचित्त हो रहे हैं। क्योंकि ऐसे ही समय में—ऐसी ही हालत में भगवान की शक्ति प्रकट होती है, संसार में एक महान् जागृति होती है और सच्चा कल्याण हो सकता है। हम में से बहुत से लोग धर्म-राज्य की

करेगा ऐसी उनकी धारणा नहीं है। अन्य सच्चे धार्मिकों की भी ऐसी ही सम्मति हो सकती है।

आकाश की शक्तियाँ विचलित हो रही हैं–

इसी प्रकार श्री जे० एच० कोर्नीवियर नामक विद्वान ने अपनी "Civilisation or choas" (सभ्यता अथवा अव्यवस्था) नामक नामक पुस्तक में संसार में भीषण घटनायें होने के पश्चात् अवतार के आगमन की भविष्यवाणी की है उन्होंने 'बाइबिल' के 'लूक' शीर्षक अध्याय की एक भविष्यवाणी का उल्लेख करते हुए कहा है—

"उस समय सूर्य, चन्द्रमा और तारों में चिन्ह प्रकट होंगे, संसार के देशों में कष्ट और हलचल बहुत अधिक बढ़ जायगी, समुद्र और उसकी लहरें भी गर्जने लगेंगी। मनुष्य संसार में होने वाली घटनाओं को देख सकने का भी साहस न कर सकेंगे, क्योंकि उस समय आकाश की (दैवी) शक्तियाँ विचलित हो जायेंगी। इसके पश्चात् 'मानव-पुत्र' शक्ति तथा शोभा के साथ आकाश से उतर कर संसार का उद्धार करेगा।'

'इस उद्धरण की बातें जो 'ईश-पुत्र' महात्मा ईसा ने दो हजार वर्ष पहले कही थी, अवश्य सत्य होने वाली है और उसके बतलाये हुए चिन्ह दृष्टिगोचर होने लग गये हैं। ज्योतिष-विज्ञान के ज्ञाता सूर्य और चन्द्रमा में होने वाले नवीन परिवर्तनों को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। एटम और हाइड्रोजन बमों के जल में परीक्षण किए जाने के कारण समुद्र में भी हलचल पैदा हो जाती है और करोड़ों जलजन्तु नष्ट हो जाते हैं। समस्त देशों में इतने अधिक आन्दोलन और खूनी क्रान्तियाँ हो रही हैं कि उनसे आकाशी शक्तियाँ विचलित हो रही हैं। वे समस्त संसार पर आने वाले भयङ्कर परिणाम की सूचना दे रही हैं। इस नाशकारी घटनाओं के बाद 'मानव-पुत्र' पृथिवी पर अवतरित होगा।'

समाज में असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। इसके परिणामस्वरूप मानव-जाति सृष्टि रचना की दैवी योजना के अनुसार अपने लक्ष्य की तरफ नहीं बढ़ सकती, वरन् एक स्थान पर अटक कर किंकर्तव्य विमूढ़ हो गई है और ऐसे कार्य करने लग गई है जो ईश्वरीय नियमों के प्रतिकूल है। निश्चय ही ऐसी अवस्था अधिक समय तक कायम नहीं रह सकती। भारतवर्ष के अध्यात्मवादी सच्चे साधकों ने इस समस्या पर भली प्रकार विचार किया है और अब से कुछ वर्ष पूर्व ही भारत के महान आध्यात्मिक नेता श्री अरविन्द ने इस सम्बन्ध में एक घोषणा की थी—

'मुझे भय है कि जो लोग इस समय संसार की सङ्कटपूर्ण परिस्थिति पर दुःखी हो रहे हैं, उनको मैं कोई विशेष सान्त्वना की बात नहीं कह सकता। इस समय हालत बुरी है, निरन्तर अधिक बुरी होती जाती है और सम्भव है किसी भी समय वह अधिक से अधिक बुरी बन जाय। अब इस अशान्तिपूर्ण जगत में कोई भी बात, चाहे वह कितनी भी विपरीत अथवा असङ्गत क्यों न जान पड़ती हो, असम्भव नहीं है।

'इस परिस्थिति में सबसे अच्छी बात यही है कि हम विश्वास रखें कि अगर संसार में एक नया और श्रेष्ठ युग आना है, तो उसके लिए हमारी सब बुराइयों को प्रकट होकर निकल ही जाना चाहिए। यह एक वैसी ही प्रणाली है जैसे योग-साधन में अपने भीतर की हीन वासनाओं को प्रकाश में लाकर उनके साथ सङ्घर्ष करके दूर कर दिया जाता है। शुद्धि का यही तरीका है। इसके सिवाय हमको यह कहावत भी याद रखनी चाहिए कि प्रभात होने से पहले रात्रि का अन्धकार सबसे अधिक घनीभूत हो जाता जान पड़ता है।

'मैं यह भी बतला देना चाहता हूँ कि जिस नये संसार के आगमन की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं वह उसी सामग्री का बना न होगा, जिसका

कि वर्तमान संसार दिखाई पड़ रहा है, वरन् उसका निर्माण भिन्न प्रकार के साधनों और तत्त्वों से ही होगा। इस समय बाहरी चीजों का ही ज्यादा महत्त्व है जब कि उस नये जगत में आन्तरिक शक्तियों की ही प्रधानता होगी। इसलिये यदि इस समय धन,सम्पत्ति, शान-शौकत जैसी बाहरी वस्तुओं में दोष उत्पन्न होकर वे नष्ट होती जाती हैं तो इस पर ज्यादा ध्यान देने या चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। इसके स्थान में लोगों को अपनी आत्मिक शक्तियों के विकास का उद्योग करना चाहिए जिससे वे नये-युग के उपयुक्त बन सकें।

'संसार की वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह दुनिया अब बहुत पुरानी हो गई है और अब उसको कायापलट होने की आवश्यकता है। उसकी एक-एक संस्थायें जर्जरता के कारण टूट रही हैं। न तो आज कोई समाज ही अपने स्थान पर अडिग है और न कोई सरकार ही। समाज का बन्धन धीरे-धीरे अज्ञात किन्तु स्पष्ट रूप से टूटता जा रहा है। एक के बाद दूसरी सरकारें असफल होती जा रही हैं। मानव-समाज खतरे में है। मनुष्य की आजादी, देशों तथा राष्ट्रों की स्वतन्त्रता नष्ट हो रही है। सम्पूर्ण विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ, पारस्परिक सम्बन्ध, सामंजस्य सभी हिल उठे हैं। निर्धनता, अत्याचार, अज्ञान मोहवश आदि का सारा जगत शिकार बन चुका है। संसार की इस अस्वाभाविक अवस्था के कारण गत चालीस वर्षों के भीतर दो बार भयङ्कर विश्व-युद्ध हो चुके हैं और तीसरे प्रलयकारी युद्ध की सम्भावना प्रतिदिन निकट आती चली जाती है।'

इस भयङ्कर अवस्था का—इस क्रमशः नाश की प्रक्रिया का इलाज आखिर क्या है? मानव-जाति को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली इस व्यापक सङ्कटपूर्ण परिस्थिति को किस प्रकार बदला जा सकता है? सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में जानकारों ने इसके लिए अनेक प्रकार

के मुन्दर सामने रखे हैं राजनैतिक नेताओं ने जितने भी उपाय इस अवस्था के मिटाने के लिए बतलाये हैं वे सभी अनजुत हैं। वे सफल कैसे हो सकते हैं? जब राजनीतिज्ञों का मस्तिष्क स्वयं अपनी भावनाओं पर ही नियन्त्रण नहीं रख सकता, तब सारे विश्व की व्यवस्था को सुधारने के लिए वह कैसे कोई उपाय खोज सकता है?

यदि इन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विचारकों को छोड़ कर धार्मिक वर्ग पर निगाह डालते हैं तो मालूम होता है कि धर्म के स्वच्छ दर्पण पर, बीते हुये युगों की धार्मिक शिक्षा पर, पंडित, पुजारी पादरी, मुल्ला कहे जाने वाले लोगों ने अज्ञान की छाया डाल दी है, जिससे मनुष्य की दिव्य-दृष्टि नष्ट हो गई है। सदियों-नवी प्रथायें, धर्म के नाम पर होने वाले झूठे पाखण्ड और समाज के टूटते हुए बन्धन सभी व्यर्थ हैं। न तो इनसे विश्व का कोई हित हो सकता है और न अब इसकी आवश्यकता है।

परन्तु श्री अरविन्द ने नये युग का स्वागत करते हुये कहा है—

"वह दिन कितना धन्य होगा जब मानवता एक नये युग में प्रवेश करेगी। वह युग जिसमें शान्ति होगी, प्रेम का शासन होगा, एकता होगी, सुख होगा और मानव-जीवन की सफलता होगी। उस दिन संसार के कण-कण में सुख और शान्ति व्याप्त हो जायगी। उस युग का एक दिन भी पिछले युगों की शताब्दियों की तुलना का होगा।"

पर यह भी निश्चित है कि इस नवयुग में प्रवेश करने से पूर्व मनुष्य जाति को एक बार अग्नि-परीक्षा में होकर गुजरना पड़ेगा। युग परिवर्तन के समय क्रान्ति का होना अनिवार्य है। जब एक युग मृत्यु के मुख में विलीन होता है तथा नया युग रंग क्षेत्र में प्रवेश करता है तब

दोनों में तुमुल-संग्राम होना स्वाभाविक ही है। 'कल्कि पुराण' में इसी भीषण सद्युद्ध का रूपकों तथा कथाओं के रूप में उल्लेख किया गया है। जो व्यक्ति इस सद्युद्ध में धर्म-पक्ष का सफलतापूर्वक नेतृत्व करके वर्तमान अन्याय, अनीति और अनाचार का अन्त कर सकेगा उसे 'अवतार' मानने से कौन इन्कार करेगा ?

युग-परिवर्तन तथा 'अवतार' अवश्यम्भावी हैं--

यद्यपि राजनीति के क्षेत्र में चालबाजी और कूटनीति को प्रशंसनीय मतमत्यर गया है तो भी कितने ही राजनीतिज्ञ सत्य के उच्च आदर्श को पूर्णतया ठीक समझते हैं और अवसर आने पर उसका प्रतिपादन और समर्थन भी करते हैं। गत वर्षों में भारतीय-राष्ट्र के कर्णधार प० जवाहरलाल नेहरू और अमरीका के प्रेसीडेण्ट केनेडी इसी कोटि के महापुरुष हुये हैं। यद्यपि अमरीका प्रलय अस्त्रों की खोज में सबसे आगे है और उसने इस कार्य में कितना धन व्यय किया होगा इसकी कोई गिनती नहीं की जा सकती। पर प० केनेडी विश्व शान्ति के सिद्धान्त को कल्याणकारी मान निःशस्त्रीकरण के लिये तैयार हो गये थे और उन्होंने अपने प्रतिद्वन्दी रूस से कहा था कि 'अब तक तुम अस्त्र निर्माण में हमारे साथ दौड़ लगाते रहे हो तो अब निःशस्त्रीकरण में भी हमारे साथ दौड़ो।' पर अमरीका के सबसे बड़े पूँजीपति, जो हथियारों का व्यापार करके प्रति वर्ष अरबों रुपया कमाते हैं ऐसी बात को कब सहन कर सकते थे ? परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समय बाद केनेडी की गुप्त घातक द्वारा हत्या करवी गई। विश्व-शान्ति के नाम पर एक महामानव का बलिदान हो गया।

पुरानी दुनिया अवश्य मरेगी--

प० जवाहर लाल नेहरू जी भी बहुत समय से राजनीतिक आशावाद के साथ नये युग और नये संसार के निर्माण की चर्चा करते

आये थे। वे इतिहास के बहुत बड़े ज्ञाता थे और प्राचीन घटनाओं के प्रकाश में आगामी घटनाओं के स्वरूप का बहुत कुछ सही अनुमान कर सकते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि वर्तमान दुनिया अब ज्यादा दिन तक इस हालत में नहीं रह सकती और मानव-जाति शीघ्र ही एक नये युग में प्रवेश करेगी। इसका विवेचन करते हुये उन्होंने २५ वर्ष पूर्व लिखा था—

"इस समय दुनिया में बड़े जोरदार परिवर्तन हो रहे हैं, तो भी दिन पर दिन यही दिखलाई पड़ता है कि वे आने वाली घटनाओं के लक्षण मात्र हैं। हम इस समय एक ऐसे महान् क्रान्तिकारी युग में जीवित हैं जिसकी तुलना का युग अब तक के इतिहास में शायद ही मिल सके। यह क्रान्ति अपना नियत कार्यक्रम पूरा करके ही रहेगी। तब तक हमारी पृथिवी पर शान्ति या समझौते की कोई आशा नहीं।

'हमें समझ रखना चाहिये कि पुरानी दुनिया अवश्य मरेगी, चाहे यह बात हमको पसन्द हो या न हो। जो लोग इस पुरानी दुनिया के सबसे बड़े समर्थक थे, नष्ट होकर भूतकाल की चीज बन चुके हैं। हमको यह भी समझ लेना चाहिये कि एक युग समाप्त हो चुका है और इस खून-खराबी के बीच में होकर हम नये युग में प्रवेश कर रहे हैं। मैं यह तो नहीं कह सकता कि यह नया युग अवश्य ही बहुत अच्छा होगा, पर मैं इतना जानता हूँ कि वह बिल्कुल भिन्न प्रकार का होगा। संसार के नर-नारी भाग्य के खिलौने बन गये हैं और नाश के भँवर में खिंचते चले जा रहे हैं। हम नहीं जानते कि हम किधर जा रहे हैं। फिर भी इतना तो हम कह ही सकते हैं कि हमारी आज की दुनिया हमारी आँखों के सामने ही तेजी से बदल रही है, और कोई नहीं कह सकता कि इसकी जगह हमें क्या देखने को मिलेगा।"

नेहरूजी ने एक अन्य अवसर पर इस महान् परिवर्तन के सम्पादनकर्ता (अवतार) के विषय में भी अपने विचार प्रकट किये थे—

"मनुष्य-समाज के उद्धार के लिये समय-समय पर इस देश और दूसरे देशों में भी महापुरुष पैदा होते रहते हैं। पर ऐसे किसी महापुरुष की अपेक्षा वह भावना बड़ी है, जिसको वह अपने जीवन के व्यवहार में पूरी करके बताता है। ऐसे महापुरुषों को लोग 'अवतार' कहते हैं। इस युग का 'अवतार' वह भावनाएँ ही हैं, जो कि मनुष्य-समाज के सुधारने के लिये प्रकट हो रही हैं। आज भी वह भावना जिसको अवतार कहा जा सकता 'सामाजिक-न्याय' की है। आइये, इस भावना रूपी अवतार के सन्देश को हम सुनें और उसके द्वारा होने वाली सामाजिक क्रान्ति के हम उपयुक्त साधन बनें। इससे मनुष्य का जीवन उन्नत जायगा और यह संसार मनुष्यों के निवास के योग्य अधिक उपयुक्त बन जायगा।"

नेहरूजी ने अवतार को प्रधानतया भावना के रूप में बतलाया है और उसमें कुछ गलती नहीं है। जब तक लोगों की भावनाएँ जागृत नहीं होंगी तब तक वे किसी महापुरुष के पीछे चलने को तैयार न होंगे। यह जनता की भावना ही है जिसके आधार पर वे एक अपने जैसे नरतन धारी को अपने से बहुत ऊँचा, ईश्वर के समान मान लेते हैं। पर उपर्युक्त उद्धरण में जो यह कहा गया है कि भावना अवतार से बड़ी होती है, उसमें दो पक्ष हैं और दोनों ही ठीक हैं। जैसे ईश्वर को निराकार माना जाता है और अधिकांश ज्ञानी पुरुष निराकार-पक्ष का ही समर्थन करते हैं, पर सामान्य मनुष्य निराकार ईश्वर की उपासना अर्चना, भक्ति ठीक ढङ्ग से नहीं कर सकता, इसलिए वह उसके साकार रूप को ही मानता है, चाहे उसमें वास्तविकता का अंश कितना ही ... यही बात 'अवतार' के विषय में है। चाहे भावना ही मुख्य वस्तु

हो, पर जन-सामान्य उस सूक्ष्म और केवल बुद्धिगम्य तत्त्व को ठीक तरह हृदयंगम नहीं कर सकते, इसलिये भावना को तभी स्वीकार करते हैं जब उसकी प्रेरक शक्ति को प्रत्यक्ष रूप में देख लेते हैं। दोनों स्थितियों में कार्य एक ही होता है पर ज्ञानी भावना की उच्चता से अधिक प्रभावित होता है और सामान्य बुद्धि वाला उसके संचालक अथवा नेता को प्रमुख मानकर उसका अनुसरण करता है।

सूर्योदय पूर्व दिशा में ही होगा--

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक दिव्य दृष्टि रखने वाले महामानव थे। वे मानवता के पतन को देखकर बड़े खिन्न होते थे और आध्यात्मिकता की भाषा में लोगों को पाप से मुक्त होने की प्रेरणा देते रहते थे। वे संसार की वर्तमान अवस्था को बहुत दयनीय और एक धार्मिक व्यक्ति की दृष्टि से कलङ्कपूर्ण मानते थे। उनकी सम्मति थी कि—

'पाप के भार से लदी हुई वसुन्धरा की कलुषित धूल पर आज नभ से रक्त की धारा बरस रही है। पाप का यह हलाये मानस को कलुषित कर रहा है और रुधिर के चिन्ह हमारे हाथों पर दीख पड़ने लगे हैं। रुधिर के इन धब्बों को हम कब तक धोते रहेंगे?'

निस्सन्देह युद्ध और किसी भी देश के निरपराध व्यक्तियों का हत्याकाण्ड धार्मिक कहलाने वाले मनुष्य के लिए कलंक स्वरूप ही है। ऐसे व्यक्ति कभी भगवान की दृष्टि में पाप मुक्त नहीं माने जा सकते।

महाकवि ने 'अवतार' के सम्बन्ध में भी यह विश्वास प्रकट किया है कि वह भारतवर्ष में ही प्रकट होकर संसार के उस भ्रम और अज्ञान को दूर करेगा, जिसके कारण आज यह दुनिया सर्वनाश के

प्रवाह के गढ़े में कूदने की तैयारी कर रहा है। उन्होंने अपनी ८० वीं वर्षगांठ पर, एक सन्देश देते हुये कहा था—

"एक समय था जब कि मैं यह विश्वास करता था कि सभ्यता का स्रोत योरोप के भीतर से उत्पन्न होगा। पर आज मैं इस नाशवान जगत को छोड़ने की तैयारी कर रहा हूं, मेरे उस दृढ़ विश्वास के टुकड़े-टुकड़े हो चुके हैं। आज मेरी एकमात्र अन्तिम अभिलाषा यही है कि 'उद्धारकर्ता' का प्रादुर्भाव इस 'अकिंचन देश' में ही होगा। पूर्व दिशा से ही उसका सन्देश समस्त संसार में फैलेगा और मानवजाति के हृदयों को पूर्णतया आशा से भर देगा।"

'जैसे-जैसे मैं आगे बढ़ता जाता हूं, पीछे की तरफ मुझे आधुनिक सभ्यता का भवन टूटकर खण्डहर बनता दिखलाई पड़ता है। वह मानवीय असफलता के एक बहुत बड़े घूरे की तरह जान पड़ता है। पर यह देखकर भी मैं मनुष्य में अश्रद्धा नहीं कर सकता। ऐसा करना बहुत बड़ा पाप होगा। इसके विपरीत मैं आशा करता हूं कि जब पश्चिम के सत्ताधारियों का युद्धोन्माद समाप्त हो जायगा और उनका वातावरण स्वच्छ होकर सेवा और त्याग की भावना का उदय होगा, तो संसार के इतिहास में एक नया ही अध्याय प्रारम्भ होगा।

"सम्भवतः प्रभात इसी पूर्वीय क्षितिज पर होगा, जहां से सूर्योदय होता है। तब एक नया दिन आयेगा जब कि मनुष्य समस्त विघ्न-बाधाओं को लांघकर अजेय भाव से फिर अपने प्राचीन गौरव के मार्ग पर अग्रसर होगा और अपने खोये हुये उत्तराधिकार को प्राप्त करेगा।"

भारतीय सन्तों के उद्गार—

भारत के धार्मिक क्षेत्र वाले व्यक्ति तो, चाहे वे बड़े हों या छोटे, विद्वान् हों या सामान्य, किसी न किसी तरह प्रत्यक्ष अवतार में विश्वास रखते ही हैं। जब तक देश में राम-कृष्ण और शिव की भक्ति धारा प्रवाहित है, तब तक यहां 'अवतारों' में श्रद्धा का अभाव नहीं हो

सकता। जिन लोगों का अटल विश्वास है कि भगवान हाथी के पुकारने पर उसकी रक्षार्थ आये थे, उन्होंने ध्रुव, प्रह्लाद जैसे बालकों की प्रार्थना को स्वीकार किया था, द्रौपदी की लाज बचाने को एक के स्थान पर हजारों साड़ियाँ उपस्थित करदी थीं, वे यह क्यों नहीं मानेंगे कि यदि भक्तों पर आपत्ति आयेगी तो भगवान आज भी उनकी रक्षार्थ उसी प्रकार अवश्य खड़े होंगे ? इस लिए यहाँ के धार्मिक जन और साधु-महात्मा सदैव भगवान के आगमन की राह देखते ही रहते हैं और आज कल तो संसार में दानवता की प्रबलता देखकर उनका विश्वास और भी सुदृढ़ हो रहा है।

सूरदास आदि प्राचीन सन्तों के सतयुग और अवतार सम्बन्धी भविष्य कथनों की चर्चा तो लोग करते ही रहते हैं, पर आजकल भी अनेक भगवद्-भक्त, तपस्वी महापुरुष यही कहते कि संसार की दुर्दशा को मिटाने और धर्म राज्य की स्थापना करने के लिए 'दैवी-शक्ति' का आविर्भाव शीघ्र ही होगा। इस सम्बन्ध में पञ्जाब प्रदेश के एक महापुरुष का नीचे उद्धृत विवेचन हमको विशेष रूप से युक्तियुक्त जान पड़ता है जो हमने अपने 'सतयुग' मासिक पत्र में अब से कितने ही वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था—

'प्रत्येक युग में दूसरा युग वर्तता है, यह प्रकृति का नियम है। सतयुग में भी कलियुग वर्तता था। इसी प्रकार अब कलियुग में सतयुग वर्तेगा। सृष्टि की वर्तमान अवस्था ऐसी हो गई है कि यदि अब सतयुग न आवे तो यह अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकती। मनुष्यों की शक्तियाँ और मनोवृत्तियाँ ऐसी हीन होती जा रही हैं कि अब यदि नया युग न आवे तो मानव-जाति सौ-दो सौ वर्ष में नष्ट प्रायः हो सकती है। और यह भगवान को इष्ट नहीं। इसलिये काल-चक्र के कायम रहने के लिये भगवान बीच में 'सतयुग' रूपी टेका (सहारा) लगाकर इसे स्थिर रखने की व्यवस्था करेंगे।

विकास-क्रम के उच्च शिखर पर आरोहण करके आगामी धर्म-युग के आगमन के अवसर पर भगवत्-चरण वन्दना की प्रतीक्षा में हैं। प्रभु प्रेम-भक्ति-शरणागति रूपी नौका को स्वयं कर्णधार बनकर पार लगायेंगे। हमें बालक बन कर उस परम-पिता का आश्रय ही ग्रहण करना आवश्यक है।"

राधास्वामी सम्प्रदाय के प्रधान गुरु स्वामी आनन्दशंकर (हजूर महाराज) ने भी आध्यात्मिक-जगत की सूक्ष्म गति का निरीक्षण करके बतलाया है कि 'हमारा विश्वास है कि निकट भविष्य में ही आध्यात्मिक क्षेत्र में से निकलकर शक्तिशाली लहरें पृथिवी पर आधिपत्य जमाने वाली हैं। इस समय हम जितनी आपत्तियों का अनुभव कर रहे हैं, तब वे सब गायब हो जायेंगी और 'सतयुग' से भी बढ़ कर प्रेम, आनन्द और कल्याण की दशा सर्वत्र व्याप्त हो जायगी। जो आध्यात्मिक शक्तियाँ इस समय छिपी पड़ी हैं तब वे बहुत कुछ प्रकट हो जावेंगी।'

बङ्गाल के भगवन्नाम प्रचारक तथा पतितोद्धारक महाप्रभु जगद्बन्धु के उद्गार हैं—"माँ! महाप्रलय आने वाली है। मेरे नाम की रट लगे तो काल पाश का नाश कटे और सृष्टि की भी रक्षा हो। कलियुग की अवधि पूरी हो चुकी अब तनिक भी देर न लगा। पर हजार वर्ष मेरी लीला चलेगी। इस बार मैं सबको भगवान का नामामृत पिलाऊँगा, तभी मेरा नाम 'जगद्बन्धु' सार्थक होगा। मेरे इस महाव्रत का उत्थान इसी बीसवीं शताब्दी के भीतर पूर्ण रूप से हो जायगा।'

पूर्वीय-भारत के एक प्रसिद्ध आध्यात्मिक नेता स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का कहना है कि—'संसार में जितने भी दल, मज़हब, जातियाँ हैं वे सब मेरे ही हैं। जब ऐसे विभिन्न प्रकार के व्यक्ति मेरे पास आते हैं तो मैं सब मुझे अपने स्वरूप ही जान पड़ते हैं। मुझे इस

पड़ेगा। वरन् उनके आध्यात्मिक प्रभाव से ही सब युद्धप्रिय व्यक्ति अभिभूत हो जायेंगे और संसार में शान्तियुग का आगमन सम्भव हो जायगा। हिन्दू धर्म में जितने अवतारों का वर्णन है उनमें बुद्धदेव के अतिरिक्त सबको दुष्ट-दमन करके ही धर्म की रक्षा करनी पड़ी है। पर मालूम होता है कि नया अवतार, जिसे ईसाई सम्भवतः ईसामसीह का द्वितीय आगमन मानता हो और भारतवासी जिसका नामकरण 'कल्कि' करना पसन्द करते हैं, अपनी आध्यात्मिक शक्ति और प्रेम-भावना द्वारा ही सभी देशों और धर्मों के अनुयायियों को स्ववश कर लेंगे।

'कल्कि पुराण' में उनके युद्धों का जो वर्णन किया गया है उसे अधिकांश विचारक अलंकारात्मक मानते हैं और उसमें दिये गये योद्धाओं नामों का अर्थ भी भिन्न रूप से करते हैं। उदाहरण के लिये एक धर्म प्रेमी सज्जन ने 'कालिकनज' का अर्थ 'चन्द्र जिसकी ध्वजा में हो' अर्थात् बाणासुर या महाकाल किया है। इसी प्रकार 'रुधिराश्व' अर्थ 'जिसका घोड़ा रक्त जैसा लाल हो' होता है। इसका आशय प्रातः और संध्या के उस समय से है जबकि आकाश में लाली छा जाती है। 'कौआकर्ण' अर्थात् 'जिसके दोनों कान कौआ जैसे हों अर्थात् 'विषम' 'सुधान्ता' अर्थात् जिसकी गोद में महाशान्ति प्राप्त होती हो, अर्थात् कालरात्रि मृत्यु। इसी प्रकार 'कल्कि' की पत्नी 'पद्मा' के माता-पिता के लिए 'बृहद्रथ' का अर्थ 'मन', 'कौमुदी' का इच्छा और 'सिंहल' का 'ब्रह्मरन्ध्र' समझाया गया है।

हम यह नहीं कहते कि पाठक इन्हीं अर्थों को ठीक मान लें, पर इनको लिखने से हमारा प्रयोजन इतना ही है कि 'कल्कि पुराण' में 'कल्कि' के युद्धों का जो वर्णन किया गया है उसे स्थूल जगत से ही सम्बन्धित नहीं समझना चाहिए चाहिए। अनेक उच्चकोटि के विद्वानों ने भी यह सम्मति प्रकट की है कि 'कल्कि' के हाथों से जिस

पर यह कथन ठीक नहीं कि 'कल्कि' का प्रचार 'वैदाधर्म' के लेखक ने ही प्रारम्भ किया। कल्कि अवतार' का उल्लेख तो 'भागवत' तथा सभी पुराणों में मिलता है और साथ में यह भी कह दिया है कि वह भविष्य में होगा। इस आधार पर हमेशा ही उनके प्रकट होने की भावना किसी न किसी व्यक्ति के मन में उत्पन्न हो जाती थी, और उनकी बातें सुनकर सर्व-साधारण में उसकी चर्चा होने लग जाती थी।

इस प्रकार की चर्चाओं का फैलने या फैलाने का तरीका पुराने जमाने में यह था कि ऐसा व्यक्ति एक चिट्ठी लिखकर बाँटता रहता था कि भगवान ने मुझे अवतार लेने का सन्देश दिया है और उसका प्रचार करने का आदेश दिया है। इसलिए जिसे यह चिट्ठी मिले वह भी इस प्रकार की कम से कम दस चिट्ठी लिखकर बाँट दे। जो ऐसा न करेगा उसे पाप लगेगा।' पिलखुवा (मेरठ) निवासी भक्त राम शरण दासजी ने अवतार सम्बन्धी एक लेख में बतलाया है कि 'जब मैं बाल्यावस्था में अपने माता-पिता के साथ तीर्थ-यात्रा को गया था तो सम्भल (मुरादाबाद) में हमने बाजार में एक छोटी सी पुस्तक बिकती देखी जिसका नाम था 'भगवान का अवतार हो गया है।' इसके कुछ समय बाद जब मैं एक पाठशाला में पढ़ता था तो किसी मनुष्य ने मुझे एक चिट्ठी दी। उसमें लिखा था 'एक पहाड़ पर सर्व निकला। उसने कहा कि अब भगवान का अवतार हो गया है और वे दुष्टों को मारेंगे' अखीर में लिखा था कि 'जो इसे पढ़े इसी प्रकार की दस चिट्ठी बाँटे, नहीं तो गोहत्या का पाप लगेगा।' हमने गोहत्या के पाप से डरकर दस चिट्ठियाँ लिखकर बाँटी।

अब भी इस प्रकार की एक सूचना हमारे सामने है। यह एक छोटे पर्चे के रूप में है जो लगभग एक मास पूर्व हमको एक बालक से मिल गया था। इसमें लिखा है—

करने को सहर्ष तैयार है। जब मैं वहाँ पर पहुँचा तो वे गा रहे थे—

बोलो जय जय जय कल्कि प्यारे।
मुकुट की शोभा अति प्यारी है जय जय जय सम्भल वारे।
मस्तक पर मलयागिरि चन्दन जय गोअन के रखवारे॥
कानन कुण्डल अति प्रिय लागे जय घोड़े चढ़ने वारे॥
कल्कि मण्डल नित प्रति गावे, प्रकटो युग पलटन हारे॥

मैंने देखा कि उनमें से अधिकांश श्रमजीवी वर्ग के अल्पशिक्षित व्यक्ति थे, जो उच्च धार्मिक सिद्धान्तों के विषय में प्रायः अनजान थे। पर इस प्रकार कीर्तन और अवतार में भक्ति-भाव पैदा हो जाने से उनका थोड़ा बहुत सुधार अवश्य हुआ था और भावों में शुद्धता आई थी। अनेक व्यक्ति इस तरह के आयोजनों को व्यर्थ और समय का अपव्यय बतलाते हैं, पर मैं नहीं समझता अगर वे महीना में एकाध दिन ऐसे कीर्तन में सम्मिलित हो जाते हैं तो इसमें लाभ के बजाय कोई हानि कही जा सकती है। भारत के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल भी उस दल के सञ्चालकों से परिचित थे और उन्होंने इस सम्बन्ध में एक लेख बङ्गला भाषा की मासिक पत्रिका 'वङ्गवाणी' में सन् १९२४ में प्रकाशित कराया था। उसमें उन्होंने इस दल की कार्यवाही में कोई हानिकारक बात नहीं बतलाई थी। उस लेख में कहा गया है—

'दिल्ली में एक "निष्कलङ्की दल' का आविर्भाव हुआ है। आज प्रायः ३० साल से यह दल दिल्ली में है 'सतनामी सम्प्रदाय' की तरह यह दल भी बहुत ही क्षुद्र (अल्पसंख्यक) है। आज तीस साल से यह दल भारत में सतयुग लाने के लिये परमात्मा से प्रार्थना करता आया है। वे विश्वास करते हैं कि कलियुग समाप्त हो गया है और शीघ्र

ही कल्कि भगवान प्रकट होंगे। किन्तु इस 'शीघ्र' का अर्थ क्या है—अर्थात् किस ठीक समय पर भगवान प्रकट हो जायेंगे, यह बात वे लोग नहीं कह सकते।

'वे यह भी कहते हैं कि इस अवतार का आचरण ऐसा होगा कि जिस पर देश विदेश में कोई उँगली न उठा सकेगा। अन्यान्य युगों के अवतारी पुरुषों के आचरण ऐसे नहीं थे कि उनमें कोई दोष न दिखाया जा सके। पर इस बार उनका आचरण ठीक भगवान की तरह कलंकरहित होगा। इसी कारण उनको 'निष्कलङ्क अवतार' कहा जाता है। नये अवतार तलवार धारी होने पर भी किसी को अपने हाथ से नहीं मारेंगे। वे किसी के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र ग्रहण न करेंगे। खल प्रकृति के लोग आपस में ही लड़-भिड़कर खतम हो जायेंगे। जो बचेंगे उनको रोग-महामारी और अकाल हजम कर जायेंगे। तरह व्यथित पृथ्वी भारमुक्त हो जायगी और केवल सतोगुणी प्रकृति के जीव ही बचेंगे।'

'निष्कलंकी दल' के संस्थापक पं० श्री बालमुकुन्दजी एक दिन मेरी (श्री सान्याल की) मुलाकात हुई थी। उनको पब्लिक 'हनुमान जी' कहा करती थी। वे कभी-कभी दिल्ली की सड़कों पर पुकार उठते थे—'भगवान का अवतार हो गया है। पापी लोगो! सावधान। सज्जनो! अन्तः-करण से भगवान की शरण हो जाओ। जो पाप कर चुके हो उनके लिये माफी माँगो और आगे के लिए तोबा करो। मगर पापियों का निस्तार नहीं।'

श्री० सान्याल की भेंट बालमुकुन्द जी से सन् १९१४-१५ के लगभग हुई थी। पर वे सन् १८८६ के आसपास से ही दिल्ली में 'कल्कि अवतार' की उपासना और प्रचार कर रहे थे। उन्होंने अपने घर में कल्कि भगवान की एक पीतल की मूर्ति स्थापित कर रखी थी। नित्य प्रति उसकी पूजा करते और यह भजन गाते—

आवन-आवन कह गये जी तुम कर गये कौल अनेक।
माधुरी मूरत मुख रेख, सम्भल वाले आना हमारे देश॥
देखत-देखत बाट थारी म्हारे रूपा हो गये केश।
गिनत-गिनत म्हारी घिसी अँगुरियों की रेख॥
माधुरी मूरत लम्बे केश।
सम्भल वाले आना हमारे देस॥

बालमुकुन्दजी बड़े गोभक्त भी थे और वास्तव में उनके प्रचार कार्य का मुख्य उद्देश्य गो रक्षा ही था। वे प्रायः हनुमान जी की सी गदा कन्धे पर रखकर शाम के वक्त बाजारों में निकलते और यह ऐलान करते थे—

'सृष्टि तू गौओं से द्रोह करना छोड़ दे वरना तुझे विनाशकारी महाभारत का सामना करना पड़ेगा। कल्कि भगवान गौओं की रक्षा विरद के साथ घोर विध्वंसकारी रूप में आ रहे हैं। वे सतयुग की स्थापना करेंगे। जो लोग भगवान के नाम के नशे में चूर होंगे वे आत्मिक ऐश्वर्य से भरे पूरे हो जायेंगे। मार्ग-पराङ्मुख (भौतिकवादी) कूड़ा-करकट की तरह झाड़ू से बुहारे जायेंगे।'

बालमुकुन्दजी का यह भी कहना था कि 'भगवान महाराज' के प्रकट होने के पहले हजारों व्यक्ति ऐसे निकलेंगे जो कहेंगे कि हमीं कल्कि हैं। सच बात प्रायः यह भी देखने में आई कि 'गुरुओं' की कामना वालों को कल्कि भगवान के नाम से विशेष घबराहट होती है, क्योंकि वे स्वयं 'भगवान' बन कर चेलों को मूड़ना चाहते हैं। कल्कि के प्रकट होने पर ये सब 'नकली भगवान' खतरे में पड़ जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं।'

ठाकुर दयानन्द का अरुणाचल मिशन—

विश्व-प्रेम के प्रचारक ठाकुर दयानन्द का आविर्भाव आसाम के

सिलचर' नामक स्थान हुआ था और वहीं उन्होंने सन् १६०९ में 'अरुणाचल आश्रम' की स्थापना की। इसमें 'आनन्दमयी' (काली) और 'अरुणाचलेश्वर' (शङ्कर) की मूर्तियाँ स्थापित की गईं। वे ब्राह्मण और अछूत, स्त्री तथा पुरुष, छोटे तथा बड़े के भेदभाव के विरुद्ध थे और उन्होंने अपने कार्यक्रम में सब को भाग लेने का समान रूप से अधिकार दिया था। उनका मुख्य उद्देश्य 'संकीर्तन' द्वारा जनता में आध्यात्मिक भावों की वृद्धि करना था।

उनके आश्रम में कितने ही आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवयुवक सम्मिलित हो गये। उनमें से अधिकांश ने संन्यास ग्रहण कर लिया। कुछ महिलाएँ भी संन्यासिनी बन गईं। जब इनका दल गाँवों में घूमकर भगवद्-भक्ति के साथ ही समाज सुधार, समान अधिकार, राजनैतिक, स्वाधीनता आदि [redacted] प्रचार करने लगा तो सरकारी अधिकारियों की वक्रदृष्टि इन पर पड़ी। उधर 'ऊँची जातियों' के कितने ही लोग, विशेषतः 'ब्राह्मण पण्डित' नामधारी भी इनकी अस्पृश्यता निवारण, नारी स्वतन्त्रता जैसी 'समाज विरोधी' मानी जाने वाली प्रवृत्तियों के विरोधी बनकर सरकारी अफसरों को और भी भड़काने लगे। परिणाम यह हुआ कि दो चार वर्ष के भीतर सरकार ने पुलिस और सेना द्वारा इनका आश्रम भङ्ग करा दिया और बहुसंख्यक लोगों को पकड़कर जेल भेज दिया।

पर ठाकुर दयानन्द पर इन घटनाओं का कुछ प्रभाव न पड़ा। वे जेल में रहकर 'भगवान' का कार्य करते रहे। छुटकारा पाने पर उन्होंने फिर संकीर्तन प्रचार आरम्भ किया और देश विदेशों में विश्व-शान्ति का आन्दोलन करने लगे। ठाकुर दयानन्द ने विश्व-प्रेम का जो पौधा लगाया था वह साठ वर्ष का दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर भी अभी तक पनप रहा है। उनका 'अरुणाचल मिशन' कई स्थानों में अपनी शाखायें स्थापित करके मनुष्य मात्र में भ्रातृभाव के सिद्धान्त का प्रचार

कर रहा है। उन लोगों का विश्वास है कि 'यद्यपि ठाकुर के भौतिक शरीर का तिरोधान सब से तीस वर्ष पूर्व हो चुका है, पर वे वास्तव अमर हैं और निरन्तर अपने भक्तों के द्वारा 'विश्व-प्रेम' की ज्योति को प्रकाशित रखेंगे।' ये सब 'अवतारवाद' ठाकुर दयानन्द को एक दैवी सत्ता के रूप में ही मानकर अभी तक उनके 'मिशन' को जीवित रखे हुए हैं।

माता आनन्दमयी–

यद्यपि माता आनन्दमयी ने सार्वजनिक रूप से 'अवतार' जैसी कोई घोषणा या कार्य नहीं किया है और वे अपने अनुयायियों को धार्मिक उपदेश ही दिया करती हैं, पर उनके सम्बन्ध में उनके सहकारियों ने कितनी ही ऐसी चमत्कारपूर्ण बातें प्रचारित कर रखी हैं, जिनसे हजारों लोग उनको आदि शक्ति जगदम्बा का अवतार ही मानते हैं। कहा जाता है कि—'विवाह होकर अनेक वर्ष तक पति के साथ रहने पर भी कभी उनका दाम्पत्य सम्बन्ध सम्भव न हो सका।'

माता आनन्दमयी के आध्यात्मिक उपदेश काफी सारगर्भित होते हैं, यद्यपि वे बाल्यावस्था में पढ़ी-लिखी अथवा सुशिक्षिता नहीं थीं। जिस प्रकार श्री रामकृष्ण परमहंस अनपढ़ होने पर भी आत्म-ज्ञान की ऊँची से ऊँची शिक्षा देते रहते थे और सामान्य बातचीत में ही धर्म के सूक्ष्म तत्वों का निरूपण कर देते थे, कुछ उसी प्रकार की स्थिति माता आनन्दमयी की है। इसलिये अनेक बड़े-बड़े शिक्षित और पदाधिकारी व्यक्ति और उच्च पदाधिकारी व्यक्ति उनके अनुयायी बन गये हैं, जिनमें एक बहुत बड़ा भाग बङ्गालियों का ही है।

सत्य समाज का अवतारवाद–

'अवतारवाद' का सबसे नया उदाहरण वर्धा (मध्य प्रदेश) के 'सत्य समाज' और उसके संचालक 'स्वामी सत्यभक्तजी' का है। हम तो समझते थे कि गत तीस वर्षों में कई दो 'अवतारों' के हो जाने पर

अब यह आन्दोलन समाप्त हो गया होगा, पर 'सत्य-समाज' के मुखपत्र 'जङ्गम' को देखने से पता चलता है कि उसके सञ्चालक स्वामी सत्यभक्त जी ने इन दो चार वर्षों में ही 'अवतार' की पदवी धारण की है। मैंने इनके स्वामीजी की लिखी पुस्तकें बहुत वर्षों पहले से पढ़ी हैं और उनके धार्मिक विषयों के बुद्धिवादी विवेचन से सभी पाठक बहुत प्रभावित होते हैं। वे धर्म के उसी रूप को मानते हैं जो तर्क और विज्ञान की कसौटी पर सत्य और उपयोगी सिद्ध हो सके। पर न मालूम क्या सोचकर इधर कुछ समय से वे और उनके 'भक्तगण' उन्हें अवतार अथवा पैगम्बर के रूप में प्रकट करने की चेष्टा कर रहे हैं। दिसम्बर १६६८ में 'जङ्गम' पर जो 'जयन्ती विशेषाङ्क' प्रकाशित हुआ है उसमें पृष्ठ २७० पर एक कविता में कहा गया है—

नर नारायण दयामय सत्यभक्त सरताज।
जन्म धार कर रख लई विश्व-जनों की लाज॥
सत्य धारण का कर दिया सद्गुरु ने उद्धार।
सर्वेश्वर है दास के सत्यभक्त अवतार॥

दिसम्बर १६६७ के अङ्क में भी 'अवतार' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई है जिसकी कुछ बानगी इस प्रकार है—

वसुधा पर गुञ्जित कलित नियति धरा,
विहग वृन्द उड़ा करते नभ चीर चोपरा॥
भानुरश्मि दौड़ी करने छिन्न सानी को,
बिखेरने अमिट स्नेहोज्ज्वल वाणी को॥
जागृतार्थ सर्वेश्वर हत सत्यभक्त प्रकटा।
बन मानवता हमदर्दी दुर्गुणों पर झपटा।
सत्य-समाज प्रवर्तक आया फैलाने सुवास।
सन् अठारह सौ निनानवे के एकादश मास॥
युग-युग जीवो युग पुरुष सत्य ज्योति दातार।
युग सृष्टा युग देव तुम सत्यभक्त अवतार॥

हम स्वामी जी से बहुत समय से परिचित हैं। हममें और उनमें नाम की साम्यता भी है, जिससे भ्रम में पड़कर अनेक व्यक्ति दोनों को एक समझने लगते हैं। इसलिए एक शुभ चिन्तक की हैसियत से हम उनको बतलाना चाहते हैं कि 'पुराणों' में जैसी 'अवतारों' की महा-महा' गाई है, वैसी ही समय-समय पर उनकी छीछालेदर भी की गई है। इस 'दोष' को ध्यान देने में ही भलाई है पुराने ज़माने में तो ऐसी बातें किसी हद तक चल भी जाती थीं पर इस बीसवीं शताब्दी में 'अवतार' बनने वालों को व्यङ्ग-विद्रूप और जिल्लत के सिवा और कुछ नहीं मिल सकता।

जिनकी नीयत पर हमको सन्देह नहीं--

सन् १९३९ से १९५० तक 'नवयुग' को प्रकाशित करते हुए अनेक 'अवतारी' सज्जनों [redacted] परिचय दिया था जिनमें से कुछ प्रमुख का वर्णन हमने यहीं तक किया। इसके अतिरिक्त पञ्जाब के स्वामी भोलानाथ जी तथा पटना के 'श्रीनिवास' आदि और भी दो-चार सज्जन ऐसे थे जिनकी नीयत पर हम सन्देह नहीं करते। वे चाहे 'अवतार' हों या न हों, पर हमारा ख्याल है कि वे किसी अन्तः प्रेरणा से ही अपने को ऐसी 'दैवी-सत्ता' समझ बैठे या दूसरों के द्वारा कहे जाने लगे। उन्होंने लोगों को धर्म और सदाचार की शिक्षा भी दी। यद्यपि उनकी बातों की आलोचना की जा सकती है और अनेक 'बुद्धिवादी' उन पर तीक्ष्ण व्यंग-प्रहार कर भी चुके हैं, तो भी हम उन पर दोषारोपण नहीं करते। हम यही मानते हैं कि किसी सामयिक प्रेरणा, सदुद्देश्य के प्रति उत्साह अथवा भ्रम हो जाने के कारण ही वे ऐसा करने लग गये।

ढोंगी अवतारों का पोलखाता--

'पर 'अवतार' की गद्दी पर दावा करने वालों में एक बड़ी संख्या ऐसे व्यक्तियों की है जो साधारण, चरित्र, उद्देश्य की दृष्टि से किसी प्रकार एक 'आध्यात्मिक गुरु' या 'दैवी पुरुष' नहीं माने जा सकते

उन्होंने केवल ढोंग और प्रोपैगेण्डा के जोर से अपने को इस रूप में प्रसिद्ध कर दिया और इस आधार कुछ लोगों के अनुयायी बनाकर अपने को पुजवाते। और रकम इकट्ठी करके ऐश आराम की जिन्दगी व्यतीत करते रहे। हम इस प्रकार के अनाधिकार कार्यों की अधिक चर्चा करना अच्छा नहीं समझते, पर ये लोग जिस प्रकार धोखाधड़ी का व्यवहार करके धर्मप्रेमी जनता को भ्रम और भुलावे में डाल रहे हैं वह धर्म तथा नैतिकता की दृष्टि से पतनकारी है। धर्म-भाव का ह्रास तो अनेक कारणों से हो ही रहा, ये स्वार्थी लोग केवल 'धर्मध्वजी' का ही 'भगवान्' का रूप धारण करके उसे और भी बदनाम कर रहे हैं। इसलिए हम 'अवतार वाद' की प्रतिक्रिया के इस पहलू पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझकर कुछ नमूने यहाँ उपस्थित करना चाहते हैं।

ब्रह्म कुमारियों के दादा गुरु—

इस समय हमारे देश में जो लोग 'अवतार' ॥ उससे भी बढ़कर साक्षात् ब्रह्मा और विष्णु-शिव होने का दावा कर रहे हैं उनमें सबसे प्रसिद्ध 'ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय' के संस्थापक दादा लेखराज है, जिनका पूर्व नाम खूबचन्द कृपलानी था और अब अपने को 'त्रिमूर्ति ब्रह्मा' कहते हैं। इन्होंने सरकारी नौकरी से रिटायर होकर सन् १६३७ में 'ओम् मण्डली' नाम की संस्था की स्थापना की। इनकी योजना सम्भवतः प्रारम्भ से ही स्त्रियों द्वारा अपनी संस्था का कार्य-सञ्चालन कराना थी, इसलिये ये हमेशा अनेक स्त्रियों को प्रभावित करने की चेष्टा करते रहे। सबसे पहले इन्होंने एक विधवा स्त्री माया देवी को चेली बनाया और वह इनका प्रचार करने लगी कि 'ये हमारे भगवान हैं, हम इनकी गोपियाँ हैं। परन्तु कुछ लोगो ने इन पर इल्जाम लगाये जिनके कारण इन पर लाहौर की अदालत में मुकदमा चला और इनको माफी माँगकर पीछा छुड़ाना पड़ा। सन् १६४० से बिहार के एक गाँव में रहने लगे और वहाँ भी अनेक स्त्रियों को चेली

जमा लिया। वहाँ के एक हरिजन की स्त्री 'धनिया' को लेकर चल दिये जिसके लिये उसके पति ने मुकदमा चला दिया। धनिया और दादा लेखराज दोनों को पद सन में सजा भोगनी पड़ी।

फिर आप हैदराबाद (सिन्ध) में जाकर जम गये और वहाँ अपनी संस्था का कार्य खूब फैलाया, जब इस रास-लीला की ओट में दुराचार बहुत अधिक फैलने लगा तो सिन्ध के प्रसिद्ध लोक सेवी साधु टी० एल० वासवानी ने इनके कार्यालय पर धरना दिया। इसके लिए वासवानी को जेल भी जाना पड़ा।

देश का विभाजन होने पर ये भारत चले आये और आबू पहाड़ पर एक कोठी लेकर संस्था का कार्य चलाने लगे। इसमें इनको अच्छी सफलता मिली। इस समय देश भर में इनकी संस्था की १३० शाखायें काम कर रही हैं जिनके संचालन में चार-पाँच सौ स्त्रियाँ और कुछ पुरुष भी भाग ले रहे हैं। समय-समय पर ये आध्यात्मिक विषयों का प्रचार करने के उद्देश्य से चित्र-प्रदर्शनी भी करते रहते हैं। पर इनकी बातें ऐसी ऊँट-पटाँग और अपनी अजीब-भाषा में होती हैं कि कोई उनका आशय जल्दी समझ नहीं सकता। उदाहरण के लिये इन्होंने अपना परिचय देते हुए लिखा है–

"श्री कृष्ण की आत्मा ५००० वर्षों में ८४ जन्म लेती है–सतयुग (१२५० वर्ष) में सूर्यवंशी देवता कुल में सतोप्रधान एवं पूज्य महाराजान् के रूप में आठ जन्म (त्रेतायुग १२५० वर्ष) में, चन्द्रवंश में राज्य-भाग्य सहित १२ सतो गुणी जन्म, द्वापर और कलियुग (१२०० वर्ष) में शिरोमणि भक्त राजा अथवा प्रजा के रूप में ६३ जन्म। अब 'संगम-काल' में, जबकि वह अपने ८४ वें जन्म में भी अन्तिम काल में है तो उस वृद्ध तन में परम पिता परमात्मा ज्योति-बिन्दु शिव ने प्रवेश किया है और उसका नाम 'ब्रह्मा' रखा है। यही 'ब्रह्मा' स्थापन हो रहे मधुबन के आदि में पुनः श्रीकृष्ण के रूप में जन्म लेंगे।"

इस प्रकार दादा लेखराज इस समय मनुष्यों के लिए 'ज्ञान और योग' की शिक्षा देकर मुक्ति प्रदान करने के ठेकेदार बन गये हैं। पर वह अपनी 'ब्रह्मा कुमारियों' द्वारा अपने चंगुल में फँसने वालों को कैसा 'योग' सिखा रहे हैं, इस सम्बन्ध में ज्यादा न लिखना ही अच्छा है।

मेहर बाबा का अद्भुत मौन-व्रत-

अहमदनगर (महाराष्ट्र) में रहने वाले मेहर बाबा के (जो जन्म से पारसी हैं) के सम्बन्ध में शिकायत तो कोई सुनने में नहीं आई पर तीस चालीस वर्ष से 'मौनी' बनकर अवतार का ढोंग उन्होंने भी खूब किया है। जिस समय वे पूना के कालेज में पढ़ते थे एक बूढ़ी मुसलमानी 'बाबा जान' के सम्पर्क में आकर वे कोई योग क्रिया करने लगे जिससे दिमाग में खराबी आ गई और पढ़ना-लिखना [redacted] छोड़ बैठे। कुछ समय पश्चात् 'अध्यात्म-मार्ग' में ठोकरें खाने पर वे 'सिद्ध योगी' बन गये। उन्होंने मौन-व्रत धारण कर लिया और घोषित किया कि जिस दिन मैं अपना मौन भ ग करूँगा उसी दिन संसार में खण्ड-प्रलय होकर नवीन युग की स्थापना होगी। इसलिये जो लोग अपना कल्याण चाहते हैं और उस भयङ्कर काल से सुरक्षित रहकर सतयुग के नागरिक बनना चाहते हैं वे मेरे आदेशानुसार काम करें।"

मेहर बाबा ने गत तीस-चालीस वर्षों में इतने बार अपना मौन तोड़ने और उसी दिन 'नया युग' आरम्भ होने की घोषणायें की है कि समाचार पत्रों के पाठक उनको एक तरह का मजाक समझने लगे हैं। सन् १६६८ में अपने ऐसी घोषणा एक पर्चे के रूप में छपवाकर सर्वत्र बँटवाई जिसमें कहा गया था—

"मैं सिखलाने के लिए नहीं बल्कि जगाने के लिये आया हूँ। अनादि काल से मैं सिद्धान्तों तथा उपदेशों के मुताबिक चलना सिखाता आ रहा हूँ, लेकिन इन्सान ने इसकी कोई परवाह नहीं की। इसलिए

मैंने इनके वर्तमान व्यावहारिक स्वरूप में और बाल्य कर रखा है। जितनी बातें तुमने मुझसे चाहीं उतनी तुम्हें बताई गईं। अब उनके लुप्त होकर जीवन बिताने का समय आ गया है। मेरी कृपा से तुम्हें अपना अद्भुत-भाव रखना जरूरी है। मैं उसी कृपा को यहाँ कहने जाता हूँ।"

यह समय भी कभी का बीत गया, पर मेहर बाबा का मौन अभी प्रकार कायम है। वे अब लगातार मैं हमेशा को बाते देते हैं कभी ऐसा ही 'मौन तोड़ने' का वादा कर देते हैं। ऐसे ही वादे करते-करते हाल ही में उनका अन्त हो गया, पर दुनिया की दुर्दशा वैसी की वैसी मौजूद है।

कल्कि अवतार के गुरु

'अवतारवाद' में बड़ा आकर्षण है और उसमें बड़े-बड़े दावे-दार पैदा हो जाते हैं। मथुरा के एक सज्जन स्वामी जगदीश्वरानन्द को जब 'अवतार' की आवश्यकता जान पड़ी तो उन्होंने कुछ जोड़-तोड़ करके एक कल्कि मन्दिर बना दिया। उनका कहना है कि कल्कि भगवान सूक्ष्म जगत में अनेक बार उनके सामने सूक्ष्म रूप में प्रकट होते रहते हैं। उनका जन्म सन् १९८२ में होगा और उनके माता-पिता इसी समय मथुरा में निवास कर रहे हैं। स्वामी जगदीश्वरानन्द के आश्रम में रहने वाली संन्यासिनी महादेवी कल्कि देव की बाल्यावस्था में उनकी गुरु होंगी। कल्कि भगवान के प्रभाव से इसी समय समस्त देवता और प्राचीन युगों के ऋषि मुनि जगदीश्वरानन्द जी के आश्रम में आकर उनको अपना दर्शन देते रहते हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में 'डायरी' लिखने के ढंग पर कल्कि भगवान के प्रकट होने की घटनाएँ लिखी हैं और उनको इकट्ठा करके पाकेट-साइज की एक छोटी पुस्तक छाप डाली है।

पर इस प्रकार की कहानियों से किसी का कोई लाभ हो सकेगा यह हमको नहीं जान पड़ता। अधिक से अधिक उनको कुछ अनुयायी मिल सकते हैं, और उनकी सहायता से आश्रम का काम चल सकता है। पर लोगों के आध्यात्मिक भावों को ऐसी मनगढ़न्त बातें बहुत अधिक सुनने से धक्का ही लगता है, और वे उनकी सभी बातों पर अविश्वास करने लगते हैं।

कादियाँ के गुलाम अहमद—

अनेक पाठकों के लिए यह एक आश्चर्य का विषय जान पड़ेगा कि अवतार के विषय में एक मुसलमान का नाम कैसे आ गया। पर आजकल की कृत्रिमतापूर्ण दुनिया में सब कुछ सम्भव है। हम उनको बतलाना चाहते हैं कि एक नहीं सैकड़ों मुसलमान सैकड़ों वर्ष से हिन्दुओं के धर्मगुरु बनने की कोशिश करते रहते हैं और उन्हीं में से कई आजकल 'कल्कि अवतार' की गद्दी का दावा कर रहे हैं। इनमें से आगा खाँ का नाम तो जनता में बहुत प्रसिद्ध है और गुजरात तथा दक्षिण अफ्रीका में कई लाख हिन्दू उनके अनुयायी बन चुके हैं। गुलाम अहमद ने भी शायद इन आगाखाँ के उदाहरण से ही प्रेरणा लेकर यह जाल फैलाया हो।

जो कुछ हो अब से बहुत वर्ष पूर्व गुलाम अहमद के कई प्रचारक हमसे प्रयाग के कुम्भ मेला के अवसर पर मिले थे और उनके कुछ पर्चे देकर 'सतयुग' में उनके सम्बन्ध में कुछ प्रकाशित करने का अनुरोध किया था। उन पर्चों में स्पष्ट रूप से लिखा था कि गुलाम अहमद भगवान कृष्ण के अवतार हैं और वहीं अब कल्कि अवतार होंगे—

"प्रिय हिन्दू भाइयो! हम सब एक ही देश में फले फूले हैं और हमारी बोलचाल की भाषा भी प्रायः एक ही है। परमात्मा के बनाये चाँद और सूर्य हम सबको समान रूप से प्रकाशित करते हैं। जब

ईश्वर की दयालुता ने हम सब में कोई भेद नहीं किया तो फिर हमारा ईश्वर के प्रेम करने में क्यों भेद हो ?

'इस समय भगवान का जो अवतार हुआ है वह किसी खास जाति का नहीं है। वह 'मेहदी' भी है क्योंकि मुसलमानों को मोक्ष का आदेश लाया है। वह 'ईसा' भी है क्योंकि ईसाइयों के उद्धार की सामग्री लाया है। वह 'निष्कलङ्क अवतार' भी है, क्योंकि आपके लिए हां मेरे हिन्दू भाइयो! आपके लिए ईश्वरीय प्रेम के प्रकाश को लाया है। इस 'निष्कलंक अवतार' का शुभ नाम श्री 'मिर्जा गुलाम अहमद' है, जो कादियाँ जिला गुरदासपुर (पञ्जाब) में प्रकट हुए हैं। ईश्वर ने उनके हाथ पर अपने हजारों चिह्न प्रकट कराये हैं। उनके द्वारा संसार को न्याय तथा सत्य से परिपूर्ण करना चाहता है।

इस प्रकार की न जाने कितनी दम दिलासा की बातें उन पर्चों में दी गई हैं। कितने ही प्रान्तों में बहुसंख्यक हिन्दू उनको अवतार मानने भी लग गये हैं। पर यह आश्चर्य की बात ही मानी जायगी कि स्वयं हिन्दुओं में इतने 'अवतार' होते हुए भी वे अन्य धर्म वाले अवतारों के 'भक्त' बनने को भी तैयार हो जाते हैं। हम तो इसे उनका अद्भुत 'अवतार प्रेम' ही कह सकते हैं।

अवतारों की भीड़—

महाभारत में युग परिवर्तन का जो प्रयोग लिखा है वह अनेक विद्वानों के कथनानुसार सन् १९४२ में आया था। उसी को आधार बनाकर 'चेतावनी' पुस्तिका द्वारा 'कलियुग का अन्त और सतयुग आगमन' का आन्दोलन देश भर में फैलाया गया था। उससे कुछ ऐसी हवा बहने लगी कि चारों ओर से अवतार निकल पड़े। जिन लोगों में एक चिट्ठी लिख सकने की भी योग्यता नहीं थी और जो सामान्य नोन-तेल बेचने की दुकान करके या मामूली नौकरी या मज़-दूरी करके जीवन-निर्वाह करते थे वे भी अपने को 'अवतार' घोषित

करने लग गये। हमने साधारण सरकारी नौकरों और भीख माँगने वाले साधुओं को 'अवतार' होने का दावा करते देखा था। इस तरह के सब लोगों की संख्या पाँच सौ से भी ऊपर हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उनमें से सौ-पचास को तो हम स्वयं जान गये थे। ऐसे लोगों में से कुछ को सफलता भी मिल गई और वे हजार-पांच सौ अनुयायियों के सहारे अभी तक अपना नाम कायम रखे हुये हैं। अधिकांश उस उत्साह की लहर के ठण्डा हो जाने पर जहाँ के तहाँ पहुँच गये। अनेक अवतार बनते-बनते ही काल के गाल में समा गये। इस प्रकार स्वार्थी अथवा अविवेकी लोगों ने उस समय 'अवतार' के नाम पर एक तमाशा खड़ा कर दिया और एक उच्चकोटि के धार्मिक और शास्त्रीय विषय को सर्व साधारण की निगाह में हास्यास्पद बना डाला।

इससे प्रकट होता है कि यहाँ की जनता ऊपर से 'धर्म-धर्म' पुकारते रहने पर भी वास्तव में धर्म से कितनी परे और केवल अन्ध-विश्वास के आधार पर चलने वाली है। अन्यथा यह कैसे सम्भव था कि सामान्य साधुओं से लेकर मोटर ड्राइवर और मजदूर तक अपने को 'भगवान का अवतार' कहने का साहस करने लगते। ईसाई, मुसलमान, यहूदी, पारसी आदि किसी धर्म वालों में अभी तक ऐसी छूट नहीं है कि हर एक अपने को 'भगवान' बता सके। उनमें ऐसा करते ही उस व्यक्ति पर चारों तरफ से लानत-मलामत की बौछार होने लगेगी और उसका समाज में रह सकना भी असम्भव हो जायगा। पर जो हिंदू आध्यात्मिकता के सब से अधिक जानकार बनते हैं वे धार्मिक-क्षेत्र में हर प्रकार के ढोंग और धूर्तता को सहन ही नहीं कर लेते वरन् उसे सहयोग देने को भी तैयार हो जाते हैं। यह अवस्था कदापि श्रेयस्कर नहीं मानी जा सकती।

हमने इस तरह के नकली अवतारों में से दो-चार का वर्णन ऊपर दिया है। अब से २५-३० वर्ष पहले इस तरह के बीसियों बनावटी लोगों का हाल हमने अपने 'सतयुग' मासिक पत्र में प्रकाशित किया था। उनकी लीलाएँ इतनी अधिक हैं कि यदि पूरा लिखा जाय तो व्यर्थ में

पचासों पन्ने भर जायेंगे। इस लिये आगे हम बहुत संक्षेप में ही ऐसे कुछ 'अवतारों' का परिचय देते हैं।

[१] कृष्णानन्दजी दादा धूनी वाले—

सुना जाता है कि धूनी वाले दादाजी वास्तव में उच्च कोटि के साधक और सन्त थे। परन्तु उनके देह त्याग के पश्चात् उनके कुछ शिष्यों ने उन्हें साक्षात् शंकर का अवतार बताना शुरू कर दिया—

इस पर भक्त कहें दादा के यहां यही है शिव अवतार।
आदि मैथुनी-सृष्टि-पिता ये बाबा आदम के दातार॥
आदिम एडम यही इन्हीं को स्वयं प्रभु ने कहा पुकार।
मानो चाहे न मानो कोई दादा निश्चय हैं अवतार॥

[२] स्वामी प्रणवानन्द—

बंगाल के स्वामी प्रणवानन्दजी के सम्बन्ध में 'कल्याण' के एक अंक में लिखा है कि आरम्भ में वह बहुत वर्षों तक साधन और तपस्या करते रहे और एक निस्पृह साधु पुरुष थे। पर कुछ समय पश्चात् उनकी तरफ से 'पूजाराधना पद्धति' पुस्तिका प्रकाशित की गई जिसमें लिखा था—"इस युग में फिर मुक्ति-पिपासु भक्त नरनारी के आर्तनाद से भगवान स्वयं जगद्गुरु रूप में स्वामी प्रणवानन्द के शरीर में अवतीर्ण हुए हैं। लाखों भक्त नर-नारियों ने उनके चरण-कमल की शरण लेकर, जीवन सार्थक किया है। चारों ओर यह समाचार बिजली की भांति फैल गया है।"

[३] हंसावतार—

इन दिनों 'हंसावतार' भी की दिल्ली आदि नगरों में बड़ी धूम रही। उनके जूतों पर बताशे चढ़ाये जाते थे, जिन्हें 'भक्त लोग' खाते थे। इनका यह कार्य पिछले पच्चीस तीस वर्ष से चल रहा था। उसी समय इनके प्रचारक ने हमारे एक परिचित सज्जन से कहा था—"जो त्रेता में राम बने थे और, द्वापर में कृष्ण बने थे वही भगवान अब 'हंसावतार' हैं। इनके बिहार, बंगाल में लाखों शिष्य हैं, जो इनके बताये 'सोऽहं' मन्त्र का जप करते हैं। यह अपनी मत है। इस जप से

समाम संसार में परिवर्तन हो रहा है। राक्षस भी इसी से मारे जा रहे हैं।"

[४] आनन्द-मार्ग के संस्थापक—

अभी हमने समाचार पत्रों में 'आनन्द मार्ग' के विषय में पढ़ा था कि दिल्ली और भारतवर्ष के अनेक नगरों में ही उसका प्रचार नहीं हो रहा है वरन् जर्मनी तक में उसकी शाखायें स्थापित हो गई हैं।" यह "आनन्द मार्ग" रेलवे की नौकरी से रिटायर होने वाले एक सज्जन ने पच्चीस-तीस साल पहले चलाया था और उनका कहना था—

"आनन्द मार्ग में भगवान की साकार और निराकार दोनों शक्तियों को माना गया है। जब हम भगवान् को सर्वशक्तिमान मानते हैं तो अवतार से इनकार कैसे कर सकते हैं?"

[५] अखिल ब्रह्माण्डपति—

हमको 'कल्कि ब्रह्मवाणी' नाम की मासिक पत्रिका का एक विशेषांक प्राप्त हुआ था, जिसके ऊपर यह पद्य दिया गया है—

विश्व-शान्ति का दिव्य-भाव मानव मन में साकार हुआ।
व्याकुल वसुधा की पुकार से पुनः 'कल्कि अवतार' हुआ॥

इस 'कल्कि अवतार' का जन्म सन् १६२१ बाराबंकी में(उ०प्र०) के एक गाँव में हुआ' था। वे ही आजकल अपने को 'अखिल ब्रह्माण्डपति' कहने लगे हैं और कुछ मूर्खों ने 'भारतपति' 'एशियापति' 'आस्ट्रेलिया-पति' आदि की उपाधियाँ दे रहे हैं।

इसी प्रकार के अवतार नाम धारियों के बीसियों किस्से हमारे पास मौजूद हैं जिनमें से कुछ को तो पूरा पागल या ठग ही कहा जा सकता है। कोटपूतली (राजस्थान) के एक मजदूर ने एक पर्चा छपाया और उसमें लिखा—"हम हैं श्रीमहान भगवान और हमको ही कल्कि भगवान कहते हैं।" अम्बाला (पंजाब) के एक रिटायर्ड रेलवे गार्ड ने घोषणा की "भाप वदी अष्टमी को भगवान प्रकट होंगे और मैं राधा बन जाऊँगी।" थानदेव (महाराष्ट्र) के रामदास भौन ने अपने को 'अवतार' और

'भीलों का राजा' घोषित कर दिया। मान्धाता (मध्य प्रदेश) में एक साधु मायानन्द चैतन्य अपने को 'बुद्धावतार' कहने लगे। दरभंगा की तरफ का एक बालक कृष्ण के समान वेषभूषा बनाकर मध्य प्रदेश के रायपुर आदि स्थानों में भेंट-पूजा ग्रहण करने लगा। इस प्रकार 'चेतावनी' को 'भविष्यवाणी' को आधार बना कर सन् १९४३ के आसपास देश में 'अवतारों' की बाढ़ ही आ गई।

नकली अवतारों से बचो—

उपर्युक्त नकली अवतारों की लीलाओं को पढ़ते-पढ़ते पाठक कहीं मुझे भी कोई 'अवतारी' न समझने लग जायँ! शायद वे कहें कि ये भी विभिन्न अवतारों से मिलजुल कर अपना स्थान बनाने की चेष्टा में लगे होंगे! अन्यथा इतने अवतारों को ढूंढते फिरने की क्या आवश्यकता थी? इस सम्बन्ध में मैं बतलाना चाहता हूँ कि दिल्ली के 'अवतार-भक्तों' ने मुझे भगवान का अवतार तो नहीं पर उनका कोई छोटा-मोटा सहकारी अवतार बनाने का प्रस्ताव अवश्य किया था! पर मैंने अपने को किसी भी प्रकार 'अवतार' के योग्य नहीं समझा और इस कारण मैं आज तक सामान्य मनुष्य ही बना रहा। इतना ही नहीं 'सतयुग' मासिक पत्र में अनेक छोटे-बड़े अवतारों का परिचय देते हुए मैं पाठकों को इस सम्बन्ध में सावधान भी करता रहता था कि वे ऐसे मामलों में अपनी विवेक बुद्धि से काम लें और किसी 'नकली भगवान' के फेर में न पड़ें। वास्तव में यदि कभी 'अवतार' होगा तो उसको यह प्रचार कराने की जरूरत न पड़ेगी कि 'यह अवतार है।' वरन् सारा संसार खुद ही उसे जान जायगा और उसके सम्मुख झुक जायगा। 'मई' १९४२ के अंक में "अवतार के सम्बन्ध में एक भ्रम पूर्ण धारणा" लेख के अन्त में हमने लिखा था—

"हम यह नहीं कहते कि 'अवतार' एक व्यर्थ कल्पना है; पर जिन लोगों ने उसकी कहानी लिखने की चीज, या एक 'गुप्त भेद' बना डाला है, उनकी भर्त्सना हम अवश्य करते हैं। यह कहना कि 'अवतार को' किसी रेगिस्तान या पहाड़ में छिपाकर रखा गया है" ना समझी की बात

है। अभी तक परशुराम, रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, गौतमबुद्ध आदि जितने 'अवतार' कहलाये गये हैं, उनमें से कोई अठारह बीस साल की उम्र तक छिपाकर नहीं रखा गया था। तब 'कल्कि अवतार' के विषय में ही ऐसी बात फैलाने की क्या आवश्यकता है? इसे हम न तो धार्मिकता कह सकते हैं और न भक्ति-भाव।"

अगस्त १९४३ के 'सतयुग' में "सच्चा अवतार अभी दूर है" शीर्षक लेख में तरह-तरह के अवतारों के प्रकट होने का रहस्य इन शब्दों में प्रकट किया गया था—

"यों कहने के लिए अवतारों की कमी नहीं है। एक नहीं पचासों बड़े और छोटे, मोटे और पतले, अमीर और गरीब, साधु और गृहस्थी, शिक्षित और अशिक्षित, सुन्दर और बदसूरत, हिन्दू और मुसलमान—सारांश यह कि सब तरह के और सब श्रेणियों के व्यक्ति अवतार बनने को लालायित हो रहे हैं। पर शोक के साथ कहना पड़ता है कि वे भी हम साधारण मनुष्यों की तरह नोन, तेल, लकड़ी की समस्या में ही उलझे रहते हैं। वे भी धनवानों की खुशामद करके कुछ पाने की चेष्टा करते रहते हैं। वे दूसरों का उद्धार क्या करेंगे, स्वयं उनका उद्धार सर्व साधारण से दान पाये बिना असम्भव है।

"ऐसी दशा हमारे देश की ही नहीं है। सदा से जब कभी संकट का समय आया है और लोग व्याकुल होकर किसी 'उद्धारकर्ता' को खोजने लगते हैं तो ऐसे अवसर से लाभ उठाने वाले अनेक लोग उठ खड़े होते हैं। ऐसे मनुष्यों की करतूतें देखकर ईसामसीह ने कहा था—

"झूठे नबियों (पैगम्बरों या अवतारों) से खबरदार रहो। वे भेड़ की खाल ओढ़ कर आते हैं, पर वास्तव में हिंसक भेड़िये होते हैं। तुम उनके कर्मों से उन्हें पहिचानो।"

"जब हम किसी रास्ते चलते ■■ व्यक्ति को अपने लिये 'अखिल ब्रह्माण्डपति' 'त्रिलोकेश्वर' 'परमात्मा का मंत्री' आदि विशेषण प्रयोग करते देखते हैं, या किसी को जीवन और मृत्यु का ठेकेदार बनते पाते हैं या किसी को स्वर्ग लोक का टिकिट बेचते सुनते हैं, तो हमको यही

विचार आता है कि हो न हो उक्त व्यक्ति के दिमाग का कोई पुर्जा ढीला पड़ गया है ! अथवा किसी कारण वश उसे कोई मानसिक धक्का लगा है जिससे ऐसी 'सनक' सवार हो गई है। ऐसे व्यक्ति हमारे देश में ही नहीं पाये जाते। योरोपियन मनोविज्ञान ज्ञाताओं ने अपने ग्रन्थों में ऐसे अनेक दिमागी बीमारों या व्यक्तियों का जिक्र किया है और उनकी पूरी तरह से जाँच पड़ताल करके यह निष्कर्ष निकाला है कि ये लोग अवतार तो क्या किसी पागलखाने में निवास करने योग्य हैं। एक समय जरूशलम में ही ऐसे चार व्यक्ति थे जो ईसामसीह का अवतार होने का दावा करते थे।

"हम 'अवतार' के विरोधी नहीं हैं। धन्य है वह युग जिसमें ऐसा कोई महापुरुष पृथ्वी पर चरण रखता है और सौभाग्यशाली हैं वे लोग जो उसके सदुपदेशों से अपना जीवन सुधार करते हैं। ऐसा महामानव अपनी लोकोत्तर प्रतिभा, अतुल त्याग और विश्वकल्याण की अमोघ कामना के आधार पर इस पद को प्राप्त करते हैं। वे राम की तरह राजसिंहासन को ठुकरा देते हैं और धर्म रक्षार्थ काँटों भरे मार्ग पर सहर्ष चलते हैं। वे कृष्ण की तरह छोटे से छोटे 'ग्वाल-बालों' के साथ भ्रातृभाव का व्यवहार करते हैं और सर्वोच्च पदवी पाकर भी लोक हित के लिये सारथी का दर्जा स्वीकार कर लेते हैं। वे बुद्ध की तरह राजसी भोगों को त्याग कर कठिन तपस्या द्वारा अपने शरीर को सुखा डालते हैं और अपनी साधना का फल स्वेच्छा से जगत के उद्धार के लिये अर्पण कर देते हैं। कहाँ वे अवतार और कहाँ आजकल के ये 'स्वयंभू अवतार' जिनका प्रधान लक्षण शिष्यों से दक्षिणा वसूल करके आराम की जिन्दगी व्यतीत करना ही है।"

हमको ये शब्द धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार होते देखकर ही विवशतापूर्वक लिखने पड़े थे। अवतार कब होगा, कहाँ होगा, क्या करेगा, आदि बातों के सम्बन्ध में भावुकतावश कोई अनुमान लगाये तो उसमें कोई खास बुराई नहीं, पर कुछ भी योग्यता, शक्ति और उच्च आदर्श न होते हुए अपने को 'परमात्मा' या 'ईश्वर' कहने लगना रही

तक उचित है ? हमको यह देख कर आश्चर्य होता है कि संसार में अगर कोई व्यक्ति नकली थानेदार, कलक्टर, रेलवे का टी०टी०आई० बन कर लोगों को धोखा देता है तो उसे गिरफ्तार किया जाता है और कड़ी कैद की सजा दी जाती है, पर "नकली भगवान" बनने की कोई सजा नहीं ! श्रीमद्भागवत में एक कथा आती है कि करूष देश के राजा पौण्ड्रक ने घोषणा की थी कि मैं भगवान विष्णु का अवतार 'वासुदेव' हूँ। श्रीकृष्ण को वासुदेव कहना या मानना बिलकुल गलत है। उसने अपने दो नकली हाथ लगाकर उनमें शंख, चक्र, गदा पद्म भी धारण कर लिये थे। उसने अपना दूत द्वारका भेजकर कृष्ण जी से कहलवाया—

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधांत्यज ॥

अर्थात्—एक मात्र मैं ही वासुदेव हूँ, दूसरा कोई नहीं हो सकता। प्राणियों पर कृपा करने के लिए मैंने ही अवतार ग्रहण किया है। तुमने जो झूठमूठ अपना नाम 'वासुदेव' रख लिया है, अब उसे छोड़ दो।"

श्रीकृष्ण ने दूत द्वारा उत्तर भिजवाया कि मैं तुम्हारे पास आकर ही 'वासुदेव' नाम तथा विष्णु के चिन्हों को छोड़ूँगा। दूसरे ही दिन वे रथ पर चढ़कर उसके सामने पहुँच गये और कुछ देर युद्ध करके उसको इष्ट-मित्रों तथा सेना सहित यमपुर भेज दिया। 'नकली अवतार' बनने के शौक में पौण्ड्रक अपने प्राण और राज्य सब कुछ खो बैठा। हम भी 'अवतार' बनने के शौकीनों को चेतावनी देना चाहते हैं कि आज नहीं तो कल उनकी भी बुरी हालत हो सकती है।

यह दशा देश, धर्म, समाज और व्यक्ति के लिए हितकर नहीं कही जा सकती। संसार को इस समय निःसन्देह 'अवतार' (मार्गदर्शक) की बड़ी आवश्यकता है—उसके बिना हमारा अस्तित्व कायम रह सकना कठिन है। पर उसके लिए ऐसे स्वाँग रचने या 'शब्द' में पड़ने की आवश्यकता न होगी, वरन् जब वह प्रकट होगा तब उसे पहचानने में किसी को देर न लगेगी।

ग्यारहवाँ अध्याय

अवतार की आवश्यकता और हमारी आशा—

अब तक हमने जो लिखा है यदि उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो उस सबका यही निष्कर्ष निकलेगा कि यदि संसार में किसी को 'अवतार' कहा जाय तो उसका मुख्य उद्देश्य मानव जाति का मार्ग-दर्शन करना ही है। वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी पर डेढ़ अरब वर्ष से जीवन का विकास हो रहा है और इस बीच में छोटे से छोटे प्राणियों में जड़ जल पड़ने वाले—जीवाणुओं से लेकर मनुष्य तक के उत्पन्न होने में अनेक 'युग' व्यतीत हो चुके हैं। इन विभिन्न युगों के प्राणियों की जाँच करने पर विद्वान् लोग इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि प्रत्येक युग-विशेष में ऐसे जीव उत्पन्न हुए, जो अपने समय में सृष्टि के सर्वोत्तम प्राणी समझे जाते थे। फिर भी आगामी 'युग' में उनसे भी और अच्छे प्राणी उत्पन्न हो गये। हमारे यहाँ मत्स्य, कूर्म (कछुआ), वाराह, नरसिंह आदि को जो अवतार की पदवी दी गई है, उसका मुख्य कारण यही है कि उस युग में सबसे अच्छे (विकसित) प्राणी वे ही थे।

सृष्टि के आरम्भ से लाखों तरह के जीवों का आविर्भाव होते-होते वर्तमान युग में बुद्धि, विवेक और ज्ञान से सम्पन्न मनुष्य का आविर्भाव हुआ है। हमारे यहाँ जो यह कहा जाता है कि ८४ लाख योनियों में भ्रमण करके मनुष्य का शरीर मिलता है, वह बहुत कुछ सत्य ही है। वहाँ तक पता लगाया गया है मनुष्य को पृथ्वीतल पर उत्पन्न हुए दस-बीस लाख वर्ष से अधिक समय नहीं हुआ। इसके पहले करोड़ों वर्षों में जीवधारी क्रमशः जलचर, थलचर, नभचर, कीड़ा, मकोड़ा, पतिंगा, मछली, साँप, चौपाये, पक्षी आदि अनेक रूपों में प्रकट हो चुका है। उन योनियों में से गुजर कर ही वह मनुष्य के दर्जे तक पहुँचा है। और आगे चलकर उससे और भी उन्नति करने की पूरी सम्भावना है।

पर जब परिवर्तन की गति अत्यन्त तीव्र हो जाती है तब उसे 'क्रान्तिकारी' कहा जाता है। वर्तमान युग क्रान्तिकारी है, क्योंकि इसमें परिवर्तन की गति बहुत तीव्र है। चारों ओर हमें वस्तुओं के टूटने-फूटने और सब प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संस्थाओं में उथल-पुथल की आवाज सुनाई दे रही है। बुद्धिमान और अनुभूतिशील मनुष्यों का विश्वास है कि इस समय राजनीति, अर्थशास्त्र और उद्योग-धन्धों से सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं (नियमों) में कहीं न कहीं कुछ बड़ी गलती है। यदि मनुष्यता को बचाना है तो हमें इस गलती को दूर करना होगा।

"विज्ञानवेत्ता हमें वे विभिन्न सम्भावनाएँ बतलाते हैं जिनसे यह पृथ्वी नष्ट हो सकती है। उदाहरणार्थ कभी सुदूर भविष्य में चन्द्रमा के बहुत निकट आजाने या सूर्य के ठण्डा पड़ जाने से यह नष्ट हो सकती है। कोई पुच्छल तारा या उल्का पृथ्वी से आकर टकरा सकता है, या स्वयं धरती में से ही कोई जहरीली गैस निकल सकती है। परन्तु ये सब सम्भावनाएँ तो बहुत दूर की हैं, जब कि अधिक सम्भावना इस बात की है कि मानव जाति अपने ही जान बूझकर किये गये कार्यों से या अपने मूर्खतापूर्ण स्वार्थ के कारण स्वयं ही अपना सर्वनाश कर लेगी।"

वास्तव में यह बड़े खेद और लज्जा की बात है कि मनुष्य अपने को 'बुद्धि-सागर' समझता हुआ भी अपने पैरों में आप ही कुल्हाड़ी मार रहा है और इस प्रकार अपनी मूढ़ता का स्वयं प्रदर्शन कर रहा है। सेमुअल बटलर नामक विद्वान् ने इस दशा को देखकर कहा है कि 'मनुष्य के सिवाय और सब प्राणी यह समझते हैं कि उनका उद्देश्य जीवन का आनन्द लेना ही है। इसी से वे घास-पात, गड्ढों और नदियों का जल जैसे अत्यन्त साधारण खाद्य पाकर भी सदा उछलते-कूदते और विनोद करते रहते हैं। पर मनुष्य उनसे हजारों गुना श्रेष्ठ खाद्य रखते हुए भी क्रोध और आवेश में भरकर विनाश का ताण्डव मचने दे रहा है। यदि यह इस तरफ से शीघ्र ही सावधान नहीं हुआ

'क्या शिक्षा द्वारा यह कार्य पूरा हो सकता है, क्योंकि आधुनिक समाज में सभ्यता का सबसे बड़ा प्रसाद यही माना गया है ? पर आजकल बाह्य-शिक्षा का बहुत अधिक प्रचार हो जाने पर भी उसमें 'जीवन-विद्या' का वह गुण नहीं पाया जाता जिससे मनुष्य में नैतिकता तथा सामाजिक एकता की वृद्धि होती हो।"

'क्या मजहब इस समस्या को हल कर सकता है ? आजकल के कट्टरपंथी और जीवन-शून्य 'धार्मिक' कहे जाने वालों में वह शक्ति और साहस नहीं होता जिससे स्वार्थपरता और अन्ध-विश्वास की ताकतों का मुकाबला किया जा सके। इन्हीं दोनों ने मनुष्य जाति को गुलाम बना रखा है।"

"क्या राजनीति हमारा मार्ग-दर्शन कर सकती है ? किसी भी राष्ट्र के 'प्रतिनिधि' कहे जाने वाले आजकल अपनी स्वार्थ सिद्धि में ही लगे रहते हैं और लोक कल्याण के आदर्श को सर्वथा पीछे डाल देते हैं। ये लोग [redacted] समय जनता का विश्वास कदापि प्राप्त नहीं कर सकते।"

"क्या अर्थशास्त्र संसार की रक्षा कर सकता है ? अर्थशास्त्री आय-व्यय के कोरे सिद्धान्तों में डूबे रहते हैं और मानव-जीवन के वास्तविक मूल्यों की तरफ से आँखें बन्द कर लेते हैं। इसलिए वे उन शक्तियों को बिल्कुल नहीं समझते जो मनुष्य के भीतर काम करती रहती हैं"

"तब समस्त परिवार का उदार आदर्श मानव-सभ्यता की रक्षा कर सकेगा ? यद्यपि परिवार हमारे समाज का मूलभूत आधार माना गया है, पर अब उसमें अपनी रक्षा और धन की भावना ही प्रमुख बन गई है।"

"क्या संस्कृति की वृद्धि होने से हमारा उद्धार हो सकेगा ? यद्यपि संस्कृति का महत्व बहुत अधिक है, पर वह मनुष्य की अन्तरात्मा तक प्रवेश नहीं कर सकती। आजकल संस्कृति का महत्व बाह्य सौष्ठव की वृद्धि करना रह गया है। केवल उसके द्वारा मानव को स्वार्थपरता पर विजय प्राप्त करके आध्यात्मिकता की स्थिति प्राप्त करना सम्भव नहीं।"

"शायद विज्ञान मानवता के लिये मुक्तिदाता सिद्ध हो सके ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान मानव-समाज की सर्वोच्च सफलता है। इस देश में इस समय भी मनुष्य अभूतपूर्व चमत्कार दिखला रहा है। अगर मनुष्य केवल देह रूपी यंत्र तक ही सीमित होता तो विज्ञान से उसकी उचित व्यवस्था हो सकती थी। पर मानव की सत्ता इससे कुछ अधिक है। उसमें भावनात्मक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियाँ भी पाई जाती हैं, जिनमें विज्ञान अभी तक प्रविष्ट नहीं हो सका है। इसलिये वह समाज का उद्धार नहीं कर सकता।"

इस प्रकार जब हम मानवता की प्रगति के सब क्षेत्रों पर दृष्टिपात कर चुकते हैं तो हम को सर्वत्र निराशा ही जान पड़ती है। पर यह दोष इन सब उपायों का नहीं है। ये ही सब मिलकर हमारे सर्वाङ्ग-पूर्ण जीवन के आधार बनते हैं। वास्तव में दोष तो इन 'नेताओं' अथवा 'संचालकों' का है जो इन सामाजिक-शक्तियों का ठीक संचालन नहीं करते।

अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस समय मानवता को एक 'नवीन नेतृत्व' की आवश्यकता है। पुराने नेता असफल सिद्ध हुये हैं। हमारे वर्तमान नेता केवल नाम के नेता हैं। वे तरह-तरह के सिद्धान्त उपस्थित करते हैं, आदर्शों की बातें करते हैं, पर उनमें मानव-समाज को ठीक मार्ग पर चला सकने की समझ, बुद्धिमत्ता और शक्ति नहीं है। अथवा यों कहना चाहिये कि वे स्वयं अपने तुच्छ स्वार्थों में लिप्त रहते हैं। तब एक अन्धा दूसरे अन्धे का रास्ता कैसे दिखला सकता है ?

अवतार (विश्व नेता) की विशेषताएँ—

अब एक ऐसे नेता के प्रकट होने की आवश्यकता है जो समस्त सामाजिक धाराओं अर्थात् विज्ञान, राजनीति, संस्कृति, मजहब, परिवार, आर्थिक व्यवस्था को एकसूत्र में समन्वित कर सके। एक ऐसे नेता की आवश्यकता है जो जीवन और मानव-प्रकृति के संतुलित रूप को समझकर इन सब विभागों का एकीकरण कर सके और वह भी केवल

सिद्धान्त रूप में नहीं वरन प्रत्यक्ष जीवन-व्यवहार में। उसके विचारों की गहनता, उसके मस्तिष्क की महानता और हृदय की उदारता उसे अपने अनुयायियों में पृथक दिखला देगी। उसका अपना जीवन ही ऐसा होगा कि वह जनता का सच्चा शिक्षक, आध्यात्मिकता का उदाहरण और जीवन-विद्या का वैज्ञानिक होगा। राजनीतिक दृष्टि से वह विश्व-नागरिक होगा, आर्थिक दृष्टि से मानवीय गुणों को भौतिक सम्पत्ति से अधिक महत्व देने वाला होगा। उसका परिवार वास्तविक रूप में समस्त समाज होगा। वह जीवन विद्या का सबसे बड़ा ज्ञाता होगा।

हमको खोज करनी चाहिए कि क्या ऐसा नेता वर्तमान समय में मिल सकता है? प्राचीन समय में बुद्ध, कनफ्यूशस, ईसा, सिक्रेटीज आदि ऐसे नेता उत्पन्न हुए थे, पर लोगों ने उनका महत्व पिछली ही पीढ़ियों के बाद जान पाया। क्या इस बार हम ऐसी ही भूल करेंगे? निश्चय ही महान नेताओं के चरित्र प्रेरणादायक होते हैं, पर मानवता उद्धार सुन्दर संस्मरणों से ही नहीं हो सकेगा। हमको ऐसे नेता के प्रत्यक्ष मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है। हमको आशा करनी चाहिए कि ऐसा नेता अपनी वर्तमान पीढ़ी में मिल सकेगा, जो इस सर्वनाशी संकट से मानव-समाज को सुरक्षित आश्रय-स्थल तक पहुँचा सके।

'अवतार' क्या नहीं कर सकता—

ऐसे 'नेता' को हम 'अवतार' भी कह सकते हैं। इन दोनों शब्दों में केवल लौकिक और धार्मिक भावनाओं का अन्तर है। जो इस समस्या पर केवल नागरिक दृष्टि से विचार करते हैं, उनको ऐसा व्यक्ति सामाजिक अथवा राजनीतिक 'नेता' जान पड़ता है। कितने ही राजनैतिक नेता अथवा विजेता भी इस दृष्टिकोण से अपने को ईश्वर कहने लगते हैं। पौराणिक काल में हिरण्यकश्यप का अपने को ही 'भगवान' बतलाना और राम नाम लेने पर अपने पुत्र प्रह्लाद को मारने का प्रयत्न करना शायद इसी भाव का द्योतक है। वर्तमान समय में भी नैपोलियन और हिटलर की आश्चर्यजनक विजयों को देख कर उन देशों के कुछ अन्ध विश्वासी इनका 'दैवी अवतार' मानने लग गये थे। पर 'अवतार' ऐसा स्वार्थपरायी

और भीषण कर्म करने वाला नहीं होता। 'अवतार' की विशेषताओं पर एक धार्मिक दृष्टि कोण से विचार करने वाले विद्वान् ने लिखा है—

"महापुरुषों का अवतार संसार की सबसे बड़ी घटनाओं में से होता है। मानव-जाति के प्रत्येक महान संकट में, जब सत्य का अनुभव धुंधला पड़ जाता है और मनुष्य न्यायनिष्ठ-कार्य करने में अक्षम हो जाता है—जब कभी मानवता अपने असत् कर्मों के दलदल में फँस जाती है—जब कभी वह अपनी ही उत्पन्न की हुई उलझन के कारण किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाती है—जब कभी उसे मुक्ति दिलाकर नये पथ पर नये सिरे से गति देने की आवश्यकता होती है, तभी किसी महान आत्मा का मानव रूप में 'अवतार' होता है। मानवता 'उसे' भूल जाती है, पर 'वह' संकट के अवसर पर मानवता को सहायता देने की बात को नहीं भूलता।"

युग-परिवर्तन का आशय—

किसी ऐसे महापुरुष का आविर्भाव मानव-जाति के लिये 'नवयुग' का प्रारम्भ है। नई अवस्था और नई सभ्यता जिसका वह पूर्वाभास देता है, तब कल्पना की बातें नहीं रहतीं बल्कि जीवन का सत्य बन जाती हैं। अपने विचार, जीवन और कार्यों से वे नवयुग की सृष्टि और स्थापना करते हैं। अतः उनका व्यक्तित्व भी एक बहुत बड़ी चीज होता है। वह सर्वथा कर्मशील रहते हैं और इसी माध्यम से सारी जाति के चिंतन, जीवन और कर्मों को प्रभावित करते हैं। उनके विचार और चिन्तन समस्त जगत में व्याप्त हो जाते हैं। प्रत्येक भूभाग की ग्रहणशील आत्माएँ उनकी वाणी को ग्रहण करती हैं और वह वाणी उनके जीवन-कार्यों में अभिव्यक्ति पाती है। इन प्रमुख विचारकों के चिन्तन और विचार फिर उनके चारों ओर रहने वाले साथियों के पास पहुँचते हैं और इस प्रकार मानव-जाति के चिन्तन और विचारों का धरातल ऊँचा होता जाता है। चिन्तन और विचारों के परिवर्तन के साथ कार्य भी बदलते जाते हैं। इस तरह क्रमशः नई अवस्थाओं की सृष्टि होती है, नये सम्बन्ध स्थापित होते हैं, नई संस्थाएं

अस्तित्व में बाकी रहती हैं, और एक बिलकुल नई व्यवस्था दृष्टिगोचर होने लग जाती है। यही 'युग-परिवर्तन' होता है।

नवयुग-आगमन का यही एक तरीका है। इसका प्रारम्भ छोटा, अस्पष्ट और प्रायः अनाकर्षक होता है, लेकिन इसका परिणाम बहुत दूरव्यापी होता है। किसी भी 'महापुरुष' की यही कार्य प्रणाली होती है। प्रारम्भ में वे अकेले ही चुपचाप और शान्ति पूर्वक कार्य आरम्भ कर देते हैं। धीमी प्रगति से कभी अधीर नहीं होते। वे एकदम निश्चित और सन्देह रहित होते हैं, क्योंकि उनके हाथों में सब से शक्ति-शाली यन्त्र—उनका चिन्तन होता है। मनुष्यों के विचार, जीवन पद्धति और कार्य पूर्ण रूप से उनकी पकड़ में होते हैं। प्रारम्भ में वह अपने को पर्दे के पीछे अपरिचित और अनजान रखते हैं। पर जैसे-जैसे आध्यात्मिक पुनर्जागरण होता जाता है वैसे वैसे ही अधिक संख्या में लोग उनकी तरफ आकृष्ट होते जाते हैं। जब सम्पूर्ण जाति ऊँचे दर्जे की आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर लेती है तब कोई उनके महान उद्देश्य की सराहना करने लग जाते हैं।

अगर ऐसे 'महापुरुष' के अवतरण की आवश्यकता भूतकाल में महान थी तो आज वह महानतर है। अब पूछा जाय तो इस समय वह महानतम् होती जाती है। मनुष्य को कभी भी आध्यात्मिक-प्रकाश की आवश्यकता इससे अधिक नहीं थी। प्राचीन युग में संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्र बहुत कुछ एक दूसरे से पृथक और स्वावलम्बी थे। उनमें प्रायः एक ही जाति और नस्ल के लोग रहते थे। इसलिये उस समय उनके अस्तित्व की समस्या आज से कहीं कम जटिल थी। आज सारा संसार स्थल जल और आकाश के रास्ते एक हो गया है। हर राष्ट्र एक दूसरे से मिल गया है, एक दूसरे के जीवन में प्रवेश कर गया है। राष्ट्रों के हित परस्पर मिश्रित हो गये हैं। वैयक्तिक समस्याओं का तब तक नहीं हल नहीं हो सकता जब तक सारे राष्ट्र की समस्या हल नहीं हो जाय और प्रत्येक राष्ट्रीय-समस्या विशाल अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का एक अंग है। इसलिये समस्त विश्व की समस्या का हल होना, पृथ्वी पर

स्वर्गीय-राज्य की स्थापना ही इसका एक मात्र हल है। इस कार्य को कोई दैवी व्यक्ति ही कर सकता है।

सब समस्याओं का एक ही हल—

पर 'दैवी सत्ता' सब काम अपने हाथ से ही नहीं किया करती। ईश्वर भक्तों की यह निश्चित धारणा है कि 'जब कभी ईश्वर किसी रूप में पृथ्वी पर प्रकट होते हैं तब वह अकेले नहीं आते। प्रत्येक देश में कुछ ऐसे 'दैवी कार्यकर्ता' होते हैं जो 'अवतार' के साथ—और कुछ पहले भी उनके आगमन का संदेश लेकर भूमि तैयार करने लगते हैं, जिसमें वह बीज बोकर नई फसल तैयार कर सकें।' इस सिद्धान्त के अनुसार 'अवतार' मुख्यतः कुछ विशेष व्यक्तियों को प्रेरणा देंगे, जनता का मार्ग दर्शन करेंगे, तो उसके प्रभाव से परिवर्तन और नव निर्माण का चक्र स्वयं घूमने लगेगा।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि इस समय समस्त मनुष्य जाति बड़े शोक, कष्ट, अभाव, भुखमरी की परिस्थितियों में ग्रस्त है। आप किसी भी तरफ निगाह उठा कर देखिये प्रगति का द्वार अवरुद्ध ही मिलेगा। समस्त मानव जाति एक विश्व व्यापी संकट का अनुभव कर रही है। जीवन का प्रत्येक विभाग अस्त-व्यस्त हो गया है। अब यह अच्छी तरह प्रकट हो गया है कि कोई भी जाति या राष्ट्र इन समस्याओं को अकेला हल नहीं कर सकता। कारण यह कि इस युग में समस्त मनुष्य और जातियाँ, समस्त व्यापार और उद्योग-धन्धे एक दूसरे के आश्रित हो गये हैं। इससे सभी राष्ट्रों को अब यह अनुभव होता जा रहा है कि संसार में वे मनमानी नहीं कर सकते, वरन् उनको बराबर इस बात का ध्यान रखकर होगा कि अन्य लोग उनके विषय में क्या सोचते हैं और कैसी सम्मति रखते हैं। यद्यपि इस समय संसार में बड़ी हलचल और अशान्ति की स्थिति दिखलाई पड़ रही है फिर भी एक अदृश्य शक्ति विभिन्न देशों के निवासियों को इस बात के लिये बाध्य कर रही है कि वे परस्पर में सहयोग की वृद्धि करें, एक तरह के विचार रखें, एक तरह से बात करें और समान रूप से कार्य करें। उनके सामने ऐसी

परिस्थितियाँ उत्पन्न होती जाती हैं कि यदि वे अपने पृथक-पृथक परस्पर विरोधी भावों का त्याग न करेंगे तो उनका सर्वनाश हो जायगा।

विश्वबन्धुत्व की भावना--

ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो इस प्रकार की 'विश्व-बन्धुत्व' की भावना को—संसार व्यापी सहयोग, मेल-मिलाप की चर्चा को एक असम्भव बात अथवा मन को खुश करने वाला स्वप्न मात्र मानते हैं ऐसे लोगों से हम कहना चाहते हैं कि जब मनुष्य पृथ्वी के गर्भ में घुसकर सोना और रेडीयम जैसी बहुमूल्य चीजें निकाल लाता है, अथाह समुद्र में गोता लगाकर अनमोल मोती ढूँढ लाता है, आकाश में उड़ सकता है, उपग्रहों और ग्रहों तक की छलांग मार सकता है, अगर वह देश और काल पर विजय प्राप्त करके अपने कमरे के भीतर लेटा हुआ ही संसार भर के दृश्य देख सकता है और हजारों कोस दूर बैठे मित्रों से बातचीत कर सकता है, तो वह एक ऐसी आदर्श जीवन-पद्धति—राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रणाली क्यों नहीं खोज सकता जिसमें सब मनुष्य अपना न्याययुक्त भाग पाकर सुख और शान्ति से रह सकें? क्या छल कपट, षड्यंत्र और अभेद्य स्थानों में प्राणों को हाथ में लेकर प्रविष्ट होकर लूटमार कर लाना सहज है, और भगवान तथा प्रकृति ने जो कुछ दे रखा है तो उसे सहयोग और प्रेम पूर्वक मिल जुलकर उपभोग करना इतना कठिन है?

हमको तो इसमें कुछ भी असम्भव नहीं जान पड़ता, केवल मनुष्य की बुद्धि को मोड़ देने की आवश्यकता है। इसी कार्य के लिये 'अवतार' की आवश्यकता है। उसका कार्य आरम्भ हो चुका है, उसकी शक्ति में विश्वास रखने वाले आज भी अनेक स्थानों में उसके लिए सचेष्ट हैं और संसार की गति को देखते हुए वह दिन निश्चय ही निकट आ पहुँचा है जब कोई "दैवी शक्ति" प्रकट रूप में इसे पूरा कर दिखायेगी। इस बात को भारत में 'भक्त' लोग ही नहीं कह रहे हैं, योरोप और अमे-

रोम के विश्वविद्यालयों के बहुत बड़े अध्यक्ष सर माइकेल सैडलर जैसे आधुनिक ज्ञानी व्यक्ति भी स्वीकार कर रहे हैं—

"हम इस समय 'प्रतीक्षा' के युग में जीवित रह रहे हैं ? लोग अनुभव कर रहे हैं कि संसार में जो बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं वे निकट भविष्य में इससे भी बहुत बड़े परिवर्तनों के पूर्वाभास हैं। इतिहास का एक अध्याय पूरा हो चुका है और दूसरे का प्रथम पृष्ठ अभी आरम्भ ही हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रतीक्षा के युग में मनुष्यों को अद्भुत भावनात्मक अनुभव होने अनिवार्य हैं और निश्चय ही भावी-भाग्य उससे बहुत भिन्न होगा। जैसा कि हम अब तक उसे देखते और जानते आये हैं।"

समस्त महापुरुषों में एकता—

आज संसार के विभिन्न धर्मों (मजहबों) में काफी वैमनस्य और झगड़े होते दिखाई पड़ते हैं। आज से दो-चार सौ वर्ष पहले यह इससे भी भयंकर रूप में प्रकट होते थे और मजहब के नाम पर कत्लेआम होते थे, खून की नदियाँ बहाई जाती थीं। यद्यपि इन कार्यों के करने वाले 'धर्म और ईश्वर' के नाम पर ही ऐसा करते थे, पर वे भारी भ्रम में पड़े होते थे या मक्कारी से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। अन्यथा दैवी विधान के अनुसार पृथ्वी पर प्रकट होने वाले 'अवतार-संस्थापक' 'पैगम्बर' आदि कभी मनुष्यों को अन्य लोगों से द्वेष करने, उनको मारने-लूटने की प्रेरणा नहीं दे सकते। 'धर्म' का नाम लेकर मारकाट और लूटमार करना केवल चालाकी या धूर्तता का प्रमाण है। ऐसे लोग धर्म के नाम पर बहका कर जन-समूह को अपना अनुयायी बना लेते हैं और उसकी सहायता से अपना मतलब पूरा करते हैं।

आप किसी भी धर्म के मूल ग्रन्थ में दिये गये सिद्धान्तों और उपदेशों को देख लीजिये उनमें सत्य, न्याय, मानव-सेवा की बात ही मिलेगी। यों 'धर्म' को नष्ट करने वाले दुराचार और पाप कर्मों की वृद्धि करने वालों को दण्ड देने का भी विधान है, जैसा कि 'गीता' जैसे संसार में पूजनीय ग्रन्थ में भी कहा गया है—"विनाशाय च दुष्कृताम्' अर्थात

भगवान् के 'अवतार' का उद्देश्य दुष्टों को नष्ट करना होता है। पर [redacted] विशेष परिस्थिति से पालन करने योग्य विशेष धर्म ही होता है। दुष्टों का अन्त हो जाने पर उसकी आवश्यकता नहीं रहती। सामान्य रूप से सभी धर्मों के प्रचारकों के उद्देश्य और आदर्श लोक हितकारी भावना से ही प्रेरित होते हैं, इस लिये तात्विक रूप से उनमें कोई अन्तर नहीं होता।

इतना ही नहीं धर्म और ईश्वर के सच्चे उपासकों और विभिन्न धर्मों के प्रचारकों और स्थापनकर्ताओं में पूर्ण एकता की ही भावना रहती है। वे जानते हैं कि विभिन्न मजहबों में जो अन्तर दिखलाई पड़ता है उसका कारण देश और काल की भिन्नता है। ईश्वर का प्रतिनिधि धर्म प्रचारक जिस भूखण्ड और समय में प्रकट होगा वह अपने अनुयायियों को उस स्थिति के लायक ही व्यवहारोपयोगी मार्ग बतलावेगा। पर वह सब सामयिक होता है। समय और परिस्थिति के बदल जाने पर वे नियम भी बदले जा सकते हैं। जिन स्थानों में जल का अभाव था वहां के 'कर्म काण्ड' में लोगों को 'भस्म-स्नान' अथवा मिट्टी से ही शुद्धि की अनुमति देदी गई। पर इसका यह आशय नहीं कि अब तुम्हारे यहाँ नहरों और नल कूपों से पानी की समुचित व्यवस्था हो जाय तब भी तुम जल द्वारा शुद्धि और स्वच्छता न करो।

ईश्वर के यहां भेदभाव नहीं—

संसार में अभी तक जितने महान धर्म-संस्थापक हुए हैं उन सब ने यही मत प्रकट किया है कि ईश्वर के यहाँ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। जो व्यक्ति जिस किसी विधि से, मन में सत्य-भाव रखते हुए, भगवान की पूजा-उपासना करता है, वही भगवान को स्वीकार होती है। इसी प्रकार वे यह भी कहते हैं [redacted] संसार का कोई 'धर्म' या धर्म-संस्थापक अन्तिम नहीं है, उनके पश्चात् भी जैसा समय आवेगा उसके अनुसार धर्म [redacted] प्रतिपादन करने वाले 'महापुरुष' उत्पन्न होंगे। भगवान् बुद्ध ने इस बात को अपने निर्वाण के अवसर पर बहुत स्पष्ट [redacted]

से रहा था। जब उनका प्रधान शिष्य आनन्द उनके वियोग की कल्पना से बहुत व्याकुल हुआ और कहने लगा कि इसके बाद हमको धर्म का उपदेश कौन देगा तो बुद्ध ने कहा—

"मैं सब से पहला 'बुद्ध' नहीं हूं जो संसार में आया हूं और न मैं अंतिम 'बुद्ध' ही कहा जा सकता हूं। जब समय आवेगा तो संसार में दूसरा 'बुद्ध' प्रकट होगा, जो बहुत पवित्र, बहुत अधिक ज्ञानी, बुद्धि सम्पन्न, उदार विचारों वाला और संसार का पूर्ण ज्ञाता होगा। वह मनुष्यों का एक अनुपम नेता होगा। वह तुमको उसी शाश्वत सत्य की शिक्षा देगा जिसकी मैंने दी है। वह उस 'धर्म' का प्रचार करेगा जो आदि, मध्य और अन्त में निश्चयात्मक रूप से महान और श्रेष्ठ होगा।"

जिस इस्लाम को अत्यन्त कट्टर और धर्म के सम्बन्ध में घोर अन्धविश्वासी बतलाया जाता है उसके धार्मिक ग्रन्थ 'कुरान' में भी सब धर्मों और धर्म-संस्थापकों की एकता का प्रतिपादन किया गया है। उसके एक अध्याय 'सूरत याकीन' में कहा गया है—

"एक आदमी की तरह एक उम्मत (मजहब या सम्प्रदाय) की उम्र भी निश्चित होती है। जब बचपन, युवावस्था और बुढ़ापे की सीढ़ियाँ पार करके उम्मत मर जाती है, तब खुदा नई उम्मत पैदा करता है। खुदा ने सब पैगम्बरों से वचन लिया है कि जब तुम्हें किताब पैगम्बरी दी जाय और तुम्हारे बाद खुदा की तरफ से दूसरा पैगाम आवे जाय। प्रकट हो तो उस पर ईमान लाना और उसकी सहायता करना तुम्हारा कर्तव्य है।"

सत्य यही है कि संसार में जो विशेष दैवी शक्ति सम्पन्न महापुरुष होते हैं वे विश्व-कल्याण और विश्व प्रेम के ही प्रचारक होते हैं। सच्चे आत्मज्ञानी होने के कारण वे जानते हैं कि इस संसार में जीवन और चैतन्यता का स्रोत एक ही है, इस लिये मनुष्यों में किसी भेद-भाव की रचना करना या परस्पर शत्रु-भाव रखना निश्चय ही

अबुद्धिमत्ता अथवा दुष्ट स्वभाव का प्रमाण है। वे अपने अनुयायियों को प्राणीमात्र से प्रेम रखने और उदारता का व्यवहार करने का उपदेश देते हैं। यह बात दूसरी है कि अधिकांश मनुष्य अभी पूर्व जन्मों की पाशविक परिस्थितियों और प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके हैं, इस लिये इन उपदेशों का उन पर अधिक असर नहीं होता और वे प्रायः नीचता और क्रूरता के कार्य करने लग जाते हैं।

हृदय परिवर्तन 'अवतार' ही करेगा—

पर अब वह समय आचुका है जब कि इस अवस्था में 'क्रान्तिकारी परिवर्तन' होगा और मानव-जाति व्यक्तिगत, साम्प्रदायिक और जातीय संकीर्णताओं को त्याग कर एक 'विश्व मानव समाज' बनाने को आगे बढ़ेगी। यद्यपि इस समय भी यू० एन० ओ० (राष्ट्र-संघ) के रूप में उसकी चेष्टा की जा रही है, पर वह अधिकांश में ऊपरी तथा जबर्दस्ती लादी जाने वाली है। ऐसी चेष्टा कभी अधिक फलदायक नहीं हो सकती। इसके लिये अनिवार्य है कि सभी राष्ट्रों के प्रमुख नेताओं का हृदय परिवर्तन हो और वे इस प्रकार के संगठन-एकता को सर्वोपरि कार्य मान कर उसके लिये तन-मन-धन से न्यौछावर हो जायें।

जब संसार भर के राजनीतिज्ञ, उद्योगपति, विद्वान अपने-पराये का भाव त्याग कर केवल मानव जाति की कल्याण भावना से एकता के लिये न्यौछावर हो जायेंगे और इस कार्य के लिये जो भी छोटा या बड़ा त्याग करना हो उसमें संकोच न करेंगे, तभी कुछ सफलता की आशा की जासकती है। इस प्रकार के युग परिवर्तन के लिये कैसी श्रद्धा और भक्ति की भावना वाले व्यक्तियों की आवश्यकता है, इसकी एक झलकी इंगलैण्ड के श्री डब्लू० ई० ओरचार्ड के लेख से मिलती है—

" हे राष्ट्रों के उद्धारक, चिरवाञ्छित भावी अवतार ! तुम हमारे बीच में अपने वैभव के साथ कब प्रकट होंगे ? पिछली बार तुम दीन वेष (ईसा मसीह के रूप में) प्रकट हुये थे, तो उनमें कुछ लोगों को

असीम आनन्द और शान्ति प्राप्त हुई थी। पर संसार के लोगों में से बहुत कम तुम्हारे आने की बात जानते हैं और जो तुम्हारे दिखलाये रास्ते पर चलते हैं उनकी संख्या तो बहुत ही कम है। पर चूँकि तुमने इससे कहीं अधिक देने का आश्वासन दिया था, इसलिए मनुष्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

"पर सैकड़ों वर्ष बीत गये और लोग बार-बार पूछते हैं कि क्या 'अवतार' के लक्षण दिखाई देते हैं? युद्ध बराबर होते ही रहते हैं, मनुष्य अन्धकार और अशान्ति में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किसान खेतों को बोते हैं, पर उनकी फसल को दूसरे ही लोग खा जाते हैं। कारीगर घर बनाते हैं, पर उनमें रहता कोई और है। दर्जी कपड़े सीते हैं, पर उनको कभी पहिन नहीं पाते। मनुष्यों ने बार-बार अपनी बेड़ियों को तोड़कर स्वाधीन होने की चेष्टा की है, पर उनकी विजय उनके हाथों से निकल जाती है और उनकी बेड़ियाँ फिर से मजबूत कर दी जाती हैं।

"तो भी हमारा विश्वास है कि तू अब पास ही है। अभी तक हमारी यह आशा बलवती है। मार्ग सुन्दर बनाया जा रहा है, उसमें से रोड़े-पत्थर हटाये जा रहे हैं। मनुष्य इस विश्वास के साथ कि 'मुक्ति का समय' पास आ चुका है अपना सर उठा रहा है।

"हमें शोक है कि इस समय भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में गलतफहमी और सन्देह [illegible] भाव बढ़ रहा है और इसके फल से वे हथियार इकट्ठे करने में जुटे हुए हैं। विभिन्न श्रेणियों में पृथकता और कलह का भाव बढ़ता जाता है। अब कृपा करके पधारिये, हमारे भेदभावों को दूर कीजिये। हे दैवी प्रेम के सागर! हमारे ऊपर ऐसी कृपा करो कि हमारे हृदय के द्वार आपके स्वागत के लिए सदैव खुले रहें। भगवन्! आओ और हमारे मध्य अपना राज्य स्थापित करके पृथ्वी पर शान्ति का प्रसार करो।"

यह एक ऐसे हृदय की भावना और प्रार्थना है जो मानवीय प्रयत्नों से संसार के सुधार की आशा न देखकर अपने को पूर्णतः भगवान के भरोसे छोड़ देता है। हमारे शास्त्रों का मत है कि संसार में अधिकांश

लोगों की भक्ति और उपासना इसी कारण फलदायक नहीं हो पाती, क्योंकि वे पूर्णतः भगवान के आगे आत्मसमर्पण नहीं करते वरन् भगवान से सहायता की प्रार्थना करते हुए मन में अपना भरोसा भी करते रहते हैं। यद्यपि यह एक मशहूर कहावत है कि 'भगवान उनको मदद करता है जो अपनी मदद आप करते हैं।' यह नियम सामान्य परिस्थिति और जीवन-निर्वाह के नित्य के कार्यों के लिए है। पर जब मनुष्य पर कोई बहुत बड़ी और सामर्थ्य से सब तरह बाहर विपत्ति आ पड़ती है तो भगवान की शरण लेने के सिवाय और कोई उपाय कारगर नहीं होता। ऐसे ही अवसरों पर जब पृथ्वी पर लोमहर्षक 'असुरों' का आतङ्क छा जाता है और कोई उसका प्रतिकार करने में समर्थ नहीं होता, मानवता कष्टों के मारे त्राहि-त्राहि करने लगती है, तो पृथ्वी व्याकुल होकर 'विश्व संचालक' की शरण आती है, और वे उसके उद्धार के लिए 'प्रकट' होते हैं।

पृथ्वी के भगवान की शरण में जाने का जो आलंकारिक वर्णन रामायण तथा अन्य पुराणों में किया गया है उससे मालूम हो सकता है कि मनुष्य को अत्यन्त विषम परिस्थिति आ जाने पर किस प्रकार एक-मात्र भगवान का ही सहारा लेना पड़ता है। वही दशा इस समय संसार की दिखलाई पड़ रही है। युद्धशील देशों की शस्त्र-शस्त्रों की शक्ति इतनी अधिक हो गई है कि वे जब चाहें मानव-जाति का नाश कर सकते हैं। अणुशक्ति, जहरीली गैस, रोगों के कीटाणु आदि अनेकों ऐसे मारकतारी उपाय निकाल लिए गये हैं जिनसे करोड़ों मनुष्य कुछ घण्टों में मारे जा सकते हैं।

अब तो कई-कई हजार टन के विस्फोटक सामग्री से भरे गोले अंतरिक्ष में सैकड़ों मील ऊपर भेजे जा सकते हैं और वहाँ से संसार के किसी भी देश के ऊपर गिराकर कुछ ही क्षणों में जीवित नर-नारियों से भरे पूरे नगरों और ग्रामों को भस्म की ढेरी में परिणित किया जा सकता है। संसार की कोई ताकत ऐसे अस्त्रों का निवारण नहीं कर

सकती। अब मानव जाति के सामने केवल 'भगवान' को पुकारने का ही उपाय शेष रह जाता है और वे ही परिस्थिति के अनुसार 'असुरों' के प्रकोप से संसार की रक्षा की कोई योजना कार्यान्वित करके समस्या को हल करते हैं।

सभी धर्म 'दैवी सत्ता' पर विश्वास करते हैं—

संसार की भयंकर हलचल पूर्ण अवस्था से भयभीत होकर तो मनुष्य का ध्यान किसी 'दैवी सहायक' की तरफ मुड़ ही रहा है। संसार के सभी धर्मों में 'अवतार' का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है, और उनका यह विश्वास है कि मानव-जाति पर कोई सर्वनाशी संकट आ पड़ने पर ईश्वरीय शक्ति द्वारा ही उसका निवारण होना सम्भव होता है। कुछ वर्ष पहले इङ्गलैण्ड की पार्लियामेंट के दो सदस्यों—श्री डब्लू० ट्यूडरपोल और रोजलीन रिथ्यस ने एक घोषणा पत्र में कहा था—

'पूरब और पश्चिम के सभी महान सम्प्रदायों के अनुयायी ईश्वरीय दूत के आने की राह देख रहे हैं। ईसाई मजहब वाले ईसा के 'दूसरे आगमन' की बात कहते हैं। यहूदी आशा करते हैं कि उनके 'मसीहा' मनुष्य रूप में प्रकट होंगे। मुसलमान 'इमाम मेंहदी' के आगमन की आशा कर रहे हैं। 'बौद्ध देशों' (जापान, चीन, भारत आदि) में महान आत्माओं के आविर्भाव की चर्चा सुनाई पड़ती रहती है। अमरीका में भी ऐसा ही विश्वास फैला हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि नवीन जगत का निर्माण आध्यात्मिकता पर ही होगा और इस सम्बन्ध में कितने ही लोगों को यह दृढ़ विश्वास है कि 'ईश्वर के आगमन' का रहस्य अब संसार में प्रकट होने ही वाला है।"

हम इससे पहले भी संसार के अनेक विद्वानों तथा आध्यात्मिकता के अनुयायियों के कथन उद्धृत कर चुके हैं जिनमें 'दैवी शक्ति' के प्रकट होने की बात जोरों के साथ कही गई है। इसका कारण यही है कि जब संसार के ऊपर कोई भीषण विपत्ति आती है और लोगों को अपने अस्तित्व में शंका होने लगती है तो उनका ध्यान स्वभावतः किसी 'दैवी-

रसकर्म की तरफ जाता है और वे प्राचीन ग्रंथों में से इस तरह के वर्णनों की तरफ विशेष रूप से आकर्षित होने लगते हैं।

यद्यपि हमारे लिये तो 'अवतार' का सिद्धान्त 'गीता' से बढ़कर स्पष्ट और तर्कसम्मत कहीं नहीं मिला, पर अन्य धर्म और देशों वाले भी अपने-अपने ढंग और विश्वास के अनुसार उस सम्बन्ध में खोज और विचार कर रहे हैं, यह कम महत्व की बात नहीं है। उर्दू भाषा में एक कहावत है कि 'आवाजे खल्क को आवाजे खुदा मानो' अर्थात् जिस बात की चर्चा सब मनुष्य करने लगें और उस पर विश्वास रखें तो समझनी चाहिये कि यह बात 'दैवी प्रेरणा' से ही हो रही है और सत्य होकर रहेगी। इसलिए जब हम संसार के दूरवर्ती भागों में रहने वाले और एक-दूसरे से अनजान लोगों को 'अवतार' और 'युग परिवर्तन' के सम्बन्ध में एक ही बात कहते और उस पर विश्वास करते देखते हैं तो हमको उसे एक 'तथ्य' के रूप में स्वीकार करना ही उचित प्रतीत होता है।

'अवतार' का आधार अन्धविश्वास पर न हो—

इस प्रकार पूरब और पश्चिम के बहुसंख्यक विद्वानों की सम्मतियों का विश्लेषण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'अवतार' कोई अन्धविश्वास अथवा अन्धश्रद्धा का विषय नहीं है, वरन् वह सामाजिक विकास और इतिहास की प्रगति का एक अंग ही है। अन्तर यही है कि भौतिकतावादी उसे 'महामानव' अथवा 'जन नेता' के रूप में देखते हैं और धार्मिक-भावना रखने वाले उसे ईश्वरीय दूत या 'अवतार' की पदवी प्रदान करते हैं। यदि हम नामों के पीछे झगड़ना छोड़ दें तो दोनों प्रकार के मतों में कोई खास अन्तर नहीं है और दोनों का आशय लगभग एक ही है। दोनों ही मानते हैं कि संसार में विकृति के बढ़ जाने अथवा समाज की प्रगति में कोई बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न हो जाने पर ही ऐसे विशेष प्रभाव युक्त व्यक्ति की आवश्यकता होती है और वह सामने आ भी जाता है।

यह महापुरुष जनता और संसार के उद्धार के लिये निःस्वार्थ भाव से कार्य करके संकट को निवारण करता है, और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये किसी प्रकार कष्ट या हानि की चिन्ता नहीं करता। उसकी इसी 'महानता' तथा अन्य लोगों में न पाई जाने वाली अनुपम उदारता को देखकर धार्मिक-भावना रखने वाले लोग उसे 'देव-पुरुष' की संज्ञा देते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार निःस्वार्थ भाव से किसी का उपकार करना 'देव' अथवा ईश्वर का ही कार्य है। इस प्रकार की भावना में हमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं जान पड़ती। 'धर्म-प्रधान' तथा 'नैतिकता प्रधान' भावनाओं वाले व्यक्तियों के तो सदा इस से रहे हैं और अभी बहुत समय तक रहेंगे।

रह गई अवतार सम्बन्धी कथा-कहानियों और चमत्कारों की बात यह बौद्धिक दृष्टि से निम्नस्तर की जनता में सदा से पाई जाती है। राम, कृष्ण और अन्य अवतारों की बात तो छोड़ दीजिये 'धर्म को अफीम' बतलाने वाले कम्यूनिस्ट लेनिन के सम्बन्ध में भी रूस के किसानों में उसकी मृत्यु के बाद यह किम्वदन्ती फैल गई थी कि वह रात के समय अपनी समाधि (मुसोलियम) से निकल कर जनता की दशा और कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं की गति विधि जानने के लिये घूमता रहता है और अन्त में किसी दिन पुन उठकर शासन-कार्य करने लगेगा। इसी प्रकार महात्मा गाँधी के विषय में सन् १९२१ में ही यह अफवाह फैली थी कि खद्दर का प्रचार करने के लिये उनके प्रभाव से सब प्रकार के पेड़ों पर रुई उत्पन्न होने लग गई है।

अवतारों की संख्या ६४ हजार.—

इस प्रकार की 'धार्मिक' अफवाहों का 'खण्डन' करने को हम कभी विशेष उत्सुक नहीं होते। क्योंकि हम जानते हैं कि अशिक्षित जनता प्रत्येक विषय को जो उसकी समझ और बुद्धि से बाहर होता है, तोड़-मरोड़ कर किसी प्रकार का दैवी-चमत्कार बना ही देती है। पर हम धार्मिक तत्वों की वास्तविकता पर सदा से प्रकाश डालते आये हैं। अब

१९४२ में ही जब अवतार का जनता में बड़ा दौर दौरा था और लाखों व्यक्ति उसके प्रकट होने पर दृढ़ विश्वास करके प्रतीक्षा में थे 'सतयुग' (मासिक पत्र) में 'अखंड ज्योति' सब तक के ऐसे अन्ध विश्वास के सम्बन्ध में चेतावनी देते [redacted] लिखा था–

"अब तक हिन्दू धर्म में चौबीस मुख्य अवतार हो चुके हैं और अंशावतारों की संख्या इससे कहीं अधिक है। जैन धर्म के तीर्थंकरों की भी एक बड़ी संख्या बताई जाती है। ईसाई, बौद्ध, पारसी, मुसलमान आदि भी अपने धर्मों में अनेक पैगम्बरों, 'दैवी आत्माओं' का प्रादुर्भाव हो चुका मानते हैं। इनके अतिरिक्त हजारों की संख्या में प्रचलित अन्य सम्प्रदायों में अपने-अपने विश्वासानुसार हजारों अवतार हुए हैं। 'विश्व-सर्व धर्म सम्मेलन' के नेता सर हार्डकैसल ने विभिन्न धर्मों के मूल ग्रन्थों (जिन्हें उन धर्मों के अनुयायी ईश्वरीय वाणी मानते हैं) के आधार पर करीब ६३००० 'अवतारों' का परिचय संग्रह किया था। यह अवतार सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले तक के हैं। इसके बाद के वर्षों में भी 'अवतारों' की कमी नहीं रही है। इस तर्क प्रधान युग के दो सौ वर्षों में यद्यपि 'अवतारों' को विशेष महत्व नहीं मिला है, तो भी संसार के विभिन्न भागों में करीब १४०० व्यक्ति ऐसे हुये हैं, जिन्हें 'अवतार' के रूप में पूजा गया है और स्वयं उन्होंने अपने आप मौखिक या लिखित रूप में अपने ईश्वर होने की घोषणा की है।"

"कई व्यक्ति यह कहते सुने जाते हैं कि कल्कि अवतार हो चुका है या होने वाला है। मुरादाबाद जिले का सम्भल कस्बा या मंगोलिया के रेगिस्तान वाला सम्भल उनका जन्म स्थान घोषित किया गया है। उनके माता-पिता, बहन-भाई सब का नाम बता दिया गया है और वे क्या-क्या करेंगे यह भी लिखा हुआ मिलता है। कोई कहते हैं कि कल्कि भगवान प्रकट हो चुके हैं और उन्हें परशुराम जी महेन्द्र पर्वत पर धनुष विद्या सिखाने को ले गये हैं, अब वे २१ वर्ष के हो चुके हैं और शीघ्र ही भारत के किसी स्थान पर प्रकट होंगे।

हमारा विश्वास है कि ये किम्वदन्तियाँ कभी फलितार्थ नहीं हो सकतीं। ऐसे कोई 'कल्कि-भगवान्' अवतार नहीं लेंगे जैसी कि रूपरेखा गढ़कर तैयार करदी गई है। बेशक भगवान का 'अवतार' बहुत शीघ्र प्रकट होने वाला है, वह अपने कार्य में संलग्न है, पृथ्वी पर से पाप का बोझ कम करने में वह प्रयत्नशील है। इसमें सन्देह नहीं कि दुनिया की यह दुर्दशा अधिक समय तक इसी प्रकार बनी नहीं रह सकती। मनुष्य के जन्म के समय उसकी मृत्यु भी पैदा होती है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है वैसे ही वैसे मृत्यु के निकट पहुँचता जाता है। इसी प्रकार पाप के साथ उसका विनाश भी जन्म लेता है। आज 'कलि' का ताण्डव-नृत्य हो रहा है, पर इस भस्मासुर को भी जलाने वाले शंकर मौजूद हैं।"

'अवतार क्या है ?' इस प्रश्न के उत्तर में यह जान लेना चाहिए कि दृश्य जगत का मूल अदृश्य जगत में रहता है। संसार में जब दुष्टता और अनाचार के कार्य बढ़ते हैं तब अदृश्य-लोक का वातावरण भी दुष्टता की वृत्तियों से भरा रहता है। जब अदृश्य लोक में दुर्भावनायें भर जाती हैं तो उनको हटाने के लिये प्रतिक्रिया स्वरूप विरोधी भावनाओं की एक लहर आती है। यह लहर उतनी ही जोरदार होती है जितनी कि उसकी प्रतिपक्षी लहर थी। गेंद को जितने जोर से जमीन पर पटका जाता है वह उतने ही जोर से ऊपर को उछलती है। प्रकृति के अन्तराल में से दुर्भावनाओं के विरोध में जो सद्वृत्ति उदित होती है, उसकी शक्ति भी पूर्व-वृत्तियों के समान ही होती है।

"अदृश्य जगत में बुराइयों के विरोध स्वरूप जब कम्प लहरें उठती हैं तो उनका प्रभाव उन दिव्य आत्माओं पर होता है जिनकी आध्यात्मिक चेतना जागृत और सशक्त होती है। घरों में रखे हुए लोहे-लकड़ी के रेडियो सेट आकाशवाणी स्टेशन से ब्राडकास्ट आरम्भ होते ही बोलने लगते हैं, किन्तु उसी कमरे में रखे हुए लकड़ी और लोहे के फर्नीचर में से कोई आवाज नहीं निकलती। युग-परिवर्तन की लहरें जब

सूक्ष्म जगत में रहती हैं तो आगुन आत्माएँ उन्हें तुरन्त पकड़ लेती हैं और उसी स्वर में बोलने लगती हैं, फिर चाहे वे उस समय किसी भी स्थिति का जीवन क्यों न व्यतीत कर रही हों।

"'अवतार' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जाय तो अनुचित न होगा कि "समाज को गिरी हुई दशा से उन्नति की ओर ले जाने वाला महा मानव नेता" यह तो प्रत्यक्ष ही है कि ऐसा असाधारण कार्य कर सकने वाला, ईश्वरीय शक्ति से समन्वित होता है। वैसे तो जीव मात्र ईश्वर का अवतार (अंश) है, पर कुछ चैतन्य आत्माओं में दैवी तेज अधिक होता है। उसी तेज के अनुपात से उस अवतार की कलाएँ निर्धारित की जाती हैं। उन आगुन आत्माएँ ईश्वरीय आदेश को शिरोधार्य करके परम पिता की इच्छा पूरी करने के लिये अविलम्ब तैयार हो जाती हैं और लीलापति का साधन बन कर परम सौभाग्य का अनुभव करती हैं। वे अपने पीछे अनन्त यश और अखण्ड श्रद्धा छोड़ जाती हैं। जन समुदाय उनको ईश्वर का दूत, ईश-पुत्र या साक्षात् भगवान ही मानने लगता है-वे ही अवतार भी कहे जाते हैं।"

अवतार की इस परिभाषा में कोई ऐसी बात नहीं जिससे उसकी कोई त्रुटि या हीनता प्रकट होती है। यद्यपि पौराणिक कथाओं के अनुयायी ऐसे 'अवतारों' के भक्त बनना कदाचित् ही पसन्द करें, पर हमारे मूल धर्म-ग्रन्थों, वेदों और उपनिषदों में परमात्मा और जीव का जो लक्षण बताया गया है उससे अवतार विशिष्ट जीवों की श्रेणी में आते हैं।

हमारी सम्मति में अवतार के विषय में यह विवाद उठाना कि वह वास्तव में भगवान ही होते हैं अथवा किसी उपयुक्त व्यक्ति में भगवद् शक्ति प्रविष्ट हो जाती है, कुछ भी महत्व नहीं रखता। ऐसी बातों में सर खपाने वाले वे ही व्यक्ति होते हैं जिनको कुछ करने-धरने के बजाय बहस-मुबाहिसे और 'खण्डन' में ही मजा आता है। यह तो कोई कह नहीं सकता कि जिस समय पृथ्वी पर अवतार हुये थे उस समय 'वैकुण्ठ धाम' भगवान से खाली हो गया था। फिर सर्व व्यापी ईश्वर के लिये

यह विवाद उठाना कि वह कब कहाँ रहते हैं अपनी अज्ञता का परिचायक है। जब जीवमात्र भगवान के ही अंश हैं और वे साधन करके जीवन मुक्त बन सकते हैं, जो भगवान की तरह ही इच्छा मात्र से संसार के अनेक कार्यों की पूर्ति कर सकते हैं तब कोई ज्ञानी व्यक्ति अवतार की उपर्युक्त परिभाषा से किसी प्रकार का विरोध प्रकट नहीं कर सकता।

जैसा गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि निराकार और साकार का विवाद उठाना अबुद्धिमत्ता का परिचायक है, क्योंकि सर्वशक्तिमान भगवान दोनों ही रूपों में संसार का संचालन कर सकता है, इसी प्रकार अवतार कई तरह के हो सकते हैं और उनकी शक्ति तथा दर्जे में भी अन्तर हो सकता है। अवतारों की जो कम या ज्यादा कला मानी गई हैं, उसका कारण यह अवतारी शक्ति की न्यूनता और अधिकता ही है। शास्त्रों में अंशावतारों का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है और यही कारण है कि कपिल, ऋषभ देव व्यास परशुराम आदि की उस तरह उपासना नहीं की जाती जैसी कि राम और कृष्ण की की जाती है। बुद्धदेव का नाम यद्यपि भागवत में भी दस मुख्य अवतारों में लिया गया है, पर अनेक धार्मिक व्यक्ति उनको अवतार नहीं मानते।

इस प्रकार अवतार के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत मतभेद तो प्राचीन समय से चला आया है। इस सम्बन्ध में मुख्य विचारणीय विषय यह नहीं है कि स्वयं भगवान अवतार लेने के लिये आते हैं अथवा किसी उपयुक्त जीवात्मा में अपनी विशेष शक्ति का संयोग करके उसके द्वारा 'भूतल का भार हलका करने' का उद्देश्य पूरा कराते हैं? वरन् मुख्य बात यह है कि अवतार का जो स्वरूप पुराने रूढ़िवादी मानते हैं वह ठीक है अथवा उसका तर्क और बुद्धि संगत रूप जो उस महान उद्देश्य के अनुकूल जान पड़े उसे स्वीकार किया जाय। उपर्युक्त लेख में अवतार के वास्तविक उद्देश्यों पर विचार करके अन्त में अवतार सम्बन्धी विचार धारा के दो पक्षों को अलग-अलग उपस्थित किया है और पाठकों से प्रश्न किया है कि आप इन दोनों में से किसको अधिक उपयुक्त और हितकारी समझते हैं—

[प्रथम पक्ष]

(१) एक अवतारी विशेष आत्मा राम,कृष्ण, बुद्ध आदि की तरह प्रगट होता है। वही अपने पौरुष से पृथ्वी का भार हल्का कर देता है।

(२) अवतारी में इतनी सामर्थ्य होती है कि अपने आप जो चाहे कर सकता है।

(३) ईश्वर एक शक्ति को अवतार बना कर भेज देता है। उसमें ऐसी योग्यता और शक्ति होती है कि वह अनायास अपने अनुयायी उत्पन्न कर लेता है।

(४) अवतारी के काम अत्यन्त विचित्र और चमत्कार तथा जादू की तरह होते हैं।

(५) अवतार बुरे व्यक्तियों का वध करने आता है। दुष्टों का संहार ही उसका उद्देश होता है।

(६) अवतार की शरण में जाने से सारे पाप छूट जाते हैं और अनायास स्वर्ग मिल जाता है।

(७) अवतार अमुक देश में, अमुक जाति में और अमुक काल में ही होते हैं।

(८) अवतार सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं। वे उचित-अनुचित सभी काम कर सकते हैं।

(९) अवतारों के दर्शन, कीर्तन, स्तवन, ध्यान से ही भक्तों का उद्धार हो जाता है।

अब इन नौ बातों के मुकाबला दूसरे पक्ष की नौ बातों से नम्बरवार कीजिये।

दूसरा पक्ष

(१) समय की दूषित प्रवृत्तियों को बदलने के लिये एक भावना उत्पन्न होती है, जिससे प्रेरित होकर एक, दो या अधिक व्यक्ति उस समय की आवश्यकता को पूरा करने के लिये संलग्न होते हैं। तब 'अवतार' का उद्देश्य पूरा होता है।

(२) उच्च भावना से प्रेरित होकर अनेक 'अवतारी' व्यक्ति मिल-कर किसी महान उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

(३) सबसे पहले कार्यारम्भ करने वाले या विशेष योग्यता वाले की पूजा होती है। पर वास्तव में उस भावना से प्रेरित होकर सद्धर्म का प्रसार करने वाले सभी व्यक्ति 'अवतार' ही होते हैं।

(४)असाधारण शीघ्रता पूर्वक जो परिवर्तन होते हैं, वे जादू की तरह प्रतीत होते हैं। अवतार नवीन व्यवस्था बनाने आते हैं, बाजीगर का खेल करने नहीं आते।

(५) अवतार बुराइयों को हटाने आता है। वह पाप पूर्ण विचारों को नष्ट कर देता है। यह आवश्यक नहीं कि वह शरीरों का वध ही करे। नम्र और दुष्ट दोनों के उदाहरण आवश्यकतानुसार उचित हैं।

(६) अवतार के उदार और आदर्श विचारों का अनुसरण करने से तत्काल संसार की बहुत बड़ी सेवा होती है। पुण्य-पर्व पर तीर्थ स्नान के समान उसका महान फल होता है।

(७) अवतार किसी प्रतिबंध में बँधे नहीं होते। अधर्म और अवि-वेक जहाँ और जब भी बढ़ता है तभी उसको दूर करने के लिए 'अव-तार' ईश्वरीय शक्ति के रूप में प्रकट होते हैं।

(८) अवतार वर्तमान समय में प्रचलित कुप्रथाओं को तोड़ने के लिये कोई असाधारण काम कर सकते हैं। पर वे मनुष्यता की मर्यादा को तोड़ने वाला कोई कार्य, जिसे उद्दंडता कहा जा सके कभी नहीं करते।

(९) अवतार के आदर्श और उपदेशों के अनुसार आचरण किये बिना किसी का कुछ लाभ नहीं हो सकता।

× × ×

इन दोनों प्रकार की अवतार सम्बन्धी धारणाओं में से रूढ़िवादी धारणा अब अस्वाभाविक हो गई है। संभव है अब से सैकड़ों वर्ष पूर्व जब जन समुदाय में शिक्षा का प्रचार नहीं हुआ था, लोग ऐसी चम-त्कारी बातों से ही अधिक प्रभावित होते थे और इसलिये उस समय के

धर्म प्रचारक अपने उपदेशों और धार्मिक कथा-कीर्तन आदि में वैसा ही पुट देते थे। पर इस समय विज्ञान-युग के मनुष्य पर उन अलंकार और अतिशयोक्ति पूर्ण बातों के विपरीत ही प्रभाव पड़ता है। आज जब मनुष्य चन्द्रमा के धरातल पर पहुँच कर उसकी मिट्टी और अन्य पदार्थों की जाँच कर रहा है, उसे केवल एक देवता मानना तथा उसके सम्बन्ध में तरह-तरह की रोचक कहानियाँ सुनाना कहाँ तक प्रभाव शाली हो सकता है? यद्यपि भगवान आज भी वही है जो आज से पाँच-दस हजार वर्ष पहले श्रीकृष्ण और श्री रामचन्द्र के जमाने में था, पर वह आज जिस 'अवतार' को भेजेगा, या जिसमें उसकी 'युग-परिवर्तनकारी' शक्ति का प्रवेश होगा वह आजकल की परिस्थितियों के अनुकूल ही होगा। उसके लिये यह कल्पना करना कि वह वन में गाय चरायेगा या वानर-भालुओं की सेना बनावेगा, भोलापन ही है।

आज कल का 'अवतार' भी जेट विमान पर एक हजार मील प्रति घण्टा की चाल से यात्रा करने वाला और रेडियो तथा टेलीविजन द्वारा समस्त संसार में अपना संदेश फैलाने वाला होगा। इस लिये पुराने और नये अवतारों में शक्ल-सूरत, पहिनाव-उढ़ाव, खान-पान, बोल-चाल की समानता ढूँढ़ना निरर्थक है। वरन् उन दोनों में जो एकता होगी वह आध्यात्मिक भावों की होगी। वह भी वर्तमान भौतिकतावाद में भूले हुये संसार को भगवान कृष्ण की भाँति 'गीता' का उपदेश देगा कि—

यह बाह्य रूप-रंग और आकृतियाँ वास्तविक और महत्वपूर्ण नहीं हैं वरन् सार वह है जो इनके अन्तर में प्रतिष्ठित है। सांसारिक सुख-सुविधाओं और पाशविक श्रम के स्थान पर सर्वोपयोगी यंत्रों का प्रयोग करना बुरा नहीं है, पर भौतिकता की माया में पड़ कर आत्मा और उसके कल्याण को भूल जाना बहुत बड़ी गलती है। क्योंकि वास्तविक सुख और प्रसन्नता भौतिक पदार्थों और यंत्रों में नहीं है चाहे वे कैसे भी सुन्दर और आकर्षक हों, वरन् इसका आधार मनुष्य के मन और आत्मा में है। यदि वह शुद्ध, पवित्र और संतुष्ट होगी तो सब छोटे और बड़े

प्रयासों में, सानन्द आयेगा, और यदि वह अनुचित हो गई तो 'सर्च लाइट' के प्रकाश में भी अन्धकार ही जान पड़ेगा। इसलिये भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय करके आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलो। आज आध्यात्मिकता को-भगवान को भूल जाने से ही मनुष्य अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके सर्वनाश की तरफ अग्रसर हो रहा है। इस लिये आत्मा को पहिचानो और समस्त सांसारिक वैभव को अपनी नहीं वरन् परमात्मा की देन-धरोहर समझ कर इसका न्यायानुकूल व्यवहार करो। जिस क्षण से ऐसा करने लगोगे उसी क्षण से इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग दिखाई पड़ने लगेगा।

नई सभ्यता का आविर्भाव-

जो लोग आँखें खोलकर संसार की दशा का निरीक्षण करते रहते हैं और उसकी हलचल पूर्ण स्थिति के वास्तविक कारणों पर विचार किया करते हैं, उनसे यह बात छिपी नहीं है कि इन दिनों सर्वत्र जो घोर अशान्ति और उथल-पुथल दिखाई पड़ रही है, उसका मूल कारण यही है कि अब संसार में एक नई सभ्यता, नवीन समाज और नये मनुष्य का आविर्भाव होने को है। इस समय दुनिया की हालत एक नये शिशु के जन्म लेने के समान हो रही है। यद्यपि माता-पिता की दृष्टि से यह समय बड़े सौभाग्य और प्रसन्नता का होता है, पर जब तक प्रसव क्रिया पूरी नहीं हो जाती तब तक चारों तरफ हलचल, अनिश्चित और संकट का-सा वातावरण बना रहता है। अनेक बार माता को सुदर्श सन्देह में पड़ जाती है और उसे अपार कष्ट सहन करना पड़ता है। जब यह स्थिति पार हो जाती है और लोग नये शिशु के सुन्दर और पवित्र मुख को देख लेते हैं तो वातावरण एकदम बदल जाता है और चारों तरफ आनन्द के मंगल गीत और बाजे सुनाई पड़ने लगते हैं।

ठीक यही हालत आज दुनिया की हो रही है। गत सौ-पचास वर्षों के भीतर संसार में ज्ञान-विज्ञान और साथ ही उद्योग-धन्धों ने इतनी तरक्की की है कि एक नई दुनिया और नई सभ्यता का निर्माण किया

जा सकना संभव हो गया है। पैदावार और कारखानों में उपयोगी सामग्री बनाने के क्षेत्र में इतनी प्रगति हो चुकी है कि यदि बुद्धिमत्ता और न्याय के साथ उसका संचालन और व्यवस्था की जाय तो संसार के प्रत्येक मनुष्य को भरपूर भोजन-वस्त्र और अन्य सुख-सामग्री सहज में प्राप्त हो सकती है। पर संसार के अधिकांश देश इस प्रगति और वृद्धि का उपयोग यही उससे न करके एक मात्र स्वार्थपरता की निगाह से करना चाहते हैं। ऐसे उदाहरण मिले हैं जब कि अमरीका में अन्न की अधिक पैदावार होने के कारण लाखों मन गेंहू तथा अन्य खाद्य सामग्री जान बूझकर जला दी गई, नष्ट कर दी गई और उसी समय पास में दूसरे देश के लोग अन्नाभाव से भूखों मरते रहे। व्यापार के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा होने के कारण अनेक युद्ध हो चुके हैं और सीमा सम्बन्धी विवादों के कारण आज भी भयंकर संघर्ष हो रहे हैं।

संसार के एकीकरण की संभावनाएँ—

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही संसार का एकीकरण आवश्यक और संभव नहीं जान पड़ता, वरन् ऐतिहासिक और दार्शनिक क्षेत्र के प्रमुख विचारकों का यही मत है कि अब जगत में जो परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं उनको देखते हुये सब देशों और जातियों का सहयोग और प्रेम के सूत्र में बँधकर रहना सर्वथा संभव और लाभदायक है। इसका विवेचन करते हुये माननीय श्री राधाकृष्णन ने कहा था—

हमारे सामाजिक जीवन की एक मात्र व्याधि का मुख्य कारण हमारी सामाजिक संस्थाओं और विश्व के उद्देश्य बीच में उत्पन्न हो गया भेद ही है। प्रकृति ने अनेक जातियाँ बनाई हैं जिनकी भाषाएँ धर्म और सामाजिक परम्पराएँ भिन्न हैं और उसने मनुष्य को यह काम सौंपा है कि वह मानव-जगत में व्यवस्था उत्पन्न करे और जीवन का ऐसा रास्ता खोज निकाले, जिसमें विभिन्न समूह बिना लड़े-झगड़े शान्ति-पूर्वक रह सकें। यह संसार युद्धप्रिय राष्ट्रों का युद्ध-क्षेत्र होने के लिये नहीं रचा गया है, परन्तु एक ऐसा राष्ट्र-मण्डल बनाने के लिये रचा गया है, जिसमें

विभिन्न समूह सबके लिये गौरव, अच्छा जीवन और समृद्धि प्राप्त करने के लिए परस्पर सहयोग कर रहे हों।

"संसार के एकीकरण के लिये आवश्यक दशाएं सब विद्यमान हैं। केवल मनुष्य की इच्छा—सद्भावना का अभाव है। संसार के विभाजन के बड़े-बड़े कारण—महासागर और पर्वत अब प्रभाव-हीन हो गये हैं। परिवहन और संचरण की इस समय उपलब्ध सुविधाओं के कारण यह संसार एक छोटा-सा पड़ोस बन गया है। धार्मिक और सामाजिक प्रथाओं के विपरीत, जो कि प्रायः एक दूसरे से पृथक और स्थानीय ढंग की होती हैं, विज्ञान राजनीतिक या सामाजिक सीमाओं को नहीं मानता और वह ऐसी भाषा में बात करता है जिसे सब समझते हैं।

"औद्योगिक क्रान्ति ने संसार के आर्थिक सम्बन्धों को इतना अधिक बदल दिया है कि अब हम एक विश्व-समाज बन गये हैं जिसकी अपनी विश्व अर्थ-व्यवस्था है और जिसकी मांग है कि एक विश्व-राजनैतिक व्यवस्था कायम की जाय। विज्ञान ने मानव-जीवन का आधार एक ही ब्रह्माण्ड-प्रणाली को बतलाया है। दर्शन में भी यह कल्पना की गई है कि प्रकृति और मानवता के पीछे एक सर्वव्यापी चेतना है। धर्म भी हम सबके लिये एक सम्मिलित आध्यात्मिक आदर्श और सत्य की ओर संकेत करता है।"

इस प्रकार धार्मिक वैज्ञानिक और दार्शनिक क्षेत्र के प्रमुख विचारकों में लक्ष्य की एकता होने से एक विश्वव्यापी-संगठन बनना बहुत संभव है। अब एकमात्र बाधा राजनीतिज्ञों की है, जो लोगों की भिन्न राष्ट्रीयता और जातीयता की भावनाओं का उद्दीपन करके मानव प्रगति को मुख्य धारा को स्वाभाविक मार्ग से मोड़ कर संकीर्ण मार्गों की ओर प्रवाहित करते रहते हैं। आज प्रजातन्त्रवादी, नाजी, फासिस्ट, कम्यूनिस्ट कोई भी क्यों न हो सबमें किसी न किसी रूप में यह संकीर्ण राष्ट्रीयता की मनोवृत्ति पाई जाती है और यही विश्व एकता के मार्ग

में सब से बड़ा रोड़ा है। सम्भव है इसका अन्त एक आगामी विश्व युद्ध द्वारा ही हो जिसमें जाति और मानव सभ्यता का अभूतपूर्व नाश हो।

पर इससे भी घबराने की कोई बात नहीं। भगवान के ढंग निराले ही होते हैं। लोग कहते हैं कि भगवान कृष्ण ने महाभारत रचा कर भीष्म, द्रोण, कर्ण, अभिमन्यु जैसे अनगिनती वीरों को कटवा दिया और हज़ारों गुणी, विद्वान्, कलाविद् व्यक्तियों का अन्त करा दिया इसी से भारतवर्ष को पतन का मुख देखना पड़ा। वे नहीं जानते कि जब भगवान कृष्ण ने देख लिया कि ये सैनिकवादी और राज्य के भूखे लोग जब तक कायम रहेंगे तब तक जनता सुख से नहीं रह सकती। ये लोग अपनी सैनिक तैयारी और युद्धों के लिये जनता को चूसते ही रहेंगे, तो उन्होंने सामाजिक प्रगति के लिये यही हितकर समझा कि इन अहंकारी और दुराग्रही राजनायकों का अन्त हो जाय।

ठीक ऐसी ही दशा आजकल हो रही है। आज वैज्ञानिक प्रगति की बदौलत उत्पादन के साधन नित्य प्रति बढ़ते जाते हैं, पर सैनिक व्यय के कारण जनता को अभावग्रस्तता का ही जीवन बिताना पड़ रहा है। यह स्थिति तब तक नहीं बदल सकती जब तक राजी से या विवशता से इन सैनिकता के उन्मादियों का अन्त नहीं हो जायगा। यही विचार करके एक विचारक ने कहा है—"सम्भव है कि भावी युद्ध-क्षेत्र ही धर्मक्षेत्र बन जाय।" और "कल्कि उपाख्यान" का मनन करके हम कह सकते हैं कि यही सम्भावना अधिकांश में सत्य सिद्ध होगी।

पूँजीवाद और साम्यवाद का संघर्ष

जैसा हम कह चुके हैं इस समय संसार की समस्या इतनी अधिक उलझ गई है कि अब उसकी गति रुद्ध हो जाना ही निश्चय है। सब से बढ़कर पूँजीवाद (कैपीटलिज्म) और साम्यवाद (कम्यूनिज्म) का संघर्ष दुनिया को दो समान शक्तिशाली दलों में विभाजन करके एक सब से बड़ी क्रांति की सम्भावना उत्पन्न कर रहा है। यद्यपि पूँजीवाद अभी तक संसार का प्रधान संचालक रहा है और अब भी दुनिया के सब से प्रसिद्ध देश—अमरीका, इंगलैंड, फ्रांस आदि में उसी की सत्ता

मानी जा रही है, तो भी अब वह पतली पर है और साम्यवाद वृद्धि की ओर अग्रसर हो रहा है। एक लेखक के मतानुसार "साम्यवाद एक नव जीवन सम्पन्न शक्ति है जबकि पूँजीवाद दिन पर दिन क्षीण होकर समाप्त होने वाली शक्ति है। साम्यवाद आक्रमण करने वाला है, पूँजीवाद आत्मरक्षा के लिये प्रयत्नशील है। साम्यवाद के सामने पूरा करने के लिये एक लक्ष्य (मिशन) है, पर पूँजीवाद के सामने कोई विशेष लक्ष्य नहीं है। इस समय पूँजीवाद के लिये इतना ही कर्तव्य शेष रह गया है कि वह साम्यवाद (कम्यूनिज्म) को हिंसक और उन्मत्त हो जाने से तब तक रोकता रहे जब तक कि परमात्मा में विश्व-विश्वास और मनुष्य मात्र में भ्रातृत्व की भावना रखने वाला 'नया साम्यवाद' संसार के सम्मुख न आजाय।"

जिस अवतार की अनेक लोग चर्चा कर रहे हैं उसका सब से बड़ा काम यही होगा कि वह कैपिटलिज्म (पूँजीवाद) और कम्यूनिज्म (साम्यवाद) में समन्वय करके संसार के लिये एक आदर्श सामाजिक-प्रणाली की स्थापना करे। न तो 'पूँजीवाद' को सर्वथा बुरा बतलाया जा सकता है और न 'साम्यवाद' को पूर्ण रूप से निर्दोष कहा जा सकता है। ये दोनों ही अपने युग की आवश्यकतानुसार ठीक थे। पूँजीवाद का मुख्य दोष यही है कि वर्तमान समय में जब परिस्थितियों के बदल जाने से उसकी उपयोगिता समाप्त होचुकी है, तब भी वह संसार का स्वामी और कर्ता धर्ता बना रहना चाहता है। कम्यूनिज्म की सब से बड़ी त्रुटि यह है कि वह मनुष्य के अन्तर से उत्पन्न नहीं हुआ है वरन् ऊपर से जबर्दस्ती लादा जा रहा है और उसने मनुष्य के आध्यात्मिक-पक्ष की बिल्कुल उपेक्षा कर दी है।

अब अपनी इन त्रुटियों को दोनों पक्ष (पूँजीवादी और साम्यवादी) समझ भी चुके हैं, पर प्रत्येक अपनी सत्ता और प्रभुसत्ता को सिद्ध करने के लिए हठधर्मी कर रहे हैं और मानव जाति के लिये कल्याणकारी मार्ग की उपेक्षा कर रहे हैं। अवतारी-सत्ता अपनी विराट आत्मशक्ति के प्रभाव से इस तथ्य को इस प्रकार और ऐसे रूप में दोनों को समझा

देगा कि उनकी बुद्धि 'शुद्ध' हो जायगी और वे नाश के मार्ग को त्याग कर निर्माण के मार्ग पर चल पड़ेंगे। चाहे आज के भौतिकतावादी संघर्ष की कटुता और अनियंत्रित प्रवाह में पड़ कर भगवान को भूल गये हों पर भगवान उनको नहीं भूल सकता। हम जानते हैं कि समस्त संसार और विशेष रूप से आध्यात्मिक संस्कृति की गोद में पली हुई भारतीय जनता 'ईश्वर रहित' साम्यवाद को स्वीकार नहीं कर सकती पर 'नया अवतार' उनको 'शुद्ध और पवित्र' बनाकर मनुष्य मात्र में समता के साथ ही भ्रातृभाव की भी स्थापना करेगा और तब उसका प्रचारित नवीन सिद्धान्त 'आध्यात्मिक साम्यवाद' के रूप में संसार का जीवन-दाता मार्ग बन जायगा।

भगवान आरम्भ में अथवा प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होकर मानव-जाति का मार्ग-प्रदर्शन करके विषमता के स्थान पर समता, अन्याय के स्थान पर न्याय और अधर्म के स्थान पर धर्म की स्थापना करें यही इस समय मानव-अन्तरात्मा की प्रार्थना है।

'कल्कि पुराण' का सार यही है। यह उसकी बहुत बड़ी विशेषता है कि अन्याय और असमानता के युग में उसने एक 'नया' के रूप में 'सत्य-धर्म' की स्थापना की कल्पना की और 'कल्कि' द्वारा उसे सम्भव बतला कर प्रचारित किया। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि ऐसे विराट और विश्वव्यापी परिवर्तन सामान्य मानवीय शक्ति द्वारा सम्भव नहीं हो सकते। उसके लिये 'अतिमानवीय' या दैवी शक्ति की आवश्यकता होती है और वह 'परमात्म शक्ति' के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकती।

—सत्यभक्त

कल्किपुराण

प्रथम अंश

प्रथम-अध्याय

सेन्द्रा देवगणा मुनीश्वरजना लोकाः सपाला. सदा ।
स्वं स्वं कर्म सुसिद्धये प्रतिदिनं भक्त्या भजन्त्युत्तमा. ।
तं विघ्नेशमनन्तमच्युतमजं सर्वज्ञसर्वाश्रयं ।
वन्दे वैदिकतान्त्रिकादिविविधं शास्त्रै पुरोवन्दितम्॥१॥
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥
यद्दोर्दण्डकरालसर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः
नेतुः सत्करवालदण्डदलिता भूपा.क्षितिक्षोभकाः ।
शश्वत् सैन्धववाहनो द्विजजनि. कल्किः परात्मा हरिः
पायात्सत्ययुगादिकृत्स भगवान्धर्मप्रवृत्तिप्रियः ॥ ३ ॥
इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः ।
शौनकाद्या महाभागाः पप्रच्छुस्तं कथामिमाम् ॥ ४ ॥
हे सूत! सर्वधर्मज्ञ ! लोमहर्षणपुत्रक: ! ।
त्रिकालज्ञ ! पुराणज्ञ ! वद भागवतीं कथाम् ॥ ५ ॥
कः कल्किः ? कुत्र वा जातो जगतामीश्वरः प्रभुः ।
कथं वा नित्य धर्म्मस्य विनाशः कलिना कृतः ? ॥ ६ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो ध्यात्वा हरिं प्रभुम् ।
सहर्षपुलकोद्भिन्न सर्वाङ्गः प्राह तान्मुनीन् ॥ ७ ॥

प्राचीन काल में वैदिक तान्त्रिक आदि विविध शास्त्रों के द्वारा आराधित, इन्द्र सहित देवता, मुनीश्वर और लोकपालों द्वारा स्वकार्य-सिद्धि के लिए भक्तिपूर्वक सतत उपासित, विघ्नेश, अनन्य, अच्युत, अजन्मा, सर्वज्ञ एवं सर्वाश्रय स्वरूप भगवान् विष्णु का वन्दन करता हूँ ॥१॥ नर, नारायण कहे जाने वाले नरोत्तम को एवं भगवती सरस्वती को नमस्कार करके उनकी जय बोलता हूँ ॥२॥

जिनके भयंकर भुज भुजग के विष ज्वाल से धधक कर उठने घोर अत्याचारों से भूमण्डल की शान्ति भंग करने वाले राजागण भस्म हो जायगे और जिनके भयंकर खड्ग की तीक्ष्ण धार से राजाओं के देह मर्दित होंगे, वे ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होकर, युग-युग में अवतार धारण करने वाले भगवान् श्री हरि कल्कि रूप में रक्षा करें ॥३॥

सूतजी के यह वचन सुन कर नैमिषारण्य निवासी शौनकादि महा-भागों ने उनसे पूछा ॥४॥ हे सूतजी ! हे सर्व धर्मों के ज्ञाता, हे लोम-हर्षण-पुत्र ! हे त्रिकालज्ञ ! हे पुराणों के भली प्रकार जानने वाले ! अब आप भगवान की कथा को विस्तृत रूप से कहिये ॥५॥ कलि कौन है ? वह कहाँ उत्पन्न हुआ ? वह किस प्रकार पृथिवी का अधीश्वर बन गया ? तथा उसने नित्यधर्म को किस प्रकार विनष्ट कर दिया ? यह सब हमारे प्रति कहिये ॥६॥ महर्षियों के यह वचन सुनकर सूतजी ने भगवान श्री हरि का ध्यान किया और फिर पुलकित मन होकर कहने लगे ॥७॥

शृणुध्वमिदमाख्यानं भविष्यं परमाद्भुतम् ।
कथितं ब्रह्मणा पूर्वं नारदाय विपृच्छते ॥ ८ ॥
नारद आह मुनये व्यासायामिततेजसे ।
स व्यासो निजपुत्राय ब्रह्मराताय धीमते ॥ ९ ॥
स चाभिमन्युपुत्राय विष्णुराताय संसदि ।

प्राह भागवतान्धर्मानिष्टादशसहस्रकान ॥ १० ॥
तदा नृपे लयं प्राप्ते सप्ताहे प्रश्नशेषितम् ।
मार्कण्डेयादिभिः पृष्टः प्राह पुण्याश्रमे शुकः ॥ ११ ॥
तत्राह तदनुज्ञातः शृणुतावानस्मि या कथाः ।
भविष्याः कथयामीह पुण्या भागवतीः शुभाः ॥ १२ ॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! प्राचीन समय की बात है—इस परम अद्भुत उपाख्यान केपूछने पर ब्रह्माजी ने नारदजी से जो कहा था, वही मै आपके प्रति कहता हूँ ॥८॥ फिर नारद जी ने इसका वर्णन व्यासजी से किया, जिसे व्यासजी ने अपने मेधावी पुत्र ब्रह्मरात को सुनाया ॥६॥ ब्रह्मरात ने उसे अभिमन्यु-पुत्र विष्णुरात के प्रति अट्ठारह सहस्र श्लोकों मे सभा मडप के मध्य मे सुनाया ॥१०॥ उस समय प्रश्न होते-होते राजा विष्णुरात ने एक सप्ताह मे शेष प्रश्नों को पूर्ण कर लिया और लय को प्राप्त हो गये। उसी कथा के शेष अ श अर्थात् संक्षिप्त रूप को शुकदेवजी ने मार्कण्डेय प्रभृति मुनियो के प्रश्न करने पर कहा ॥११॥ भगवान् श्री शुकदेवजी द्वारा वर्णित उसी संक्षिप्त पुण्यमय, भागवत उपाख्यान को, जो भविष्य मे घटित होने वाला है, आपसे कहता हूँ ॥१२॥

ताः शृणुध्वमहाभागाः समाहित धियोऽनिशम् ।
गते कृष्णे स्वनिलय प्रादुर्भूतो यदा कलिः ॥ १३ ॥
प्रलयान्ते जगत्स्रष्टा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ससर्ज घोर मलिन पृष्ठदेशात स्वपातकम् ॥१४॥
स चाधर्म इति ख्यातस्तस्य वंशानुकीर्त्तनात ।
श्रवणात्स्मरणाल्लोक सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥
अधर्मस्य प्रियारम्या मिथ्या मार्जारलोचना ।
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी दम्भः परमकोपनः ॥ १६ ॥

स मायाया भगिन्यान्तु लोभं: पुत्रञ्च कन्यकाम् ।
निकृतिं जनयामास तयो क्रोध सुतोऽभवत् ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण के अपने लोक को पधारने के पश्चात् जिस प्रकार कलि की उत्पत्ति हुई, उस सब को कहता हूँ, आप लोग समाहित चित सुने ॥१३॥ जब प्रलयकाल व्यतीत हो गया तब संसार-स्रष्टा, लोक पितामह ब्रह्माजी ने अपनी पीठ से घोर मलीन पातक को उत्पन्न किया ॥१४॥ उसी पातक का नाम अधर्म हुआ, उस अधर्म के वंश का श्रवण, स्मरण एवं रहस्य जानने से प्राणीमात्र सब पापों से मुक्त हो सकते हैं ॥१५॥ उस अधर्म की पत्नी बिल्ली जैसे नेत्र वाली, अत्यन्त रम्या हुई, जिसका नाम मिथ्या हुआ। फिर अधर्म के संयोग से अति तेजस्वी, महाक्रोधी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम दम्भ था ॥१६॥ अधर्म और मिथ्या ने माया नाम की एक कन्या भी उत्पन्न की। दंभ और माया के संयोग से लोभ नामक पुत्र और निकृति नाम की कन्या हुई। लोभ और निकृति के संयोग से क्रोध नामक पुत्र हुआ ॥१७॥

सहिंसाया भगिन्यान्तु जनयामास तं कलिम् ।
वामहस्त धृतोपस्थ तैलाभ्यक्ताञ्जनप्रभम् ॥ १८ ॥
काकोदर करालास्य लोलजिह्वं भयानकम् ।
पूतिगन्ध द्यूतमद्यस्त्री सुवर्णकृताश्रयम् ॥ १९ ॥
भगिन्यान्तु दुरुक्त्या स भय पुत्रञ्च कन्यकाम् ।
मृत्युं स जनयामास तयोश्च निरयोऽभवत् ॥ २० ॥
यातनाया भगिन्यान्तु लेभे पुत्रायुतायुतम् ।
इत्य कलिकुले जाता बहवो धर्मनिन्दका ॥ २१ ॥
यज्ञाध्ययनदानादिवेदतन्त्रविनाशका: ।
आधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयाश्रया ॥ २२ ॥

क्रोध की बहिन हिंसा हुई। उन दोनों के संयोग से संसार को नष्ट करने वाले कलि की उत्पत्ति हुई। इस बाम कर में उपस्थ धारण करने वाले कलि की देह कान्ति काजल के समान काली हुई ॥१८॥ काकोदर, कराल, चपल जिह्वा वाले, भयानक दुर्गन्ध युक्त शरीरधारी इस कलि

मे द्यूत, मद्य, स्त्री और स्वर्ण में निवास किया ॥१९॥ कलि की सगर्भा दुरुक्ति हुई। उन दोनों ने भयानक नामक पुत्र और मृत्यु नाम की कन्या उत्पन्न की। मृत्यु ने उसके द्वारा निरय नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥२०॥ निरय की सगर्भा यातना हुई। इन दोनों के संयोग से हज़ारों पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार कलि के कुल में बहुतेरे धर्म-निन्दकों की अवतारणा हुई ॥२१॥ यह सभी व्याधि, व्याधि बुढ़ापा, ग्लानि दुःख शोक और भय के आश्रय को प्राप्त होकर यज्ञ, अध्ययन, दानादि एवं वैदिक तथा तान्त्रिक कर्मों का नाश करने वाले हुए ॥२२॥

कलिराजानुगास्तेरुर्यं थयो लोकनाशकाः ।
बभूवुः कालविभ्रष्टाः क्षणिकाः कामुका नराः ॥ २३ ॥
दम्भाचारदुराचारास्तातमातृविहिंसकाः ।
वेदहीना द्विजा दीनाः शूद्रसेवापराः सदा ॥ २४ ॥
कुतर्कवादबहुला धर्मविक्रयिणोऽधमाः ।
वेदविक्रयिणो व्रात्या रसविक्रयिणस्तथा ॥ २५ ॥
मांसविक्रयिणः क्रूराः शिश्नोदरपरायणाः ।
परदाररता मत्ता वर्णसङ्करकारकाः ॥ २६ ॥
ह्रस्वाकाराः पापसाराः शठा मठनिवासिनः ।
षोडशाब्दायुषः श्यालबान्धवा नीचसङ्गमाः ॥ २७ ॥

लोकावरण का नाश करने वाले, कलिराज के अनुचर मूर्खों ने चंचल, क्षण-भंगुर और कामुक मनुष्य-देह धारण किये ॥२३॥ यह घोर दम्भी, दुराचारी, मातृ-पितृ-हिंसक अनुचरगण ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी वेद-विहीन, दरिद्री और शूद्रों के सेवा-परायण हुए ॥२४॥ कुतर्कवाद की बहुलता से युक्त, धर्म, वेद, रस, मांस आदि के विक्रय में तत्पर, संस्कार-विहीन, शिश्नोदर-परायण, परदार-परायण, उन्मत्त एवं वर्णसंकर सन्तानों के उत्पन्न करनेवाले हुए ॥२५-२६॥ यह नाटे आकार के, पापी, शठ, मठों में निवास करने वाले, सोलह वर्ष की परम आयु वाले, यह कलि के सेवकगण साले को भाई के समान

मानने वाले और नीचों की सपंति करने वाले हुए ॥२७॥

विवादकलहक्षुब्धाः केशवेशविभूषणा ।
कलौ कुलीना धनिनः पूज्या वार्द्धुषिका द्विजाः ॥ २८ ॥
सन्यासिनो गृहासक्ता गृहस्थास्त्वविवेकिनः ।
गुरुनिन्दापरा धर्मध्वजिनः साधुवञ्चकाः ॥ २९ ॥
प्रतिग्रहरता शूद्राः परस्वहरणादरः ।
द्वयो स्वीकारमुद्वाह यठे मैत्री वदान्यता ॥ ३० ॥
प्रतिदाने क्षमाशक्तौ विरक्तिकरणाक्षमे ।
वाचालत्वञ्च पाण्डित्ये यशोर्थे धर्मसेवनम् ॥ ३१ ॥
धनाढ्यत्वञ्च साधुत्वे दूरे नीरे च तीर्थता ।
सूत्रमात्रेण विप्रत्व दण्डमात्रेण मस्करी ॥ ३२ ॥

विवाद-कलह में क्षुब्ध रहने वाले, केश विन्यास में आसक्त, धनवान, ब्याज से जीविका चलाने वाले एवं कुलीन कहलाने वाले यह ब्राह्मण ही कलिकाल में पूजनीय हुए ॥२८॥ सन्यासी गृहस्थ-धर्म परायण हो गए, गृहस्थों में विवेचन शक्ति का अभाव होगया, शिष्य गुरु निन्दक और धर्मध्वजी साधु वञ्चक होगए ॥२९॥ शूद्र दान लेने और पर-सम्पत्ति के हरण करने वाले हुए, स्त्री-पुरुष की सहमति ही विवाह हुआ, मित्र शठ हुए, प्रतिदान ही दानशीलता होगया, न्यायाधीश दण्ड देने में असमर्थ होकर क्षमाशील होगए, दुर्बल के प्रति उदासीनता होने लगी, अधिक बोलने वाले ही पंडित कहे जाने लगे तथा यश की कामना से ही लोग धर्म का सेवन करने लगे ॥३०-३१॥ धनवान ही साधु पुरुष माने जाने लगे, दूर का लाया हुआ जल ही तीर्थ का जल होगया, यज्ञोपवीत से ही ब्राह्मणत्व निहित होगया और दण्ड धारण सन्यासी का लक्षण रह गया ॥३२॥

अल्पसस्या वसुमती नदीतीरेऽवरोपिता ।
स्त्रियो वेश्यालापसुखा स्वपुंसा त्यक्तमानसा ॥ ३३ ॥
परान्नलोलुपा विप्राश्चण्डालगृहयाजका ।

स्त्रियो वैधव्यहीनाश्च स्वच्छन्दाचरणप्रियाः ॥ ३४ ॥
चित्रवृष्टिकरा मेघा मन्दशस्या च मेदिनी ।
प्रजाभक्षा नृपा लोकाः करपीडाप्रपीडिता. ॥ ३५ ॥
स्कन्धे भार करे पुत्रं कृत्वा क्षुब्धा. प्रजाजनः ।
गिरिदुर्गं वन घोरमाश्रयिष्यन्ति दुर्भगा. ॥ ३६ ॥
मधुमांसैर्मूलफलैराहारै. प्राण धारिण. ।
एव तु प्रथमे पादे कले· कृष्णविनिन्दकाः ॥ ३७ ॥

पृथिवी अल्पशस्या होगयी, नदियाँ अन्यान्य स्थानों में बहने वाली हुई, नारियाँ वेश्यालय में सुख मानने लगीं और भार्याओं का पति मे अनुराग नहीं रहा ॥३३॥ पराये अन्न की कामना वाले ब्राह्मण शूद्रों के यहाँ यजन करने लगे, विधवाओं ने वैधव्य का आचरण त्याग दिया और स्वच्छन्द आचरणवाली होगई ॥३४॥ मेघ,खण्ड-वृष्टि वाले हुए, पृथिवी मन्दशस्या हुई, राजागण प्रजा-भक्षक होगये, जिससे प्रजा करों के भार से उत्पीड़ित हो उठी ॥ ३५ ॥ अत्यन्त क्षुब्ध हुए प्रजाजन कन्धों पर बोझ और हाथ मे पुत्र लेकर दुर्गम पर्वत और घोर वनों में जाकर आश्रय खोजने लगे ॥ ३६ ॥ मधु,मांस मूल और फल का भोजन ही प्राण धारण का सहारा बन गया । कलि के प्रथम पाद में ही मनुष्यगण श्री कृष्ण-निन्दक हो गये ॥ ३७ ॥

द्वितीये तन्नामहीनास्तृतीये वर्णसङ्करः ।
एकवर्णाश्चतुर्थे च विस्मृत.च्युतसत्क्रियाः ॥ ३८ ॥
नि स्वाध्या-स्वधा-स्वाहा-वौषडोंकार-वर्जिता. ।
देवा सर्वे निराहारा. ब्रह्माण शरण ययु ॥ ३९ ॥
धरित्रीमग्रत कृत्वा क्षीणां दीनां मनस्विनीम् ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोक वेदध्वनिनादितम् ॥ ४० ॥
यज्ञधूमै· समाकीर्णं मुनिवर्यं निषेवितम् ।
सुवर्णं वेदिकामध्ये दक्षिणावर्त्त मुज्ज्वलम् ॥ ४१ ॥
वह्नि यूपाङ्कितोद्यान-वन-पुष्प-फलान्वितम् ।

सरोभि सारसैर्हंसैराहूयन्त मिवातिथिम् ॥ ४२

कलि के द्वितीय पाद में लोग श्रीकृष्ण नाम को भी भूल गए, तीसरे पाद में वर्ण शंकर उत्पन्न हुए और चौथे पाद में तो जाति-पाँति ही कुछ न रही, लोग सत्कर्म और ईश्वर को भी भूल गये ॥ ३८ ॥ स्वाध्याय, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार और ओंकारादि का लोप हो गया जिससे सभी देवता आहार न मिलने के कारण पीड़ित होकर ब्रह्माजी की शरण में गये ॥ ३९ ॥ सभी क्षीणता को प्राप्त हुए दीन देवगण चिन्तित। पृथिवी को पार करके ब्रह्म-लोक को गये । वह लोक उन्हें वेद-ध्वनि से गूँजता हुआ दिखाई दिया ॥ ४० ॥ वहाँ यज्ञ का धुआँ फैल रहा था मुनिगण उपासना एवं यज्ञ कर रहे थे, स्वर्ण-वेदी के मध्य दक्षिणाग्नि प्रज्वलित थी, उद्यान वन-पुष्पों और फलों से परिपूर्ण थे, सरोवर में सारस और हंसों के मधुर स्वर ऐसे लग रहे थे, मानों अतिथियों का स्वागत कर रहे हों ॥ ४१-४२ ॥

वायु लोललताजालकुसुमालिकुलाकुलं ।
प्रणतालान-सत्कार-मधुरालापवीक्षणं ॥ ४३ ॥
तद्ब्रह्मसदनं देवा सेश्वरा क्लिष्टमानसा ।
विविशुस्तदनुज्ञाता निजकार्यं निवेदितुम् ॥ ४४ ॥
त्रिभुवनजनक मदासनस्थ सनक-सनन्दन-सनातनैश्च सिद्धैः
परिसेवित पादपद्म ब्रह्माणं देवता नेमु. ॥ ४५ ॥

चपल पवन लता-जालों को झकोर रहा था, अलि अवलि कलियों का रस-पान करते गूँज रहे थे, मानों वह सभी प्रणाम, आह्वान, सत्कार आदि के लिए मधुर वाणी का प्रयोग कर रहे हों ॥ ४३ ॥ अपने स्वामी इन्द्र के सहित खेद युक्त मन वाले सब देवता ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करके अपना दुःख निवेदन करने के लिए ब्रह्म-सदन में प्रविष्ट हुए ॥ ४४ ॥ वहाँ जाकर सनक, सनन्दन और सनातन से अपने चरण-कमलों की सेवा कराते हुए एक श्रेष्ठ आसन पर समासीन ब्रह्मा-जी को उन देवताओं ने नमस्कार किया ॥ ४५ ॥

द्वितीय अध्याय

उपविष्टास्ततो देवा ब्रह्मणो वचनात्सुर. ।
कलेर्दोषाद्धर्महानिं कथयामासुरादरात् ॥ १ ॥
देवानां तद्वचः श्रुत्वा ब्रह्मा तानाह दुःखितान् ।
प्रसादयित्वा तं विष्णुं साधयिष्याम्यभीप्सितम् ॥ २ ॥
इति देवैः परिवृतः गत्वा गोलोकवासिनम् ।
स्तुत्वा प्राह पुरो ब्रह्मा देवानां हृदयेप्सितम् ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! वहाँ जाकर वे सभी देवता ब्रह्माजी की आज्ञा से उनके समक्ष बैठ गये । फिर उन्होंने कलि के दोषों में जो धर्म की हानि हुई थी, उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १ ॥ दुःखित हृदय वाले देवताओं के वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले—मैं भगवान् विष्णु की आराधना करके तुम्हारा सब मनोरथ सिद्ध करता हूँ ॥२॥ यह कर ब्रह्माजी ने देवताओं को साथ लिया और गोलोक निवासी भगवान् श्री हरि की सेवा में आ पहुँचे । वहाँ उन्होंने स्तुति की और फिर देवताओं की कामना निवेदन की ॥३॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥
शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम् ।
सुमत्यांमातरि विभो ! पत्नीयां त्वन्निदेशतः ॥ ४ ॥
चतुर्भिर्भ्रातृभिर्देव ! करिष्यामि कलिक्षयम् ।
भवन्तो बान्धवा देवाः स्वांशेनावतरिष्यथ ॥ ५ ॥
इयं मम प्रिया लक्ष्मी. सिंहले संभविष्यति ।
बृहद्रथस्य भूपस्य कौमुद्यां कमलेक्षणा ।
भार्यायां मम भार्या॰ पद्मानाम्नी जनिष्यति ॥ ६ ॥

सरितस्समुद्रा गिरयो लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ।
सहर्षा ऋषयो देवा जाते विष्णौ जगत्पतौ ॥ १२ ॥
बभूवुः सर्वसत्त्वानामानन्दा विविधाश्रयाः ।
ननृतुः पितरो हृष्टास्तुष्टा देवा जगुर्यशः ॥ १३ ॥
चक्रुर्वाद्यानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ १४ ॥
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य माधवे मासि माधव ।
जातं ददृशतुः पुत्रं पितरौ हृष्टमानसौ ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीहरि विष्णुयश के द्वारा उनकी पत्नी के गर्भ में प्रविष्ट होकर प्रकट रूप हुए ॥११॥ यह जानकर कि विष्णु पृथिवी पर आ गये हैं, सभी सरिता, समुद्र पर्वत, स्थावर जंगम प्राणी, ऋषि-गण और देवगण आदि सभी प्रसन्न हो उठे ॥१२। तथा सभी जीव विभिन्न प्रकार से हर्ष प्रकट करने लगे, पितर नाचने लगे और देवता प्र ा के गुणगान में तत्पर हुए ॥१३॥ गन्धर्व बाजे बजाने और अप्सरायें नृत्य करने लगी ॥१४॥ वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन भगवान् ने अवतार लिया। उनको प्रकट होते हुए देखकर माता-पिता पुलकित हो उठे ॥१५॥

धातृमाता महाषष्ठी नाभिच्छेत्री तदम्बिका ।
गङ्गोदकक्लेदमोक्षा सावित्री मार्जनोद्यता ॥ १६ ॥
तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधाऽधारपयःसुधाम् ।
मातृका माङ्गल्यवचः कृष्णजन्मदिने तथा ॥ १७ ॥
ब्रह्मा तदुपधार्याशु स्वाशुगं प्राह सेवकम् ।
याहि त सूतिकागारं गत्वा विष्णुं प्रबोधय ॥ १८ ॥
चतुर्भुजमिदं रूपं देवानामपि दुर्लभम् ।
त्यक्त्वा मानुषवद्रूपं कुरु नाथ विचारितम् ॥ १९ ॥
इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा पवनः सुरभिः सुखम् ।
सशीतः प्राह तस्मा ब्रह्मणो वचनादरः ॥ २० ॥

भगवान् के प्रकट होने पर महालक्ष्मी दासी हुई, अम्बिका ने माल धारण किया, गङ्गाजी ने अपने जल से चरणोदक की इच्छा और ह्लादिनी ने भगवान् के शरीर का मार्जन किया ॥१६॥

श्रीकृष्ण-जन्म के समाने ही अनन्त भगवान् के अवतार लेने पर पुष्कर ने दुग्धसुधा की धारा प्रवाहित कर दी, मातृकाओं ने मङ्गलाचार किया ॥१७॥ गन्धर्व गान दे भगवान् के अवतरित होने का समाचार जानकर ब्रह्माजी ने वायु को आज्ञा दी कि तुम सूतिकागार में जाकर भगवान् से इस प्रकार कहो ॥१८॥ कि आपके चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन तो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, अतः हे नाथ! इस चतुर्भुज रूप को छोड़कर मनुष्य रूप बनाइये ॥१९॥ सुशीतल, सुगन्ध, सुगन्धित वायु ने यह वचन सुनकर शीघ्रता से सूतिकागार में जाकर भगवान् से निवेदन किया ॥२०॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षस्त्यक्त्वा द्विभुजोऽभवत् ।
तदा नन्दिततौ दृष्ट्वा विस्मयासक्तमानसौ ॥ २१ ॥
भगवत्स्वरूपमन्तर्धाने तस्य मायया ।
ततस्तु सम्भ्रमात्मे मोहत्वा जीवात्मानवः ।
सङ्गताचारबहुला पापतापविवर्जिता ॥ २२ ॥
सुप्तमिन्म सुतलब्ध्वा विष्णु विष्णु जगत्पतिम् ।
पुत्रं वत्सा विस्मयात्मानाहूयाद्दृत्वा सत्तम् ॥ २३ ॥
हरेः कल्याणाद्विनिःसृता शुद्धेन चेतसा ।
मानस्यं शुचिर्दर्शिता पद्मनाभकलो रतः ॥ २४ ॥
तद दान श्रृणो प्यालो श्रीर्गानिमुखरोरिता ।
मनाधाना हरि दृष्ट्वा बालरत्नमुपागतम् ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी का सन्देश प्राप्त होने पर भगवान् ने दशा अवस्था को त्यागकर दो भुजाओं से युक्त रूप बना लिया। यह लीला देखकर माता-पिता विस्मित हो गये ॥२६॥ प्रभु की माया से मोहित हुए माता-पिता ने भगवान् कि

भ्रम से ही हमने अपने पुत्र को चार भुजा देखा था। फिर उस शम्भल ग्राम में सभी पाप-ताप नष्ट होकर नित्य नवीन मंगलाचार होने लगे ॥२२॥ भगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त करके पूर्णकामा सुमति ने ब्राह्मणों को एक सौ गौएं दान कीं ॥२३॥ पवित्र हृदय वाले विष्णुयशजी ने अपने पुत्र के मंगल की कामना से ऋक्, यजु और सामवेदी ब्राह्मणों को नामकरण के लिए नियुक्त किया ॥२४॥ भगवान् के शिशुरूप का दर्शन करने के लिए परशुराम, कृपाचार्य, वेदव्यास और द्रोणाचार्यजी के पुत्र अश्वत्थामा भिक्षुक वेष में वहाँ आये ॥२५॥

तानागतान्समालोक्य चतुरः सूर्यसन्निभान् ।
हृष्टरोमा द्विजवरः पूजयामास ईश्वरान् ॥ २६ ॥
पूजितास्ते स्वासनेषु संविष्टाः स्वसुखाश्रयाः ।
हरिं क्रोडगतं तस्य ददृशुः सर्वमूर्तयः ॥ २७ ॥
तद्बालकं नराकारं विष्णुं नत्वा मुनीश्वराः ।
कल्किं कल्कविनाशार्थमाविर्भूतं विदुर्बुधाः ॥ २८ ॥
नामाकुर्वंस्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम् ।
कृत्वा संस्कारकर्माणि ययुस्ते हृष्टमानसाः ॥ २९ ॥
ततः स ववृधे तत्र सुमत्या परिपालितः ।
कालेनाल्पेन कंसारिः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ३० ॥

सूर्य के समान तेजस्वी उन ईश्वर स्वरूप आगन्तुकों को देखकर द्विजवर विष्णुयश ने उनका पूजन किया ॥२६॥ भले प्रकार सुपूजित हुए वे मुनिगण श्रेष्ठ आसनों पर सुखपूर्वक विराजे, तब उन्होंने अपने पिता की गोद में बैठे हुए भगवान के दर्शन किए ॥२७॥ उन ज्ञानी मुनीश्वरों ने मनुष्य रूप में शिशु स्वरूप भगवान् को नमस्कार किया और तब उन्होंने जान लिया कि कलिकाल के विनाशार्थ भगवान् श्री कल्कि का अवतार हुआ है ॥२८॥ फिर उनका संस्कार करते हुए उनका कल्कि नाम रखकर प्रसन्न मन से वे मुनीश्वर चले गये ॥२९॥ फिर कंसारि भगवान् माता सुमति के द्वारा भले प्रकार लालित-पालित

होते हुए शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगे ॥३०॥

कल्केर्ज्येष्ठास्त्रयः शूराः कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः ।
पितृमातृप्रियकरा गुरुविप्रप्रतिष्ठिताः ॥ ३१ ॥
कल्केरंशाः पुरो जाता माधवो धर्मतत्परा ।
गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्या ज्ञातयस्तदनुव्रता ॥ ३२ ॥
विशाखयूप भूपाल पालितास्तापवर्जिता ।
ब्राह्मणाः कल्किमालोक्य परां प्रीतिमुपागताः ॥ ३३ ॥
ततो विष्णुयशाः पुत्रं धीरं सर्वगुणाकरम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोवाच पठनादृतम् ॥ ३४ ॥
तात ते ब्रह्मसंस्कारं यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ।
सावित्रीं वाचयिष्यामि ततो वेदान्पठिष्यसि ॥ ३५ ॥

भगवान् कल्कि के उत्पन्न होने से पहले माता-पिता को प्रिय, गुरु-ब्राह्मण का हित करने वाले इनके तीन भाई और उत्पन्न हो चुके थे। उनके नाम कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्रक थे। भगवान् के ही अंश से उनकी जाति में, उनके अनुगामी, साधु स्वभाव वाले एवं धार्मिक प्रवृत्ति वाले गार्ग्य, भर्ग्य और विशाल आदि भगवान् से पहिले ही उत्पन्न हो चुके थे ॥३१-३२॥ विशाखयूप-नरेश द्वारा परिपालित सभी ब्राह्मण भगवान् का दर्शन करके सम्पूर्ण ताप-त्राप से छूटकर प्रसन्न चित्त हुए ॥३३॥ फिर कमले कमलनयन एवं सर्वगुण सम्पन्न पुत्र को अध्ययन करने के योग्य वय वाला हुआ देखकर विष्णुयश उनसे बोले ॥३४॥ हे पुत्र! मैं तुम्हारा श्रेष्ठ ब्रह्म संस्कार, उपनयन और सावित्री का श्रवण कराऊँगा, फिर तुम वेदाध्ययन करना ॥३५॥

को वेदः का च सावित्री केन सूत्रेण संस्कृताः ।
ब्राह्मणा विदिता लोके तत्तत्त्वं वद तात माम् ॥ ३६ ॥
वेदो हरेर्वाक् सावित्री वेदमाता प्रतिष्ठिता ।

त्रिगुणश्च त्रिवृत्सूत्रं येन विप्रा प्रतिष्ठिता ॥ ३७ ॥
दशयज्ञैः संस्कृता ये ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
तत्र वेदाश्च लोकानां त्रयाणामिह पोषकाः ॥ ३८ ॥
यज्ञाध्ययन दानादि तपःस्वाध्याय संयमैः ।
प्रीणयन्ति हरिं भक्त्या वेद तन्त्र विधानतः ॥ ३९ ॥
तस्माद्यथोपनयन कर्मणोऽह द्विजैः सह ।
संस्कृत्य ब्रह्मप्रवजनैस्त्वामिच्छामि शुभे दिने ॥ ४० ॥

पिता के वचन सुनकर कल्कि भगवान ने पूछा—वेद क्या है। सावित्री क्या है। किस सूत्र से संस्कारित पुरुष ब्राह्मण सज्ञक होता है? हे तात! यह सब मुझे बताइये ॥३६॥ पिता बोले—वेद भगवान विष्णु की वाणी है, सावित्री ही प्रतिष्ठा एवं वेद-माता है। त्रिगुण-सूत्र को त्रिवृताकार करके धारण करने पर ब्राह्मण नाम से प्रतिष्ठित होता है ॥३७॥ तीनों लोकों के पोषक एवं दशयज्ञ द्वारा संस्कृत ब्रह्म-वादी जो ब्राह्मण हैं, उन्हीं के पास वेद निवास करते हैं ॥३८॥ यही दश संस्कार वाले विप्र वेद, तन्त्र और शास्त्रादि के विधान से यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, स्वाध्याय, संयम आदि के सहित भक्ति करते हुए भगवान को प्रसन्न करते हैं ॥३९॥ इसी लिए ब्राह्मणों, बांधवों आदि के सहित किसी शुभ दिन में तुम्हारा उपनयन संस्कार करना चाहता हूँ ॥४०॥

के च ते दश संस्कारा ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठिता ।
ब्राह्मणा केन वा विष्णुमर्चयन्ति विधानतः ॥ ४१ ॥
ब्रह्मण्या ब्राह्मणाज्जातो गर्भाधानादिसंस्कृतः ।
सन्ध्यात्रयेण सावित्री-पूजा-जप-परायणः ॥ ४२ ॥
तपस्वी सत्यवाग्धीरो धर्मात्मा त्राति संसृतिम् ।
विष्ण्वर्चनमिदं ज्ञात्वा सदानन्दमयो द्विजः ॥ ४३ ॥
कुतस्ते स द्विजो येन तारयत्यखिलं जगत् ।
सन्मार्गेण हरिप्रीणन्कामदोग्धा जगत्त्रये ॥ ४४ ॥

कल्कि भगवान् बोले—ब्राह्मण के लिए निश्चित किये गये वे दस-संस्कार कौन-कौन से है? जिस विधान से ब्राह्मण भगवान् विष्णु की अर्चना किया करते है? ॥४१॥ विष्णुयश बोले—हे पुत्र! ब्राह्मण के द्वारा ब्राह्मणी में गर्भाधान संस्कार आदि से संस्कृत, त्रिकाल सन्ध्या एवं सावित्री की पूजा और जप में परायण, तपस्वी, सत्यवक्ता, धीर धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् विष्णु की अर्चना विधि को भले प्रकार जानकर आनन्द में निमग्न रहता हुआ सर्वदा इस सृष्टि का रक्षक होता है ॥४२-४३॥ भगवान् ने कहा—हे तात! जो ब्राह्मण सम्पूर्ण विश्व का उद्धारक, साधुमार्ग-परायण, भगवान् विष्णु की उपासना द्वारा प्रसन्न करने वाला और तीनों लोकों की कामना पूर्ण करने वाला है, वह ब्राह्मण कहाँ है? ॥४४॥

कलिना बलिना धर्मं घातिना द्विज पातिना ।
निराकृता धर्मरता गता वर्षान्तरान्तरम् ॥ ४५ ॥

ये स्वल्पतपसो विप्राः स्थिता कलियुगान्तरे ।
शिश्नोदरभृतोऽधर्मनिरता विरत क्रियाः ॥ ४६ ॥
पापसारा दुराचारास्तेजोहीना कलाविह ।
आत्मानं रक्षितुं नैव शक्ता शूद्रस्य सेवका ॥ ४७ ॥
इति जनकवचो निशम्य कल्कि. कलिकुलनाशमनोऽभिलाषजन्मा
द्विजनिजवचनैस्तदोपनीतोगुरुकुलवासमुवास साधुनाम' ॥ ४८ ॥

पिता बोले-धर्मघाती और ब्राह्मणो के हिंसक महाबली कलि के द्वारा पीड़ित हुये विप्र गण अन्य देश को चले गये ॥४५॥ स्वल्प तप वाले जो ब्राह्मण इस कलिकाल में यहाँ स्थित रहे, वे सब शिश्नोदर धर्मी होकर धर्म और कर्म से विरत हो गये ॥४६॥ पाप युक्त, दुराचारी एवं तेज-रहित ब्राह्मण इस कलिकाल में आत्म-रक्षा में असमर्थ एवं शूद्रों के सेवक बन गये है ॥४७॥ पिता के यह वचन सुन कर कल्कि भगवान् ने कलि को नष्ट करने का निश्चय किया। ब्राह्मणों ने अपनी वाणी द्वारा उनका उपनयन संस्कार किया। और तब भगवान् कल्कि गुरुकुल में निवास हेतु गये ॥४८॥

तृतीय अध्याय

ततो वस्तु गुरुकुले यान्तं कल्कि निरीक्ष्य सः।
महेन्द्राद्रिस्थितो रामः समानीयाश्रमं प्रभुः ॥१॥
प्राह त्वां पाठयिष्यामि गुरुं मां विद्धि धर्मतः।
भृगु वंश समुत्पन्न जामदग्न्यं महाप्रभुम् ॥२॥
वेद वेदाङ्ग तत्वज्ञं धनुर्वेद विशारदम्।
कृत्वा निःक्षत्रियां पृथिवीं दत्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥३॥
महेन्द्राद्रौ तपस्तप्तुमागतोऽहद्विजात्मज।
त्वं पठात्र निजं वेदं यच्चान्यच्छास्त्रमुत्तमम् ॥४॥
इति तद्वच आश्रुत्य सम्प्रहृष्टतनूरुह।
कल्किः पुरो नमस्कृत्य वेदाधीती ततोऽभवत् ॥५॥

सूतजी बोले—भगवान् कल्कि को गुरुकुल वास के लिए जाते देख कर महेन्द्र पर्वत निवासी परशुराम उन्हें अपने आश्रम में ले गये।१। वहाँ पहुँच कर परशुराम ने उनसे कहा—मैं भृगु वंश में उत्पन्न, महर्षि जमदग्नि का पुत्र, वेद-वेदांग के तत्व को जानने वाला, धनुर्वेद-विद्या-विशारद परशुराम हूँ।२। मैंने इस पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन करके ब्राह्मणों को दक्षिणा स्वरूप दे डाली थी। अब तुम मुझे धर्म पूर्वक गुरु मानो, मैं तुमको शिक्षा दूँगा। हे द्विजात्मज ! मैं इस महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने के लिए आया हूँ, तुम यहाँ अपना वेदाध्ययन करो तथा अन्य भी कोई शास्त्र पढ़ना चाहो, उसे पढ़ो।३-४। यह सुन कर भगवान् कल्कि ने आनन्द से गद्गद् होकर परशुराम को प्रणाम किया और फिर वेदाध्ययन करने लगे।५।

साङ्गं चतुःषष्टिकलां धनुर्वेदादिकञ्च यत् ।
समधीत्य जामदग्न्यात्कल्किः प्राह कृताञ्जलिः ॥६॥
दक्षिणां प्रार्थय विभो ! या देया तव सन्निधौ ।
यया मे सर्वसिद्धिः स्याद्या स्यात्त्वत्तोषकारिणी ॥७॥
ब्रह्मणा प्रार्थितो भूमन् ! कलिनिग्रहकारणात् ।
विष्णुः सर्वाश्रयः पूर्णः स जातः शम्भले भवान् ॥८॥
मत्तो विद्यां शिवादस्त्रं लब्ध्वा वेदमयं शुकम् ।
सिंहले च प्रियां पद्मां धर्मान्संस्थापयिष्यसि ॥९॥

अब भगवान् कल्कि चौंसठ कलाएं और सम्पूर्ण धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर चुके तब वे हाथ जोड़ कर परशुराम से कहा— ।६। हे विभो ! जिस दक्षिणा के देने से मुझे सर्वसिद्धि की प्राप्ति होगी और जिस दक्षिणा की प्राप्ति से आप सन्तुष्ट हो जायेंगे, वह दक्षिणा मुझे बताने की कृपा कीजिये ।७। परशुराम बोले— हे भूमन् ! कलियुग का नाश करने के लिए ब्रह्माजी ने जिन भगवान् श्री हरि से निवेदन किया था, वे ही आप भगवान् विष्णु शम्भल ग्राम में अवतरित हुए हैं ।८। आप मुझसे विद्या, भगवान् शंकर से अस्त्र और वेदमय शुक तथा सिंहल देश में अपनी पत्नी पद्मा को प्राप्त करके भूमण्डल पर धर्म की स्थापना करेंगे ।९।

ततो दिग्विजये भूपान् धर्महीनान् कलिप्रियान् ।
निगृह्य बौद्धान् देवापिं मरुञ्च स्थापयिष्यसि ॥१०॥
वयमेतैस्तु सन्तुष्टाः साधुकृत्यैः सदक्षिणाः ।
यज्ञं दानं तपः कर्म करिष्यामो यथोचितम् ॥११॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनिं गुरुम् ।
बिल्वोदकेश्वरं देवं गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ॥१२॥
पूजयित्वा यथान्यायं शिवं शान्तं महेश्वरम् ।
प्रणिपत्याशुतोषं तं ध्यात्वा प्राह हृदि स्थितम् ॥१३॥

फिर दिग्विजय द्वारा धर्म-विहीन और अशिष्ट राजाओं और चोरों का संहार करके और देवापि को प्रतिष्ठित करोगे। तुम्हारा यह साधुकृत्य ही मुझको सन्तुष्ट करने वाली दक्षिणा होगी, क्योंकि तब तुम जप, यज्ञ, दान, ध्यान, आदि सभी कर्म अच्छे प्रकार से कर सकोगे ।१०-११। यह सुन कर और गुरुवर परशुरामजी को नमस्कार करके कल्कि भगवान् बिल्वोदकेश्वर महादेव के मन्दिर में गये और उन्हें सन्तुष्ट करने लगे ।१२। हृदय में स्थित उन आशुतोष शान्त स्वरूप शिवजी का उन्होंने विधिवत् पूजन किया और प्रणाम तथा ध्यान के पश्चात् निवेदन किया ।१३।

गौरीनाथं विश्वनाथं शरण्यं भूतावासं वासुकीकण्ठभूषम् ।
त्र्यक्षं पञ्चास्यादिदेवं पुराणं वन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ।
योगाधीशं कामनाशं करालं गङ्गासङ्गक्लिन्नमूर्द्धानमीशम् ।
जटाजूटाटोपरिक्षिप्तभावं महाकालं चन्द्रभालं नमामि ॥
श्मशानस्थं भूतवेतालसङ्गं नानाशस्त्रैः खड्गशूलादिभिश्च ।
व्यग्रात्युग्रा बाहवो लोकनाशे यस्य क्रोधोद्भूतलोकोऽस्तमेति ।
यो भूतादिः पञ्चभूतैः सिसृक्षुस्तन्मात्रात्मा कालकर्मस्वभावैः
प्रहृत्येदं प्राप्य जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दो रमते तं नमामि ॥
स्थितो विष्णुः सर्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून् धर्मसेतून् बिभर्ति । ब्रह्माद्यांशे योऽभिमानी गुणात्मा शब्दाद्यङ्गैस्तं परेशं नमामि । यस्याज्ञया वायवो वान्ति लोके ज्वलत्यग्निः सविता याति तप्यन् । शीतांशुः खे तारकैः सग्रहैश्च प्रवर्तते तं परेशं प्रपद्ये । यस्याश्वासात् सर्वधात्री धरित्री देवो वर्षत्यम्बु कालः प्रमाता । मेरुर्मध्ये भुवनानाञ्च भर्ता तमीशानं विश्वरूपं नमामि ।१४-२०।

कल्किजी ने कहा—हे गौरीपते ! हे विश्वेश्वर ! हे शरणागत-वत्सल ! हे सर्वभूताश्रय ! हे वासुकी नाग का कण्ठभूषण धारण करने

वाले प्रभो ! हे त्रिनेत्र ! हे पंचवदन ! हे पुराण पुरुष ! हे सघन आनन्द-
रूप आदिदेव ! आपको नमस्कार है ।१४। हे योगाधीश्वर ! आप काम-
देव का नाश करने वाले, कराल दशन, गंगाजल से समुज्ज्वल मूर्द्धा वाले,
जटाजूट टोप युक्त, परिक्षिप्त भार वाले महाकाल हैं । हे चन्द्रभाल !
आपको नमस्कार है ।१५। हे प्रभो ! आप भूत बेतालों के सहित श्मशान
में निवास करते हैं । आप अपनी भयानक भुजाओं में विभिन्न प्रकार
के अस्त्रशस्त्र धारण करते हैं । प्रलय काल में यह समस्त विश्व आप की
ही क्रोधानल में भस्मीभूत हो जाता है ।१६। आप ही भूतादि तन्मात्रा
रूप एवं भूत गण काल-कर्म-स्वभावानुसार सृष्टि रचना करते और [illegible]
में प्रलय करके जीवात्मा को वश होकर ब्रह्मानन्द में रमण करते हैं,
ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ।१७। आप ही सुरात्मा विश्व के पालनार्थ
विष्णु स्वरूप होकर धर्म सेतु स्वरूप साधुओं की रक्षा करते हैं । आप ही
सत्त्वादि गुणत्रयों के द्वारा त्रिगुण रूप ब्रह्मादि के वश रूप होते हैं । ऐसे
आप परमेश्वर को नमस्कार है ।१८। आपकी आज्ञा से, वायु बहता,
अग्नि प्रज्वलित होता, सूर्य प्रकाशित होता और तारागण के सहित
चन्द्रमा उदित होता है । ऐसे आपकी मैं शरण लेता हूँ ।१९। जिन
की आज्ञा से पृथिवी विश्व को धारण किये है और मेघ समय पर वर्षा
करते हैं तथा जो सब लोगों के शरण करने वाले हैं, ऐसे आप ईश
एवं त्रिरूप भगवान शङ्कर को नमस्कार करता हूँ ।२०।

इति कल्किस्तवं श्रुत्वा शिवः सर्वात्मदर्शनः
साक्षात् प्राह हसन्नीशः पार्वतीसहितोऽग्रतः ।२१।
कल्केः संस्पृश्य हस्तेन समस्तावयवं मुदा ।
तमाह वरय श्रेष्ठ ! वरं यत्तेऽभिकाङ्क्षितम् ।२२।
त्वया कृतमिदं स्तोत्रं ये पठन्ति जना भुवि ।
तेषां सर्वार्थसिद्धिः स्यादिह लोके परत्र च ।२३।
विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्यां धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात् कामी पठनाच्छ्रवणादपि ।२४।

त्वं गारुडमिदं चाश्वं कामगं बहुरूपिणम् ।
शुकमेनञ्च सर्वज्ञं मया दत्तं गृहाण भो ।२५।

भगवान् कल्कि का स्तोत्र सुन कर सर्वात्मा भगवान् शंकर पार्वती सहित साक्षात् रूप से प्रकट हुये—उन्होंने आनन्दित होकर भगवान् कल्कि की देह पर कर स्पर्श करते हुए और मुसकराते हुए कहा—हे श्रेष्ठ ! अपना इच्छित वर मांगो ।२१-२२। तुम्हारे द्वारा रचित इस स्तोत्र का जो भू-मण्डल में जो कोई पाठ करेगा, उसकी इहलौकिक और पारलौकिक सभी कामनाएँ पूर्ण होंगी ।२३। इस स्तोत्र के पढ़ने सुनने से विद्यार्थी को विद्या, धर्मार्थी को धर्म और अन्य कामना वाले को उसकी उसी कामना की प्राप्ति होती है ।२४। हे कल्कि ! मैं तुम्हें यह शीघ्रगामी, अनेक रूप धारी, घोड़ा तथा युक्त सर्वज्ञ शुक प्रदान करता हूं, इन्हें ग्रहण करो ।२५।

सर्वं शास्त्रार्थविद्वांसं सर्वं वेदार्थपारगम् ।
जयिनं सर्वभूतानां त्वां वदिष्यन्ति मानवाः ।२६।
रत्नत्सरुं करालञ्च करवालं महाप्रभम् ।
गृहाण गुरुभारायाः पृथिव्या भारसाधनम् ।२७।
इति तद्वच आश्रुत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
शम्भलग्राममगमत् तुरगेण त्वरान्वितः ।२८।
पितरं मातरं भ्रातॄन् नमस्कृत्य यथाविधि ।
सर्वं संवर्णयामास जामदग्न्यस्य भाषितम् ।२९।
शिवस्य वरदानञ्च कथयित्वा शुभाः कथाः ।
कल्किः परमतेजस्वी ज्ञातिभ्योऽप्यवदन्मुदा ।

हे कल्कि ! मनुष्यों में तुम सर्व शास्त्रज्ञ, सर्व शास्त्रार्थ विशारद, सर्व वेदों में पारगामी एवं सर्व भूतों में विजयी कहे जाओगे ।२६। यह रत्नत्सरु नामक महा करवाल, अत्यन्त चमकती हुई, गुरुतर भारी और पृथिवी के भार को संभालने वाली तलवार ग्रहण

करो ।२७। भगवान महेश्वर के वचन सुन कर कल्कि ने उन्हें प्रणाम किया और अश्व पर आरूढ़ होकर द्रुतगति से शम्भल ग्राम में आ पहुँचे। ।२८। वहाँ पहुँच कर उन्होंने अपने पिता माता, भ्राता आदि को विधिवत् नमस्कार कर परशुराम जी के कहे हुए ये वचन उन्हें सुनाये ।२९। फिर शिवजी द्वारा प्राप्त हुए वरदान की चर्चा की और अपने जाति वालों के मध्य स्थित होकर प्रसन्न हृदय से श्रेष्ठ कथा कहने लगे ।३०।

गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्यास्तच्छ्रुत्वा नन्दिताः स्थिताः ।
कथोपकथन जातं शम्भलग्रामवासिनाम् ।३१।
विशाखयूपभूपालः श्रुत्वा तेषाञ्च भाषितम् ।
प्रादुर्भावं हरेर्मेने कलिनिग्रहकारकम् ।३२।
माहिष्मत्यां निजपुरे यागदानतपोव्रतान् ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रानपि हरेः प्रियान् ।३३।
स्वधर्मनिरतान् दृष्ट्वा धर्मिष्ठोऽभून्नृपः स्वयम् ।
प्रजापालः शुद्ध मनाः प्रादुर्भावात् श्रियः पतेः ।३४।
अधर्मवंश्यास्तान् दृष्ट्वा जनान् धर्मक्रियापरान् ।
लोभानृतादयो जग्मुस्तद्देशाद्दुःखिता भयम् ।३५।

उनके द्वारा वर्णित कथा सुन कर गार्ग्य, भर्ग्य और विशाल आदि अत्यन्त प्रसन्न हुए। कथा शम्भल ग्राम में परस्पर कही जाने हुई अधिक प्रचारित हो गई ।३१। शम्भल ग्राम के लोगों से ही यह चर्चा विशाखयूपराज ने सुनी और उन्होंने जान लिया कि भगवान् हरि ने कलि का निग्रह करने के लिए पृथिवी पर अवतार ले लिया है ।३२। उनकी माहिष्मती नगरी में यज्ञ, दान, तपस्या और व्रतादि करने वाले सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भगवान के प्रीति पात्र हुए ।३३। रमापति भगवान् के अवतार लेने पर सभी वर्ण अपने-अपने धर्म में तत्पर हुए तथा राजा भी प्रजापालक, पवित्र मन वाला, धार्मिक हुआ ।३४। उस नगरी के निवासियों को धर्म में तत्पर देख कर लोभ,

असत्य और अधर्म के वंशज भय से दुःखित होकर वहाँ से पलायन कर गये ।३५।

जैत्रं तुरगमारुह्य खड्गञ्च विमलप्रभम् ।
दंशितः सशरं चापं गृहीत्वागात् पुराद्वहिः ।३६।
विशाखयूपभूपालः प्रायात् साधुजनप्रियः ।
कल्कि द्रष्टुं हरेरंशमाविर्भूतञ्च शम्भले ।३७।
कविं प्राज्ञं सुमन्तञ्च पुरस्कृत्य महाप्रभुम् ।
गार्ग्य-भर्ग्य विशालैश्च ज्ञातिभिः परिवारितम् ।३८।
विशाखयूपो ददृशे चन्द्रं तारागणैरिव ।
पुराद्वहिः सुरैरिन्द्रमिन्द्रमुच्चैःश्रवः स्थितम् ।३९।
विशाखयूपोऽवनतः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
कल्केरालोकनात् सद्यः पूर्णात्मा वैष्णवोऽभवत् ।४०।

भगवान् कल्कि तीक्ष्ण तलवार, धनुष और श्रेष्ठ वाणों को धारण कर शिव-प्रदत्त अश्व पर आरूढ होकर नगरी से बाहर चल दिये ।३६। संत जनों से स्नेह करने वाले विशाखयूप नरेश शंभल ग्राम में अवतरित भगवान् के दर्शनार्थ उपस्थित [redacted] ।३७। उस समय अत्यन्त प्रभाव वाले कवि प्राज्ञ, सुमंत्र और गार्ग्य विशालादि से घिरे हुए तथा तारागण सहित चन्द्रमा और देवताओं सहित उच्चैःश्रवा के समान अश्व पर चढे कल्कि भगवान् को विशाखयूप नरेश ने नगर के बाहर निकलते देखा ।३८-३९। कल्कि भगवान को देखते ही रोमांचित हुए राजा झुकते हुए पूर्ण वैष्णव को प्राप्त होगया ।४०।

सह राज्ञा वसन् कल्किः धर्मान्नाह पुरोदितान् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशामाश्रमाणां समासतः ।४१।
ममांशान् कलिविभ्रष्टानिति मज्जन्मसङ्गतान् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां मा यजस्व समाहितः ।४२।
अयमेव परो लोको धर्मश्चाहं सनातनः ।
कालस्वभावसंस्काराः कर्मानुगतयो मम ।४३।

सोमसूर्यकुले जातौ देवापिमरुसंज्ञकौ ।
स्थापयित्वा कृतयुगं कृत्वा यास्यामि सद्गतिम् ।४४।
इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा कल्किं हरिं प्रभुम् ।
प्रणम्य प्राह सद्धर्मान् वैष्णवान् मनसेप्सितान् ।४५।
इति नृपवचनं निशम्य कल्किः कलिकुलनाशनवासनावतारः ।
निजजनपरितोषिनोदकारीमधुरवचोभिराह साधुधर्मान् ।४६।

राजा से वार्तालाप करते हुए भगवान् कल्कि ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा आश्रमादि के धर्मों का सविधि रूप से वर्णन किया ।४१। कल्कि बोले—हमारे जो अंश कलि से ग्रस्त पाप के द्वारा नष्ट हो गये थे, वे हमारे अवतरित होने पर धर्म मार्ग पर आ गये हैं। हे राजन्! तुम राजसूय या अश्वमेध यज्ञ करते हुए मेरी आराधना करो ।४२। मैं ही परमोक्ष हूँ, सनातन धर्म मैं ही हूँ, काल, स्वभाव और संस्कार सभी मेरे कर्म के अनुगत रहते हैं ।४३। मैं चन्द्रवंश और सूर्यवंश में उत्पन्न देवापि और मरु नामक राजाओं को स्थापित करके तथा इस युग को सतयुग रूप करके सद्गति को प्राप्त हूँगा ।४४। यह सुनकर विशाखयूप नरेश ने भगवान् कल्कि को प्रणाम किया और उनसे वैष्णव धर्म का प्रवचन करने का अनुरोध किया ।४५। राजा की कामना सुन कर कलिकुल का नाश करने की इच्छा से भूमण्डल पर अवतरित भगवान् कल्कि अपने परिजनों और अनुयायियों के हृदयों को आनन्दित करने वाली मिष्ट वाणी से साधु धर्म की व्याख्या करने लगे ।४६।

—※—

चतुर्थ-अध्याय ।

ततः कल्कि सभा मध्ये राजमानो रविर्यथा ।
प्रभाषे तं नृप धर्म-मयो धर्मान् द्विज प्रियान् ।१।
कालेन ब्रह्मणो नाशे प्रलये मयि सङ्गताः ।
अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् कार्यमिदं मम ।२।
प्रसुप्तलोकतन्त्रस्य द्वैतहीनस्य चात्मनः ।
महानिशान्ते खलु मे समुद्भूतो विराट प्रभुः ।३।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
तदङ्गजोऽभवद्ब्रह्मा वेदवक्ता महाप्रभुः ।४।

सूतजी बोले मुनीश्वरो ! उस समय सभा के मध्य में भगवान कल्कि सूर्य के समान विराजमान होकर विशाखयूप नरेश के प्रति धर्म-प्रसंग कहने लगे ।१। कल्कि बोले—कालान्तर में जब यह ब्रह्माण्ड नाश को प्राप्त होगा तब प्रलय होने पर मुझ में विलीन हो जायगा । सृष्टि से पूर्व मैं ही विद्यमान था, अन्य कुछ भी नहीं था । इस सम्पूर्ण जगत् का कारण मैं ही हूँ ।२। सम्पूर्ण विश्व की प्रसुप्ति और द्वैतहीना-त्मिका महा रात्रि का अन्त होने पर मैं सर्वशक्ति सम्पन्न विराट्मूर्ति रूप में आविर्भूत होता हूँ ।३। वह विराट्मूर्ति सहस्र मस्तक, सहस्र नेत्र और सहस्र चरण वाली हुई, उसी मूर्ति के अंग से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ।४।

जीवोपाधेर्ममांशाच्च प्रकृत्या मायया स्वया ।
ब्रह्मोपाधिः स सर्वज्ञो मम वाग्वेदशासितः ।५।

समर्जं जीव जातानि कालमायां प्रयोगतः
देवा मन्वादयो लोका म प्रजापतय. प्रभु. ।६।
गुणिन्या मायांशा मे नानोपायो ससर्जरे।
सात्त्विका इमे सात्विका देवा सम्पाशुजङ्गमा. ।७।
ममांशा मायया सृष्टा यशो मय्याविशन् लये।
एवंविधा ब्राह्मणा ये मत्स्वरूपा महात्मिका:।८।
मामुद्धरन्ति भुवने यज्ञाध्ययनसत्क्रियाः।
मां प्रसेवन्ति दापन्ति तपादानक्रियास्विह ।९।
स्मरन्त्वामोदयन्त्यव नान्ये देवादयस्तथा।
ब्राह्मणा वेदवक्तारो वेदा मे मूर्तयः परा ।१०।

यहा आदि वाले मर्वजगत् के भी देव शासी के आसनानुसार मरी माया प्रकृति की शक्ति, काल और धन के मन्वियन्त्र में इन जीवो-पकारी प्राणि को प्रकट किया। इस प्रकार मनु आदि प्रजापतियों के सहित देवता प्रकट हुए।(६। मेरे अंश से त्रिगुणात्मिका माया अनेक प्रकार की उत्पत्ति धारण करके इस लोक में देवता एवं स्थावर जंगम सृष्टि प्रकट करती है।७। माया सृष्टि का अधिपता मेरा अंश प्रलय में मुझ में ही लय हो जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मण मेरे ही आत्म स्वरूप एवं बड़े हैं।८। क्योंकि ब्राह्मण यज्ञ वेदाध्ययन आदि श्रेष्ठ कार्यों के द्वारा मेरा उद्धार तथा तप दानादि द्वारा मेरी सेवा करते हैं।९। वेदवक्ता ब्राह्मण जिस प्रकार स्मरण द्वारा मुझे प्रसन्न करते हैं, उस प्रकार देवादि अन्य कोई भी मुझे प्रसन्न नहीं करते, क्योंकि वह ही मेरी परम मूर्ति हैं।१०।

तस्मादिमे ब्राह्मणा मामहं पुत्रमिव मानुवन्ताः।
जगन्निमे यशोराशिं तनुर्मेव ब्राह्मणो वर ।११।
तेनाहं तासमप्यामि गुदसरगुणाश्रयः।
ततो जगन्नाथ पूर्व मा ऐश्वर्येनिचाश्रया. ।१२।

विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि त्वद्भक्तिः का च तत्कृता ।
यतस्त्वानुग्रहेण वाग्वाणाः ब्राह्मणाः कृताः ।१३।
वेदा मामीश्वर प्रहुरव्यक्तं व्यक्तिमत्परम् ।
ते वेदा ब्राह्मणामुखे नानाधर्मे प्रकाशिताः ।१४।
यो धर्मो ब्राह्मणानां हि सा भक्तिर्मम पुष्कला ।
तयाहं तोषितः श्रीश संभवामि युगे-युगे ।१५।

ब्राह्मण द्वारा वेदाध्ययन से तीनों लोकों के निवासी पुष्टि को प्राप्त हो रहे है, प्राणी रूप मेरे देह को श्रेष्ठ ब्राह्मण ही पुष्ट करते है।११। इसलिए शुद्ध सत्वगुण का आश्रित हुआ मैं ब्राह्मणों को मैं नमस्कार करता हूँ, तब ब्राह्मण भी मुझे विश्वमय समझ कर कर ही मेरी सेवा करते हैं।१२। विधातापुत्र नारद ने कहा—हे प्रभो ! आप मेरे प्रति ब्राह्मणों के लक्षण कहिये। वे आपकी भक्ति किस प्रकार करते है, जिस भक्ति को करके वे आपके अनुग्रह से वाग्वाण स्वरूप हो जाते है।१३। कल्कि बोले—हे नारद ! अव्यक्त एवं वेद ही मेरे ईश्वर है। ब्राह्मण के मुख से यह वेद विभिन्न धर्मों का प्रकाश करते हैं।१४। ब्राह्मणो का धर्माचरण मेरे प्रति भक्ति रूप में प्रकट है। उनकी उसी भक्ति से संतुष्ट होकर मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ।१५।

ऊर्ध्वं तु त्रिवृतं सूत्रं सधवानिर्मितं शनैः ।
तन्तुत्रयमधोवृत्तं यज्ञसूत्रं विदुर्बुधाः ।१६।
त्रिगुणं तद्ग्रन्थियुक्तं वेदप्रवरसम्मितम् ।
शिरोधरात् नाभिमध्यात् पृष्ठार्द्धं परिमाणकम् ।१७।
यजुर्विदां नाभिमितं सामगानामयं विधिः ।
वामस्कन्धेन विधृतं यज्ञसूत्रं बलप्रदम् ।१८।
मृद्भस्मचन्दनाद्यं स्तु धारयेत् तिलकं द्विजः ।
भाले त्रिपुण्ड्रं कर्माङ्गं केशपर्यन्तमुज्ज्वलम् ।१९।
पुण्ड्रमंगुलिमानन्तु त्रिपुण्ड्रं तत् त्रिधा कृतम् ।
ब्रह्मविष्णु शिवावास दर्शनात् पापनाशनम् ।२०।

ज्ञानियों का कहना है कि ब्राह्मण की कन्या नारी के द्वारा सूत्र को त्रिवृत्त करे तथा उस त्रिवृत सूत्र को पुनः त्रिवृत करे यही यज्ञ सूत्र है ।१६। वेद प्रवर युक्त उस सूत्र में गाँठ लगावे । यजुर्वेदी ब्राह्मण को यही यज्ञोपवीत कण्ठ से नाभि तक तथा पृष्ठ के आधे भाग तक धारण करे । सामवेदी ब्राह्मण को नाभि तक धारण करना चाहिए । यज्ञोपवीत बांये कन्धे पर धारण करने से बल का देने वाला होता है ।१७।१८। द्विज को मृत्तिका भस्म और चन्दनादि का तिलक लगाना चाहिये । मस्तक पर देव पर्यन्त उज्ज्वल त्रिपुण्ड लगाना चाहिये ।१९। पुण्ड्र का प्रमाण एक अंगुल और त्रिपुण्ड इससे तिगुना होता है । त्रिपुण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव निवास करते हैं । यह दर्शन करते ही पाप का नाश करने में समर्थ है ।२०।

ब्राह्मणानां करे स्वर्गा वाचो वेदा करे हरः ।
गात्र तीर्थानि रागश्च नाडीषु प्रकृतिस्त्रिवृत् ।२१
गायित्री कण्ठकुहरा हृदय ब्रह्म सञ्ज्ञितम् ।
तेषा स्तनान्तरे धर्मं पृष्ठोऽधर्मः प्रकीर्तितः ।२२।
भू देवा ब्राह्मणा राजन् ! पूज्या वन्द्या सदुक्तिभिः ।
चतुराश्रम्यकुशला मम धर्मः प्रवर्त्तकाः ।२३।
बालाश्चापि ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा मम प्रियाः ।
तेषां वच पालयितुमवतारा कृता मया: ।२४।
महाभाग्य ब्राह्मणाना सर्वपापप्रणाशनम् ।
यन्निरीक्षद्धर भरथा मुच्यते सर्वतो भयात् ।२५।

ब्राह्मणों के हाथों में स्वर्ग और भगवान् विष्णु निवास करते हैं । वाणी में वेद देह में तीर्थ और राग तथा नाड़ी में त्रिगुणात्मिका प्रकृति है ।२१। ब्राह्मणों के कण्ठ में गायत्री, हृदय में ब्रह्म स्तनान्तर के मध्य में धर्म एवं पृष्ठ देश में अधर्म का निवास रहता है ।२२। हे राजन् ! चारों आश्रमों के धर्म को जानने वाले, मेरे धर्म के प्रवर्तक—

देवता ब्राह्मण श्रेष्ठजनों के द्वारा वन्दनीय हैं ।२३। ज्ञानवृद्ध और ब्राह्मणों के पालकों के प्रति मैं अत्यन्त प्रेम करता और उनके वचन पालनार्थ ही अवतार धारण करता हूँ ।२४। सभी पापों का नाशक, कलि काल के दोषों का हरण करने वाला ब्राह्मणों के महाभाग्य रूपी चरित्र को सुनने से सभी भय नष्ट हो जाते हैं।२५।

इति कल्किवचः श्रुत्वा कलिदोषविनाशनम् ।
प्रणम्य तं शुद्धमना. प्रययौ वैष्णवाग्रणीः ।२६।
गते राजनि मरुदाख्ये शिवदत्तशुको बुधः ।
चरित्वा कल्किपुरतः स्तुत्वा च पुरतः स्थितः ।२७।
स शुकं प्राह कल्किस्तु सस्मितं स्तुतिपाठकम् ।
स्वागतं भवता कस्माद् देशात् किं खादितं ततः ।२८।
शृणु नाथ ! कथां मह्यं कौतूहलसमन्विताम् ।
अहं गतः समुद्रस्य मध्ये सिंहलसंज्ञके ।२९।
यथा वृत्तं द्वीपगतं तच्चित्रं श्रवणप्रियम् ।
बृहद्रथस्य नृपतेः कन्यायाश्चरितामृतम् ।३०।

कलियुग के पापों को नष्ट करने वाले भगवान् कल्कि के वचन सुनकर पवित्र हृदय वैष्णव श्रेष्ठ राजा उन्हें प्रणाम करके चला गया ।२६। राजा के चले जाने पर शिव प्रदत्त ज्ञानी शुक भगवान के समक्ष आकर पीछे भगवान कल्कि के सम्मुख स्तुति करके खड़ा हुआ। उसके स्तोत्र-पाठ को सुन कर कल्कि भगवान बोले—तुम किस देश से आ रहे हो? तुमने वहाँ क्या भोजन किया? शुक बोला—हे नाथ! आप मुझसे कौतूहल वाणी सुनिये। मैं समुद्र के मध्य स्थित सिंहल द्वीप में गया था ।२९। उस द्वीप में घटित वृत्तान्त सुनने में बड़ा अद्भुत है। राजा बृहद्रथ की कन्या का चरित्र अमृत के समान श्रेष्ठ है ।३०।

कौमुद्यामिह जाताया जगतां पापनाशनम् ।
चरितं सिंहले द्वीपे चातुर्वर्ण्यजनावृते ।३१।

प्रासाद-हर्म्य-सदन-पुर-राजि-विराजिते ।
रत्न-स्फाटिक-कुड्यादि-स्वर्णताभिभूषिते ।३२।
स्त्रीभिरुत्तमवेशाभिः पद्मिनीभिः समावृते ।
सरोभिः सारसैर्हंसैः कूलजलाकुले ।।३३।
भृङ्गैः रङ्गप्रसङ्गाढ्यैः पद्मैः कह्लारकुन्दकैः ।
नानाम्बुजलताजाल-वनोपवन-मण्डिते ।३४।
देशे बृहद्रथो राजा महाबलपराक्रमः ।
तस्य पद्मावती कन्या धन्या रेजे यशस्विनी ।३५।

इस प्रकार से मानो कौमुदी के गर्भ से उत्पन्न किया है । सिंहल पवित्र प्रकाश से व्याप्त मालूम है । उस द्वीप में चारों वर्णों के मनुष्यों का निवास है ।३१। भवन, अटारी, गृह युक्त नगर में वहाँ का राजा सुशोभित है । उसका भवन रत्न, स्फटिक, मणि तथा स्वर्ण आदि की पच्चीकारी से विभूषित हो रहा है ।३२। वहाँ पद्मिनी प्रभृति स्त्रियाँ श्रेष्ठ वस्त्रादि से सुशोभित रहती हैं । सरोवरों में सारस और हंस आदि पक्षी किलोल करते हैं ।३३। यह द्वीप विभिन्न प्रकार की पद्मलताओं के जालों से सुशोभित है । उपवनों में कल्हार, कुन्द आदि के पुष्पों पर भौंरे गुंजार करते हैं ।३४। वहाँ का राजा बृहद्रथ महाबली और पराक्रमी है । उसकी पद्मावती नाम की कन्या भी अत्यन्त यशस्विनी है ।३५।

भुवने दुर्लभा लोकेऽप्रतिमा वरवर्णिनी ।
काम मोहकरी चारु चरिता चित्र निर्मिता ।३६।
शिव सेवापरा गौरी यथा पूज्या सुसम्मता ।
सखीभिः कन्यकाभिश्च जप ध्यान परायणा ।३७।
ज्ञात्वा तां च हरेर्लक्ष्मीं समुद्भूतां वराङ्गनाम् ।
हरः प्रादुरभूत्साक्षात्पार्वत्या सह हर्षितः ।३८।
सा समालोक्य वरदं शिव गौरी समन्वितम् ।
लज्जिताधोमुखी किञ्चिन्नोवाच पुरतः स्थिता ।३९।

हरस्तामाह सुभगे ! तव नारायणः पतिः ।
पाणिं ग्रहीष्यति मुदा नान्यो योग्यो नृपात्मजः ।४०।

श्रेष्ठ मुख वाली,सुन्दर चरित्रवाली, कामदेव को भी मोहित करने वाली इस कन्या की समानता संसार में कोई नहीं कर सकता ।३६। जिस प्रकार गिरिजा भगवान शंकर की सेवा परायण हैं, उसी प्रकार पूर्ण-नीशा पद्मावती अपनी सखियों के साथ जप ध्यान-परायण रहती हैं। ।३७। भगवान विष्णु की प्रिया लक्ष्मी जी को पद्मावती के रूप में उत्पन्न हुई जानकर पार्वती जी के साथ भगवान शंकर वहाँ पधारे ।३८। वरदाता शिवजी को पार्वती जी के सहित आये देख कर उस कन्या ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया और अवाक् खड़ी रही ।३९। तब शिवजी बोले—

हे सुभगे ! तुम्हारे पति भगवान नारायण ही तुम्हारा पाणि ग्रहण करेंगे। क्योंकि अन्य कोई राजकुमार तुम्हारे योग्य नहीं है ।४०।

कामभावेन भुवने ये त्वां पश्यन्ति मानवाः ।
तेनैव वयसा नार्यो भविष्यन्त्यपि तत्क्षणात् ।४१।
देवासुरास्तथा नागा गन्धर्वाश्चारणादयः ।
त्वया रन्तुं तथाकाले भविष्यन्ति किल स्त्रियः ।४२।
विना नारायणं देवं त्वत्पाणिग्रहणादिकम् ।
गृहं यास्यन्ति तदस्त्वं वा भागवस्तत्कुलत्रयम् ।४३।
मा क्षोभयं हरेः पत्नि कमले विमलं कुरु ।
इति दत्त्वा वरं सोऽवस्तत्रैवान्तर्दधे हरः ।४४।
हरवरमिति निशम्य पद्मा समुचितमात्मनोरथ प्रकाशम् ।
विकसितवदना प्रणम्य सोम निजजन कालयमाविवेश रामा

मृत्युलोक के वासी जो मनुष्य तुम्हारी ओर काम भाव से दृष्टि पात करेंगे, वे तत्काल अपनी आयु के अनुकूल स्त्रीत्व भाव को प्राप्त हो जायेंगे ।४१। देवता, दैत्य, नाग, गन्धर्व चारण आदि में भी जो कोई तुम पर कुदृष्टि डालेंगे, वे भी स्त्रीत्व को उसी समय प्राप्त होंगे ।४२।

भगवान नारायण के अतिरिक्त जो कोई भी तुम्हारा पाणिग्रहण करना चाहेगा, वह ऐसी ही दशा को प्राप्त होगा। अब तुम तपस्या को छोड़कर भोग के योग्य अपना रूप बनाओ और अपने घर को प्रस्थान करो ।४३। हे कमले! तुम हरि की पत्नी हो, इस प्रकार का क्षोभ त्याग कर मन को स्वस्थ करो। इस प्रकार वर प्रदान करके शिवजी अन्तर्धान होगये ।४४। भगवान शंकर से मनोवाञ्छित वरदान प्राप्त करके प्रमुदित मुख हुई पद्मा शिवजी को प्रणाम करके अपने पितृ-गृह को गई ।४५।

—❀—

पंचम अध्याय

गते बहुतिथे काले पद्मां वीक्ष्य बृहद्रथः ।
निरूढ यौवनां पुत्रीं विस्मितः पापशङ्कया ।१।
कौमुदीं प्राह महिषीं पद्मोद्वाहेऽत्र कं नृपम् ।
वरयिष्यामि सुभगे! कुलशील समन्वितम् ।२।
सा तमाह पतिं देवी शिवेन प्रतिभाषितम् ।
विष्णुरस्याः पतिरिति भविष्यति न संशय ।३।
इति तस्यावचः श्रुत्वा राजा प्राह यशोमतीम् ।
विष्णुः सर्व गुहावासः पाणिमस्या ग्रहीष्यति ।४।
न मे भाग्योदयः कश्चित् येन जामातरं हरिम् ।
वरयिष्यामि कन्यार्थे वेदवत्या मुनिर्यथा ।५।
इमां स्वयं वरां पद्मां पद्मामिव महोदधेः ।
मथनेऽसुरदेवानां यथा विष्णुर्ग्रहीष्यति ।६।

गुरुदेव जी ने कहा—बहुत समय व्यतीत होने पर जब पुत्री को

राजा बृहद्रथ ने उसे यौवनावस्था के लक्षणों से युक्त देखा तब वह पाप की शंका से चिन्ता करने लगा ।१। तब राजा ने अपनी रानी कौमुदी के प्रति कहा कि हे सुभगे ! तुम मुझे परामर्श दो कि अपनी प्रिय पुत्री के विवाहार्थ किस शीलगुण सम्पन्न एवं श्रेष्ठ कुलोत्पन्न राजा को आमन्त्रित किया जाय ? ।२। यह सुन कर रानी कौमुदी ने राजा को भगवान् शंकर के वचन स्मरण कराते हुए कहा कि इसके पति भगवान् श्री हरि ही होंगे, इसमें संशय नहीं है ।३। उसके यह वचन सुनकर राजा बृहद्रथ ने रानी से पूछा कि हे प्रिये ! यह तो बताओ कि भगवान् विष्णु कितने समय में इसका पाणिग्रहण कर लेंगे ।४। हे प्रिये ! अभी तो हमारा ऐसा भाग्योदय नहीं हुआ जान पड़ता कि जिससे प्रभाव से वेदवती के समान मैं भी स्वयंवर में भगवान् श्री हरि को अपने जामाता के रूप में प्राप्त कर सकूँ ।५। देवताओं और दैत्यों के द्वारा मथन किये जाते समुद्र में उत्पन्न हुई पद्मालया पद्मा के समान मेरी इस पद्मा को स्वयंवर में भगवान् श्री हरि वरण करलें ।६।

इति भूपगणान्भूप समाहूय पुरस्कृतान् ।
गुणशीलवयोरूप विद्याद्रविण संवृतान् ।७।
स्वयंवरार्थं पद्मायाः सिंहले बहुमङ्गले ।
विचार्य कारयामास स्थानं भूपनिवेशनम् ।८।
तत्रायाता नृपाः सर्वे विवाह कृत निश्चयाः ।
निज सैन्यैः परिवृताः स्वर्णरत्न विभूषिताः ।९।
रथागजाश्ववरान्समारूढा महाबलाः ।
श्वेतच्छत्रकृतच्छायाः श्वेतचामर वीजिताः ।१०।
शस्त्रास्त्रतेजसा दीप्ता देवाः सेन्द्राइवामरान् ।
रुचिराश्वः सुकर्मा च मदिराक्षो दृढाशुगः ।११।
कृष्णसारः पारदश्च जीमूतः क्रूरमर्दनः ।
काशः कुशाम्बुर्वसुमान् कङ्कः क्रथन सञ्जयौ ।१२।
गुरुमित्रः प्रमाथी च विजृम्भ सञ्जयोऽक्षमः ।

एते चान्ये च बहवः समायाता महाबलाः ।१३।

ऐसा सोचते हुए राजा बृहद्रथ ने, अपनी पद्मा के स्वयंवर के निमित्त गुणवान, शीलवान, रूपवान, विज्ञ एवं महान् ऐश्वर्य वाले युवावस्था से परिपूर्ण राजाओं को सम्मान सहित आमंत्रित किया ।७। इस प्रकार उस सिंहल देश में पद्मा के स्वयंवर का उत्सव मनाया जाने लगा बहुत प्रकार के मंगल होने लगे और राजाओं के निवास आदि के लिए स्थान सज्जित किये जाने लगे ।८। विवाह की इच्छा से सुवर्ण, मणि-रत्नादि से विभूषित हुए राजागण देश विदेश से अपनी सेनाओं के सहित वहाँ आने लगे ।९। वे सभी बलवान् राजागण रथ, अश्व, गज आदि विविध वाहनों पर सवार होकर वहाँ आये । उनके ऊपर श्वेत छत्र लगाये और चमर डुलाये जाते थे । १० । उस समय शस्त्रादि से देदीप्यमान वे सब राजागण ऐसे शोभा पाने लगे जैसे देवताओं के समाज में इन्द्र सुशोभित होते हैं । रुचिराश्व, सुकर्मा, मदिराक्ष, दृढाशुग, कृष्णसार, पारद, जीमूत क्रूरमर्दन, काश, कुशाम्बु, वसुमान, कंक, क्रथन, सञ्जय, गुरुमित्र, प्रमाथी, विजृम्भ सृञ्जय, अक्षम आदि अनेक महापराक्रमी नरेशगण वहाँ एकत्र हो गये ।११-१३।

विविशुस्ते रङ्गगता स्वस्वस्थानेषु पूजिताः ।
वाद्यताण्डवसंहृष्टाश्चित्रमाल्याम्बराम्बराः ।१४।
नानाभोगसमुद्दिग्ना कामरामा रतिप्रदाः ।
नानाभोगवत् सिंहलेशः स्वां कन्यां वरवर्णिनीम् ।१५।
गौरी चन्द्राननां श्यामां तारहारविभूषिताम् ।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च सर्वाङ्गालङ्कृतां शुभाम् ।१६।
किं माया मोहजननी किं वा कामप्रिया भुवि ।
स्वलावण्यसम्पन्ना न चान्यामिह दृष्टवान ।१७।
स्वर्गे दिवो वा पाताले प्यहं सर्वजगो यदि ।
पद्महासोमाणशोणी सखीभिः परिवारिताम् ।१८।

ये राजागण विविध प्रकार के वस्त्राभूषण, माला आदि से विभूषित होकर रंगभूमि में आकर सादर सम्मानित होते हुए सुखपूर्वक अपने-२ अपने स्थान पर बैठ गये।१४। विविध प्रकार के भोगों और ऐश्वर्य से सम्पन्न, रमणीय, चरित्र वाले एवं सब को प्रसन्न करने के स्वभाव वाले राजाओं को देखकर सिंहमेश वृद्धय ने अपनी वरवर्णिनी कन्या को स्वयंवर में बुलाया।१५। गोरी, चन्द्रानना, श्यामा मणि-मोती रत्नों आदि से सब प्रकार विभूषित, अत्यन्त सुन्दर हार को धारण किये हुए वह पद्मावती मोहमयी माया अथवा कामदेव की साक्षात् पत्नी ही अवतरित हुई प्रतीत होने लगी। मैं स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल सभी लोकों में ही गमन करता हूँ। परन्तु ऐसी रूप लावण्य वाली कोई अन्य कन्या मैंने कहीं भी नहीं देखी। उस कन्या के पीछे दासियाँ चल रही थी तथा उसके चारों ओर सखियाँ थी।१६-१८।

दौवारिकैर्वेत्रहस्तै शासितान्त: पुराद्बहि: ।
पुरोवन्दिगणाकीर्णा प्रापयामास वा शनैः ।१६।
नूपुरं किङ्किणीमिश्र क्वणन्ती जनमोहिनीम् ।
स्वागतानां नृपाणाञ्च कुल शील गुणान्बहून ।२०।
शृण्वन्ती हंसगमना रत्नमालाकरग्रहा ।
रुधिरापाङ्गभङ्गेन प्रेक्षन्ती लोलकुण्डला ।२१।
नृत्यकुन्तलशापान गण्ड मण्डल मण्डिता ।
किञ्चित्स्मेरोल्लसद्वक्त्रदन्तद्योतदीपिता ।२२।
वेदीमध्यारुणा क्षौमवसना कोकिलस्वना ।
रूप लावण्य पण्येन क्रतुकामा जगत्रयम् ।२३।
समागतां तां प्रसमीक्ष्य भूपाः समोहिनो काम विमूढ चित्ताः ।
पेतुः क्षितौ विस्मृतवस्त्रशस्त्राः रथाश्वमत्तद्विपवाहनास्ते ।२४।

नगर के बाहर दौवारिकगण हाथों में बेंत लिए हुए अन्तःपुर के शासन में संलग्न थे। सभामण्डप के अगले भाग में वंदीगण खड़े थे। उस रंग भूमि में राजकुमारी पद्मा मदमति से प्रविष्ट हुई।१६। नूपुर और

किङ्कणी से लोकों को मोहने वाली झंकार करती हुई और प्रमत्त नरेशों के कुल, गुण, शील आदि का वर्णन श्रवण करती हुई वह हंसगति वाली राजकन्या हाथ में रत्नमाला लिए हुए अपने चरण प्रणों से शोभा करने वाली हुई और कटाक्षपूर्वक सब को देखती हुई बढ़ती जा रही थी। वह हिलते हुए कुण्डल वाली, केशकुन्तल की चंचलता से युक्त, सुन्दर ग्रीवा वाली, विकसित मुख से मंद मुस्कराती हुई, जिसके दाँतों की पंक्तियाँ चमक रही थी। काम रंग के रेशमी वस्त्र धारण किये हुए, कोकिला जैसे मधुर स्वर वाली जिसके रूप लावण्य से तीनों लोक मोहित हो रहे थे, उस मनमोहिनी सुकुमारी राज कन्या को रंगभूमि में घूमती हुई देख-कर कामदेव के वशीभूत हुए राजागण ऐसे विह्वल चित्त होगये कि उनके शस्त्रास्त्र और वस्त्रादि सभी गुप-चुप कर पृथिवी पर गिरने लगे।१६ २४।

तस्याः स्मरक्षोभ निरीक्षणेन स्त्रियो बभूवुः कमनीयरूपाः ।
बृहन्नितम्बस्तनभारनम्रा सुमध्यमास्तत्स्मृतिजातरूपा ।२५।
विलासहास व्यसनातिविज्ञा कान्ताननः शोणसरोजनेत्राः ।
स्त्रीरूपमात्मानमवेक्ष्य भूपास्तामन्वगच्छन्निजधर्मबुद्ध्या ।२६।
अहं वदस्य परिवर्जितात्मा पद्माविवाहोत्सवदर्शनाकुलः ।
तस्याः वचोऽस्तु हृदि दुःखितायाः शोनुः स्थित स्त्रीत्वमितेषु तेषु ।
जाह्नीहि मत्के कपम्याविलाप भूत विचित्र जगतामधीश ।
गतं विवाहोत्सवमङ्गले सा शिव शरण्यं हृदये निधाय ।२८।
तान्दृष्ट्वा नृपती गजाश्वरथिभिस्त्यक्तान्निरीक्ष्य गतान् ।
स्त्रीभावेन समन्वितानुगुणानन्दद्भुतो विलोक्यान्तिके ।
दीना स्वजनभिभूषणा विलासिनी पादाङ्गुले भाविनी ॥
ईशं स्तु निजनाथमीदरयवमन्यष्य हरिसाम्मरत् ।२९।

काम से विमोहित हुए उन राजाओं ने जैसेही उस राजकन्या को वासनामय नत्रों से देखा, वैसे ही वे जिस रूप पर आसक्ति हुए थे, वैसे

षष्ठ अध्याय

ततः सा विस्मितमुखी पद्मा निजजनैर्वृता ।
हरिं पतिं चिन्तयन्ती प्रोवाच विमलां स्थिताम् ।।१।।
विमले किं कृतं धात्रा ललाटे लिखनं मम ।
दर्शनादपि लोकानां पुंसां स्त्रीभावकारकम् ।२।
ममापि मन्दभाग्यया पापिन्या शिवसेवनम् ।
विफलत्व मनुप्राप्त बीजमुप्तं यथोषरे ।३।
हरिर्लक्ष्मीपतिः सर्वजगतामधिप प्रभुः ।
मत्कृतोऽप्यभिलाषं किं करिष्यति जगत्पतिः ।४।
यदि शम्भोर्वचो मिथ्या यदि विष्णुर्न मां स्मरेत् ।
तदाहमनले देहं त्यक्ष्यामि हरिभाविता ।५।

शुकदेव जी बोले—तदनन्तर विस्मित मुख वाली पद्मा अपनी सहेलियों के मध्य स्थित हुई, भगवान विष्णु को पतिरूप मे विचार करती हुई, अपने निकट स्थित विमला नाम की सहेली से कहने लगी ।१। पद्मा बोली—हे विमले ! क्या ब्रह्मा ने मेरे भाग्य मे यही लिख दिया है कि जो पुरुष मुझे देखे, वह तुरन्त स्त्रीत्व को प्राप्त हो जाय ।२। हे सखी ! जैसे मरुभूमि मे बोया गया बीज निष्फल होता है, वैसे ही मुझ अभागिनी एवं पापिनी द्वारा भगवान् शंकर की, की गई उपासना व्यर्थ होगई ।३। भगवान् रमापति विष्णु सम्पूर्ण विश्व के अधीश्वर और प्रभु है. मैं उन्हे पति रूप मे प्राप्त करने की कामना करूं तो क्या वे मुझे स्वीकार करेंगे ? ।४। यदि भगवान शम्भु का वचन मिथ्या हो गया और भगवान विष्णु ने मेरी कामना नहीं की तो मैं उन्हीं भगवान् श्री हरि का ध्यान करती हुई अपने देह को अग्नि कुण्ड में डाल कर भस्म कर दूंगी ।५।

ततः समुद्रपारेण स्नात्वा पीत्वामृतं पयः ।
बीजपूरफलाहारो ययौ राजजिनिवेशनम् ।१४।
तत्र कन्यापुरं गत्वा वृक्षे नागेश्वरे वसन् ।
पद्मामालोक्य तां प्राह शुको मानुष भाषया ।१५।

अवश्य ही पद्मा मेरी पत्नी और मैं उसका पति हूँ। विधाता ने ही यह संयोग नियत किया है और यह कार्य तुम्हारी सम्पन्नता से ही सम्पन्न होना है। ११। तुम सर्वज्ञ हो, नियम और काल के भी ज्ञाता हो। तुम अपने वचनामृत से समझा कर और मेरे द्वारा ग्रहण किये जाने का आश्वासन देकर वहाँ लौट जाओ। ।१२। कल्किजी का ऐसा आदेश पाकर मुदित हुए शुक ने उन्हें प्रणाम किया और शीघ्रतापूर्वक सिंहल-देश को प्रस्थान किया ।१३। मार्ग में, समुद्र के पार जाकर शुक ने स्नान करके उस अमृतोपम जल का पान और बिजौरे के फलको भक्षण किया और फिर राजभवन में प्रविष्ट होगया ।१४। वह अन्तःपुर में पहुँच कर राजकन्या के निवास स्थान पर जाकर नागकेशर के एक वृक्ष पर चढ़ गया और पद्मा को देख कर मनुष्यों की भाषा में उससे बोला ।१५।

कुशलं ते वरारोहे ! रूप यौवन शालिनी ।
त्वां लोलनयनां मन्ये लक्ष्मी रूपमिवापराम् ।१६।
पद्मानना पद्मगन्धा पद्मनेत्रा कराम्बुजे ।
कमलं कालयन्ती त्वां लक्षयामि परां श्रियम् ।१७।
किं धात्रा सर्वजगतां रूपलावण्यसम्पदाम् ।
निर्मितासि वरारोहे ! जीवानां मोहकारिणी ! ।१८।
इति भाषितमाकर्ण्य कीरस्यामितमद्भुतम् ।
हसन्ती प्राह सा देवी त पद्मा पद्ममालिनी ।१९।
कस्त्वं कस्मादागतोऽसि कथं मां शुकरूपधृक् ।
देवो वा दानवो वा त्वमागतोऽसि दयापरः ।२०।

के तटस्थ तथा भोग सुख से परे एवं मनस्विनी के इच्छाएं ही यहाँ पर पहुँचा है।२२। तुमने हावभाव, सखियों का संग और कामकला को त्याग रखा है। तुमको इस स्थिति में देखकर दीन-हृदय हुआ मैं तुम्हारी कोकिल जैसी मधुर वाणी में तुम्हारे सन्तप्त रहने का कारण जानना चाहता हूँ।२३। तुम्हारे, ओष्ठ और जिह्वा के अग्र भाग से निसृत प्रधान ध्वनियाँ जिसके कानों को सुनाई पड़ जाय उसकी मनस्थिति का प्रभाव कहाँ तक कहा जा सकता है?।२४। तुम्हारे सघन मिलन के सुन्दरी की कमनीयता भी क्या है? तथा चन्द्रकान्ति भी क्या वस्तु है? जो जीवन जिस वस्तु की पीयूष का वर्णन करते हैं, वह आनन्द भी तुम्हारी क्या समता करेगा?।२५।

तिलकालकसालिनं लोलकुण्डलमण्डितम् ।२६।
लोलेक्षणोल्लसद्वक्त्रेन्दु पश्यताम् न पुनर्भवः ।२७।
बृहद्रथसुते । स्वाधि वद भामिनि यत्कृते ।
तव क्षीणामिव तनूं लक्षयामि रुजं विना ।
चन्द्रप्रतिमा यद्वत् पांसुभिर्मलिनीकृता ।२८।
किं रूपेण कुलेनापि धनेनाभिजनेन वा ।
सर्वं निष्फलतामेति यस्यदेवमदक्षिणम् ।।२९।।
श्रृणु कीर समाख्यान यदि वा विदितं तव ।
बाल्य-पौगण्ड कैशोरे हरसेवां करोम्यहम् ।।३०।।

तुम्हारे तिलक, अलक से युक्त चंचल कुण्डलों से मण्डित तथा चंचल नेत्रों से सुशोभित सुन्दर मुख का दर्शन करने वाले को पुनर्जन्म धारण नहीं करना होता।२६-२७। हे बृहद्रथसुते! अपने मानसिक दुःख का कारण मुझे बताओ। हे भामिनि! तुम्हारी देह बिना रोग के ही, रुग्ण से क्षीण दिखाई दे रही है। जैसे मैल के कारण चन्द्र की प्रतिमा मैली हो जाती है, वैसे ही तुम्हारा देह भी मलीन हो गया है।२८। पद्मा ने कहा—धन अथवा सघन कुल में उत्पन्न होने से ही

सदा प्रयोजन सिद्ध होता है, अर्थात् दैव की प्रतिकूलता हो तो यह सभी निष्फल है ।२६। हे वीर ! यदि तुम्हें हमारा वृत्तान्त ज्ञात न हो तो सुनो—मैंने अपनी बाल और किशोर अवस्था में भगवान शंकर की आराधना की थी ।३०।

तेन पूजाविधानेन तुष्टो भूत्वा महेश्वरः ।
वर वरय पत्रि ! त्वमित्याह प्रियया सह ॥३१॥
तत्रश्चैवोत्सुकोभद्रे स्थिता मा वीक्ष्य शङ्कर. ।
प्राह ते भविता स्वामी हरिर्नारायण प्रभु ॥३२॥
देवो वा दानवो वान्यो गन्धर्वो वा तवेक्षणात् ।
कामेन मनसा नारी भविष्यति न संशय ॥३३॥
इति दत्वा वर सोम प्राह विष्णोश्च यथा ।
तथाह ते प्रवक्ष्यामि समाहितमना शृणु ।३४।
एता कन्या नृपा पूर्वमाहूता ये स्वयम्वरे ।
पित्रा धर्मार्थिना दृष्ट्वा रम्या सा यौवनान्विताम् ।३५।

मेरे द्वारा किए गये इस पूजन से प्रसन्न हुए शिवजी ने पार्वतीजी के सहित प्रकट होकर मुझसे कहा कि हे पुत्रि ! वर माँगो ।३१। फिर मुझे श्रद्धा पूर्वक सिर झुकाये देख कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे पति भगवान् नारायण होंगे ।३२। देवता, दानव गन्धर्व अथवा जो कोई भी हो, यदि तुम्हें काम-भाव से देखेगा तो तुरन्त स्त्री रूप हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है ।३३। यह वर देने के पश्चात् शिवजी ने भगवान् विष्णु को जो पूजन विधि बताई थी, वह कहती हूँ, समाहित चित्त से सुनो।३४। यह जितनी भी स्त्रियाँ हैं, सभी पहिले राजा थे। मेरे पिता ने मेरी यौवनावस्था देख कर धर्म की रक्षा के निमित्त इन सब राजाओं को मेरे स्वयम्वर में बुलाया था ।३५।

स्वागमनास्ते सुसम्प्रीता विवाहकृतनिश्चय ।
सुस्नातो गुणवन्तश्चरूपद्रविणसम्मता ।३६।

स्वयंवरगता मां ते विलोक्य रुचिरप्रभाम् ।
रत्नमालाश्रितकरा निपेतुः काममोहिताः ।३७।
तत उत्थाय सम्भ्रान्ताः सम्प्रेक्ष्य स्त्रीत्वमात्मनः ।
स्तनभारनतस्कन्धेन गुरुणा परिणामिताः ।३८।
ह्रिया भिया च सम्पूर्णा मित्राणामतिदुःखदम् ।
स्त्रीभावं मनसा ध्यात्वा मामेवानुगता शुक ।
परिचर्या हरन्ता सख्य सर्वगुणान्विताः ।
मया सार्धं तपोध्यानं पूजां कुर्वन्ति सम्मताः ॥४०॥
तदुदितमिति मनिशम्य कीरः श्रवणसुखं निजमानसप्रकाशम् ।
समुचितवचनैःप्रतोष्य पद्मां पुरुहूरयजनं पुनः प्रचष्टे ॥४१॥

यह सभी युवावस्था वाले, रूप, गुण एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न थे। यह सभी मेरे साथ विवाह करने की इच्छा से आकर स्वयंवर-स्थल में सुखपूर्वक बैठ गये।३६। मुझ सुन्दर प्रभा वाली को हाथ में रत्नमाला लेकर स्वयंवर-स्थल में घूमती देखकर यह सभी काम मोहित राजागण पृथिवी पर गिर गये।३७। फिर जब सचेत होकर उठे तो अपने को स्त्रीत्व के सभी लक्षणों से युक्त अर्थात् स्त्री रूप में पाया।३८। तब तो यह अपने को स्त्री हुआ जान कर बड़े दुःखी हुए और बन्धु मित्र आदि की लज्जा छोड़ कर मेरे ही साथ चल पड़े।३९। अब यह सर्वगुण सम्पन्न नारी रूपी राजागण मेरी सखी होकर मेरे साथही भगवान् विष्णु का तप, ध्यान एवं पूजन करते हैं।४०। अपनी इच्छा के अनुकूल, सुनने में सुखदायक इन बातों को सुन कर शुक ने समुचित वाणी से पद्मा को प्रसन्न किया और फिर भगवान् विष्णु के पूजन के प्रसङ्ग में प्रश्न किया।४१।

—❦—

कृत्वा यथोक्तकर्माणि पूर्वाह्णे स्नानकृच्छुचिः ।
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च स्पृष्ट्वापः स्वासने वसेत् ।६।
प्राचीमुखः संयतात्मा भाङ्गन्यासं प्रकल्पयेत् ।
भूतशुद्धिं ततोऽन्तस्य स्थापनं विधिवच्चरेत् ।।७।।
ततः केशवकृत्यादिन्यासेन तन्मयो भवेत् ।
आत्मानं तन्मयं ध्यात्वा हृदिस्थं स्थापने न्यसेत् ।।८।।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ।
यथोपचारैः संपूज्य मूलमन्त्रेण देशिकः ।।९।।
ध्यायेत्पादादिकेशान्तं हृदयाम्बुजमध्यगम् ।
प्रसन्नवदनं देवं भक्ताभीष्टफलप्रदम् ।।१०

प्रातःकाल स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर हाथ-पावों का प्रक्षालन कर जल स्पर्श करके अपने आसन पर बैठ जाय ।६। फिर संयतात्मा होकर पूर्वाभिमुख हो और अङ्गन्यास भूतशुद्धि तथा विधिवत् स्थापन करे ।७। फिर केशव कृत्यादि न्यास युक्त होकर हृदय में विष्णु का ध्यान करता हुआ, उन्हें कल्पित आसन पर प्रतिष्ठित करे ।८। फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय जल, वस्त्राभूषण आदि भेंट करे और यथोपचार देशिक मूलमन्त्र से पूजन करे ।९। तदुपरान्त भक्तों को वाञ्छित फलदायक, हृदयाम्बुज में रमण करने वाले, प्रसन्न मुख भगवान विष्णु का चरणकमलों से शिर पर्यंत ध्यान करे ।१०।

यानेन सिद्धिविबुधैः परिभाव्यमानं रुक्म्याम्य
तुलसिकाञ्चितभक्तभृङ्गम् । प्रोत्तुङ्गरक्तनखराङ्गु-
लिपत्रचित्र गङ्गारसं हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ।।११
गुल्फस्मारणमयपद्मनूपुरराजहंसविभ्रमचतुरपुर्युत
पदपद्मवृन्तम् । पीताम्बराञ्चनविलासलयलसत्पना-
कं स्वराग्निवक्षरत्नवच्च हरेः स्मरामि ।।१२
मध्ये सुवर्णमननील रश्मिवृन्दे धाभास्पदारुण-
मणिदुर्पणनिचयमये । सारस्तपादतलमन्दनसो-

स्मभाने लोवेक्षणोत्सवकरे च हरे स्मरामि ।१३
ते जानुनी मरकतेर्भवमूलसङ्गाङ्गोत्सवावृतत-
द्विवसने विचित्रे । चञ्चत्पतत्रमुखनिर्गतसामगीत
विस्तारितात्मयशसी च हरे स्मरामि ।१४

विष्णो कटिं विधिकृतान्तमनोजभूमि जीवाण्ड-
कोशगणसङ्गदुकूलमध्याम् । नानागुणप्रकृतिपी-
तविचित्रवस्त्रांध्यायेन्निबद्धवसनां खगपृष्ठसंस्थाम् ।१५

ध्यान के पश्चात् 'ॐ नमो नारायणाय स्वाहा' मन्त्र और इस मन्त्र का उच्चारण करे—योग के द्वारा सिद्ध हुए आभिजन जिनके ध्यान में मग्न रहते हैं, जो भक्तों के आश्रय हैं, जिनके चरणारविन्द्र सभी तुलसी का सदा सेवन करते हैं, जिनके लोहित वर्ण कमलोपम नखयुक्त अंगुलियां हैं, दर्शनीय दिखाई रहा है, उन चरणों वाले नारायण की शरण लेता हूँ ।११। जिनके चरणों में विचित्र मणिमय युक्त नूपुर हंस के समान ध्वनि करते हैं, जिन चरणों में पीताम्बर का छोर लटकी हुई लगता है, जिन चरणों में स्वर्णिम विचित्र नामक कड़ा शोभित है, उन कमल के समान चरणारविन्दों का मैं स्मरण करता हूँ ।१२। गरुड़ के कण्ठ भूषण का जोसकर न मणि की प्रभा से समुज्ज्वल जिन जंघाओं के मध्य में गरुड की पद्मराग-मणि के समान लाल और सुशोभित है, जिन जंघाओं के नीचे नाभि पर्यन्त स्थिर है उस विश्वमोहन के पराक्रम रूप भगवान की जंघाओं का मैं स्मरण करता हूँ ।१३। सामगान के द्वारा गरुड़ जिनका यशोगान करते हैं उत्सव के अवसर पर जिन विचित्र रंगों से युक्त वस्त्रों की विद्युत प्रभा से विभूषित भगवान की उन जंघाओं [redacted] स्मरण करता हूँ ।१४। ब्रह्मा, काल और कन्दर्प की आश्रयभूता जो कटि है तथा जो कटि दुकूल से सुशोभित रहती है, गरुड की पीठ पर स्थित विष्णु की उस कटि का मैं ध्यान करता हूँ ।१५।

शातोदरं भगवतस्त्रिवलिप्रकाशमावर्त्तनाभि-
विकसद्विधिजन्मपद्मम् । नाडीनदीगणरसोत्थ-
सितान्त्रसिन्धु ध्यायेऽण्डकोषनिलयं तनुलोमरेखम् ।१६
वक्षः पयोधितनयाकुचकुङ्कुमेन हारेण कौस्तु-
भमणिप्रभया विभातम् । श्रीवत्सलक्ष्म हरि च-
न्दनजप्रसूनमालोचितं भगवतः सुभगं स्मरामि ।१७

जो उदर त्रिवली से सुशोभित है, जिस उदर के नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए है, जिस उदर मे नाडी रूपी सरिताओं के रस मे आंत्र रूप समुद्र तरंगित हो रहा है, ब्रह्माण्ड के आश्रय रूप जिस उदर मे लोम रेखाएं सुशोभित है, भगवान् के उस उदर का मैं स्मरण करता हूं ।१६। जिस हृदय मे समुद्रजा लक्ष्मी के वक्षस्थल की केसर लगी हुई है, जो हृदय कण्ठहार और कौस्तुभ मणि से दमक रहा है, जो हृदय श्रीवत्स के चिह्न से युक्त है और जिस पर हरिचन्दन फूलों की माला विभूषित है उस प्रभु-हृदय का मैं स्मरण करता हूं ।१७।

बाहू सुवेशसदनौ वलयाङ्गदादिशोभास्पदौ दुरित
दैत्यविनाशदक्षौ । तौ दक्षिणौ भगवतश्च गदासु-
नाभतेजोजितौ सुललितौ मनसा स्मरामि ।१८
वामौ भुजौ मुररिपोर्धृतपद्मशङ्खौ श्यामौ करीन्द्रकर
वन्मणिभूषणाढ्यौ । रक्ताङ्गुलिप्रचयचुम्बितजानु
मध्यौ पद्मालयाप्रियकरौ रुचिरौ स्मरामि ।१९
कण्ठं मृणालममलं मुखपङ्कजस्य लेखात्रयेणवन
मालिकया निवीतम् । किंवा मुक्तिवशमन्त्रकसत्
फलस्य वृन्तं चिरं भगवतः सुभगं स्मरामि ।२०

जिन श्रेष्ठ भुजाओं मे वलय अंगद आदि सुन्दर आभूषण सुशोभित है, जो भुजाएं समस्त दानवों का संहार कर चुकी है, जिन भुजाओं की प्रभा के समक्ष गदा और चक्र आदि शस्त्रों का तेज भी नगण्य है, मैं

लक्ष्मीजी के हृदय को प्रफुल्लित करने वाले हैं, हरि के उन भृकुटि-पत्रों का मैं स्मरण करता हूँ ।२२। जिनमें मकराकार कुण्डल शोभा पाते हुए दिशाओं और आकाशको प्रकाशित करते हैं, जो अग्रभाग में चपल अलकों के स्पर्श से कुछ संकुचित हुए प्रतीत होते हैं, जो मणिमय किरीट के छोर पर स्थित हैं, भगवान के उन कानों का मैं स्मरण करता हूँ ।२३। जिस ललाट में सुगंधित मृगमद गोरोचन तिलक नेत्रों में मैत्री भाव प्रकट करता है जो ललाट रूपी धाम मणिमय मुकुट से दीप्तिमान है, उस नेत्रों को आनन्द देने वाले हरि के ललाट का मैं स्मरण करता हूँ ।२४।

श्रीवासुदेवचिकुरं कुटिलं निबद्धम् नानासुगन्धिकुसुमैः
स्वजनादरेण । दीर्घं रमाहृदयगाशमनं धुनन्तं
ध्यायेऽम्बुवाहरुचिरं हृदयाब्जमध्ये ।२५
मेघाकारं सोमसूर्यप्रकाशं सुभ्रून्नसं चक्रचापैक
मानम् । लोकातीतं पुण्डरीकायताक्षं विद्युच्चैलं
चाश्रयेऽहं त्वपूर्वम् ।२६।
दीनं हीनं सेवया दैवगत्या पापैस्तापैः पूरितं मे
शरीरम् । लोभाक्रान्तं शोकमोहाधिविद्धं कृपा
दृष्ट्या पाहि मां वासुदेव ।२७

जिन कुटिल केशों में सुगंधित पुष्प गूँथ कर स्वजनों ने वेणी बनाई तथा जिन चपल केशों के दर्शन से लक्ष्मीजी का मन शान्त होता है, उन नील मेघ जैसे दीर्घ एवं मनोहर केशों का मैं हृदय में ध्यान करता हूँ ।२५। मेघवर्ण वाले चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशित, इन्द्र-धनुष के समान भौंह वाले, विद्युत जैसे समुज्ज्वल वस्त्र धारण करने वाले, लोका-तीत, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु की मैं शरण लेता हूँ ।२६। मैं अत्यन्त दीन, वेदोक्त सेवा से हीन और पाप-ताप युक्त देह वाला हूँ । मैं लोभ, शोक, मोह और मानसिक व्यथा से व्यथित हूँ । हे वासुदेव ! अपनी कृपा दृष्टि द्वारा मेरी रक्षा कीजिये ।२७।

ये भगवाद्या ध्यायमानां मनोज्ञां व्यक्तिं विष्णोः

षोडशश्लोकपुष्पैः । स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा विधिज्ञाः
शुद्धा मुक्ता ब्रह्मसौख्यं प्रयान्ति ।२८।
पद्मोदितमिदं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ।२९।
पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेंऽहसोऽखिलात्
धर्मार्थकाममोक्षाणां परत्रेह फलप्रदम् ।३०।

इस विधि को जानकर जो मनुष्य भक्ति भाव से भगवान् विष्णु के इस रूप का ध्यान करके षोडश श्लोक रूपी पुष्पों से स्तुति और नमन करके पूजा करते हैं, वह शुद्ध और मुक्त होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त होते हैं ।२८। शिवोक्त यह स्तोत्र, जिसे पद्मा ने कहा है, अत्यन्त पुण्यमय है तथा धन, यश, आयुष्य, स्वर्ग एवं मंगल का देने वाला है ।२९। यह स्तोत्र इहलोक और परलोक में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चारों पदार्थों का दाता है। इसका पाठ करने वाले महाभाग पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।

—:o:—

द्वितीयांश—

प्रथम अध्याय

इति पद्मावच. श्रुत्वा कोरो धीर सता मतः
कलिकदूत सखोमध्ये स्थिता पद्मामयाब्रवीत् ।१।
वद पद्मे साङ्गपूजा हरेरद्भुतकर्मणः ।
यामास्थाय विधानेन चरामि भुवनत्रयम् ।२।
एव पादादि केशान्तं ध्यात्वा त जगदीश्वरम् ।
पूर्णिमा देशिको मूल मन्त्र जपति मन्त्रवित् ।३।
जपादनन्तर दण्ड-प्रणति मतिमाञ्चरेत् ।
विष्वक्सेनादि कानान्तु दत्वा विष्णुनिवेदितम् ।४।
तत उद्वास्य हृदये स्नापयेन्मनसा सह ।
नृत्यगायन्हरेर्नाम त पश्यन्सर्वत. स्थितम् ।५।

सूत जी बोले—पद्मा के वचन सुन कर सत्य मत वाले धीर एव कल्कि-दूत शुक ने सखियों के मध्य बैठी हुई पद्मा से कहा ।१। हे पद्मे ! अद्भुत कर्म वाले भगवान विष्णु की पूजा का सांगोपांग वर्णन करो। क्योंकि मैं इसका विधिवत् अनुष्ठान करके तीनों लोकों मे विचरण करूंगा ।२। पद्मा बोली—इस प्रकार चरणो से केश पर्यंत भगवान विष्णु का ध्यान करके मत्र के ज्ञाता को मूल मन्त्र का जप करना चाहिए ।३। जप के पश्चात् भगवान् को दण्डवत् प्रणाम करे। फिर विष्वक्सेन आदि को पाद्य, अर्घ्य नैवेद्य आदि समर्पित करके भगवान् को निवेदन किये गये वस्त्र को धारण कर विष्णु का स्मरण करता हुआ नृत्य-गान और हरिनाम का कीर्तन करे ।४-५।

ततः शेषं मस्तकेन कृत्वा नैवेद्यभुग्भवेत् ।
दर्शितस्तत्कथितः कीर ! कमलानाथसेवनम् ।६।
सकामानां कामपूरणकामामृतदायकम् ।
त्रैलोक्यानन्दकरं देव-गन्धर्व-नर-हृत्प्रियम् ।७।
मयापि श्रुतमाद्य भगवद्भक्तिलक्षणम् ।
त्वत्प्रसादात्पापिनो मे कीरस्य भुवि मुक्तिदम् ।८।
किन्तु त्वां काञ्चनमयीं प्रतिमां रत्नभूषिताम् ।
सजीवामिव पश्यामि दुर्लभां रूपिणीं प्रियम् ।९।
नान्यां पश्यामि सदृशीं रूपशीलगुणैस्तव ।
नान्यो योग्यो गुणी भर्ता भुवनेऽपि न दृश्यते ।१०।

फिर भगवान् का निर्माल्य शेष मस्तक पर धारण करे और नैवेद्य ग्रहण करे । हे शुक ! कमलानाथ की सेवा का यह विधान मैंने तुमसे कह दिया ।६। इस प्रकार की पूजा से सकाम व्यक्तियों की कामना पूर्ण होती और कामना न करने वालों को मोक्ष मिलता है । यह सेवा देवता, गन्धर्व और मनुष्य सभी के चित्तों को आनन्द देने वाली है ।७। शुक बोला—हे साध्वी ! तुमने मुझ पापिष्ठ तोते को भी मोक्ष देने वाली हरि-भक्ति की विधि कही है, उसे तुम्हारी कृपा से मैंने सभी प्रकार सुना है ।८। परन्तु मैं तुम्हें रत्नाभरणों से विभूषिता, स्वर्णमयी प्रतिमा के समान तीनों लोकों में दुर्लभ साक्षात् लक्ष्मी रूप में देख रहा हूँ ।९। संसार में तुम्हारे समान रूप शील और गुणमयी अन्य नारी मुझे दिखाई नहीं देती तथा तुम्हारे योग्य कोई अन्य गुणवान् भर्ता भी मुझे लोक में दिखाई नहीं देता ।१०।

किन्तु पारे समुद्रस्य पद्माक्षश्चारुरूपवान् ।
गुणवानीश्वरः साक्षात्कश्चिद्दृष्टोऽतिमानुषः ।११।
न हि धातृकृतं मन्ये शरीरं सर्वं सौम्यमम् ।
यस्य श्रीवासुदेवस्य नान्तरं ध्यानयोगतः ।१२।

त्वया ध्यातं तु यद्रूपं विष्णोरमिततेजसः ।
तत्साक्षात्कृतमित्येव न तत्र कियदन्तरम् ।१३।
ब्रूहि तन्मम किं कुत्र जातः कीरः परावरम् ।
जानासि तत्कृतं कर्म्मं विस्तरेणात्रवर्णय ।१४।
पृष्टादागच्छ पूजां ते करोमि विधिबोधिताम् ।
बीजपूरफलाहारं कुरु साधु पयः पिब ।१५।

किन्तु, समुद्र के उस पार एक परम लावण्यमय रूप वाला, गुणी, मनोज्ञ एवं साक्षात् ईश्वर स्वरूप मनुष्य मुझे दिखाई दिया है ।११। उसका सर्व सौन्दर्यमय देह ब्रह्मा द्वारा रचित प्रतीत नहीं होता । ध्यान-योग से देखें तो उसमें और भगवान वासुदेव में कुछ भी अन्तर नहीं मिलेगा ।१२। हे पद्मे ! तुम भगवान् विष्णु के जिस अमित तेजमय स्वरूप का ध्यान करती हो, उस रूप में और उस मनुष्य के रूप में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता ।१३। पद्मा ने कहा—हे शुक ! तुमने अभी क्या कहा है ? उस बात को पुनः कहो । उन्होंने अवतार लिया है ? यदि तुम उनका पूर्ण वृत्तान्त जानते हो तो मुझे विस्तार पूर्वक सुनाओ ।१४। तुम वृक्ष से उतर आओ, मैं विधिवत् तुम्हारा सत्कार करूँगी । तुम बीजपूर फलों का भक्षण और दुग्ध का पान करो ।१५।

तव चञ्चुपुटं पद्मरागाद्यहणमुज्ज्वलम् ।
स्वर्णबद्धमहं करोमि मनसः प्रियम् ।१६।
कन्धरं सूर्यकान्तेन मणिना स्वर्णचन्द्रिणा ।
करोम्याच्छादनं चारु-मुक्ताभिः पक्षतिं तव ।१७।
पक्षं कुङ्कुमेनाङ्ग सौरभेणातिचित्रितम् ।
करोमि नयनानन्ददायकं रूपमोहनम् ।१८।
पुच्छमच्छमणिव्रात-पर्यरेणातिनन्दितम् ।
पादयोर्नूपुरालाप-भाविनं त्वां करोम्यहम् ।१९।
सुधामृतकथाप्रसादयताधि याधि मामिह ।

सखीभि. सगोत्राभिस्ते कि करिष्यामि तद्वद ।२०।

मैं तुम्हारी चोंच को पद्मरागमणि और रत्नों से मण्डित करा कर उन्हें मनोमोहक स्वर्ण वर्ण की और दीप्तिमयी बनाऊँगी ।१६। तुम्हारे कंठ में मूँगेदार मणि जटित स्वर्ण पट्टिका बाँध कर दोनों पंखों को मालियों से सजाऊँगी ।१७। तुम्हारे पंख और शरीर को कुंकुम से चर्चित करके ऐसा सुशोभित करूँगी । सब तुम्हें देखते ही अत्यन्त आनन्दित हो जाँय ।१८। तुम्हारी पूँछ को स्वच्छ मणि से गूँथ दूँगी, जिससे तुम्हारे गमन पर सुन्दर घर्घर शब्द सुनाई देगा । तुम्हारे पाँवों में नूपुर बाँध दूँगी, जिनसे सुमधुर ध्वनि निकलेगी ।१९। तुम्हारा कथामृत सुनकर ही मेरे मन की व्यथा मिट गई । मुझे बताओ कि मुझे क्या करना है ? सखियों के सहित मैं तुम्हारी परिचर्या करूँगी ।२०।

इति पद्मावचः श्रुत्वा तदन्तिकमुपागतः ।
कीरो धीरः प्रसन्नात्मा प्रवक्तुमुपचक्रमे ।२१।
ब्रह्मणा प्रार्थितः श्रीशो महाकारुणिको विभो ।
शम्भले विष्णुयशसो गृहे धर्म-दिरक्षिषु ।२२।
चतुर्भिर्भ्रातृभिर्ज्ञातिगोत्रजैः परिवारितः ।
कृतोपनयनो वेदमधीत्य रामसन्निधौ ।२३।
धनुर्वेदञ्च गान्धर्वं शिवादश्वमसिं शुकम्
कवचञ्च वरं लब्ध्वा शम्भलं पुनरागतः ।२४।
विशाखयूपभूपालं प्राप्य शिक्षाविशेषतः ।
धर्मान्नाख्याय मतिमान् अधर्मांश्च निराकरोत् ।२५।

पद्मा के वचन सुन कर हर्षित हुआ शुक उसके पास जा पहुँचा और यह प्रसंग कहने लगा ।२१। शुक बोला—भगवान् लक्ष्मीपति ने धर्म संस्थापन-हेतु ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थना करने पर शम्भल ग्राम निवासी विष्णुयशा के यहाँ अवतार लिया है ।२२। वे चार भाई अपने गोत्र एवं परिवार वालों के साथ स्थित हैं, उपनयन संस्कार होने

के बाद उन्होंने परशुरामजी से वेद की शिक्षा प्राप्त की ।२३। फिर उन्होंने धनुर्वेद और गांधर्व वेद की शिक्षा ली और शिवजी से अश्व, असि, शुक, कवच और वरदान पाकर शम्भल ग्राम में अपने घर लौटे ।२४। फिर उन कल्कि भगवान् से विशाखयूप राजा ने भेंट की, तब उन्होंने अपने धर्मोपदेश द्वारा राजा की धर्मसंयुक्त शंकाओं का निराकरण किया ।२५।

इति पद्मा तदाख्यानं निशम्य मुदितानना ।
प्रस्थापयामास शुकं कल्केरानयनादृता ।२६।
भूषयित्वा स्वर्णरत्नैस्तमुवाच कृताञ्जलिः ।२७।
निवेदितं तु जानासि किमन्यत्कथयाम्यहम् ।
स्त्रीभावभयभीतात्मा यदि नायाति स प्रभुः ।२८।
तथापि मे कर्मदोषात् प्रणतिं कथयिष्यसि ।
शिवेन यो वरो दत्तः स मे शापोऽभवत्किल ।२९।
पुंसां मद्दर्शनेनापि स्त्रीभावं व्रजतः शुक ।
श्रुत्वेति पद्मामामन्त्र्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।३०।

इस प्रसंग को सुन कर पद्मा बड़ी प्रसन्न हुई और उसने कल्कि भगवान् को आदरपूर्वक वहाँ लिवा लाने के उद्देश्य से शुक को भेजा ।२६। पद्मा ने शुक को स्वर्ण एवं रत्नों से सुसज्जित किया और हाथ जोड़ कर कहने लगी ।२७। पद्मा बोली—मैं जो कुछ निवेदन करना चाहती हूँ उसे तुम भले प्रकार जानते हो, तो फिर अधिक क्या कहूँ ? मैं स्त्री स्वभाव-वश भयभीत हो रही हूँ। यदि प्रभु यहाँ न आवें तो तुम मेरी ओर से प्रणाम करके मेरे कर्म-दोष के विषय में उन्हें बताना और कहना कि मुझे शिवजी से जो वर प्राप्त हुआ है वह इस समय शाप के समान हो रहा है। शिवजी के वरदान के अनुसार जो पुरुष मेरी ओर काम-भाव से देखता है, वही नारी हो जाता है। पद्मा की यह बात सुन कर शुक ने उसे बारम्बार प्रणाम किया ।२८-३०।

इत्युक्त्वा प्रययौ कीरः शम्भलं कल्किपालितम् ।
तत्रागमं समाकर्ण्य कल्किः परपुरञ्जयः ॥ ३१ ॥
क्रोडे कृत्वा तं ददर्श स्वर्णरत्नविभूषितम् ।
सानन्दं परमानन्ददायकं प्राह तं तदा ॥ ३२ ॥
कल्किः परमतेजस्वी परिस्मित्यमलं शुकम् ।
[illegible] ॥ ३३ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ ३४ ॥
कुत्रापितः कुतो लब्धं मणिकाञ्चनभूषणम् ।
अहर्निशं त्वन्मिलनं वाञ्छितं मम पक्षिन् ॥ ३५ ॥

फिर वह शुक उड़ कर कल्किजी द्वारा रक्षित शम्भल ग्राम में गया तदनुसार विष्णु कल्किजी ने उसे आया देख कर शुक को गोद में लेकर उसे स्वर्ण रत्नों से मण्डित देखा तो अत्यन्त हर्षित होते हुए बोले ।३१-३२। अत्यन्त तेजस्वी कल्किजी ने शुक का सत्कार करते हुए उसे दुग्ध-पान कराया और उससे सब प्रसंग पूछा—हे शुक ! तुम इस समय किस देश से आरहे हो ? वहाँ तुमने कौन-सी अद्भुत वस्तु देखी है ? ।३३ ३४। तुम कहाँ थे ? किसके द्वारा मणियों और स्वर्ण से विभूषित किये गये ? रात दिन मैं तुमसे मिलने के लिए उत्सुक रहा हूँ ।३५।

तवानालोकनेनापि क्षणो मे युगवद्भवेत् ॥ ३६ ॥
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा पुरोऽवस्थः शुको मुदा ।
कथयामास पद्मायाः कथाः पूर्वोदिता यथा ॥३७॥
सवादमात्मनस्तस्या निजालङ्कारधारणम् ।
सर्वं कथयामास तस्याः प्रणतिपूर्वकम् ॥ ३८ ॥
श्रुत्वेति वचनं कल्किः शुकेन सहितो मुदा ।
जगाम त्वरितोऽश्वेन शिवदत्तेन तन्मना ॥ ३९ ॥

हे शुक ! मैं जब तुम्हें नहीं देखता, तब मेरा एक क्षण भी युग के समान व्यतीत होता है ।३६। कल्कि की यह बात सुनकर शुक ने हेंउ बारम्बार प्रणाम कर पद्मा की पूर्व कथित कथा को कह

सुना दी।३७। फिर पद्मा के साथ जो संवाद हुआ वह तथा स्वर्ण-मणियों की उपलब्धि आदि सब वृत्तान्त विनम्र होकर शुक ने उन्हें सुना दिया।३८। कल्कि जी ने जैसे ही यह वृत्तान्त सुना, वैसे ही प्रसन्न होते हुए वे शिवदत्त अश्व पर चढ़ कर शुक के साथ चल दिये।३९।

समुद्रपारममलं सिंहलं जलसंकुलम्।
नानाविमानबहुलं भास्वरं मणिकाञ्चनैः॥ ४० ॥
प्रासादसदनाग्रेषु पताकातोरणाकुलम्।
श्रेणीसभापणाट्टाल-पुरगोपुरमण्डितम्॥ ४१ ॥
पुरस्त्री-पद्मिनी-पद्मगन्धामोद-द्विरेफिणीम्।
पुरीं कारुमतीं तत्र ददर्श पुरतः स्थिताम्॥ ४२ ॥
मराल-जाल-मञ्जाल-विलोल-कमलान्तराम्।
उन्मीलताब्जमालालिकलिताकुलितं सरः॥ ४३ ॥
चलकुक्कुटदात्यूह-नादितं हंससारसैः।
ददर्श स्वच्छपयसां लहरीलोलवीजितम्॥ ४४ ॥

चलते-चलते समुद्र पार पहुँच कर उन्होंने स्वच्छ जल से घिरे हुए, विभिन्न विमानों से युक्त, मणियों और स्वर्ण से दमकते हुए, अट्टालिकाओं और भवनों के समक्ष पताकाओं और तोरणों से सजे हुए सभामण्डप वाले, दुकानों और गोपुरादि से सुसज्जित, पद्मिनी नारियों के पद्मगन्ध से हर्षित मँडराते हुए भ्रमर समूह से युक्त कारुमती सिंहल पुरी को देखा।४०-४२। वहाँ जलाशयों में हंस-समूह किलोल कर रहे हैं, कमलों पर भ्रमर गुंजार रहे हैं, जलकुक्कुट, दात्यूह, हंस, सारस आदि कलरव कर रहे हैं तथा जल की लोल लहरों के साथ ठण्डी वायु प्रवाहित है।४३-४४।

वनं कदम्बकुद्दाल-शालतालाम्रकेसरैः।
कपित्थाश्वत्थखर्जूरबीजपूरकरञ्जकैः॥ ४५ ॥
पुन्नागपनसंनागरङ्गार्जुनशिंशपैः।
क्रमुकैर्नारिकेलैश्च नानावृक्षैश्च शोभितम्।

वनं ददर्श रुचिरं फलपुष्पसमावृतम् ॥ ४६ ॥
दृष्ट्वा हृष्टतनुः शुकं सकरुणः कल्किः पुरान्ते वने
प्राह प्रीतिकरं वचोऽत्र सरसि स्नातव्यमित्यादृतः ।
तच्छ्रुत्वा विनयान्वितः प्रभुमसौ यामीति पद्माश्रमं
तत्सन्देशमिह प्रकाशमधुना गत्वा । स कीरोऽवदत् ॥ ४७ ॥

वन कदम्ब, कुद्दाल, ताल, शाल, आम, केसर, कंप, अश्वत्थ, खजूर, बीजपूर, करंज, पुन्नाग, पनस, नारंगी, खर्जूर, शिंशपा, कामुक, नारियल आदि विविध प्रकार के वृक्षों से सुशोभित और फल, पुष्प, पत्रादि से परिपूर्ण उस स्थान को कल्किजी ने देखा ।४५-४६। यह सब देखते हुए पुरी के समीपस्थ वन में पहुँच कर पुलकित देह हुए कल्किजी ने आदर सहित शुक से कहा—'इस सरोवर में स्नान करने की इच्छा है'। यह सुनकर शुक ने विनय पूर्वक कहा—अच्छा, अब मैं भी पद्मा के निवास स्थान पर जाता हूँ। यह कहकर शुक पद्मा के पास गया और उसने कल्कि भगवान् के आगमन का वृत्त कह दिया ।४७।

—•—

द्वितीय अध्याय

कल्कि: सरोवराभ्यासे जलाहरणवर्त्मनि ।
स्वच्छस्फटिकसोपाने प्रवालाञ्चितवेदिके ।१।
सरोजसौरभव्यग्रमत्तभ्रमरनादिते ।
कदम्बपल्लवच्छन्ने वारितादित्यदर्शने ।२।
समुवासासने चित्रे मदश्वेनावतारित ।
कल्कि: प्रस्थापयामास शुकं पद्माश्रमं मुदा ।३।
स नागेश्वरमध्यास्य शुको गत्वा ददर्श ताम् ।
हर्म्यस्थां विमनोऽम्बशायिनीं सखीभिर्वृताम् तु ।४।
निश्वासवातसन्तापेन म्लायन्ती वदनाम्बुजम् ।
दलिसरन्ती सखीदत्तकमलचन्दनोक्षितम् ।५।

सूतजी बोले—कल्किजी ने जल से उतर कर सरोवर के समीप वाले जल लाने के मार्ग में प्रवालों से युक्त, कमल की सुगंध से सुरभित, भ्रमर समूह द्वारा निनादित, उज्ज्वल स्फटिक मणि निर्मित सोपान पर स्थित एवं कदम्ब के वृक्षों की नवीन पत्तियों से स्पर्श करती हुई सूर्य किरणों से आच्छादित चबूतरे पर बैठ कर उन्होंने शुक को पद्मा के निवास स्थान पर भेजा ।१-३। वहाँ पहुँच कर वह शुक नागकेसर के वृक्ष पर जा बैठा और उसने अटारी के ऊपर पत्तों की शय्या बनाकर शयन करती पद्मा को सखियों के सहित देखा ।४। उस समय उष्ण वायु के ताप से मलीन मुख हुई पद्मा सखी द्वारा प्रदत्त

इत्याश्वास्य शिबिकामारुह्य परिचारिता ।
सखीभिश्चारुवेशाभिर्भूत्वा स्वान्तःपुराद्बहिः ।
प्रययौ स्वगिरिं द्रष्टुं भैष्मी यदुपतिं यथा ।।१३।।
जना पुमांसः पथि ये पुरस्था प्रदुद्रुवुः स्त्रीत्व-
भयाद्दिगन्तरम् । शृङ्गाटके वा विपणि स्थिता
ये निजाङ्गनास्थापितपुण्यकार्य्याः ।।१४।।
निवारिता ता शिबिकां वहन्त्य नार्योऽभिमता
बलयत्तरान्च । पद्मा शुकोक्तया सदुपरुं परस्ता
जगाम ताभि परिचारिकाभि ।।१५।।

इस प्रकार वचस्त्र आश्वस्त होने पर पद्मा प्रसन्न हर्षित हुई वह उसके मुख के सदृश मुख, नेत्र के समान नेत्र करके उस आनन्द पूर्वक देखने लगी ।१०। उसकी आठ नायिका सखियाँ हैं—विमला, मालिनी, लोला, कमला कामकन्दला, विलासिनी, चारुमती और कुमुदा । उन सखियों सहित जल-क्रीडा के लिए तत्पर होकर पद्मा उनसे बोली कि वह सखियों के साथ सरोवर के तट पर चलें ।११-१२। यह कह कर पद्मा पालकी पर आरूढ़ होकर सखियों सहित अन्तःपुर से चल पड़ी । कृष्ण के दर्शनार्थ जाती हुई रुक्मिणी के समान ही कल्कि भगवान् के दर्शन के लिए पद्मा ने भी शीघ्रता पूर्वक प्रस्थान किया ।१३। पद्मा जिस मार्ग से जा रही थी, उस मार्ग में स्थित पुरुष उसे देखते ही कहीं स्त्री न बन जाएँ इस आशंका से इधर-उधर भाग गये । उन मार्गों वालों की पत्नियाँ उनके निरापद रहने के लिए पुण्य कर्मों का अनुष्ठान करने लगीं ।१४। इस प्रकार मार्ग को पुरुषों से रहित देख कर शक्तिमती स्त्रियाँ पालकी को स्वच्छन्दता से वहन करने लगीं - शुक के कथनानुसार पालकी पर चढ़ी हुई पद्मा को घेर कर उसकी सखियाँ भी साथ चल रही थीं ।१५।

सरोऽमलं सारसहंसनादितं प्रफुल्लपद्मोद्भवरेणुवासितम् ।
पेर्विशालाप्तम् सुधाकरामलाः कुमुद्वतीनामुदयाशोभनाः ।।१६।।

तासां मुखामोदमदान्धभृङ्गा विहाय पद्मानि
मुखारविन्दे । भ्रमन्तः सुगन्धाधिकमाप्नुवन्त्य
निवारितास्थापि न तत्यजुस्ते ॥१७॥
हासोपहासैः सम्प्रहारैः सरैश्च नृत्यैश्च जले
विहारैः । करग्रहैस्ता जलयोधनास्तैर्विकर्ष
हासिव निशाभिरुत्वं ॥१८॥
सा कामात्मा मनसा शुकोक्तिं विविक्ष्य पद्मा
सखिभिः समेता । जगाम मुख्यस्य महाद्रुमस्य
जगाम निर्दिष्टकदम्बषण्डम् ॥१९॥
सुखे शयानं मणिवेदिकायां ददर्श पुरस्तादासनसू-
र्यवर्चसम् । महामणिज्ञानविभूषणाञ्चित शुभैन सहितं
तमुद्वेगसेवम् २०॥

फिर आरम्भ, हंस आदि के मधुर निनाद और पद्म रेणु से सुवासित सरोवर के जल से स्नान करके वह चन्द्रवदना स्त्रियाँ कुमुदनी युक्त पद्मा की माला से विचरण करने लगी । उनके वह भी कमल-मय से मत्त हुए भ्रमर उनके मुखों पर गुञ्जार करने लगे । स्त्रियों द्वारा उड़ाये जाने पर भी वे भ्रमर उन पद्ममुखाओं के मुख से हटते ही नहीं थे ॥१६-१७॥ परस्पर हास-परिहास, वाद्य, नृत्य तथा परस्पर हाथ पकड़े हुए विविध प्रकार का जलविहार करती हुई पद्मा व सखियों के मन को और सखियों ने पद्मा के मन को दूर किया ॥१८॥ फिर सकाम मन वाली पद्मा शुक के वचनों का स्मरण करके सखियों सहित जल से बाहर निकली और वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर उस बताये हुए महान् कदम्ब के वृक्ष के नीचे गई ॥१९॥ वहाँ उसने मणिमय चबू-तरे पर महामणियों से विभूषित, सूर्य के तेज से भी अधिक तेजोमय कल्किजी को शुक के सहित सुखपूर्वक शयन करते देखा ॥२०॥

श्यामलनील कमलापति प्रभु पीताम्बर चारुसरोजलोचनम् ।
आजानुबाहुं पृथुपीनवक्षसं श्रीवत्सवत्कौस्तुभकान्तिराजितम्

तदद्भुतरूपमवेक्ष्य पद्मा सस्तम्भिताविस्मृतसत्क्रियार्था।
सुप्तं तु संबोधयितुं प्रवृत्तं निवारयामास विशङ्कितात्मा ।२२
कदाचिदेषोऽतिबलोऽतिरूपो मद्दर्शनात्स्त्रीत्वमुपैति साक्षात् । तदात्र हि मे भविता भवस्य वरेण शापप्रतिमेन लोके ।२३।
पराशरात्मा जगतामधीशः प्रबोधितस्तद्धृदयं विविच्य ।
ददर्श पद्मां प्रियरूपशोभां यथा रमां श्रीमधुसूदनाग्रे ।२४।
सखीभिश्च मायामिव मोहिनीं तां जगाद कामाकुलितः स कल्किः । गतोभिरोषा समुपागता तां कटाक्षविक्षेपवि-गामिनान्यम् ।२५।

उसने देखा कि तमाल जैसे नीलवर्ण वाले, पीताम्बरधारी, कमल जैसे नेत्र वाले, लम्बी भुजाओं, विशाल वक्ष और श्रीवत्स से चिह्नित हृदय वाले, कौस्तुभ माला की कान्ति से प्रकाशित भगवान् कल्कि विराजमान हैं ।२१। उस अद्भुत रूप को देखकर पद्मा ऐसी स्तम्भित हुई कि उनका सत्कार भी करना भूल गई और उनके सोने के कारण उन्हें जगाना उचित नहीं समझा ।२२। उसने सोचा कि कहीं यह महाबली अत्यन्त रूपवान् पुरुष मुझे देखकर स्त्री न बन जाय ? यदि ऐसा हो गया तो शिवजी का वरदान यहाँ भी अभिशाप हो जायगा ।२३। फिर पद्मा के मानसिक अभिप्राय को जान कर पराशर के आत्मा एवं विश्वेश्वर कल्कि भगवान जाग पड़े । उन्होंने देखा कि लक्ष्मीजी के समान महान् रूपवती पद्मा सामने खड़ी है ।२४। सखियों से मोहित पाई हुई, कामुक देखती हुई पद्मा को देखकर उस मोह को शान्त करने वाली पद्मा से कल्किजी मन्द-हास पूर्वक बोले ।२५।

एहीहि सुश्रोणि कामबाणहतमानसं मे कृपानाथ मे दयासु ।
तवाननेन्दुः विरह कामपूरतापापनोदाय सुधाय कामो। २६।

द्वितीयांश—

तृतीय अध्याय

सा पद्मा तं हरिं मत्वा प्रेमगद्गदभाषिणी ।
तुष्टाव व्रीडिता देवी करुणावरुणालयम् ॥१॥
प्रसीद जगतां नाथ ! धर्मवर्मन् ! रमापते ! ।
विदितोऽसि विशुद्धात्मन् ! त्वद्गतां त्राहि मां प्रभो ! ॥२॥
धन्याहं कृतपुण्याहं तपोदानजपव्रतैः ।
त्वां प्रतोष्य दुराराध्यं लब्धं तव पदाम्बुजम् ॥३॥
आज्ञां कुरु पदाम्भोजं तव संस्पृश्य शोभनम् ।
भवनं यामि राजानमास्यातुं स्वागतं तव ॥४॥
इति पद्मा रूपसद्मा गत्वा स्वपितरं नृपम् ।
स्वागमनं कल्केर्विष्णोरंशस्य द्योतयत् ॥५॥

सूतजी बोले—प्रेम से गद्गद होकर भाषण करने वाली पद्मा ने कल्किजी को भगवान् विष्णु के रूप में जान कर उनकी स्तुति की ।१। हे जगदीश्वर ! हे धर्मवर्मन् ! हे लक्ष्मीपते ! मैं आपको जान गई हूँ । अब आप मुझ शरणागता की रक्षा कीजिए ।२। मैं धन्य हो गई प्रभो ! जो अपने पुण्यकर्मों अर्थात् तप, दान, जप और व्रतादि के सहित आपकी आराधना करके आपके दुराराध्य चरण कमलों को प्राप्त कर सकी ।३। अब आप मुझे आज्ञा दें कि मैं आपके पदाम्बुजों का स्पर्श करके अपने घर जाऊँ और महाराज से आपके आगमन की बात सूचित करूँ ।४। यह कह कर श्रेष्ठ रूप वाली पद्मा ने अपने पिता राजा

बृहद्रथ के पास जाकर भगवान कल्कि के आगमन का वृत्तान्त निवेदन किया ॥५॥

सखीमुखेन पद्मायाः पाणिग्रहणकाम्यया ।
हरेरागमनं श्रुत्वा सहर्षोऽभूद्बृहद्रथः ॥६॥
पुरोधसा ब्राह्मणैश्च पात्रैः सुमङ्गलैः ।
ब्राह्मणैश्च गणैश्चैव पूजाद्योतनपाणिभिः ॥७॥
आगमानयितुं कल्किं सार्द्धं निजजनैः प्रभुः ।
अलङ्कृत्य कारुमती पताकास्वर्णतोरणैः ॥८॥
ततो जगाम राजाऽसौ यत्रास्ते विष्णुयशःसुतम् ।
मणिवेदिकयासीनं भुवनैकगतिं पतिम् ॥९॥
घनायनोपरि यथा दामन्ते स्फुरितरोहिताः ।
विद्युदिन्द्रायुधादीनि तथैव भूषणान्युत ॥१०॥

राजा बृहद्रथ ने पद्मा की सखी के मुख से पद्मा के पाणिग्रहण की कामना से भगवान् का आगमन [illegible] कर हर्ष प्रकट किया ।६। फिर उसने पुरोहित, ब्राह्मण, परिवारीजन, मित्र, बन्धु आदि को साथ लेकर मंगल गीत, बाजा, पूजा आदि करते हुए कल्कि भगवान को लाने के लिए प्रस्थान किया । स्वर्ण के तोरण और पताकादि से वह कारुमती नगरी अत्यन्त शोभा पाने लगी ।७-८। राजा बृहद्रथ ने जलाशय पर पहुँच कर देखा कि विष्णुयश के पुत्र कल्किजी मणिमय वेदी पर स्थित हैं ।९। जैसे घनघोर मेघ पर बिजली अथवा इन्द्र-धनुष आदि अत्यन्त शोभा पाते हैं, वैसे ही कल्किजी के कृष्णाङ्ग पर भूषण दमक रहे हैं ॥१०॥

शरीरे पीतवाससाऽप्यघोरभासा विभूषितम् ।
रूपलावण्यसदने मदनोन्मनमानने ॥११॥
ददर्शाऽरतः राजा रूपशीलगुणाकरम् ।
साश्रु: सपुलकः प्रीतो दृष्ट्वा साधु समर्च्चयत् ॥१२॥
शान्तलोचरमेतन्मे तवागमनमीश्वर ! ।

यथा मान्धातृपुत्रस्य यदुनाथेन कानने ।१३।
इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा समानीय निजाश्रमे ।
हर्म्यप्रासादसंबाधे स्थापयित्वा ददौ सुताम् ।१४।
पद्मां पद्म पलाशाक्षी पद्मनेत्राय पद्मिनीम् ।
पद्मजादेशत. पद्मनाभायाथायथाक्रमम् ।१५।

उन रूप-लावण्य के घर, कामदेव के दर्प को नष्ट करने वाले देह के उपभाग में पीताम्बर धारण किये हुए तथा रूप,शील और गुण की खान लक्ष्मीपति कल्किजी को देख कर प्रेमयुक्त पुलकित देह से महिन राजा ने उनका विधि पूर्वक पूजन किया ।११-१२। राजा बोला— हे ईश्वर ! जैसे यदुनाथ वन मे अक्रूर मान्धाता के पुत्र से मिले थे, वैसे ही आप ज्ञानगोचरातीत का आगमन मेरे लिए हुआ है ।१३। यह कह कर कल्किजी का पूजन करके राजा उन्हे अपने भवन में ले आये और सुसज्जित गृह में टिका कर उन्हे अपनी कन्या का दान कर दिया ।१४। पद्मोत्पन्न ब्रह्माजी के आदेशानुसार पद्मनाभ एवं पद्मलोचन भगवान् कल्कि को पद्म-पत्र जैसे नेत्र वाली पद्मिनी जातक पद्मा का यथाविधि दान किया ।१५ ।

कल्किसंलब्धा प्रियां भार्यां सिंहले साधुसत्कृतः ।
समुवास विशेषज्ञः समीक्ष्य द्वीपमुत्तमम् ।१६।
राजानः स्त्रीत्वमापन्नाः पद्मायाः सखिता गताः ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिता. कल्कि विष्णुं जगत्पतिम् ।१७।
ताः स्त्रियोऽपि समालोक्य सस्पृश्यचरणाम्बुजम् ।
पुनः पुंस्त्व समापन्ना रेवास्नानात्सदाज्ञया ।१८।
पद्माकल्की गौरकृष्णौ विपरीतान्तरावुभौ ।
बहि.स्फुटौ नीलपीत-वाससोर्व्याजेन पश्यतु ।१९।
दृष्ट्वा प्रभावं कल्केस्तु राजानः परमाद्भुतम् ।
प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुवुः शरणार्थिन. ।२०।

अपनी प्रिय पत्नी को प्राप्त कर आभूषणों से सजकर हुए कल्किजी सिंहल द्वीप को श्रेष्ठ स्थान देख कर कुछ दिनों तक वहाँ रहे ।१६। जो राजा स्त्रीत्व को प्राप्त होकर पद्मा की सखी बन गये थे, वे सभी भगवान् कल्कि के दर्शनार्थ वहाँ उपस्थित हुए ।१७। वे सभी स्त्रीत्व को प्राप्त हुए राजागण भगवान् के दर्शन प्राप्त कर उनके चरण स्पर्श करते हुए उनकी आज्ञा से रेवा नदी पर पहुँचे और स्नान करते ही पुरुषत्व को प्राप्त हो गये।१८। पद्मा गौर और कल्कि गौर तथा कृष्ण वर्ण वाले हैं । दोनों विपरीत वर्णों के सम्मिलन से पद्मा के नीलाम्बर और कल्कि के पीताम्बर द्वारा एक अद्भुत वर्ण प्रकाशित हुआ और परस्पर सम्मिलित दिखाई देने लगा ।१९। कल्किजी का अत्यन्त अद्भुत प्रताप देख कर सभी राजागण उनकी शरण को प्राप्त होकर भक्तिपूर्वक प्रणाम और स्तुति करने लगे ।२०।

जय जय निजमायया कल्पिताशेषकल्पनापरिणाम ।
जलाप्लुतलोकत्रयोपकरणमाकलय्य मनुमनिशम्य पूरितमवि-
जनाविजनाविर्भूतमहामीनशरीर । त्वं निजकृतधर्मसेतुसर-
क्षणकृतावतार ।२१।
पुनरिहादितिज-बल परिलाञ्छित-वासव-मृदनादृत त्रिभुवन
पराक्रम-हिरण्याक्षनिधन पृथिव्युद्धरणसंकल्प-भिनिवेशेन धृत
कोलावतार पाहि न. ।२२।
पुनरिह जलधि मथनादृत-देवदानवगण-मन्दराचलानयनव्या-
कुलितानां माहात्म्येनादृतचित्त. पर्व्वतोद्धरणामृतप्राशनरचना
वतार कूर्म्माकार प्रसीद परेश । त्वं दीनानुपालनाय् ।२३।

हे प्रभो ! आपकी जय हो । आपकी ही कल्पना-रचित है संसार विविध प्रकार से कल्पित हुआ है । जब तीनों लोग प्रलय में लीन हो गये, तब आपने जलपूर्ण स्थान में प्रकट हुए थे । आपने ही धर्म-सेतु के सर-क्षण हेतु महामीन (मत्स्य) देह धारण किया था ।२१। जब दनुज-सैन्य

से इन्द्र पराजित होने लगे और त्रैलोक्य-विजयी हिरण्याक्ष इन्द्र को मारने के उद्यत हुआ, तब आपने ही वाराह रूप धारण कर उसका संहार कर डाला। ऐसे आप हमारी रक्षा कीजिये ।२२। जब देवता और दैत्य दोनों ही मिल कर समुद्र-मन्थन में तत्पर हुए, तब मन्दराचल पर्वत को टिकाने की समस्या उत्पन्न हुई। उस समय आपने कूर्मावतार धारण कर अपनी पीठ पर मन्दराचल को टिका लिया। आपका यह कूर्मावतार देवताओं को पुत्र-वत् बचाने के लिये ही हुआ था। हे परेश! आप ही हम दीन भक्तों की रक्षा कीजिये ।२३।

पुनरिह त्रिभुवनजयिनो महाबलपराक्रमस्य हिरण्यकशिपोर-र्दितानां देवगणानां भयभीतानां कल्याणाय दितिजवधप्रे-प्सुर्य इतो वरदानादवध्यस्य न शस्त्रास्त्रगणैः दिवास्वर्गम-र्त्यपातालतले देवगन्धर्वकिन्नरनरनागैरिति विचिन्त्य नर-हरिरूपेण नखाग्रनिर्भिन्नोरु दैत्यवक्षश्छेद त्वत्कामुं कृत वानसि ।२४।

पुनरिह त्रिजगज्जयिनो बलेः सत्र शक्रानुजो बटुवामनो दैत्यस-म्मोहनाय त्रिपदभूमियाच्ञाछलेन विवर्धकायस्तदुत्सृष्ट-जल-संस्पर्श-विवृद्धमनाऽभिमानपदत्रय भूतले बलेर्द्वारिकत्वमङ्गी-कृतवानसि दानफलम् ।२५।

पुनरिह हैहयादिनृपाणामनिबलराजलक्ष्माणां नानामदोल्ल-ङ्घितमर्यादावर्त्मनां निधनाय भृगुवंशजो जामदग्न्यः पितृहो-मधेनुहरणप्रवृद्धमन्युवशात्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रियां पृथिवीं कृ-तवानसि परशुरामावतार. ।२६।

फिर जब त्रैलोक्य विजयी, महाबली और पराक्रमी हिरण्यक-शिपु देवताओं का उत्पीड़न करने लगा, तब आपने भयभीत देवताओं के कल्याणार्थ उस दैत्यराज का संहार करने का निश्चय किया। ब्रह्माजी के वर से दैत्य, देवता गन्धर्व, किन्नर, नाग, राक्षस, दिवस, रात्रि, स्वर्ग,

दिया प्राप्त कर वन-गमन करने और रावण द्वारा सीता का हरण करने पर आपने वानर सेना को साथ लेकर पुत्र सहित रावण को मार डाला ।२७। फिर आप यदुकुल जलधि-चन्द्र वसुदेवजी के पुत्र रूप श्रीकृष्ण हुए और अनेक दैत्य-दानवों को मार कर तीनों लोकों को पाप-मुक्त किया। इसलिये सभी इतना पाकर उन श्रीकृष्ण रूप के चरण कमलों की सेवा में तत्पर हुए। उसी रूप में आपने ही बलभद्रजी का भी अवतार धारण किया था ।२८। फिर आपने यज्ञ द्वारा निन्दित वेद-धर्म में अनेक बाधाएँ देख कर हिंसा प्रधान को नष्ट करने के निमित्त एवं प्राकृतिक विधान की अवमानना न करने के उद्देश्य से बुद्ध का अवतार लिया ।२६।

अधुना कलिकुलनाशावतारो बौद्धपाखण्डम्लेच्छादीनाञ्च वेद-
पथप्रत्यर्थिनामनाय कृपावतारः कल्किरूपेणास्मान् स्वी-
करिष्यसुद्धृतवानसि नवानुकम्पां किमिह कथयामः ।३०।
यद् ते ब्रह्मादीनामविदितविलासावतरणा
वय न कामो वामा कृपणमृगतृष्णामयनसाम् ।
अनुत्ताप्य युष्मच्छरण जनताना कतिविद
कृपापारावारः प्रमुदितदृशास्वाश्य निजान् ।३१।

अब आप कलियुग को नष्ट करने तथा बौद्ध पाखण्डियों और म्लेच्छों का शासन करने के लिये कल्कि अवतार लेकर वेद धर्म रूपी सेतु की रक्षा कर रहे हैं। आपने ही स्वीकार करके हमारा उद्धार किया है। हम आपकी इस कृपा का वर्णन किस प्रकार करें? ।३०। ब्रह्मादि देवता भी आपकी लीला का जानने में समर्थ नहीं हैं। आपका अवतार विषयक कोई कामना नहीं रहती। हम स्त्रियों के देखने ही काम-बाण के द्वारा विषय रूप मृगतृष्णा में मग्न हुए सांसारिक विषयी प्राणियों के लिये आपके चरणारविन्दों का दर्शन दुर्लभ था। हे करुणा सागर प्रभो! इन अनुगामियों की ओर प्रसन्न एक बार अपनी कृपा कटाक्ष करके हमें आश्वासन दीजिये ।३१।

—०—

सोऽप्यनन्तो मुनिवरस्तीर्थपादो बृहद्व्रतः ॥६॥
कल्केर्दर्शनशो मुक्तिमाकलय्यागतस्त्वरन् ।
समागत्य पुनः प्राह किं करिष्यामि कुत्र वा ।
यास्यामीति वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह हसन्मुनिम् ।७।
कृतं दृष्टं त्वया ज्ञातं सर्वं याह्यनिवर्त्तकम् ।
सदृष्टमकृतस्येति श्रुत्वा हृष्टमना मुनिः ।८।
गमनायोद्यतं तं तु दृष्ट्वा नृपगणास्ततः ।
कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोचुर्विस्मितचेतसः ।९।

(यह सुन कर कल्कि जी ने अनन्त मुनि का स्मरण किया) यह जान कर महातपस्वी एवं दीर्घ काल से तीर्थ में निवास करने वाले मुनिवर अनन्त, कल्किजी के दर्शन से अपनी मुक्ति समय समझ कर शीघ्र ही वहाँ आ उपस्थित हुए । उन्होंने भगवान् कल्कि के पास आकर पूछा—मुझे क्या करना है ? कहाँ जाना है ? यह सुन कर कल्कि जी हँस कर मुनि से बोले ।६। हे मुने ! आपने मेरे सब किये हुए कर्म देखे हैं । अदृष्ट को कोई काट नहीं सकता और कर्म के बिना फल भी नहीं मिल सकता । यह सुन कर मुनि को प्रसन्नता हुई ।८। और फिर जब मुनि वहाँ से जाने लगे, तब उन्हें देख कर आश्चर्य चकित हुए राजागण कल्किजी से बोले ।९।

किमनेनाति कथितस्त्वया वा किमुताच्युत ।
गतं सन्द्रोनुमिवक्षामः कथोपकथनं द्वयोः ।१०।
नृपाणां वचनं श्रुत्वा तानाह मधुसूदनः ।
पृच्छध्वमु मुनिं चास्य कथोपकथनादृताः ।११।
इति कल्केर्वचो भूयः श्रुत्वा ते नृपसत्तमाः ।
अनन्तमाहुः प्रणताः प्रश्नवारतिकौतुकाः ।१२।
मुने ! किमत्र कथनं कल्किना धर्मवर्मणा ।
दुर्बोधः येन वा जातस्त्वं यत्तं न प्रभो ! ।१३।

मुझे इस प्रकार का उत्पन्न हुआ देख कर मेरे माता-पिता को बड़ा दुःख हुआ। मेरी आकृति निन्दा योग्य थी। यह देख कर दुःख, शोक और भय से व्याकुल हुए पिताजी शिव वन में जाकर धूप, दीप, गंध आदि से विधिवत् पूजन करके शिवजी की स्तुति करने लगे।१६ १७। उन्होंने कहा—हे शिव! हे शान्त स्वरूप! आप सब लोकों के नाथ और भूतों को पावन स्थान हैं। आपके अङ्ग में वासुकी नाग और जटा जाल में गंग तरंग सुशोभित है। आप आनन्द भंडार के दाता शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।१८। कल्याण के दाता भगवान् शंकर इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर वृषभारूढ़ होकर प्रकट हुए और उन्होंने मेरे पिता को वर मांगने की आज्ञा दी।१९। तब मेरे पिता विद्रुम मुनि ने उनसे कहा—हे नाथ! मेरा पुत्र पुरुषत्वहीन है, इससे मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। तब शिवजी ने हँस कर मेरे पुरुषत्व युक्त होने का वर दिया और पार्वतीजी ने भी उनकी बात का अनुमोदन किया।२०।

मम पुंस्त्वं वरं लब्ध्वा पितायातः पुनर्गृहम्।
पुरुषं मां समालोक्य सहर्षः प्रियया सह।२१।
ततः षोडशे तौ तु पितरौ द्वादशाब्दके।
विवाहं मे कारयित्वा बन्धुभिर्मुदमापतुः।२२।
यज्ञरातसुतां पत्नीं मानिनीं रूपशालिनीम्।
प्राप्याहं परितुष्टात्मा गृहस्थः स्त्रीवशोऽभवम्।२३।
ततः कतिपये काले पितरौ मे मृतौ नृपाः।
पारलौकिककार्याणि सुहृद्भिर्ब्राह्मणैः सह।२४।
तयोः कृत्वा विधानेन भोजयित्वा द्विजान्बहून्।
पित्रोर्वियोगसन्तप्तोऽहं विष्णुसेवापरोऽभवम्।२५।

मेरे पुरुष होने का वर प्राप्त कर पिताजी घर लौट आये और तब मुझे पुरुषाकार हुआ देख कर माता के सहित वे बड़े प्रसन्न हुए।२१। फिर जब मैं बारह वर्ष का होगया, तब उन्होंने बन्धु-बान्धवों सहित मोद मनाते हुए मेरा विवाह कर दिया।२२। यज्ञरात की पुत्री को

अपनी भार्या के रूप में प्राप्त करके मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके उस प्रसन्न रूपवती एवं मानवी स्त्री के वशीभूत हो गया।२३। फिर कुछ काल बीतने पर मेरे माता-पिता मर गये तब मैंने अपनी सुहृदों और ब्राह्मणों के साथ उनका पारलौह संस्कार किया।२४। माता-पिता का मृतक संस्कार करके मैंने अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराया। फिर उनके विरह से दुःखी होकर मैंने भगवान् विष्णु की आराधना की।२५।

तुष्टो हरिर्मे भगवाञ्जप पूजादिकर्मभिः।
स्वप्ने मामाह मायेयं स्नेहमोहविनिर्मिता।२६।
अयं पितेयं मातेति ममताकुलचेतसाम्।
शोकदुःखभयोद्वे गजरामृत्युविधायिका।२७।
श्रुत्वेति वचनं विष्णोः प्रतिवादार्थमुद्यतम्।
मामालक्ष्यान्तर्हितः स विनिद्रोऽहमभवम्।२८।
सविस्मयः सभार्य्योऽहं त्यक्त्वा तां पुरिकां पुरीम्
पुरुषोत्तमाख्यं श्रीविष्णोरालयमागमं नृपाः!।२९।
तत्रैव दक्षिणे पार्श्वे निर्माय्याश्रममुत्तमम्।
सभार्य्यःसानुगामात्यः करोमि हरिसेवनम्।३०।

मेरे जप, पूजन आदि कर्म से प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु ने एक दिन स्वप्न में मुझसे कहा कि स्नेह, मोह आदि सब मेरी ही माया है।२६। यह मेरे पिता है, यह मेरी माता है' ऐसी ममता जिनके चित्त को व्याकुल करती हो तो समझ लो कि इन शोक, दुःख, भय, उद्वेग, वृद्धावस्था और मृत्यु आदि के क्लेश रूप का कारण मेरी माया ही है।२७। भगवान् की वाणी सुन कर मैं जैसे ही प्रतिवाद करने को हुआ, वैसे ही वे अन्तर्धान होगये और मेरी नींद टूट गई।२८। हे राजाओ! फिर मैं विस्मय में भर कर पुरिका नामक उस पुरी को छोड़ कर अपनी पत्नी के सहित पुरुषोत्तम संज्ञक विष्णुधाम में जा पहुँचा।२९। उस पुरुषोत्तम धाम के

दक्षिण भाग में सेतु आश्रम स्थान में अपनी पत्नी और अनुगामियों के सहित हरि-सेवा में तत्पर हो गया ॥३०॥

मायासन्दर्शनाकाङ्क्षी हरिसद्मनि संस्थितः ।
ध्यायन्नारायणं नाम विस्मयन्नद्भुतं पदम् ॥३१॥
एवं वृत्ते द्वादशाब्दे द्वादश्यां पारणादिने ।
स्नानार्थमगमं सिन्धुं बन्धुभिः सहितो मम ॥३२॥
तत्र स्नाने जलनिधौ महाकल्लोलसंकुले ।
समुद्रस्याभ्यन्तरे मां प्रकुर्वन्ति जलेचराः ॥३३॥
निमज्जनोन्मज्जनेन व्याकुला कृतचेतनम् ।
जलाहतं तोयमिश्रं नदितान्तमचेतनम् ॥३४॥
जलधेर्दक्षिणे कूले पतितं पवनाहतम् ।
स तत्र पतितं दृष्ट्वा वृद्धशर्मा द्विजोत्तम ॥३५॥
गन्धद्यामुपचार्य सभृत्यः स्वपुरं मां समानयत् ।
स वृद्धशर्मा धर्मात्मा पुत्रदारधनान्वितः ।
दृष्ट्वा दयावान् मां तत्र पुत्रवत्पर्यपालयत् ॥३६॥

भगवान् के उस धाम में रहता हुआ प्रभु माया का दर्शन करने की कामना से मैं नारायण, वामन तथा उन पूर्वक वन का भय दूर करने वाले भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगा ॥३१॥ इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत होगए। एक दिन द्वादशी का पारण था, तब मैं स्नान करने के विचार से अपने बन्धुओं सहित समुद्र के तट पर पहुँचा ॥३२॥ जैसे ही गोता लगाया, वैसे ही मैं समुद्र की भयंकर तरंगावलि से व्याकुल हो गया। मुझमें उठने की शक्ति नहीं रही। अनेक जलचर जीव मुझे व्यथित करने लगे ॥३३॥ मैं कभी उतराता था, कभी डूबता, इसलिये विकल बड़ा व्याकुल हुआ। जल की लहरों के थपेड़ों से निश्चेष्ट हुआ मैं अचेत हो गया ॥३४॥ फिर मैं वायु की प्रेरणा से बहता हुआ समुद्र के दक्षिण किनारे पर पड़ गया। मुझे अचेत अवस्था में पड़ा देख कर वृद्ध शर्मा

नामक एक ब्राह्मण सन्ध्योपासन से निवृत्त हो कर मुझे अपने घर ले गये। स्त्री पुत्रादि से युक्त, धनवान् एवं धर्मात्मा वृद्ध शर्मा मुझे स्वस्थ करके पुत्र के समान पालने लगे ॥३५-३६॥

अहन्तु तत्र दीनात्मा दिग्देशाभिज्ञ एव न ।
दम्पती तौ स्वपितरौ मत्वा तत्रावसं नृपाः ।३७।
स मां विज्ञाय बहुधा वेदधर्म्मेष्वनुष्ठितम् ।
प्रददौस्वां दुहितरं विवाहे विनयान्वितः ।३८।
लब्ध्वा चामीकराकारा रूपशीलगुणान्विता ।
नाम्ना चारुमती तत्र मानिनी विस्मितोऽभवम् ।३९।
तयाहं परितुष्टात्मा नानाभोगसुखान्वितः ।
जनयित्वं पञ्चपुत्रान्समदेनावृतोऽभवम् ॥४०॥

हे राजाओ ! उस स्थान पर रहते हुए मुझे दिशा और देश का भी ज्ञान न रहा, इसलिए दुःखित हृदय से उन ब्राह्मण दम्पत्ति को ही अपना माता-पिता मानता हुआ, वहीं रहने लगा ।३७। उन ब्राह्मण ने मुझे [illegible] प्रकार से वेद-धर्म का अनुष्ठाता जान कर विनय पूर्वक अपनी कन्या का दान कर दिया ।३८। उस तप्त स्वर्ण जैसे वर्ण वाली,रूप,शील और गुण से युक्त कन्या का नाम चारुमती था। उस मानिनी को भार्या रूप में प्राप्त कर मैं विस्मय में पड़ गया ।३९। उस रमणी ने मुझे सेवा द्वारा सदा सन्तुष्ट रखा और मैं उसके साथ विभिन्न प्रकार के सुखों का उपभोग करने लगा। उससे मेरे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए और निरन्तर मेरे सुख की वृद्धि होने लगी ।४०।

जयश्च विजयश्चैव कमलो विमलस्तथा ।
बुध इत्यादयः पंच विदितास्तनया मम ।४१।
स्वजनैर्बन्धुभिः पुत्रैर्जनैर्नानाविधैरहम् ।
विदितः पूजितो लोके देवैरिन्द्रो यथा दिवि ।४२।
बुधस्य ज्येष्ठपुत्रस्य विवाहार्थं समुद्यतम्।

दृष्ट्वा द्विजवरस्तुष्टो धर्मसारो निजां सुताम् ।४३।
दिदेशु. कर्माणि वेदज्ञसत्काराभ्युदयान्यपि ।
वाद्यगीतैश्च नृत्यैश्च स्त्रीगणैः स्वर्णभूषितैः ।४४।
अहं च पुत्राभ्युदये पितृदेवर्षितर्पणम् ।
कर्तुं स मुद्रवेलायां प्रविष्ट परमादरात् ।४५।

मेरे पाँच पुत्र जय, विजय, कमल, विमल, और बुध इत्यादि नामों से जाने गये ।४१। मैं स्वजनों और पुत्रों से युक्त तथा विविध प्रकार के धनों का स्वामी होकर इन्द्र के समान पूजनीय तथा प्रसिद्ध होगया ।४२। जब मैंने अपने ज्येष्ठ पुत्र बुध का विवाह करने का विचार किया तब धर्मसार नामक एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या देने की इच्छा प्रकट की । फिर हमने अपनी कन्या का वैवाहिक संस्कार करने के लिए वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुला कर आभ्युदयादि कर्म को पूर्ण कराया। उस समय स्वर्णाभूषणों से विभूषित स्त्रियाँ वाद्य, गीत और नृत्य कर रही थीं ।४३-४४। तब मैं भी पुत्र के अभ्युदय की अभिलाषा करके पितर, देवता और ऋषियों का तर्पण करने के लिए समुद्र के किनारे गया ।४५।

वेलालोनाभिततनुजलाद्गुत्थाय सत्वरः ।
तीरे त्वांन्स्नानसन्ध्या-परान्वीक्ष्याहमुन्मनाः ।४६।
सद्यः सममथ भूपा ! द्वादश्यां पारणाहृतान् ।
पुरतोऽसतसखाहानिष्णु सेवार्थमुत्थतान् ।।४७।।
तेऽपि मामग्रतः कृत्वा तट एवमसा निधिम् ।
विस्मयाविष्टमनस दृष्ट्वा मामय वृत्तजनाः ।४८।
अनन्त ! विष्णुभक्तोऽसि जने किं दृष्टवानिह ।
स्वप्ने वा भ्रममनस महायामः कथ इव ।४६।
पाणौ कुरु तद्रूह हि तवन्या विस्मयमाश्रमः ।
तानवृवमहं नैव किञ्चिद्दृष्ट श्रुत जनाः ।५०।
मामारमा तातृपणपोर्माया सन्दर्शनाद्गतः ।

तथा हरेर्माययाहं मूढो व्याकुलितेन्द्रियः ।५१।

जब मैं स्नान — तर्पणादि से निवृत्त होकर जल से निकल कर तट की ओर चला, तभी देखता हूँ कि मेरे पहिले के सभी बंधु बांधव सन्ध्यादि कर्म कर रहे हैं। यह देख कर मेरा मन उद्विग्न हो उठा ।४६। हे राजाओ ! पुरुषोत्तम धाम में रहने वाले उन ब्राह्मणों को भगवान् विष्णु की सेवा एवं द्वादशी के पारण में तत्पर देख कर मैं चकित हुआ ।४७। मेरे रूप और वय में पहिले से कुछ भी परिवर्तन न हुआ देख कर और मुझे विस्मयपूर्वक अपने को देखता देख कर उन्होंने कहा ।४८। हे भगवन्त ! तुम विष्णु भक्त हो। क्या तुमने जल अथवा स्थल में कहीं कुछ ऐसा दृश्य देखा है, जिससे इतने व्यग्रचित्त दिखाई दे रहे हो ? ।४९। यदि कुछ देखा हो तो बताओ और विस्मय को छोड़ कर धारण करो। यह सुन कर मैंने कहा— मैंने कहो [redacted] जो वही देखा-सुना । परन्तु मैं काम से मोहित होकर दुर्बल हृदय हो गया हूँ। मैं भगवान् श्रीहरि की माया से ही विमूढ और व्याकुल इन्द्रिय वाला हो रहा हूँ ।५०-५१।

न शर्म्म वेद्मि कुत्रापि स्नेहमोहवशं गतः ।
आत्मनो विस्मृतिरियं को वेद विदितां तु ताम् ।५२।
इति भार्य्या धनागार-पुत्रोद्वाहानुरक्तधीः ।
धनार्थोऽहं दीनमना न जाने स्वापसम्मितम् ।।५३।।
मां वीक्ष्य मानिनी भार्य्या विवशं मूढवत्स्थितम् ।
क्रन्दन्ती किमहोऽकस्मादालपन्ती समागता ।५४।
इह तां वीक्ष्य तास्तत्र स्मृत्वा कातरमानसम् ।
हसोऽप्येको वीक्षयितुमागतो मां सदुक्तिभिः ।५५।
धीरो विदितसर्व्वार्थः पूर्णः परमधर्म्मवित् ।५६।
सूक्ष्माकार तत्त्वसार प्रशान्त दान्त शुद्ध लोकशोकक्षयि-
ष्णु म् । समाग्रे त पूजयित्वा मदङ्गाः पप्रच्छुस्ते मच्छ्रुश्या-
नकामाः ।५७।

मैं स्नेह और मोह के वशीभूत होकर आत्मविस्मृति को प्राप्त हुआ हूँ, परन्तु इस बात को कौन जानता है? ।५२। इस प्रकार मैं भार्या, धन के भण्डार और पुत्र के विवाहादि में अत्यन्त अनुरक्त होकर और दुःख में दुःखी हो गया। मैं सोचने लगा कि मैं वस्तुतः कौन हूँ? परन्तु कुछ भी नहीं समझ पाया। सभी विषय स्वप्न के समान लगने लगे ।५३। तभी मेरी मानिनी पत्नी मुझे उस विवश और मूढ़ के समान अवस्था में देख कर मेरे पास आकर रोती हुई चिल्लाने लगी कि हा, यह क्या हुआ! ।५४। वहाँ अपनी पूर्व भार्या को इस प्रकार देख कर और फिर उन स्त्री-पुरुषों का स्मरण करके अत्यन्त कातर हृदय तथा सन्तप्त हो उठा। तभी एक वीर, सर्वज्ञानी, पूर्ण चन्द्र सूर्य के समान तेजस्वी, सतोगुणी, शान्त शुद्ध तथा संसार-शोक का नाश करने में समर्थ परमहंस मुझे ज्ञान देने के निमित्त वहाँ पधारे। तभी मेरे बांधवों ने उनका पूजन किया और मेरे कल्याण का उपाय पूछने लगे ।५५-५७।

—✲—

पंचम अध्याय

उपविष्टे तदा हंसे भिक्षां कृत्वा यथोचिताम् ।
तत: प्राहुरनन्तस्य शरीरारोग्यकाम्यया ।१।
हंसस्तेषां मतं ज्ञात्वा प्राह मां पुरत: स्थितम् ।
तव चारुमती भार्या पुत्रा: पंच बुधादय: ।२।
धनरत्नान्वित सद्म सम्बाध सौख्यसंकुलम् ।
त्यक्त्वा कदागतोऽत्रेह पुत्रोद्वाहदिने न तु ।३।
समुद्रतीरसञ्चार: पुराद्धर्म्मजनादृत: ।
निमन्त्र्य मामिहायात: शोकसंविग्नमानस: ।४।
त्वञ्च सप्ततिवर्षीयस्तत्र दृष्टो मया प्रभो ! ।
त्रिशद्वर्षीयवत्कस्मादिति मे संभ्रमो महान् ।।५।।

सुमजी बोले — यथोचित भिक्षा प्राप्त करके परमहंस जब विराजमान हुए, तब पुरुषोत्तम तीर्थ के निवासियों ने उनसे पूछा कि अनन्त का शरीर रोग-रहित कब होगा ? ।१। परमहंस उनके प्रश्न का तात्पर्य जान कर और मुझे अपने सामने स्थित देख कर बोले — हे अनन्त ! तुम अपनी पत्नी चारुमती,बुधादि पाँचों पुत्र धन-रत्नादि से युक्त भवन आदि को त्याग कर यहाँ कब आये ? क्या आज तुम्हारे पुत्र का विवाह-दिवस है ? ।२-३। मैं आज भी तुम्हें इस समुद्र तट पर घूमते देखता हूँ । यहाँ के सभी धार्मिक व्यक्ति तुम्हारा आदर करते हैं । मैं भी आज निमन्त्रित हूँ । परन्तु तुम यहाँ आकर शोक से सन्तप्त हो रहे दिखाई देते हो ।४। हे प्रभो ! वहाँ तो तुम सत्तर वर्ष के वृद्ध थे, परन्तु

यहाँ तीस वर्ष के युवक कैसे दिखाई दे रहे हो ? ।५।

इयं भार्या सहाया ते न मयालोकिता क्वचित् ।
अहं वा क्व कुतस्तस्मात्त्वं वा कथमिहागतः ।६।
स एव वा न वापि त्वं नाहं वा भिक्षुरेव सः ।
आवयोरिह संयोगश्चेन्द्रजाल इवाभवत् ।७।
त्वं गृहस्थः स्वधर्मज्ञो भिक्षुकोऽहं परात्मकः ।
आवयोरिह संवादो बालकोन्मत्तयोरिव ।८।
तस्मादेतस्य मायैव त्रिजगन्मोहकारिणी ।
ज्ञानाप्राप्याद्वैतलभ्या मन्येऽहमिति भो द्विज ! ।९।

तुम्हारी इस महाप्रिया भार्या को मैंने कहीं कभी भी नहीं देखा। मैं भी यह नहीं जानता कि मैं इस स्थान पर कहाँ से और किस प्रकार आ गया ? तथा मुझे यहाँ कौन लाया है ? ।६। क्या तुम वही मनुष्य हो या और कोई हो ? मैं भी वही भिक्षुक हूँ या कोई अन्य हूँ ? यहाँ मेरा तुम्हारा मिलन तो इन्द्रजाल के समान ही प्रतीत होता है ।७। तुम अपना धर्म का पालन करने वाले गृहस्थ हो और मैं परमार्थ चिन्तक भिक्षुक । यहाँ हम तुम दोनों का पारस्परिक संवाद एक बालक और उन्मत्त के संवाद के समान निरर्थक है ।८। हे द्विज ! इससे मैं समझता हूँ कि यह भगवान की त्रैलोक्य मोहिनी माया है। इस माया का रहस्य साधारण ज्ञान से नहीं, अद्वैत बुद्धि से ही समझा जा सकता है ।९।

इति भिक्षुं समाश्वास्य पद्मनाभ्राह विस्मितः ।
मार्कण्डेय ! महाभाग ! शृणुष्व कथयामि ते ।।१०।
अन्तरे या त्वया दृष्टा पुरुषस्योदराम्भसि ।
सा माया मोहजनिका पद्मानां शशिका यथा ।।११।
तथैव ग्रामनगरा लोकालोकसमाश्रयो
यथेदमखिलं लोकमनुगता धरण्यामिवम् ।।१२।
सर्वे लोके त्रिजगति यत्र जन्मान्तरो गतः ।
निराशो निरालोके सिसृक्षुरभवत् परः ।।१३।

गावो यथा नस्ति प्रोता गुणबद्धाः सगा इव ।१६।
ता मायां गुणमय्यां ये वितीर्यन्ति मुनीश्वराः ! ।
सवन्तो वासनाजालं स एवार्थविदो भुवि ।२०।

अहंकार से प्रबल त्रिगुण-मय पञ्चतन्मात्र प्रकट हुआ। पंचतन्मात्र से पञ्चमहाभूत हुए। इस प्रकार प्रकृति में पुरुष के अधिष्ठान करने से ही सृष्टि का उदय होता है।१६। फिर देवता, दानव, मनुष्य तथा स्थावर जीव पर्यन्त जितने भी जन्म लेने वाले और मरणधर्मा प्राणी हैं, वे सब उत्पन्न होते हैं।१७। ईश्वर की माया के वश में पड़े रहने से सभी जीव सांसारिक कार्यों में लिप्त रहे आते हैं तथा उससे उद्धार का प्रयास नहीं कर पाते।१८। अहो, यह माया कैसी प्रबल है, जिसके वश में ब्रह्मादि देवता भी नाथे हुए बैल और डोरी से बांधे हुए पक्षी के समान नाचते रहते हैं।१६। जो मुनिवर इस प्रकार के वासना रूपी जाल को उल्लंघि-त्री गुणमयी माया से मुक्त होने का उपाय करते हैं, उन्हीं अर्थवेत्ता का जन्म सार्थक समझो।२०।

मार्कण्डेयो वसिष्ठश्च वामदेवादयोऽपरे ।
श्रुत्वा गुरुवचो भूप विमाहु. श्रवणादृताः ।२१।
गङ्गानोऽलम्बवचनमिति श्रुत्वा सुधोपमम् ।
किं [illegible] प्राहुरहो सूत ! भविष्यन्निह वर्णय ।२२।
इति तद्वच आकर्ण्य सूतः सरहस्य स पुनः ।
कथयामास कात्स्न्येन मोहमोहविनाशनम् ।२३।
तपस्वन्तो भृगमणे, पृष्ट प्राह कृतादरः ।
तपसा मोहनिधनमिन्द्रियाणाञ्च निग्रहम् ।२४।
मनोऽन्यनमासाद्य तत्र कृत्वा विधानतः ।
नेन्द्रियाणां न मनसो निग्रहोऽभूदहो तपन ।२५।

शौनक बोले— हे महान् ! मार्कण्डेय, वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्यान्य मुनियों ने परमहंस के वचन सुन कर क्या कहा था ? तथा प्रकार के [illegible] उपदेश को सुनने वाले महात्माओं ने माया के सुख में प्रकार

वचन सुन कर क्या कहा ? यह सभी भविष्य-वार्ता हमें सुनाइये ।२१-२२। यह सुन कर सूतजी शोक-मोह का नाश करने वाली एवं ज्ञानमयी उस वार्ता को वह फिर पुनः कहने लगे ।२३। सूतजी ने कहा—फिर उन राजागण के जिज्ञासा करने पर भगवान ने तपस्या के द्वारा माया का निवारण और इन्द्रियों के निग्रह का प्रसंग कहा ।२४। ॥ बोला—मैं वन में पुन आकर विधिवत् तप करने लगा, और भी अपनी इन्द्रियों और मन का निग्रह नहीं कर पाया ।२५।

वने ब्रह्म ध्यायतो मे भार्यापुत्रधनादिकम् ।
विषयचाल्नरा मनस्यस्मारयन्ति मे मनः ।२६।
तेषां स्मरणमात्रेण तु महाशोकभयादयः ।
प्रभवन्ति मम प्राणान्चारणा-व्यञ्जनात्मका ।२७।
मनोऽहं निर्विघ्नमतिरिन्द्रियगणस्य धामने ।
मनसो निग्रहन्तेन भविष्यति न संशय ॥२८॥
मतो मामिन्द्रियाणाञ्च निग्रह्यम्यचेतसम् ।
तदधिष्ठानृदेवाश्च दृष्ट्वा मत्पोषु रक्षसा ।२९।
इन्द्रियाणो मामथोचुर्मे मोऽक्रन्न । इति ते वय ।
दिव्य शाकंमयेतोऽपि-दन्द्रीन्द्रोपेन्द्रमित्रगाः ॥३०॥

मैं वन-मध्य ब्रह्म का ध्यान करने में तत्पर होकर, तब-तब ही मुझे स्त्री, पुत्र, धनादि को याद स्मरण हो जाती और मेरा ध्यान भंग हो जाता है । इस प्रकार स्त्री, पुत्र तथा धनादि का स्मरण होते ही मेरा अन्तःतया दुःख, शोक और भय आदि से व्याकुल हो जाता । इस प्रकार ध्यान में बाधा उपस्थित हो गई ।२७। [illegible] पुनः यह विचार करके कि इन्द्रिय-निग्रह से मन भी वश में हो जायगा, इन्द्रियों के निग्रह का ही प्रयत्न किया ।२८। ऐसा प्रयत्न करके जब मैं इन्द्रियों के दमन में तत्पर हुआ, तब इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता मेरे ओर ताकने लगे ।२९। तब दशों इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं ने साक्षात् प्रकट होकर मुझसे कहा—

हे नगराज! इन दिशा, वात, प्रचेता, अश्विद्वय, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र और मित्र देवता हैं।२०।

इन्द्रियाणां यदं देवास्तव देहे प्रतिष्ठिताः ।
नसाग्रकाण्डनभिन्नाशास्त्यान्तु मिहार्हसि ।२१।
न श्रेयो हि तवानन्त ! मनोनिग्रहकर्मणि ।
छेदने भेदनेऽस्माकं निधनम्वा गमिष्यसि ।२२।
अन्धानां बधिराणाञ्च विकलेन्द्रियजीविनाम् ।
वनेऽपि दिवसस्यैव मानसं लक्षयामहे ।२३।
जीवस्यापि गृहस्थस्य देहो गेहं मनोऽनुगः ।
बुद्धिर्भार्या तदनुगा वयमित्यवधारय ।२४।
कर्माधीनस्य जीवस्य मनो बन्धविमुक्तिकृत् ।
समारयन्ति सुखस्य महात्मनो यस्य मायया ।२५।

हम दस इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवगण तुम्हारे देह में स्थित हैं। हमको नगराज से भिन्न-भिन्न करना सर्वथा अनुचित है ।२१। इस प्रकार मन को वश करने के प्रयास से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। इन्द्रियों के छेदन-भेदन से सर्वथा असमर्थ हो जाओगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी ।२२। अन्धे, बहरे अथवा विकल इन्द्रियों वाले जीव भी निर्जन वन में वास करते हुए चिन्ताग्रस्त दिखाई देते हैं ।२३। जीव रूपी गृहस्थ का घर यह देह ही है तथा मन की अनुगता बुद्धि ही इसकी भार्या है। इस प्रकार हम सभी इस बुद्धि रूपी भार्या के ही अनुगत रहते हैं ।२४। सभी जीव अपने कर्म के वश में हैं। मोक्ष और बन्धन का कारण मन है। प्रभु-माया का अनुगत हुआ मन ही सब सुखी प्राणी को भवचक्र में डालता रहता है ।२५।

तस्मान्मनोनिग्रहार्थं विष्णुभक्तिं समाचरत ।
गुणमोक्षप्रदां नित्यं दाहिकां सर्वकर्मणाम् ।।२६।।
ईशार्द्रं तत्प्रसादस्य स्नेहाद् हरिभक्तिका ।
हिमवत्या जीवकोष-विनाशान्ते महामते ।।२७।

मुनिवर अनन्त के इन वचनों को सुन कर राजाओं ने भी उनके ही समान व्रतादि का अनुष्ठान किया और पद्मा सहित भगवान् कल्कि का पूजन करके निर्वाण-पदवी को प्राप्त हुए ।४२। शुक बोला—अनन्त की इस कथा के पढ़ने से अज्ञान रूपी अन्धकार दूर होता तथा भव-बाधा से छुटकारा होकर संसार-बन्धन से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।४३। जो धर्मात्मा पुरुष विष्णु की सेवा तत्पर रह कर भी वासना जनित भवसिन्धु में गोते लगाते रहते हैं, वे इस प्रसंग के द्वारा अभेद-ज्ञान स्वरूप उत्पन्न हुई तीक्ष्ण तलवार को धारण करके, हरि-भक्ति रूपी दुर्ग के आश्रय में स्थित हो काम, क्रोध लोभ, मोह, मद और मात्सर्य रूप अपने छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं ।।४४।।

—※—

पथं परि तापघ्नवातायनमनोहरान् ।६।
नानावनलतोद्यानसरोवापीसुशोभितः ।
शम्भलग्रामकस्त्वकेयंयेन्द्रस्यामरावती ।७।
कल्किस्तु सिंहलाद्द्वीपाद्बहिः सेनागणैर्वृतः ।
प्रयस्त्वा कारुमती कूले पाथोधेरकरोत्स्थितम् ।८।
बृहद्रथस्तु कौमुद्या सहितः स्नेहकातरः ।
पद्मया सहितायास्मै पद्मनाथाय विष्णवे ।९।
ददौ गजानामयुतं लक्षं मुख्यञ्च वाजिनाम् ।
रथानाञ्च द्विसाहस्रं दासीनां द्वे शते मुदा ।१०।
दत्त्वा वासांसि रत्नानि भक्तिस्नेहाश्रुलोचनः ।
तयोर्मुखालोकनेन नाशकत्किञ्चिदीरितुम् ।११।

हंस, सिंह, गरुड़ आदि की आकृति से युक्त अनेक प्रकार के गृह बनाये गये। अनेक भवनों में कई-कई मंजिल बनाई गईं और गर्मी का नाश करने के लिए मनोहर वातायन निर्मित किये गये ।६। विविध प्रकार के वन, लताओं से युक्त उद्यान, सरोवर और बावड़ी आदि से सुशोभित होने के कारण वह शम्भल ग्राम अमरावती के समान शोभा पाने लगा ।७। इधर भगवान् कल्कि सेना के सहित सिंहल द्वीप को कारुमती नगरी से निकल कर समुद्र तट पर आये ।८। वहाँ रानी कौमुदी के साथ राजा बृहद्रथ स्नेह से कातर हो गया और उसने पद्मा सहित पद्मनाभ को दस हजार हाथी, एक लाख घोड़े, दो हजार रथ, दो सौ दासियाँ और विविध प्रकार के वस्त्र-रत्नादि भक्ति सहित दिये और आँखों में स्नेह के आँसू भर कर अपनी पुत्री और जामाता को एकटक देखते रहे ।९-११।

महाविष्णुदम्पती तौ प्रस्थाप्य पुनरागतौ ।
पूजितौ कल्किपत्न्या निजकारुमती पुरीम् ।१२।
कल्किस्तु जलधेस्तीरे विसृज्य जनता ययौ ।
पारं जिगमिषुं दृष्ट्वा जम्बुकः स्तम्भिताऽभवत् ।१३।

जलस्तम्भपथालोक्य कल्किः सबलवाहनः ।
प्रययौ पद्मया गजोपरि श्रीनिकेतनः ।।१४।।
गत्वा पारं शुकं प्राह याहि मे शम्भलालयम् ।।१५।।

फिर राजा बृहद्रथ ने अपनी पुत्री और जामाता का पूजन कर उन्हें विदा किया और स्वयं अपनी कारुमती नगरी में लौट गया ।।१२।। फिर कल्किजी ने सेना के सहित समुद्र के जल में स्नान किया और तभी वहाँ एक मार्ग जम कर स्तम्भित हुए जल पर होता हुआ पार चला गया ।।१३।। जब कल्किजी ने जल को इस प्रकार स्तम्भित हुआ देखा तो वे अपनी सेना और वाहनादि के सहित समुद्र के जल पर चलते हुए पार हो गये ।।१४।। समुद्र के पार पहुँच कर उन्होंने शुक के प्रति कहा—हे शुक ! तुम शम्भल ग्राम स्थित मेरे घर पर जाओ ।।१५।।

विश्वकर्मकृतं यत्र देवराजाज्ञया बहु ।
सद्म सम्बाधमतुलं मत्प्रियार्थं सुशोभनम् ।।१६।।
तत्रापि पित्रोर्ज्ञातीनां स्वभिन्न श्रुत्वा यथोचितम् ।
यद्वाह्य ! विवाहादि सर्वं वक्तु त्वमर्हसि ।।१७।।
पश्चाद्यास्यामि पूर्णस्त्वं संस्वमादौ याहि शम्भलम् ।।१८।।
कल्केर्वचनमाकर्ण्य कीरो धीरस्ततो ययौ ।
आकाशगामी सर्वज्ञः शम्भलं सुरपूजितम् ।।१९।।
सप्तयोजनविस्तीर्णं चातुर्वर्ण्यजनाकुलम् ।
सूर्यरश्मिप्रतीकाशं प्रासादशतशोभितम् ।।२०।।

देवराज इन्द्र की आज्ञा से मेरा प्रिय करने के लिए वहाँ विश्वकर्मा ने अनेकों शोभा सम्पन्न भवनों का निर्माण किया है ।।१६।। तुम वहाँ जाकर मेरे माता-पिता और ज्ञाति बन्धुओं को मेरा कुशल समाचार देकर विवाहादि का प्रसंग उन्हें बताना ।।१७।। तुम आगे-आगे शम्भल ग्राम पहुँचो, मैं भी सेना सहित पीछे-पीछे आ रहा हूँ ।।१८।। कल्किजी के वचन सुन कर वह धीर शुक आकाश मार्ग से होता हुआ शीघ्र ही शम्भल ग्राम

में जा पहुँचा ।१९। सात योजन विस्तार वाले उस शम्भल ग्राम में चारों वर्ण निवास करते हैं। वहाँ सूर्य किरणों के समान चमचमाते हुए सैकड़ों प्रासाद सुशोभित हैं ।२०।

सर्वर्तुसुखदं रम्यं शम्भलं विह्वलोऽविशत् ।२१।
गृहाद्गृहान्तरं दृष्ट्वा प्रासादादपि चाम्बरम् ।
वनाद्वनान्तरं तत्र वृक्षाद्वृक्षान्तरं व्रजन् ।२२।
शुकः स विष्णुयशसः सदनं मुदितोऽव्रजत् ।
स गत्वा रुचिरालापैः कथयित्वा प्रियाः कथाः ।२३।
कल्केरागमनं प्राह सिंहलात्पद्मया सह ।२४।
ततस्त्वरान्वितो विष्णुयशाः समानाय्य प्रजाजनान् ।
विशाखयूपभूपालं कथयामास हर्षितः ।२५।

सब ऋतुओं में समान सुख देने वाले सुरम्य शम्भल ग्राम को देखते ही विह्वल हुए शुक ने उसमें प्रवेश किया। वह वहाँ एक घर से दूसरे में, प्रासाद के आगे से आकाश में, एक उद्यान से अन्य उद्यान में गया एवं वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर विचरने लगा ।२१-२२ इस प्रकार हर्ष-विह्वल शुक विष्णुयशा के घर में जाकर अपनी मधुर वाणी में उन्हीं सम्पूर्ण प्रिय कथा सुनाने लगा ।२३। पद्मा के सहित भगवान् कल्कि के आगमन का समाचार सुनाया ।२४। यह सुनते ही विष्णुयशा हर्ष से पुलकित हो उठे और उन्होंने विशाखयूप-नरेश आदि राजाओं और प्रजाजनों को यह सब समाचार सुना दिया ।२५।

स राजा कारयामास पुर-प्रासादि मण्डितम् ।
स्वर्णकुम्भैः सदम्भोभिः पूरितैश्चन्दनोक्षितैः ।२६।
कालागुरुसुगन्धाढ्यैर्दीपलाजाङ्कुरान्वितैः ।
कुसुमैः सुकुमारैश्च रम्भा-पूग-फलान्वितैः ।
शुशुभे शम्भलग्रामो विबुधानां मनोहरः ।२७।
स कल्किः प्राविशद्भीम-सेनायत्त-विमर्दनः ।

कामिनी-नयनानन्दमन्दिरांगः कृपानिधिः ।२८।
पद्मया सहितः पित्रोः पदयोः प्रणतोऽपतत् ।
सुमतिर्मुदिता पुत्रं स्नुषया सार्धं शचीमिव ।
ददर्श स्वर्गवत्यां पूर्णकामा दितिः सती ।२६।

तब विशाखयूप-नरेश ने चन्दन युक्त जल को स्वर्णकलश में भरवा कर नगर और ग्राम में उससे छिड़काव कराया ।२६। उस समय वह शम्भल ग्राम दीपमाला, पुष्पों, चमर आदि सुवासित द्रव्यों, कदली, पुंगीफल, नवीन किसलय, अक्षत तथा ताम्बूल आदि से समन्वित होकर देवताओं की पुरी के समान मनोहर दिखाई देने लगा ।२७। इसी प्रकार स्त्रियों के नेत्रों को आनन्द देने वाले भगवान् कल्कि अपनी सेना आदि के सहित ग्राम में प्रविष्ट हुए ।२८। भगवान् कल्कि ने पद्मा के सहित अपने माता पिता के चरणों में प्रणाम किया । जैसे इन्द्र और शची के प्रणाम करने पर अदिति को आनन्द हुआ था, वैसे ही सुमति भी अपने पुत्र और पुत्रवधू को देख कर पूर्ण मनोरथ एवं अत्यन्त हर्षित हुई ।२६।

शम्भलग्राम नगरी पताका ध्वज शालिनी ।
अवरोधसुजघना प्रासादविपुलस्तनी ।
मयूरचूचुका हंस-संघहारमनोहरा ।३०।
पटवासोद्गतधूमवसना कोकिलस्वना ।
सहासगोपुरमुखी वामनेत्रा यथाङ्गना ।
कल्किं पतिं गुणवती प्राप्य रेजे रमेश्वरम् ।३१।
स रेमे पद्मया तत्र वर्षपूगानजाश्रयः ।
शम्भले विह्वलाकारः कल्किः कल्कविनाशनः ।३२।
कवेः पत्नी कामकला सुषुवे परमोक्षितौ ।
बृहत्कीर्तिबृहद्बाहू महाबल पराक्रमौ ।३३।
प्राज्ञस्य सन्नतिर्भार्या तस्यां पुत्रौ बभूवतुः ।

यज्ञविज्ञौ सर्वलोकपूजितौ विजितेन्द्रियौ ।३४।
सुमन्त्रकस्तु मालिन्यां जनयामास शासनम् ।
वेगवन्तञ्च साधूनां द्वावेतावुपकारकौ ।।३५।।

शम्भल ग्राम नामक वह नगरी ध्वजा पताका से युक्त उन्नत प्रासादों वाली, मयूर, हंसादि से सुशोभिता, सुगन्ध-धूप-धूमना कोकिल के समान मधुरालाप युक्ता तथा कामिनी के समान सर्व प्रकार रम्य हुई थी। वह कल्किजी को पति रूप में प्राप्त कर परम-सौभाग्यवती हो गई ।३०-३१। वे धर्मात्मा, सर्वप्रिय रूप एवं कलि-विनाशक कल्किजी अनेक वर्ष तक शम्भल में रह कर पद्मा के साथ विहार करते रहे ।३२। तदनन्तर कवि की पत्नी कामकला ने दो पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम बृहत्कीर्ति और बृहद्बाहु हुए। यह दोनों यशस्वी बली और पराक्रमी थे ।३३। प्राज्ञ की भार्या सुमति ने जितेन्द्रिय और सर्वलोक पूजित यज्ञ और विज्ञ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ।३४। सुमन्त्र की पत्नी मालिनी ने शासन और वेगवान् नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। यह दोनों साधुजनों का उपकार करने वाले हुए ।३५।

ततोऽस्य कल्किश्च पद्मायां जयो विजय एव च ।
द्वौ पुत्रौ जनयामास लोकख्यातौ महाबलौ ।।३६।।
एवं परिवृतोऽमात्यैः सर्वसम्पत्समन्वितो ।
वाजिमेधविधानार्थं मुद्यतं पितरं प्रभुः ।।३७।
समीक्ष्य कल्किः प्रोवाच विशाखयूपमहीश्वरः ।
दिशां पालान्विजित्याहं धनान्याहृत्य तेऽच्युत ।३८।
कारयिष्याम्यश्वमेधं यामि दिग्विजयाय भो ।।३९।
इति प्रणम्य तं प्रीत्या कल्किः परपुरञ्जयः ।
सेनागणैः परिवृतः प्रययौ कीकटं पुरम् ।४०।

कल्किजी की पत्नी पद्मा ने जय, विजय नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। यह दोनों महाबली लोकों में प्रसिद्ध हुए ।३६। इस प्रकार उनका परिवार पुत्रवान् और सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न हो गया। फिर कल्कि

जी ने अपने पिता को अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान में ब्रह्माजी के समान
मानकर देखकर कहा—हे पिताजी ! मैं दिशाओं को जीत कर धन एकत्र
करूँगा, जिससे आपका अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होगा । अब मैं दिग्विजय
के लिए प्रस्थान करता हूँ ।३७-३९। शत्रु पुर पर विजय प्राप्त करने
वाले कल्किजी ने यह कह कर प्रसन्नतापूर्वक अपने पिता को प्रणाम
किया और सेना को साथ लेकर कीकटपुर की ओर चल दिये ।४०।

बुद्धालयं सुविपुलं वेदधर्मबहिष्कृतम् ।
पितृदेवार्चनाहीनं परलोकविलोपकम् ।४१।
देहात्मवादबहुलं कुलजातिविवर्जितम् ।
धनं स्त्रीभिर्भक्ष्यभोज्यं स्वपराभेददर्शिनम् ।४२।
नानाजनैः परिवृतं पानभोजनतत्परैः ।४३।
श्रुत्वा जिनो निजगणैः कल्केरागमनं क्रुधा ।
अक्षौहिणीभ्यां सहितः सम्बभूव पुराद्बहिः ।४४।
गजरथतुरगैः समावृता भूः कनकविभूषणभूषितैर्वराङ्गैः ।
शतशतरथिभिर्घृतास्त्रशस्त्रैः । ध्वजपटराजि-
निवारितातपोऽभूत् ॥४५॥

अत्यन्त विस्तार वाला कीकटपुर बौद्धों का निवास स्थान था ।
वहाँ रहने वाले व्यक्ति वैदिक धर्म तथा देवता और पितरों के अर्चन से
हीन और परलोक के न मानने वाले थे ।४१। वह लोग देहात्मवादी,
कुल धर्म और जाति धर्म के न मानने वाले तथा धन, स्त्री और भोज-
नादि में अभेद देखने वाले थे ।४२। पान एवं भोजन में ही व्यस्त रहने
वाले विविध प्रकार के मनुष्यों से ही नगर परिपूर्ण था ।४३। वहाँ के
अधिपति जिन ने जब युद्ध के अभिप्राय से सेना सहित कल्किजी का आग-
मन सुना तो वह अपनी दो अक्षौहिणी सेना को लेकर नगर से
बाहर आया ।४४। असंख्य हाथी, रथ, अश्व स्वर्ण के आभूषणों से
भूषित सैकड़ों रथी और शस्त्रास्त्रधारी वीरों से पृथिवी ढक गई । सेनाओं
के ध्वजों से धूप भी ढक गई ।४५।

—※—

द्वितीयांश—

सप्तम अध्याय

ततो विष्णुः सर्वजिष्णुः कल्किः कल्कविनाशनः ।
कालयामास तां सेनां करिणीमिव केसरी ॥१॥
सेनागनां तां रतिसंगरक्षतां रक्ताक्तवस्त्रां
विधृतोरुमध्याम् । पलायतीं चारुविकीर्णकेशां
विकूजतीं प्राह स कल्किनायकः ॥२॥
रे योद्धा ! मा पलायध्वं निवर्तध्वं रणाङ्गणे ।
युध्यध्वं पौरुषं साधु दर्शयध्वं पुनर्मम ॥३॥
जिनो हीनबलः कोपात्कल्केराकर्ण्य तद्वचः ।
प्रतियोद्धुं तुरगारूढः खड्गचर्मधरो ययौ ॥४॥
नाना प्रहरणोपेतो नानायुधविशारदः
कल्किना युयुधे वीरो देवानां विस्मयावहः ॥५॥

सूतजी बोले—जैसे सिंह हथिनी पर आक्रमण करता है, वैसे ही पाप का नाश करने वाले तथा सब विजेता कल्किजी ने उसकी सेना पर आक्रमण कर दिया ।१। युद्ध रुधिर रूपी वस्त्रों को धारण करने वाली विधुत सद कामना, बिखरे केश प्रलाप करती हुई अर्थात हाहाकार करती हुई, रति युद्ध में आहत नारी के समान भागने वाली उस सेना से कल्किजी ने कहा ।२। अरे योद्धो ! तुम इस युद्ध स्थल से [illegible] भागो । आओ, लौट आओ और अपना पौरुष दिखाने से पीछे न हटो ।३। कल्कि की बात सुन कर बल से हीन हुआ जिन क्रोध पूर्वक चर्म और तलवार लेकर युद्ध करने के लिए उनके सम्मुख आया ।४। विविध प्रकार के युद्धों में विशारद जिन कल्किजी से युद्ध करने लगा । उसका रणकौशल देख कर देवता भी आश्चर्य करने लगे ।५।

शूलेन तुरगं विद्धा कल्किं बाणेन मोहयन् ।
क्रोडीकृत्य द्रुतं भूमेर्नाशक्त्तोलना हतः ।६।
जितो विश्वम्भरं ज्ञात्वा कोपाकुलितलोचनः
चिच्छेदास्य तनुत्राणं कल्केः शस्त्रञ्च दासवत् ।७।
विशाखयूपोऽपि तथा निहत्य गदया जिनम् ।
मूर्च्छितं कल्किमादाय लीलया रथमारुहत् ।८।
लब्धसंज्ञस्तथा कल्किः सेवकोत्साहदायकः ।
समुत्तस्थ रथात्तस्य नृपस्य जिनमाययौ ।९।
शूलव्यथां विहायवाजी महासत्त्वस्तुरङ्गमः
जिनौघं मध्ये पादविक्षेपहननैर्मुहुः ।१०।
दन्ताघातैः सटाक्षेपैर्बौद्धसेनागणान्तरे ।
निजघान रिपून्कोपाच्छ्वसद्योऽश्व सहस्रशः ।११।

उसने अपने शूल से अश्व को बिद्ध कर दिया तथा बाण से कल्किजी को सम्मोहित कर अंक में भरने लगा, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली ।६। जिन ने कल्कि को विश्वंभर का ध्यान किया और क्रोध पूर्वक नत्रों से उन्हें बली के समान देखता हुआ, उसने उनके शस्त्रास्त्र और कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया ।७। यह देख कर विशाखयूप-नरेश ने अपनी गदा से जिन को आहत कर दिया और लीला पूर्वक मूर्च्छित हुए कल्किजी को लेकर रथ पर चढ़ गये ।८। जब उन्हें चेत हुआ, तब वे भक्तों को उत्साह देने वाले कल्किजी राजा के रथ से उतर कर जिन के सामने पहुँचे ।९। कल्किजी का अश्व भी शूल की वेदना को भूल कर युद्धभूमि में कूद पड़ा और घूमता हुआ पदाघात, दन्तापात, देहघात आदि के द्वारा बौद्ध सेना के हजारों वीरों को क्रोधपूर्वक मारने लगा ।१०-११।

निश्वाससवातैरुड्डीय केचिद्द्वीपान्तरेऽपतन् ।
हस्त्यश्वरथसंघाताः पतिता रणमूर्द्धनि ।१२।

गर्ग्यो जघ्नुः षट्छतं भर्ग्यः कोटिशतायुतम् ।
विशालास्तु सहस्राणां पञ्चविंश रणे त्वरन् ।।१३।
अयुते द्वे जघानाजौ पुत्राभ्यां सहितः कविः ।
दशलक्षं तथा प्राज्ञः पञ्चलक्षं सुमन्त्रकः ।।१४।
जिनं प्राह हसन्कल्किस्तिष्ठाग्रे मम दुर्मते ! ।
दैवं मां विद्धि सर्वत्र शुभाशुभफलप्रदम् ।।१५।

गज के भयङ्कर प्रहार से उड़ कर कोई-कोई वीर तो अन्य द्वीपों में जाकर गिर गये तथा कुछ वीर गज, अश्व एवं रथादि से टकरा कर युद्ध स्थल में ही धराशायी हो गये।१२। गर्ग्य ने अपने अनुगामियों को साथ लेकर बौद्धों की छः हजार सेना का संहार कर दिया। भर्ग्य और उनकी सेना ने दस हजार सेना मार दी तथा विशाल और उनकी सेना ने पच्चीस हजार सेना नष्ट कर डाली।१३। कवि और उनके दोनों पुत्रों ने बीस सहस्र सैनिक मार डाले। प्राज्ञ ने दस लाख और सुमन्त्रक ने पाँच लाख सेना का संहार कर दिया।१४। फिर जिन को भागता देख कर कल्कि ने हँस कर उससे कहा-अरे दुर्मते ! भाग कर मत जा। तू मुझे अदृष्ट स्वरूप एवं सभी शुभाशुभ कर्मों का देने वाला समझ कर मेरे सामने आ।१५।

मद्बाणजालभिन्नाङ्गो निःसङ्गो यास्यसि क्षयम् ।
न यावत्पश्य तावत्त्वं बन्धूनां ललितं मुखम् ।।१६।
कल्केरितीरितं श्रुत्वा जिनः प्राह हसन्बली ।
दैवं त्वदृश्यं शास्त्रे ते यथोऽयमुररीकृतः ।
प्रत्यक्षवादिनो बौद्धा वयं यूयं वृथाश्रमाः ।।१७।
यदि वा दैवरूपस्त्वं तथाप्यग्रे स्थिता वयम् ।
यदि भेत्तासि बाणौघैर्मन्ता बौद्धैः किमत्र ते ।।१८।
सोपालम्भं तदा स्यात्तु त्वयैवास्तु स्थिरो भव ।
इति बौद्धवचोजालैः कल्किर्धीरैः समाहृतः ।।१९।

ऊषर में बीज बोने पर भी अन्न उत्पन्न नहीं होता तथा अपात्रों को दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है, अथवा साधुजनों का अनिष्ट चाहने वालों की हरि-भक्ति फलवती नहीं होती, वैसे ही 'जिन' के सभी प्रश्न निष्फलता को प्राप्त हो गये ।२२। फिर कल्किजी ने उछल कर वृषभ पर पड़े हुए जिन के केश पकड़ लिए तथा दोनों ही पृथिवी कोपपूर्वक परस्पर वज्र-शिला के समान युद्ध में गुँथ गये ।२३। धरती पर गिरे हुए जिन ने भी अपने एक हाथ में कल्किजी के केश और दूसरे से हाथ पकड़ रखे थे ।२४। फिर जैसे चाणूर और श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध हुआ था, उसी प्रकार दोनों पृथवी से उठ कर परस्पर केश और हाथ पकड़ कर निरस्त्र उसी प्रकार लड़ने लगे, जैसे दो महाबली रीछ परस्पर में युद्ध करते हैं ।२५।

ततः कल्की महायोगी पदाघातेन तत्कटिम् ।
विभज्य पातयामास तालं मत्तगजो यथा ।२६।
जिनं निपतितं दृष्ट्वा बौद्धा हाहेति चक्रुशुः ।
कल्केः सेनागणा विप्रा जहृषुर्निहतारयः ।२७।
जिने निपतिते भ्राता तस्य शुद्धोदनो बली ।
पदाचारी गदापाणिः कल्किं हन्तुं द्रुतं ययौ ।२८।
कविस्तु [illegible] वागवदो परिवार्य समन्ततः ।
जगर्ज परवीरघ्नो गजमाकृष्य सिंहवत् ।२९।
गदाहस्तं समालोक्य कविं स धर्मवित्कविः ।
पदातिना गदापाणिस्त्वयो शुद्धोदनाग्रतः ।३०।

जैसे मदमस्त गजराज ताल के वृक्ष को उखाड़ कर धराशायी कर देता है, वैसे ही कल्किजी ने पदाघात करके जिन को कमर तोड़ कर उसे धरती पर गिरा दिया ।२६। हे विप्रो ! उसको धराशायी हुआ देख कर बौद्ध सेना हाहाकार कर उठी तथा शत्रु का संहार हुआ देख कर कल्कि सेना हर्षित हो गई ।२७। जिन को युद्ध स्थल में गिरा देखते ही उसका भाई बलवान् शुद्धोदन गदा लेकर कल्किजी को मारने के लिए

पैदल ही उन पर झपटा ।२८। हाथी पर सवार शत्रु-नाशक कवि ने शुद्धोदन को बाणों से ढक दिया और सिंहवत् गर्जन करने लगे ।२९। धर्मविद् कवि ने शुद्धोदन को गदा लिए पैदल ही युद्ध करते देखा तो वह भी पैदल ही उसके सामने जा डटे ।३०।

स तु शुद्धोदनस्तेन युयुधे भीमविक्रमः ।
गजः प्रतिगजेनेव दन्ताभ्यां सगदावुभौ ।३१।
युयुधाते महावीरौ गदायुद्ध विशारदौ ।
कृतप्रतिकृतौ मत्तौ नदन्तौ भैरवान्रवान् ।३२।
कविस्तु गदया गुर्व्या शुद्धोदनगदां नदन् ।
करादपास्याशु तया स्वया वक्षस्यताडयत् ।३३।
गदाघातेन निहतो वीरः शुद्धोदनो भुवि ।
पतित्वा सहसोत्थाय तं जघ्ने गदया पुनः ।३४।
सताडितेन तेनापि शिरसा स्तम्भितः कविः ।
न पपात स्थितस्तत्र स्थाणुवद्विह्वलेन्द्रियः ।३५।

जैसे हाथी शत्रु के हाथी से दाँतों के द्वारा युद्ध करता है, वैसे ही गदाधारी कवि और महापराक्रमी शुद्धोदन गदा-युद्ध में रत हो गए। युद्ध-मत्त दोनों वीर भयंकर शब्द करते हुए परस्पर गदाओं को रोकने लगे ।३१-३२। फिर सिंहनाद करते हुए कवि ने अपने गदाघात द्वारा शुद्धोदन की गदा गिरादी और फिर तुरन्त ही उसके हृदय पर गदापात किया ।३३। गदाघात को प्राप्त हुआ शुद्धोदन तुरन्त ही पृथिवी पर पड़ा तथा पुन. सहसा उठ कर उसने कवि पर गदापात किया ।३४। गदा लगने से कवि विकलेन्द्रिय और मूर्छित के समान खड़े हो गये, परन्तु पृथिवी पर गिरे नहीं ।३५।

शुद्धोदनस्तमालोक्य महासारं रथायुतः ।
आवृत तरसा माया-देवीमानेतुमाययौ ।३६।
यस्या दर्शनमात्रेण देवासुरनरादयः ।

निःसाराः प्रतिमाकारा भवन्ति भुवनाश्रया ।३७।
योद्धा शौद्धोदनाद्यास्ते कृत्वा तामग्रतः पुनः ।
योद्धुं समागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृताः ।३८।
सिंहध्वजोच्छ्रितरथा फेरु-काक-गणावृताम् ।
सर्वास्त्रशस्त्रजननी षड्वर्गपरिसेविताम् ।३९।
नानारूपा बलवती त्रिगुणव्यक्तिलक्षिताम् ।
माया निरीक्ष्य पुरतः कल्किसेना समापतत् ।४०।

तब शुद्धोदन ने कल्कि को अत्यन्त पराक्रमी और रथ-सेना से महान देख कर माया देवी के आह्वानार्थ तुरन्त ही वहाँ से प्रस्थान किया ।३६। जिस माया देवी का दर्शन करते ही देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सभी प्राणी जीव तेजहीन और प्रतिमा के समान निश्चेष्ट हो जाते हैं, उसी को साथ लेकर शुद्धोदन आदि बौद्धगण अपने करोड़ों म्लेच्छ वीरों के सहित रणस्थल में पहुँचे ।३७-३८। सिंहध्वजा वाले रथ पर माया देवी आरूढ़ हुई और उसने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र प्रकट किये। कौए और शृगाल तथा माया देवी को सब ओर से घेरे हुए थे तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—यह षड्वर्ग उसकी सेवा कर रहे थे ।३९। वह अनेक प्रकार के रूप-धारण में समर्थ, बलवती, त्रिगुणात्मिका माया देवी जैसे ही कल्कि सेना के समक्ष पहुँची, वैसे ही उसे देख कर कल्कि-सेना श्रीहीनता को प्राप्त हो गई ।४०।

निःसाराः प्रतिमाकाराः समस्ताः शस्त्रपाणयः ।४१।
कल्किस्तानालोक्य निजान्भ्रातृज्ञातिसुहृज्जनान् ।
मायया जायया जीर्णान्विभुरालोक्य सत्वरः ।४२।
तामालोक्य वरारोहां श्रीमान् हरिरीश्वरः ।
सा प्रियेव समालोक्य प्रविष्टा तस्य विग्रहे ।४३।
तामनालोक्य ते योद्धा वानर कल्किपा वराः ।
ददृशुः स्वपतिं देवा हृतिस्त्रबलवीरिणः ॥४४॥

पर तथा किरीट के अग्रभाग में विविध प्रकार की जड़ी हुई मणियाँ चमक रही थीं ।४८। कामिनियों के नयनों को आनन्द देने वाले रस के सदन रूप कल्किजी उस समय शत्रु-पक्ष को विक्षिप्त करने के उद्देश्य से उनकी ओर अट्टहास करने लगे ।४९। भक्तजन अपने भगवान् कल्किजी के चरणारविन्दों का दर्शन करके उत्कंठित हो उठे और धर्म-विद्वेषी कीकटगण भय से काँपने लगे ।५०।

जहृषु सुरसङ्घा ये यागाहुतिस्वादना ।५१।
सुबलमिलनहर्ष शत्रुनाशैकरूप समरवरविलास
साधुसत्कारकाश । स्वजनदुरितहर्ता जीवजातस्य
भर्ता रचयतु कुशलं वः कामपूरावतार ।५२।

यह देख कर आकाश में स्थित देवता कहने लगे कि अब युद्ध-भूमि रूपी यज्ञस्थल में स्थित अग्नि में पुनः आहुति डाली जाने को है ।५१। जो बलवानों में सुसज्जित सेनाओं को इकट्ठी करके शत्रुओं को नष्ट करने वाले शोभायुक्त संग्राम में तत्पर साधुओं के सत्कार-कर्त्ता, स्वजनों के दुःखों का विनाश एवं सब प्राणियों का पालन करने वाले हैं, वे सबों की अभिलाषा पूर्ण करने वाले भगवान् कल्किजी सब प्रकार कल्याण करें ।५२।

॥ द्वितीय अंश समाप्त ॥

रक्तपात से शोणित की नदी बह चली, जिसमें केश सिवार जैसे लगने लगे और शस्त्र रूपी मछ धार में प्रवाहित होने लगे ।५।

धनुस्तरङ्गा दुष्पारा गजरोधः प्रवाहिणी ।
शिरःकूर्मा रथतरिः पाणिमीनासृगापगा ।६।
प्रवृत्ता तत्र बहुधा हर्षयन्ती मनस्विनाम् ।
दुन्दुभेयरवा फेरुकुलानन्ददायिनी ।७।
गजैर्गजा नरैर्नरा रथैरश्वा रथै रथाः ।
निपेतुर्बाहुविच्छिन्नाङ्गा छिन्नबाह्वंघ्रिकन्धराः ।८।
भग्नना गुल्छिन्नमुखा रक्तवस्त्रा निषारता. ।
विकीर्णकेशा परितो ताडित शस्त्रधारिणो यथा ।९।
क्वचित् कोऽपि पलायन्ते यावन्त्यन्य जलं पुनः ।
कल्किसेनासुगक्षुण्णा म्लेच्छा नो शर्म लेभिरे ।१०।

उस शोणित नदी में धनुष तरंग के समान उछलने लगे, हाथी इस नदी में सेतु के समान लगते थे, कटे हुए शीश कछुओं के समान, रथ नाव के समान और कटे हुए हाथ मछली के समान दिखाई देते थे ।६। शोणित नदी के किनारे गीदड़ो और मांस पक्षियों की हर्ष ध्वनि दुन्दुभि की ध्वनि जैसी लगती था । उसे इस तरह मनस्वी लोग हर्षित हो रहे ।७। युद्ध क्षेत्र में हाथी सवार हाथी सवार से, अश्वारोही अश्वारोही से, ऊँट वाला ऊँट वाले से, रथ रथी से भिड़ा हुआ था । उस समय शत्रुओं के कट-कट कर हाथ, पाँव और मस्तक धरती पर गिर रहे थे ।८। बहुत से वीरों ने भयभीत होकर केवल वस्त्र धारण कर, भग्न रथा तथा विकीर्ण केश होकर शस्त्रों को त्याग कर और घाव कर भी पला-यन कर गए ।९। कोई-कोई विकल होकर भागा, कोई जल मांगता रहा । इस प्रकार कल्कि सेना के बाणों की मार से कोई म्लेच्छ और शत्रु न रहा ।१०।

स्त्रीणामेव युयुत्सूनां कथां श्रुत्वा महामतिः ।
कल्किः समुदितः प्रायात्स्वसैन्यैः सानुगो रथैः ।।१८।
ता समालोक्य पद्मेशः सर्वशस्त्रास्त्रधारिणीः ।
नानावाहनसंरूढाः कृतव्यूहा उवाच ह ।।१६।
हे स्त्रियः शृणुतास्माकं वचनं पथ्यमुत्तमम् ।
स्त्रिया युद्धेन किं पुंसां व्यवहारोऽत्र विद्यते ।२०।

वे म्लेच्छ स्त्रियाँ अपने पतियों को बाणों से बिंधे हुए तथा इधर देख कर उन्हें पीछे हटाती हुई हथियार लेकर कल्कि सेना से युद्ध करने लगीं ।१६। उन स्त्रियों को युद्ध में तत्पर देख कर कल्कि-सेना आश्चर्य में पड़ गई और उसने कल्किजी के समक्ष जाकर उन्हें सब वृत्तान्त सूचित किया ।१७। युद्ध की इच्छा वाली उन स्त्रियों का युद्ध करना सुन कर प्रसन्न हुए कल्किजी रथ पर चढ़ कर सेना और अनुचरों के सहित रणभूमि में पहुँचे ।१८। अनेक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित, अनेक प्रकार के वाहनों पर चढ़ी हुई, व्यूह रचना करके युद्ध में तत्पर उन स्त्रियों को देख कर कल्किजी बोले ।१६। कल्किजी ने कहा—हे स्त्रियो ! मैं तुम्हारे हितार्थ श्रेष्ठ वचन कहता हूँ, वह सुनो । स्त्रियों को पुरुषों के साथ युद्ध नहीं करना चाहिए ।२०।

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्राहस्य प्राहुरादृताः ।
अस्माकं ये पतीन् हन्ति तेन नष्टा वयं विभो ।।
किन्तु गतानामस्त्राणि कराण्येवागतान्युत ।२१।
खड्ग-शक्ति-धनुर्बाण-शूल-तोमर-पट्टिशः ।
ता प्राहुः पुनरा मूर्ता, कातरस्वरविभूषणाः ।२२।
यामाश्रित्य वय नार्यो हिंसायामः स्वतेजसा ।
तन्नारमन्तः सर्वमय जानान् क्रमनिश्चयात् ।२३।
तमीशमात्मना नार्यः ! परामो यदनुज्ञया ।
महता मायया दिव्येन विदिता वयम् ।२४।

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श-शब्दाद्या भूतपञ्चकाः ।
चरन्ति यदधिष्ठानात्सोऽयं कल्किः परात्मकः ।२१।

कल्किजी के वचन सुन कर म्लेच्छ-पत्नियाँ हँस पड़ी । उन्होंने कहा—हे विभो ! जब तुम्हारे द्वारा हमारे पति ही नाश को प्राप्त हो गये, [illegible] हम भी नष्ट हो चुकीं । यह कह कर वे नारियाँ कल्किजी को मारने को तत्पर हुईं । उन्होंने जो अस्त्र छोड़ने चाहे, वे अस्त्र उनके हाथों में ही रुके रह गये ।२१। खड्ग, शक्ति, धनुष-बाण, शूल, तोमर, ऋष्टि आदि शस्त्रास्त्रों के स्वरूप-अभिमानी देवता साक्षात् प्रकट हो कर उन म्लेच्छ-पत्नियों के प्रति बोले ।२२। देव रूपी अस्त्रों ने कहा—हे नारियो ! हम जिस तेज के द्वारा जीवों का संहार करते रहते हैं, वह तेज हमें जिनसे प्राप्त हुआ है, वह सर्वमय ईश्वर यही हैं, यह समझ लो ।२३। हे स्त्रियो ! हम इन्हीं परमात्मा की प्रेरणा प्राप्त कर गतिशील होते हैं तथा इनके द्वारा ही हम नाम-रूप को पाकर जाने जाते हैं ।२४। रूप, गन्ध, रस, स्पर्श तथा शब्दादि पञ्चगुण के आश्रय रूप पञ्चभूत जिनके अधिष्ठान से अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त रहते हैं, यह कल्किजी वही ईश्वर हैं ।२५।

कालस्वभाव-संस्कार-नामाद्या प्रकृतिः परा ।
यस्येक्षया सृजत्यण्डं महाहङ्कारकादिकान् ।२६।
य-मायया जगद्धात्री सर्गस्थित्यन्तसञ्ज्ञिता ।
य एवाद्यः स एवान्ते तस्यायः सोऽयमीश्वरः ।२७।
असौ पतिर्मे भार्याहमस्य पुत्राश्च बान्धवाः ।
स्वप्नोपमास्तु तन्निष्ठा विविधाश्चेन्द्रजालवत् ।२८।
स्नेहमोहनिबन्धानां यातायातदृशा मतम् ।
न कल्किसेविनां रागद्वेषविद्वेषकारिणाम् ।२९।
कुतः कालः कुतो मृत्युः क्व यमः क्वास्तिदेवताः
स एव कल्किर्भगवान्मायया बहुलीकृतः ।३०।

इन्हीं की आज्ञा से काल, स्वभाव, संस्कार तथा कर्म आदि की आश्रयभूता यह प्रकृति, महत्तत्त्व और अहंकार आदि को उत्पन्न करने में समर्थ होती है ।२६। सर्ग, स्थिति और प्रलयात्मक यह सम्पूर्ण विश्व जिनकी माया ही है, यह वही सबके आदि-रूप ईश्वर हैं । इनके द्वारा ही मोक्ष व शुभाशुभ का प्रवर्तन होता है ।२७। यह मेरा पति है और मैं इसकी भार्या हूँ, यह मेरा पुत्र अथवा बान्धव है । ऐसा स्वप्न अथवा इन्द्रजाल के समान विविध प्रकार के व्यवहार की उत्पत्ति इन्हीं के द्वारा होती है ।२८। स्नेह और मोहादि के बन्धन में पड़े रह कर जो प्राणी इस विश्व के आवागमन में रह जाते हैं अथवा जो राग, द्वेष एवं विद्वेषादि के आश्रय रहने वाले जीव तथा भगवान् अनन्त की सेवा में अनुराग न रखने वाले हैं, वही इस जगत को सत्य मानते हैं ।२९। कहाँ से आत्मा ? मृत्यु कहाँ से उत्पन्न हुई ? बन्ध तथा देवगण कौन हैं ? यह हरि के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं, यही अपनी माया के द्वारा बहुरूप हो गए हैं ।३०।

न ह्यस्यास्ति वय नार्थे समहार्यो न च कश्चित् ।
तस्य अहङ्कृभेदाऽपगमविवेक परात्मन ॥३१॥
चरित्रदासस्यापि वय हन्तु नाहो कपोतनुगम् ।
हरिण्यामी दृश्यते प्रह्लादस्य यथा हरिम् ॥३२॥
दयस्थालो वण धूर्ता स्त्रिया विस्मितमानसा ।
स्वर्हमाहविनिर्मुक्तान्वलिन् वारणा यथु ॥३३॥
ता समान्वाव पद्मया, प्रणता आर्तनिग्रया ।
प्रोवाच प्रणम्य भक्त्या च महमाजनानम् ॥३४॥

हे विष्णो ! हम स्वतन्त्र नहीं हैं, हम किसी पर अनुग्रह करने में भी समर्थ नहीं हैं । यही परमात्मा स्वतन्त्र हैं और यही अनुग्रह करने की शक्ति से सम्पन्न हैं । स्व और पर भेद प्रतीत होता है, वह सब इनकी माया ही है ।३१। वैश्रवण पुत्र की प्रार्थना पर जब भगवान् विष्णु

विष्णु पुरविष्ट रूप हुए थे, उस समय हम जैसे उन पर आघात करने में समर्थ नहीं हो सके थे, वैसे ही इन कल्किजी और उनके सेवकों पर भी आघात करने में पूर्णतया असमर्थ हैं।३२। अस्त्रों के यह वचन सुनकर स्त्रियां अत्यन्त विस्मित हुईं और सब ने स्नेह और मोह से युक्त होकर कल्किजी की शरण में पहुँचीं।३३। भगवान कल्कि म्लेच्छ-नारियों का ज्ञाननिष्ठा से स्थित देखकर उनके प्रति पापों का नाश करने वाला भक्ति-योग हँसते हुए कहने लगे।३४।

कर्मयोगन्त्वात्मनिष्ठ ज्ञानयोग भिदाश्रयम् ।
नैष्कर्म्यलक्षणं नाशा कथयामास माधव' ३५।
ता स्त्रियः कल्कि गदिन ज्ञानेन विजितेन्द्रिया ।
भक्त्या परमवापुस्ता योगिनां दुर्लभं पदम् ।३६।
दत्वा मोक्षं म्लेच्छबौद्धप्रियाणां कृत्वा युद्धं
भैरवं भीमकर्मा । हत्वा बौद्धान् म्लेच्छ सघांश्च
कल्किस्तेषां ज्योतिः स्थानापूर्णं रेजे ।३७।
येऽशृण्वन्ति वदन्ति बौद्धनिधनं म्लेच्छक्षयं सादराल्लोकाः
शोकहरं सदा शुभकरं भक्तिप्रदं माधवे ।
तेषामेव पुनर्न जन्ममरणं सर्वार्थसम्पत्करं
माया मोहविनाशनं प्रतिदिनं संसारतापच्छिदम् ।३८।

तदनन्तर उन्होंने उन नारियों को कर्मयोग, आत्मनिष्ठात्मक ज्ञान-योग, वैराग्य, निष्कर्मत्व के लक्षण आदि का प्रसंग सुनाया।३५। इस प्रकार जब वे म्लेच्छ रमणियाँ कल्कि-प्रदत्त ज्ञानोपदेश से समेत होकर इन्द्रियों का दमन करके, भक्ति करती हुई, योगियों को भी दुर्लभ मोक्ष पद को प्राप्त हो गईं।३६। इस प्रकार उन भीमकर्मा कल्किजी और युद्ध में बौद्ध और म्लेच्छों का संहार कर दिया, और उनकी स्त्रियों को मोक्षपद प्रदान करके मरे हुए म्लेच्छों और बौद्धों को ज्योतिर्मय स्थान में स्थित कर विराजमान हुए।३७। जो इस बौद्धों के निधन एवं म्लेच्छों के क्षीण होने की कथा को सुनेंगे, वे सभी दोषों से मुक्त होकर कल्याण को प्राप्त होंगे। भगवान के प्रति उनके हृदय में भक्ति का संचार होगा और वे जन्म-मरण के चक्र से छूट जायेंगे। इस कथा के सुनने से सर्व ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है और माया मोह का विनाश होता है, तथा संसार के ताप का सदा उच्छेद करने में समर्थ होता है।३८। —○—

द्वितीय अध्याय

ततो बौद्धान् म्लेच्छगणान्विजित्य सह सैनिकैः ।
धनान्यादाय रत्नानि कीकटात्पुनरव्रजत् ।१।
कल्किः परमतेजस्वी धर्माणां परिरक्षकः ।
चक्रतीर्थं समागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ।२।
भ्रातृभिर्ज्ञातिभिर्बहुभिः स्वजनैर्वृतः ।
समाधानान्मुनीन् तत्र ददर्श दीनमानसान् ।३।
रक्ष रक्षेति भयतस्त्राहि पाहि जगत्पते ।
इत्युक्तवन्तो बहुधा ये तानाह हरिः परः ।४।
वालखिल्यादिकानल्पकायान्घोरजटाधरान् ।
विनयावनतान् कल्किरनतानाह कृपणान्भयात् ।५।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! बौद्धों और म्लेच्छों पर विजय प्राप्त करके भगवान कल्कि धन रत्नादि लेकर सेना के सहित उस कीकटपुरी से चल दिए ।१। फिर वे परम तेजस्वी एवं धर्मवान् कल्किजी चक्रतीर्थ में पहुँचे और वहाँ उन्होंने विधिपूर्वक स्नान किया ।२। तदनन्तर वे अपने बन्धु-बान्धवों के साथ पौरजन के समान सुशोभित होते हुए वहीं निवास करने लगे। कुछ समयोपरान्त उन्होंने दीनता पूर्वक आते हुए मुनियों को देखा ।३। वे भयभीत मुनिगण कल्किजी की शरण में पहुँच कर बोले—हे जगत्पते! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। इस पर भगवान श्रीहरि बोले ।४। उन्होंने अल्प देह वाले द्विज बालखिल्यादि और जटा धारण करने वाले बालखिल्यादि मुनियों से विनय और कृपा पूर्वक कहा ।५।

सेनागणैः परिवृतो जगाम हिमवद्गिरिम् ॥११॥
उपत्यकां समासाद्य निशामेकां निनाय सः ।
प्रातर्जिगमिषुः सैन्यैर्ददर्शे क्षीरनिम्नगाम् ॥१२॥
शरदिन्दुधवलाकारां फेनिलां वृहतीं द्रुतम् ।
चलन्तीं वीक्ष्य ते सर्वे स्तम्भिता विस्मयान्विताः ॥१३॥
सेनागणगजाश्वादिरथयोधैः समावृतः ।
कल्किस्तु भगवांस्तत्र ज्ञातार्थोऽपि मुनीश्वरान् ॥१४॥
पप्रच्छ का नदी चेयं कथं दुग्धवहाभवत् ।
ते कल्केस्तु वचः श्रुत्वा मुनयः प्राहुरादरात् ॥१५॥

उनके यह वचन सुनकर दस्यु-नगरी को विजय करने वाले भगवान् कल्कि अपनी सेना के सहित हिमालय की ओर चले ।११। वहाँ पहुँच कर उन्होंने एक रात्रि विश्राम किया और प्रातःकाल होते ही, जैसे ही सेना के सहित आगे चलने लगे, वैसे ही उन्हें एक दूध की नदी दिखाई दी ।१२। वह नदी शरद तथा चन्द्रमा के समान श्वेत थी, वह दीर्घाकार वाली फेनिल नदी वेगपूर्वक बह रही थी। सेना के सभी लोग उस दूध की नदी को देखकर आश्चर्य से चकित हो गये ।१३। यद्यपि भगवान् कल्कि उस नदी के विषय में सब कुछ जानते थे, फिर भी गज, अश्व, रथ तथा पदाति सैनिकों से युक्त कल्किजी ने उन मुनीश्वरों से पूछा—'इस नदी का नाम क्या है? इसमें यह दूध किस प्रकार प्रवाहित है?' यह सुनकर वे मुनिगण आदरपूर्वक बोले ।१४-१५।

शृणु कल्के पयस्वत्याः प्रभवं हिमवद्गिरौ ।
समायाता नृपोर्वश्याः स्तनप्रस्रवणादिह ॥१६॥
परिष्वातान्तकेऽस्याः पयो यास्यति वेगितम् ।
हीनसारा तटाकारा भविष्यति महामते ॥१७॥
इति श्रुत्वा मुनीनान्तु वचनं सैनिकैः सह ।
यद्दो विमना राजस्या रामादेका स्थिरं नदी ॥१८॥

हे मुनिगण! उस मार्ग का दर्शन करने लगे जो राक्षसी के स्थान को जाता था। वहाँ पहुँच कर उन्होंने उस मेघाकार राक्षसी को गिरि शिखर पर अपने पुत्र को स्तन-पान कराते हुए देखा ॥२१॥ वन के हाथी उसकी श्वास-वायु के थपेड़े खाकर दूर जा गिरते हैं तथा उसके कानों के छेदों में सिंह पड़े सो रहे हैं ॥२२॥ उसके रोम छिद्रों को गिरि-गुहा समझ कर अपने पुत्र पौत्रों से युक्त हरिण गण भी उनमें घुस कर सो रहे हैं ॥२३॥ वहाँ रह कर व्याघ्र के भय से डरे हुए हैं तथा मौत के समान विकराल है। पर्वत की चोटी पर अन्य पर्वत के समान स्थित उस राक्षसी को देख कर हत बुद्धि एवं भयभीत तथा तत्काल स्थान कर भागने को उद्यत अपने सैनिकों से भगवान् कल्कि बोले ॥ २४-२५ ॥

गिरिदुर्गं वह्निदुर्गं कृत्वा तिष्ठन्तु सामकाः ।
गजाश्वरथयोधा ये समायान्तु मया सह ॥२६॥
सह स्वल्पेन सैन्येन यास्यस्याः सम्मुखं शनैः ।
महत्तु बाणगण्डोद्धैः शतघ्नीशक्तिपट्टिशैः ॥२७॥
इत्युक्त्वाथ पश्चात्तान्बाणैरेनां समहनद्बली ।
सा क्रोधेनाथ महता ननर्द परमाद्भुतम् ॥२८॥
तेन नादेन महता वित्रस्ताश्वगजादयः
निपेतुः सैनिकाः सर्वे मूर्च्छिता धरणीतले ॥२९॥
सा श्वासेन गजाश्वादि यन्त्रास्त्राः अदानवा ।
जघान ससामथाने, ममानीय सुपोदरी ॥ ३०॥

उन्होंने कहा—हम पर्वतीय दुर्ग में अग्नि दुर्ग बना कर तुम सब यहाँ ठहरो तथा गजारूढ़, अश्वारूढ़ और रथी और हमारे साथ चले चलें ॥ २६ ॥ मैं स्वल्प सेना को साथ लेकर बाणों, तलवारों और शक्तियों के द्वारा प्रहार करने के लिए अग्रसर होता हूँ ॥२७॥ यह कह कर कल्कि जी ने सेना को तो पीछे छोड़ा और आगे बढ़ कर राक्षसी पर बाणों से प्रहार करने लगे। यह देख कर राक्षसी ने भी

तेन खड्गेन महता दारय निर्मित कञ्चुकिः ।
वलिभिर्भ्रातृभिर्वद्धैर्वृतः शस्त्रास्त्रपाणिभिः ॥३६॥
वहिर्बभूव सर्वेशः कल्किः कल्कविनाशनः ।
सहस्राक्षो यथा वृत्रकुक्षिं दम्भोलिनेमिना ॥३७॥
यानिरथाद्गजरथस्तुरगाश्चाभयन्बहिः ।
नासिकाकर्णविवराञ्जाता तस्या विनिर्गताः ॥३८ ॥
ते निर्गतास्ततस्तस्या सैनिका रुधिरोक्षिताः ।
तां विव्यधुर्निक्षिपन्तीं नरसा चरणौ करौ ॥३९॥
ममार सा भिन्नदेहा भिन्नकुक्षिशिरोधरा ।
नादयन्ती दिशो द्यां च चूर्णयन्ती च पर्वतान् ॥४०॥

जैसे देवराज इन्द्र वृत्रासुर की कुक्षि को अपने वज्र से भेद कर बाहर आए थे, वैसे ही सर्वेश्वर एवं पापों का नाश करने वाले कल्कि जी ने अपनी वृहद् तलवार से राक्षसी की दक्षिण कुक्षि चीर डाला और अपने शस्त्रास्त्र धारी बान्धवों के सहित बाहर निकल आये ॥ ३६-३७ ॥ बहुत से गज, अश्व रथ और पैदल उनके पीछे आये थे और बहुत से उसके कानों तथा नासिका छिद्रों से होकर बाहर आ गये । ३८॥ फिर वे रक्त से भीगे हुए वीर गण राक्षसी के देह से बाहर निकल कर, उसे हाथ-पैर चलाती देख कर बाणों द्वारा उसका वेधन करने लगे ॥३९॥ तब उसके उदर मस्तक तथा कक्षाग्र सब छिन्न-भिन्न होने लगे तब उसकी घोर चीत्कार से दसों दिशाएं गूंज उठीं । फिर वह धरती पर गिर कर व ढ़े चूर चूर करती हुई मृत्यु को प्राप्त हुई ॥४०॥

कल्कोऽपि तथा सोदय मानरं कारोऽमयत् ।
स विरञ्ज कृपः पावन्मेनामध्ये निरायुधः ॥४१॥
गजमासागुनो यशोभाकिराजिविभूषण ।
महामदपूर्णरणोघ वेमरीगुहितान्नुतिः ॥४२॥
ममर्द कल्किसेना सा मानुषोगनवर्जितः ।
न कल्किरत आत्मगम्य रामराज निपीनद्धा ॥४३॥

सागर तीर पर अपनी सेना सहित निवास किया ॥४६॥ अपने परिजनों के सहित कल्किजी ने वह रात्रि वहीं बिताई और प्रातःकाल उठने पर गंगा स्नान के निमित्त आये हुए मुनिगण उनके दर्शनार्थ आते हुए दिखाई दिये ॥४७॥ वे हरिद्वार में गंगातट के समीप स्थित पिण्डारक वन में अपनी सेना के सहित निवास करने लगे। एक दिन, जब वे अनिमक-शक्तिनी भगवती जाह्नवी की स्तोत्रों के द्वारा स्तुति कर रहे थे, तभी मुनिगण उनके दर्शनार्थ वहाँ आये और विविध वाक्यों से पुनः स्तोत्र करने लगे ॥४८॥

—ॐ—

और दयावान् ही मानता हूँ ॥ ७ ॥ फिर वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पराशर, नारद, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रित, दुर्वासा, देवल, कण्व, वेद प्रमिति और अंगिरा आदि यह सब तथा अन्यान्य श्रेष्ठ व्रत वाले मुनिगण चन्द्र सूर्यवंश में उत्पन्न, महा वीर्यवान एवं तपोनिष्ठ राजा मरु और देवापि उनको सामने देख कर, जैसे प्रसन्न मनसे देवताओं ने महोदधि के तीर पर भगवान् विष्णु से कहा था, वैसे ही पापों का नाश करने वाले कल्किजी के प्रति बोले ॥४-७॥

जयाशेषजगन्नाथ ! विदिताखिलमानस ! ।
सृष्टिस्थितिलयाध्यक्ष ! परमात्मन्प्रसीद नः ॥८॥
धामकर्म्मगुणाधार ब्रह्मादिनिजविग्रह ! ।
ब्रह्माद्यर्चितपादाब्ज ! पद्मनाभ प्रसीद नः ॥९॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह जगत्पतिः ।
कावेतौ भवतामग्रे महासत्वौ तपस्विनौ ॥१०॥
भवन्तमागतौ स्तुत्वा गङ्गां मुदितमानसौ ।
का वा स्तुतिस्तु जाह्नव्या युवयोर्नामनी च के ॥११॥
तयोर्मध्ये प्रमुदितः कृताञ्जलिपुटः कृती ।
मादायुवाच विनयी निजवंशानुकीर्त्तनम् ॥१२॥

मुनियों ने कहा—हे सब विश्व के जगदीश ! हे सम्पूर्ण विश्व के जीवों के घट-घट के ज्ञाता ! हे सृष्टि स्थिति और प्रलय के स्वामिन् ! हे परमात्मदेव ! प्रसन्न होइये ॥८॥ हे पद्मनाभ प्रभो ! धाम, कर्म और गुण के आप ही आधार हैं। ब्रह्मादि देवता भी आपके ही अवतार-विग्रहों की पूजा किया करते हैं। आप हम पर प्रसन्न होइये ॥ ९ ॥ मुनियों के यह वचन सुन कर कल्किजी ने उनसे कहा—हे मुनियो ! आपके आगे यह महान् तप परायण एवं तपस्वी कौन हैं ? ॥१०॥ गङ्गाजी की स्तुति करके आपके प्रसन्न हृदय से यह यहाँ क्यों पधारे हैं ? यह किस कारण भगवती जाह्नवी की स्तुति में लगे हैं ? इनके नाम क्या-क्या हैं ? ॥११॥ तब वे दोनों मरु देवापि प्रसन्न हृदयसे हाथ

ऋतुपर्णस्तत्सुतोऽभूत्सुदासस्तत्सुतोऽभवत् ।
सौदासस्तत्सुतो धीमानश्मकस्तत्सुतो मतः ॥२०॥
मूलकस्तत्सुतो दशरथस्तस्मादैडविडस्ततः ।
राजा विश्वसहस्तस्मात्खट्वाङ्गो दीर्घबाहुकः ॥२१॥
ततो रघुरजस्तस्मात्सुतो दशरथः कृती ।
तस्माद्रामो हरिः साक्षादाविर्भूतो जगत्पतिः ॥२२॥

अंशुमान के पुत्र दिलीप दिलीप के परम प्रसिद्ध पुत्र भगीरथ हुए। यही भगीरथ गंगा को लाये थे। भूतल पर लाने के लिए गंगा उनके नाम से भागीरथी कहलाई। सगर वंशजों के उद्धार होने के कारण ही उन्हीं इस गंगा जी को स्वर्ग प्रदान तथा भूतल लाने में समर्थ हुआ है ॥१८॥ भगीरथ का पुत्र नाभ हुआ। नाभ का महायशी सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीप का पुत्र अयुतायु हुआ ॥१९॥ अयुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण हुआ। ऋतुपर्ण का सुदास, सुदास का सौदास और सौदास का पुत्र धीमान अश्मक हुआ ॥२०॥ अश्मक से मूलक और मूलक का दशरथ हुआ। दशरथ का एडविड, और एडविड का विश्वसह, विश्वसह का खट्वाङ्ग और खट्वाङ्ग का पुत्र दीर्घबाहु हुआ था ॥२१॥ दीर्घबाहु के पुत्र रघु हुए, रघु के अज और अज के दशरथ हुए। इन्हीं दशरथ के पुत्र रूप में साक्षात् जगदीश्वर विष्णु ने अवतार लिया ॥२२॥

रामावतारमाकर्ण्य कल्किः परमहर्षितः ।
शुकं प्राह विस्तरेण श्रीरामचरितं वद ॥२३॥
सीतापतेः कर्म वक्तुं कः समर्थोऽस्ति भूतले ।
शेषः सहस्रवदनैर्यदि शक्तो विना भवेत् ॥२४॥
तथापि वेद्मि गुणो मेऽस्ति वक्ष्यामि तवाज्ञया ।
रामस्य चरितं पुण्यं पापतापप्रमोचनम् ॥२५॥
देवादिविबुधाधिपोऽजनि यदभिख्यः पुरे
रघोः कुलादजो जगति मानुषानन्दयन् ।
विष्णु मुनिजनान्वरस्त्वररक्षसां यो यता-
दशतोयनिनदयन्परो जयति जानकीपतिः ॥२६॥

रामावतार का प्रसंग आने पर भगवान् कल्कि अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने मरु से कहा कि राम चरित्र का विस्तार सहित वर्णन करिये ॥२३॥ मरु बोले—सीतापति श्रीराम के कर्मों का वर्णन करने में समर्थ इस पृथिवी पर कौन है ? क्योंकि सहस्रवदन शेष भी उनका यश वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं। फिर भी मैं आपकी आज्ञा के कारण भगवान् श्रीराम का पाप-ताप नाशक चरित्र को अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ ॥२४-२५॥ पुराकाल की बात है—ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा राक्षसों के विनाशार्थ प्रार्थना किये जाने पर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप में सीतापति भगवान् रामचन्द्र जी ने सूर्यवंश में अवतार लिया था। अपने शिशु-काल में ही उन्होंने विश्वामित्र जी के यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों का बलपूर्वक संहार किया था॥२६॥

मुनेरनुग्रहानुगो निखिलशस्त्रविद्यास्तिगो ।
ययावतितपनप्रभो जनकराजराजत्सभाम् ॥२७॥
विधाय जनमोहनद्युतिमतीव कामद्रुहः ।
प्रचण्डकरचण्डिमा मवनभञ्जने जन्मनः ॥
ततः प्रतिमतेजसं दशरथात्मजं सानुजं
मुनेरनु यथा विधेः शशिवदादिदेव परम् ।
निरीक्ष्य जनको मुदा क्षितिसुतापतिं सम्मतं
निजोचितपणक्षमं मनसि मत्संयन्त्रायवौ ॥२८॥
स भूपपरिपूजितो जनकजेक्षितैरर्चितः
करालकठिनं धनुः करसरोरुहे सहितम् ।
विभज्य बलदृढ जय रघुवद्धेतुस्त्वकर्मध्वनि
त्रिजगतीमत परिविभाय रामो बभौ ॥२९॥
ततो जनकभूपतिर्दशरथात्मजेभ्यो ददौ
चतस्र उपतीर्मुदा वरचतुर्भ्य उद्वाहने ।
स्वलङ्कृतनिजात्मजाः पथि ततो बल भार्गव-

प्रकार उररीनिज रघुपती महोग्र स्वजन् ॥२०॥

जिनकी महिमा से कामना पूर्ति वाले संसार में पुनर्जन्म की प्राप्ति नहीं होती। वे महात्मा, प्रभायुक्त तथा समस्त शास्त्र विशा-विशारद भगवान श्रीराम संसार को मोहित करने वाला रूप धारण किये हुए, लक्ष्मण और मुनियों के सहित जनक की राज सभा में गये ॥२७॥ महात्माओं के पीछे सुशोभित चन्द्रमा के समान तेज वाले श्री राम अपने भाई लक्ष्मण के सहित मुनिवर विश्वामित्र के पीछे बैठ गये। [redacted] आदि [redacted] जगदीश्वर को देख कर जनक सोचने लगे कि यह सीता के योग्य वर है। तब उन्होंने अपने द्वारा किये हुए प्रण की घोषणा। देख कर अपनी भावना को और फिर श्री राम के समीप गये ॥२८॥ तब राजा जनक से आदर प्राप्त कर तथा सीता जी के कटाक्ष से प्रेम-पुलकित होकर श्री राम ने उस घोर धनुष को हाथ में उठाया और उसके दो टुकड़े कर दिये। तब श्रीराम अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए और उनके जय-घोष से तीनों लोक व्याप्त हो गये ॥२९॥

तत स्वपुरमागतो दशरथस्तु सीतापति
नृप सचिवसंयुतो निजविचित्रसिंहासने।
विधानुपमलग्न परिजनं द्विजावारिभि.
समुपनमत तथा दृढतमधारमस्कन्धी ॥११॥
ततः गुरुनिदेशतो जनकराजकन्यायुतः
प्रयाणमकरोत्सुधीर्दनुजः सुमित्रासुत.
यत निजगणं स्वजनगुहसुहृद् पदसाद्वरात्
विसृज्य नृपनाङ्कन रघुपतिजटाधोरभृन् ॥३२॥

तब राजा जनक ने अपनी चारों कन्या—सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति को सब प्रकार से अलंकृत करके दशरथ जी के चारों पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को क्रमशः दान कर दी। विवाह के पश्चात् जब वह सब अयोध्या नगरी के लिए लौट रहे थे, तब मार्ग में परशुरामजी मिले और उन्होंने श्रीरामको अपना प्रचार बल

दिखाने का निष्फल प्रयत्न किया ॥३०॥ फिर महाराज दशरथने अयोध्या प्रदेश ने अपने मन्त्रियों के परामर्श से सीतापति राम को अयोध्या के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त करने का विचार किया। अभिषेक के लिए सम्पूर्ण सामग्री एकत्र होकर जब पूर्ण तैयारी हो गई, तब श्रीराम का अभिषेक करने में तत्पर राजा दशरथ को कैकेयी ने वरदान माँग कर रोक दिया ॥ ३१ ॥ तब महाराज की आज्ञा सुन कर जानकी और सुमित्रा पुत्र-लक्ष्मण सहित श्रीराम वन में गये। साथ चलने हुए वृद्धादिकों को उन्हें बल कर छोड़ दिया तथा गुह के घर से आकर राजकीय वस्त्राभूषणों का परित्याग कर वल्कल-वस्त्र धारण किया ॥३२॥

प्रियानुजयुतस्ततो मुनिमतो वने पुण्यित,
स चित्रकूटकाश्रमे भरतमातुर मपतत् ।
किं कार्य्यं मरणं पितुः समवधार्य दुःखातुर-
स्तपोवनगतोऽवसद्रघुपतिस्ततस्ता समा ॥३३॥
दशाननसहोदरा विषमकामवेगातुरा-
समेत्य वररूपिणी प्रहसती सती सुन्दरीम् ।
निशाचरसमीरितो जनकजापतिर्लक्ष्मणा-
ग्रजस्तलकरवालतः समकरोद्विरूपा तत ॥३४॥
समाप्य पथि दानव खरखरे शरैर्नाशयन्
चतुर्दशसहस्रक समहनन्खर सानुगम् ।
दशाननवशानुग कनकचारुचर्म्मामृग
प्रियाप्रियकरो वने समवधीद्धलादासुरम् ॥३५॥

सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ मुनिवेष धारी श्रीराम पुष्प-सम्पन्न होकर विपिन में वनों निवास करने लगे। इसके पश्चात् चित्रकूट पर्वत पर आश्रम में वहाँ आये। उन्होंने पिता का मरण सुन कर श्रीराम को बड़ा दुःख हुआ और भरत जी को समझा कर लौटा दिया और तपोवन में रहने लगे ॥३३॥ फिर रावणासुर से विद

सुन्दर रूप वाली, हास्यवदना, वर की कामना करती हुई रावण की बहिन सूर्पणखा को आते देख कर लक्ष्मण जी को संकेत किया, जिसके अनुसार लक्ष्मण जी ने तीक्ष्ण तलवार से उस राक्षसी का रूप भ्रष्ट कर दिया ॥२४॥ फिर उन्होंने वनों में एक दानव को मार कर, चौदह हजार सेना के अधिपति एवं रावण के अनुगामी खरदूषण को सेना सहित नष्ट कर दिया। फिर सीता जी की इच्छा से स्वर्ण-मृग रूपी राक्षस को मार डाला ॥२५॥

ततो दशमुखप्रयुक्तमभिवीक्ष्य राम क्रमा
व्रजन्तमनुलक्ष्मणं जनकजां जहाराश्रमे ।
ततो रघुपतिः प्रिया दलकुटीरसंस्थापिता
न चाप्य तु विमूढधीः सह विलप्य सीतेति ताम् ॥२६॥
वने निजगणाश्रमे नगनले जले पल्वले
विचित्य चकित गत पथि ददर्श गीधपतिम् ।
जटायुवचनात्ततो दशमुखाहृतां जानकीं
विविच्य कृतवान्कृत पितरि वह्निकृत्य प्रभु ॥२७॥
प्रियाविरहकातरोऽनुजपुरःसरो राघवो
धनुर्धरधरां हरिबल नवालापिनम् ।
ददर्श ऋष्यभाषणाद्द्विजवालिनिराजानुज-
प्रिय पवननन्दनं परिगतं हितं प्रेषितम् ॥२८॥

फिर राम लक्ष्मण को बचा हुआ देख कर रावण ने उनके आश्रम से वहाँ सीता जी का हरण कर लिया। तदनन्तर श्रीराम ने वहाँ आकर जब सीता को न देखा, तब वे 'हा सीते' 'हा प्रिये' आदि शोक युक्त शब्दों से विलाप करते हुए मूर्च्छा को प्राप्त हो गये ॥ २६ ॥ फिर वे पर्वतों के आश्रम, पर्वतों की गुफा, जल और स्थल आदि विविध स्थानों में सीता जी को ढूँढ़ने लगे। आगे चलने पर उन्होंने मार्ग में जटायु को देखा। उससे उन्हें सीता हरण का समाचार प्राप्त हुआ। जटायु के मरने पर उन्होंने अपने पिता के समान उसका

कर वानरों के सहित लङ्कापुरी आ पहुँचे और रावण के पुत्रों अक्षोर आदि को उन्होंने नष्ट कर डाला ॥४१॥

ततोऽनुजयुतो युधि प्रबलचण्डकोदण्डभृत्
शरं समस्तरे कृपा गजरथाश्वहयाकुल ।
करालकरवालतः प्रबलकालजिह्वोपमा
निहत्य बहुराक्षसानरणनिर्भयो सानुग. ॥४२॥

जघान घननादमानुगमतोऽसृक् प्राशनै ।
समाश्रितनगानगैरतिमहोत्कटोऽम्बरे.
[illegible] नाशितान् ।
निजप्रभवाङ्गनानिवलादशास्यानुगान्
नलाङ्गदहनूमदादिगुणगुनदा गजादय ॥४३॥
ततोऽतिबलकुम्भकर्णमुखनाथशत्रु रणे
प्रहस्त विकटादिकानपि निशाचरान् दुर्मदान्
निशुम्भ मकराक्षमानिशितमगून् पार्श्वे बुधा ॥४४॥

फिर भगवान ने अनुज लक्ष्मण के साथ प्रचण्ड धनुष बाणों को धारण किया और गज अश्व रथ आदि से युक्त होकर तीक्ष्ण बाणों और विकराल काल के समान खड्गों से राक्षसों का नाश करके रावण के पुत्र मेघनाद को विद्युत के सदृश बाण से भगवान सहित अनुचरों सहित घोषित नाश को ॥४२॥ फिर सुग्रीव, पवनपुत्र हनुमान, नल, नील, अंगद और जाम्बवन्त आदि प्रमुख वानरों ने वृक्ष और पर्वत लिये अपार बल द्वारा उन दैत्य-गुरु महाबली रावण के उन सेवकों को, जो पृथ्वी के भार से पीड़ित हो रहे थे समान हो रहे थे, नष्ट कर दिया ॥४३॥ महाबली भगवान ने प्रहस्त और विकट आदि बलशाली राक्षसों के सहित उन कुम्भकर्ण मेघनाद को मार डाला। फिर और दुर्जय राक्षस निकुम्भ, मकराक्ष और विरूपाक्ष आदि अनेक निशाचरों का भी संहार कर दिया ॥४४॥

समर्प्य रघुपुङ्गवे निजपुरीं ययौ हर्षितः ॥४८॥
पुरन्दरकथादरः सपदि तत्र रक्षःपतिम् ।
विभीषणममीषणं समकरोत्ततो राघवः ॥४९॥
हरीश्वरगणावृतोऽवनिसुतायुतः सानुजो
रथे शिवसखेरिते सुविमले लसत्पुष्पके ।
मुनीश्वरगणान्वितो रघुपतिस्त्वयोध्यां ययौ
विवक्षय मुनिमाश्रमं गुहगृहेऽनिसरय स्मरन् ॥५०॥

फिर इन्द्र को त्रस्त करने वाला रावण जानकी जी के क्रोध से श्वास एवं श्रीराम के प्रत्यानल से दग्ध होकर पराजयी हो गया। रावण की मृत्यु हो जाने पर वानर श्रेष्ठ हनुमान जानकीजी को शुद्ध करके लाये और उन्हें श्रीराम को समर्पित कर दिया। फिर प्रसन्न चित्त से अपने स्थान को गये ॥४८॥ फिर देवराज के कहने से श्रीराम ने रावण के भाई विभीषण को राक्षसों के राज्य पर अभिषिक्त किया ॥४९॥ फिर भगवान् रामचन्द्र जी वानर आदि तथा सीताजी और लक्ष्मण को साथ लेकर अत्यन्त सुशोभित पुष्पक यान पर चढ़ कर अयोध्या नगरी के लिए चले। मार्ग में चलते हुए जब मध्य वन में पहुँचे तब उन्हें अपने मुनिवेश और गुह के गृह तथा उसकी मित्रता का स्मरण हुआ। सभी मुनियों ने उनके समीप आकर उनका पूजन किया ॥ ५० ॥

ततो निजगणावृतो भरतमातुरं सान्त्वयन्
स्वमातृगणवाक्यतः पितृनिजासने भूपतिः ।
वसिष्ठमुनिपुङ्गवैः कृतानिजाभिषेको विभुः
समस्तजनपालकः सुरपतिर्यथा संबभौ ॥५१॥
नरा बहुधनाकरा द्विजवरास्तपस्तत्पराः
स्वधर्मकृतनिश्चया स्वजनसङ्गता निर्भया. ।
घनाः सुबहुवर्षिणो वसुमती सदा हर्षिता
भवत्यतिबले नृपे रघुपतावभूत्सज्जगत् ॥५२॥

ततो रघुपतिस्तु तां सुतयुतां रुदन्तीं पुरो
जगाद दहने पुनः प्रविश शोधनायात्मनः ।
इतीरितमवेक्ष्य सा रघुपतेः पदाब्जे नता
विवेश जननीयुता मणिगणोज्ज्वलं भूतलम् ॥५६॥

फिर किसी कारण वश श्रीराम को अपना हृदय कठोर करना पड़ा और उन्होंने जानकीजी को परित्याग कर वन में पहुँचा दिया। तब महर्षि वाल्मीकि अपने द्वारा रचित रामायण का स्मरण करके दुःखित चित्त होते हुए जानकीजी को अपने आश्रम में लिवा लाये ॥५४॥ फिर जानकीजी के कुश और लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनों राज पुत्रों ने श्रीराम के समीप पहुँच कर उनका यश गाया। फिर महर्षि वाल्मीकि ने अनिन्दित एवं देव-पूजिता जानकीजी को इन दोनों पुत्रों के सहित श्रीराम को समर्पित कर दिया ॥५५॥ दोनों पुत्रों के सहित रोती हुई जानकी को अपने सामने खड़ी देख कर श्रीराम उनसे बोले— सीते! तुम अपनी शुद्धि के लिये पुनः अग्नि-प्रवेश करो। उनके यह वचन सुन कर जानकीजी ने उनके चरणारविन्दों में प्रणाम किया और अपनी माता पृथिवी के साथ पाताल में प्रविष्ट हो गईं ॥५६॥

निरीक्ष्य रघुनायको जनकजाप्रयाणं स्मरन्
दिनेषु कृपयान्वितोऽनुजयुतोऽयमरक्षत् परम् ।
पुरःस्थितजनःस्वकं पशुभिरीश्वरः संस्पृशन्
मुदा सरयुजीवनं रथवरं परोतो विभुः ॥५७॥
ये शृण्वन्ति रघूद्वहस्य चरितं कर्णामृतं सादरात्
संसारार्णवशोषणञ्च पठतामामोददं मोक्षदम् ।
रोगाणामिह शान्तये धनजनस्वर्गादिसम्पत्तये
वंशानामपि वृद्धये प्रभवति श्रीशः परेशः प्रभुः ॥५८॥

जानकीजी को इस प्रकार पाताल में गई देख कर रामचन्द्र भी उनका स्मरण करते हुए अपने गुरु वसिष्ठ, अनुजगण तथा परिजनों

और पशुओं के साथ सरयू तट पर गये और प्रसन्न हृदय से जल का स्पर्श करके दिव्य विमान में आरूढ़ होकर अपने लोक-धाम ॥८७॥ करने के लिए अमृत के समान इस राम चरितामृत को जो पाठ सहित सुनेंगे उनके सभी अपराध श्रीराम-कृपा से दूर हो जायेंगे। पाप नष्ट होंगे, धन-वृद्धि, धन-जन की समृद्धि और स्वर्ग रूप उत्तम की प्राप्ति होगी। जो इसका पाठ करेंगे, उनके लिए बहु सन्तान-सागर सुख सागर स्वरूप प्राप्त तथा मोक्ष-रूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होगी ॥८८॥

—ॐ—

चतुर्थ अध्याय

रामात्कुशोऽभूदतिथिस्ततोऽभून्निषधान्नभ ।
तस्मादभूत्पुण्डरीकः क्षेमधन्वाऽभवत्तत ।१।
देवानीकस्ततो हीनः परिपात्रोऽपि हीनत ।
बलाहकस्ततोऽर्कश्च रजनाभस्ततोऽभवत् ।२।
खगणाद्विधृतस्तस्माद्धिरण्यनामसञ्ज्ञितः ।
ततः पुष्पाद्ध्रुवस्तस्मात्स्यन्दनोऽथाऽग्निवर्णक ।३।
तस्माच्छीघ्रोऽभवत्पुत्र पिता मेऽतुलविक्रम ।
तस्मान्मरुं मां कऽपीह बुधञ्चापि सुमित्रकम् ।४।
कलापग्राममासाद्य विद्धि सत्तापसि स्थितम् ।
तवावतारं विज्ञाय व्यासात्सत्यवतीसुतात् ।
प्रतीक्ष्य कालं लक्षाब्दं कलेः प्राप्तमवान्तिकम् ।
जन्मयोद्य घसा राज्ञोर्नाशन धर्मशासनम् ।
यशःकीर्तिकरं सर्वकामपूरं परात्मनः ।६।

उन श्रीराम के पुत्र कुश हुए। कुश के अतिथि, अतिथि के निषध, निषध के नभ, नभ के पुण्डरीक और पुण्डरीक के पुत्र क्षेमधन्वा हुए ॥१॥ क्षेमधन्वा के पुत्र देवानीक, देवानीक के हीन, हीन के परिपात्र, परिपात्र के बलाहक, बलाहक के अर्क और अर्क के पुत्र रजनाभ हुए ॥ २॥ रजनाभ के खगण, खगण के विधृत, विधृत के हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभ के पुष्प, पुष्प ध्रुव, के ध्रुव के स्यन्दन और स्यन्दन के पुत्र

अग्निवर्ण हुए ॥३॥ अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्र हुए, वे अत्यन्त विख्यात [illegible] वाले ही मेरे पिता थे। मैं उन्हीं शीघ्र का पुत्र मरु हूँ। कुछ लोग मुझे बुध और कुछ बुधित कहते हैं ॥४॥ पर सच मैं कलाप ग्राम में निवास करता हुआ तपस्या में रत था। [illegible] प्रभु व्यास जी के पुत्र से मुझे [illegible] प्रकार का ज्ञान प्राप्त हुआ और अब मैं कलियुग की [illegible] अब तक [illegible] प्रतीक्षा [illegible] हुआ हूँ। [illegible] आप परमात्मा का [illegible] होने [illegible] हो जाता है तथा धर्म [illegible] वृद्धि और [illegible] की पुष्टि होती है ॥५-६॥

[illegible] सूर्यवंशसमुद्भव ।
द्वितीयः कोऽयं श्रीमान्महापुरुषलक्षणः ॥७॥
इति कल्किवचः श्रुत्वा देवापिर्मधुराक्षरम् ।
प्राञ्जलिर्विनयप्रह्वः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥८॥
प्रलयान्ते नाभिपद्मात्तवाभूच्चतुराननः ।
तदात्मजादभूदत्रिश्चन्द्रस्तस्मात्ततो बुधः ॥९॥
तस्मात्पुरूरवा जज्ञे ययातिर्नहुषात्ततः
देवयान्यां ययातेस्तु यदुस्तुर्वसुरेव च ॥१०॥
शर्मिष्ठायां द्रुह्युश्चानुः पूरुश्च [illegible] ।
जनयामास भूतादिर्भूतानीव सिसृक्षया ॥११॥
पूरोर्जनमेजयस्तस्मात्प्राचिन्वानभवत्ततः ।
प्रवीरस्तस्मान्मनस्युर्वै तस्मादभयदोऽभवत् ॥१२॥
उरुक्षयात्त्र्यारुणिस्ततोऽभूत्पुष्करारुणिः ।
बृहत्क्षत्रादभूद्धस्ती यन्नाम्ना हस्तिनापुरम् ॥१३॥

कल्कि बोले—तुम्हारी बातें सुनकर मैं यह जान गया कि तुम सूर्यवंश में उत्पन्न हुए हो। परन्तु तुम्हारे साथ यह महापुरुषों के लक्षणों से सम्पन्न एवं श्रीमान् पुरुष दूसरे कौन हैं? ॥७॥ यह सुनकर देवापि ने विनय पूर्वक मधुर वाणी से निवेदन किया। वे बोले—

हे प्रभो! प्रलय का अन्त होने पर आपके नाभिकमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी। उन ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि हुए। अत्रि के चन्द्रमा, चन्द्रमा के बुध, बुध के पुरूरवा, पुरूरवा के नहुष और नहुष के पुत्र ययाति हुए। उन ययाति ने अपनी पत्नी देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रों को जन्म दिया ॥९-१०॥ हे माधव! उन्हीं ययाति ने शर्मिष्ठा नाम की पत्नी से द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। जैसे सृष्टिकाल में भूतादि के द्वारा पञ्चभूतों की उत्पत्ति होती है वैसे ही ययाति से इन पाँच पुत्रों की उत्पत्ति हुई ॥११॥ पुरु का पुत्र जनमेजय हुआ, जनमेजय के प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान् के प्रवीर, प्रवीर के मनस्यु, मनस्यु के अभयद, अभयद के उरुक्षय उनके त्र्यारुणि, त्र्यारुणि के पुष्करारुणि, पुष्करारुणि के बृहत्क्षेत्र और बृहत्क्षेत्र के पुत्र हस्ती हुए। इन हस्ती नामक राजा के नाम पर ही हस्तिनापुर नामक नगर की स्थापना हुई ॥१२-१३॥

अजमीढोऽद्विमीढश्च पुरुमीढस्तु तत्सुताः ।
अजमीढादभूदृक्षस्तस्मात्संवरणात्कुरुः ॥१४॥
कुरोः परिक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषध एव च ।
सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनाच्च ततः कृती ॥१५॥
ततो बृहद्रथस्तस्मात्कुशाग्रादृषभोऽभवत् ।
ततः सत्यजितः पुत्रः पुष्पवान्नहुषस्ततः ॥१६॥
बृहद्रथान्यभार्यायां जरासन्धः परन्तपः ।
सहदेवस्ततस्तस्मात्सोमापिश्च श्रुतश्रवाः ॥१७॥
सुरथाद्विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमोऽभवत्ततः ।
जयसेनाद्रथानीकोऽभूद्युतायुस्तत्पुत्र क्रोधनः ॥१८॥

हस्ती के तीन पुत्र हुए। उनके नाम अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ हुए। अजमीढ के पुत्र ऋक्ष, ऋक्ष के संवरण और संवरण के पुत्र कुरु हुए ॥१४॥ कुरु के पुत्र परीक्षित, परीक्षित के सुधनु, जह्नु और निषध—यह तीन पुत्र हुए। सुधनु के पुत्र सुहोत्र और सुहोत्र के पुत्र

उत्पन्न हुए ।१४। च्यवन से बृहद्रथ, बृहद्रथ से कुशाग्र, कुशाग्र से ऋषभ, ऋषभ के सत्यजीत, सत्यजीत से पुष्पवान तथा पुष्पवान से जहु नामक पुत्र हुए ।१५। बृहद्रथ की द्वितीय पत्नी के गर्भ से जरासन्ध उत्पन्न हुआ । जरासन्ध के सहदेव, सहदेव के सोमापि और सोमापि के पुत्र श्रुतश्रवा हुए ।१७। श्रुतश्रवा के पुत्र सुरथ हुए । सुरथ के विदूरथ, विदूरथ के सार्वभौम, सार्वभौम के जयसेन, जयसेन के रथानीक और रथानीक के पुत्र क्रोधी स्वभाव के युतायु हुए ।१८।

तस्माद्देवातिथिस्तस्मादृक्षस्तस्माद्दिलीपकः ।
तस्मात्प्रतीपकस्तस्य देवापिरहमीश्वर ।।१९।
राज्यं शान्तनवे दत्त्वा तपस्येकधियाः चिरम् ।
कलापग्राममासाद्य त्वां दिदृक्षुरिहागतः ।२०।
मरुणानेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाम्बुजम् ।
तव कालकरालास्यात्रास्यान्मात्मवता पदम् ।२१।
तयोरेवं वचः श्रुत्वा कल्किः कमललोचनः ।
प्रहस्य मरुदेवापी समाश्वास्य समब्रवीत् ।२२।
युवां परमधर्मज्ञौ राजानौ विदितान्वयौ ।
ममादेशकरौ भूत्वा निजराज्यं करिष्यथः ।२३।

युतायु के पुत्र देवातिथि हुए । देवातिथि के ऋक्ष, ऋक्ष के दिलीप और दिलीप के पुत्र प्रतीपक हुए । हे प्रभो ! मैं उन्हीं प्रतीपक का पुत्र देवापि हूँ ।१९। मैंने शान्तनु को अपना राज्य प्रदान किया और स्वयं कलाप ग्राम में रह कर एकचित्त हो तपस्या करता था । अब आपके दर्शन की कामना से ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ।२०। मैंने मरु और मुनियों के सहित यहाँ आकर आपके चरणारविन्द को प्राप्त किया है । इसके फल स्वरूप मैं काल के कराल गाल से निकल गया, आत्म तत्त्वज्ञों [redacted] पद हमें मिल जायगा ।२१। मरु और देवापि की बातों को सुन कर पद्माक्ष कल्किजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने आश्वासन भरे शब्दों में उनसे कहा । कल्कि बोले—मैं जान गया कि

आप दोनों परम धर्मज्ञ राजा हैं। [redacted] अतः आप मेरे आदेश को मान कर राज्य ग्रहण कर उसका परिपालन करो ।२२-२३।

मरो त्वामभिषेक्ष्यामि निजयोध्यापुरेऽधुना ।
हत्वा म्लेच्छानधर्मिष्ठान्प्रजाभूतविहिंसकान् ।२४।
देवापे तव राज्ये त्वां हास्तिनापुरपत्तने ।
अभिषेक्ष्यामि राजर्षे हत्वा पुक्कसवानरौ ।२५।
मथुरायामहं स्थित्वा हरिष्यामि तु वो भयम् ।
शय्याकर्णानुष्ट्रमुखान् कञ्जान् बिलोदरान् ।२६।
हत्वा कृतं युगं कृत्वा पालयिष्याम्यहं प्रजाः ।
तपोवेषं त्यज त्वं स्थौ समारुह्य रथोत्तमम् ।२७।
युवां शस्त्रास्त्रकुशलौ सेनागणपरिच्छदौ ।
भूत्वा महारथौ लोके मया सह चरिष्यथः ।२८।

हे मरो ! अब मैं प्रजाओं का पीड़न करने वाले, जीव-हिंसक अधर्मी म्लेच्छों का संहार करके आपको अपनी राजधानी अयोध्या में अभिषिक्त करूँगा ।२४। हे देवापे ! हे राजर्षे ! युद्धक्षेत्र में पुक्कसों को मार कर मैं आपको राजधानी हस्तिनापुर के राज्य पर आपको अभिषिक्त करूँगा ।२५। मैं मथुरा नगरी में निवास करता हुआ तुम्हारे भय [redacted] नष्ट करूँगा तथा शय्याकर्ण, उष्ट्रमुख और बिलोदर आदि को मार कर सत्युग की स्थापना और प्रजा की रक्षा करूँगा। तुम अभी इस तपस्वी वेश का त्याग करो और श्रेष्ठ रथ पर आरोहण करो ।२६-२७। तुम सभी शस्त्रास्त्र विद्या में पारंगत एवं महारथी हो, अतः हमारे साथ ही विचरण करो ।२८।

विशाखयूपभूपालस्सुतयां भिनयान्वितान् ।
विवाहे रुचिराश्वाङ्गी सुन्दरी त्वां प्रशास्यति ।२९।
साधो भूपाल लोकानां स्वस्तये कुरु मे वचः ।
रुचिराश्वसुता शान्ता देवापे त्वं समुद्वह ।३०।
इत्याश्वासकथा: कल्केः श्रुत्वा तौ मुनिभिः सह ।
विस्मयाविष्टहृदयौ मेनाते हरिमीश्वरम् ।३१।
इति पृथ्व्यभयदे आकाशात्पुष्पवर्षमभिनयौ ।

रथौ नानामणिव्रातघटितौ धामनो पुरः ।
समायातौ ज्वलद्दिव्यदाम्भाम्भ्रं परिवारितौ ।३२।
ददृशुस्ते सदो मध्ये विश्वकर्म्मविनिर्मितौ ।
भूपा मुनिगणा सभ्या. महर्षा किमिमौरिता ।३३।

हे वत्से ! विश्वरूप नरेश अपनी परम सौभाग्यवती तथा हरिवंशी कन्या को तुम्हें विवाह देगा। यह शुभ संसार का कल्याण करने के उद्देश्य से मेरे वचनों का पालन करो। हे देवाप्रे ! तुम भी हरिवंश की सारन नामी पुत्री से विवाह कर लो ।।३०।। कल्किजी के यह आदरामय युक्त वचन सुन कर मुनियों के सहित देवादि अत्यन्त विस्मित हुए और फिर सन्देह दोर कर यह विश्वास करने लगे कि कल्कि ही भगवान् विष्णु एवं साक्षात् ईश्वर है ।।३१।। कल्किजी ने ऐसा ही यह उपदेश वचन कहे, वैसे ही आकाश मार्ग से स्वच्छा पूर्वक चलने वाले अनेक रत्नादि से निर्मित दो रथ अवतीर्ण हुए। सूर्य के समान तेजोमय उन रथों में तत्काल दिव्य शस्त्रास्त्र भरे हुए थे ।।३२।। उस समय उपस्थित सभी मुनिगण और राजागण विश्वकर्मा द्वारा निर्मित रथों को उतरे हुए देख कर यह क्या—'यह क्या' कहते हुए विस्मय एवं हर्ष प्रकट करने लगे ।।३३।।

युवामादित्यसोमेन्द्रयमवैश्रवणात्मजौ ।
राजानौ लोकरक्षार्थमाविर्भूतौ धियम्यमौ ।३४।
कालेनाच्छादितावत्र मय सङ्गादिहोदितौ ।
युवां रथावारूढौ शक्रदत्तौ समाज्ञया ।३५।
एवं वदति विश्वेशे पद्मनाभे सनातने ।
देवा ववर्षुः कुसुमैस्तुष्टुवुर्मुनयोऽमल ।३६।
गङ्गावारिपरिक्लिन्नशिरोभूतिपरागमान् ।
सर्वैः पर्वतजाससङ्गिविषयस्यवनो ववौ ।३७।
तत्रायातः प्रपुष्पिततनुस्तप्तचामीकराभो
धर्म्माभासः स्फुरचिरजटाघोरभृद्दण्डहस्तः :

लोकातीतो निजजनुषकृज्जातिताऽग्रमंसघ-
स्तेजोराशिःमनकसदृशो मस्करी पुष्कराक्षः ॥३८॥

तभी कल्किजी ने कहा—यह सभी को विदित है कि तुम दोनों राजवंश में विश्व-रक्षा और पृथिवी के पालनार्थ उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी उत्पत्ति सूर्य, चन्द्र, यम और कुबेर के अंश से हुई है ॥३४॥ अब तक तुम अपने रूप को छिपाये रहे हो। परन्तु अब, जब यहाँ मेरे पास आये हो तो मेरी आज्ञा से इन्द्र द्वारा भेजे गये इन रथों पर आरूढ़ हो जाओ ॥३५॥ पद्मापति कल्किजी के द्वारा उक्त वचन कहे जाने पर आकाश से देवताओं ने पुष्पवृष्टि और मुनियों ने स्तुति की ॥३६॥ मन्द वायु प्रवाहित होने लगा। शिवजी के जटा भार से उन्मुक्त गंगा-जल के मिलने से विभूति भीग गई। मन्द पवन ने उस विभूति के कण रूपी परागों को उड़ा कर पार्वती के अंगों में लगाते हुए कल्याण गुण की प्राप्ति की ॥३७॥ तभी सनक मुनि के समान परम तेजस्वी, धर्म अयन रूप सुरुचिर जटाओं को धारण किये और हाथ में दण्ड लिए एक ब्रह्मचारी वहाँ आये। उनकी देह कान्ति तप्त स्वर्ण के समान चमचमा रही थी। मनोहर वल्कधारी उन कमललोचन दिव्य महापुरुष के मुख पर प्रसन्न भाव परिलक्षित हो रहा था। उनके तेजोमय शरीर का स्पर्श होने ही संसार के सम्पूर्ण पापों का क्षय हो रहा था ॥३८॥

—※—

पंचम अध्याय

अथ कल्किः समालोक्य सदसाम्पतिभिः सह ।
समुत्थाय ववन्दे तं पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ॥१॥
पूजां संवेश्य तं भिक्षुं सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।
पप्रच्छ को भवानत्र मम भाग्यादिहागतः ॥२॥
प्रायशो मानवा लोके लोकानां पारणेच्छया ।
चरन्ति सर्वसुहृदः पूर्णा विगतकल्मषाः ॥३॥
अहं कृतयुगं श्रीश त्वदादेशकरं परम् ।
तवाविर्भावविभवमीक्षणार्थमिहागतम् ॥४॥
निरुपाधिर्भवान्कालः सोपाधित्वमुपागतः ।
क्षणदण्डलवाद्यङ्गैर्मायया रचितं स्वया ॥५॥
पक्षाहोरात्रमासास्तु संवत्सरयुगादयः ।
तवेच्छया चरन्त्येते मनवश्च चतुर्दश ॥६॥

सूत बोले—उस ब्रह्मचारी को देखते ही भगवान् कल्कि ने अपने सभासदों के सहित उठ कर पाद्य, अर्घ्य और आचमन आदि से उनका पूजन किया ।१। सभी आश्रमों के द्वारा नमस्कार योग्य उन भिक्षु ब्रह्मचारी को आदर पूर्वक बैठा कर कल्किजी ने प्रश्न किया—आप कौन हैं ? हमारे सौभाग्य से ही आपका यहाँ आगमन हुआ है ।२। पापों से परे रहने वाले जो साधुजन सब के सुहृद हैं, वे लोक-कल्याणार्थ ही पृथिवी पर विचरण किये करते हैं ।३। भिक्षु ने कहा—हे श्रीपते ! मैं आपका आज्ञाकारी सत्युग हूँ । आपके अवतार का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने के निमित्त ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ।४। आप निरुपाधि एव

साक्षात् काल स्वरूप हैं। परन्तु काल, दण्ड और सत्वादि गुणों के द्वारा इस समय उपाधि सहित हो गए हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी ही माया से प्रकट हुआ है।५। आपकी ही सत्ता का अनुभव करते हुए यह पक्ष, दिवस, रात्रि, मास, ऋतु संवत्सर, युगादि काल एवं चौदहों मनु-यह सभी नियमित रूप से विचरण करते हैं।६।

स्वायम्भुवस्तु प्रथमस्ततः स्वारोचिषो मनुः।
तृतीय उत्तमस्तास्चतुर्थस्तामसः स्मृतः।७।
पञ्चमो रैवतः षष्ठश्चाक्षुषः परिकीर्तितः।
वैवस्वतः सप्तमो वै ततः सावर्णिरष्टमः।८।
नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिकस्ततः।
दशमो धर्मसावर्णिरेकादशः स उच्यते।९।
रुद्रसावर्णिरस्तत्र मनुर्वै द्वादशः स्मृतः।
त्रयोदशमनुर्देवसावर्णिर्लोकविश्रुतः।१०।
चतुर्दशेन्द्रसावर्णिरेते तव विभूतयः।
यान्त्यायान्ति प्रकाशन्ते नामरूपादिभेदतः।११।
द्वादशाब्दसहस्रेण देवानाञ्च चतुर्युगम्।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं सहस्रगणितं मतम्।१२।
तावच्छतानि चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव हि।
सन्ध्याक्रमेण तेषान्तु सन्ध्यांशोऽपि तथाविधः।१३।

पहले मनु स्वायंभुव, दूसरे स्वारोचिष, तीसरे उत्तम, चौथे तामस, पाँचवे रैवत छठवें चाक्षुष, सातवें वैवस्वत, आठवें सावर्णिक, नवें दक्षसावर्णि, दसवें ब्रह्मसावर्णि, ग्यारहवें धर्म सावर्णि, बारहवें रुद्र सावर्णि, तेरहवें देव सावर्णि और चौदहवें इन्द्र सावर्णि-यह चौदहों मनु आपकी ही विभूति रूप है। यह सब अपने-अपने नाम रूपादि के भेद से चलते हुए प्रकाशित होते हैं।७-११। बारह हजार दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी होती है, जिसके अनुसार चार हजार दिव्य वर्षों का सतयुग, तीन हजार दिव्य वर्षों [illegible] त्रेता, दो हजार दिव्य वर्षों का द्वापर

और इस प्रकार दिव्य वर्षों का कलियुग होता है ।१३। इन चारों युगों का सन्ध्यांश (संधिकाल) क्रमशः चार सौ, तीन सौ, दो सौ, और एक सौ वर्ष का होता है । इन चारों युगों की संध्या का क्रम भी इसी प्रकार समझना चाहिये ।१३।

एकसप्ततिक तथ युग चतुर्युगं मनुर्भुक्ति ।
मनूनामपि सर्वेषामेव परिणतिर्भवेत् ।
दिवा प्रजापतेस्तत्तु निशा सा परिकीर्त्तिता ।१४
अहोरात्रस्य पक्षस्य मासवत्सरत्नवः ।
तदुपाधिकृत कालो ब्रह्मणो जन्मकृत्युकृत् ।१५।
शतसंवत्सरे ब्रह्मा लयं प्राप्नोति हि स्वयि ।
लयान्ते स्वशरीरमध्यादुत्थित सृजति प्रभु ।१६।
तत्र कृतयुगस्तेऽद्य काल सद्धर्मसंगतकम् ।
कृतकृत्या प्रजा यत्र तन्नाम्ना सां कृतं विदु ।१७।
इति तद्वच आश्रुत्य कल्किर्जनजनावृत ।
प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा श्रुत्वा तद्वचनामृतम् ।१८।
सर्वेहितकामुकालक्ष्य युगस्थाह जनान्हितान् ।
योद्धुकाम कल्कि पुर्या हृष्टो विशसने प्रभु ।१९।
गजरथतुरगान्नराँश्च योधान्कनकविचित्रविभूषणा-
चिताङ्गान् । धृतविविधवरास्त्रशस्त्रधनुर्गणान्बुधिनिपु-
णान्गणयञ्च्वमानमध्वम् ।२०।

प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगी तक पृथिवी को भोगते हैं । इसी प्रकार सब मनु बदलते रहते हैं । चौदहों मनु जितने समय तक पृथिवी का भोग करते हैं, उतना समय ब्रह्मा का एक दिवस होता है । इतने ही परिमाण की ब्रह्मा की एक रात्रि होती ।१४। इसी प्रकार दिवस-रात्रि, पक्ष, मास, वत्सर और ऋतु आदि की उपाधि से ब्रह्माजी की जन्म-मृत्यु आदि का विधान होता है ।१५। ब्रह्मा अपनी सौ वर्ष की आयु पूर्ण होने पर स्वयं में लय हो जाते हैं । फिर

जब प्रलय काल बीत जाता है [redacted] आपके नाभि-कमल से उनका पुन, उद्भव होता है।१६। मैं उक्त काल का अंश रूप ही कृतयुग हूँ। मेरे द्वारा श्रेष्ठ धर्म पाला जाता है। मेरे द्वारा सम्पूर्ण प्रजा धर्म का अनुष्ठान करते हुए धन्य हो जाती है इसी लिए ज्ञानीजन मुझे कृतयुग कहते हैं।१७। सत्ययुग के इस प्रकार के वचनों को सुन कर अपने जनों के सहित कल्किजी परम हर्षित हुए।१८। कलियुग के नाश में समर्थ कल्किजी ने सतयुग को आया देख [redacted] कलियुग के शासन में स्थित विशसन नामक नगरी में युद्ध करने की इच्छा करते हुए अपने अनुयायियों से बोले।१६। हाथी पर आरूढ़ होकर युद्ध करने वाले, अश्व और रथ पर चढ़ कर युद्ध करने वाले तथा पदाति सैनिक जो देह पर अद्भुत स्वर्णाभूषण और शस्त्रास्त्रों के धारण करने वाले हैं, ऐसे युद्ध-कुशल वीरों की गणना करो।२०।

षष्ठ अध्याय

इति तौ मरुदेवापी श्रुत्वा कल्केर्वचः पुरः ।
कृतोद्वाहौ रथारूढौ समायातौ महाभुजौ ।१।
नानायुधधरौ सैन्यसंवृतौ शूरमानिनौ ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ दंशितौ बद्धहस्तकौ ।२।
कार्ष्णायसशिरस्त्राणौ धनुर्द्धरधुरन्धरौ ।
अक्षौहिणीभिः षड्भिस्तु कम्पयन्तौ भुवं भरैः ।३।
विशाखयूपभूपस्तु गजलक्षं समावृतः ।
अश्वं सहस्रनियुतं रथं सप्तसहस्रकं ।४।
पदातिभिर्द्विलक्षैश्च शस्त्रैर्धृतकार्मुकैः ।
वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैः सर्वतः परिवारितः ।५।
रुधिराश्वसहस्राणां पञ्चाशद्भिर्महारथैः ।
गजेन्द्रैर्दशसाहस्रैस्त्रिलक्षैर्वृतो बभौ ।६।

सूतजी बोले—कल्किजी की आज्ञा से मरु और देवापि ने विवाह कर लिया और ये दोनों महाबाहु दिव्य रथों पर आरूढ़ हुए वहाँ आ पहुँचे ।१। अपने महाबली होने का अभिमान रखने वाले वे दोनों वीर अपने देह को सुरक्षित किये हुए और अंगुलियों में त्राण धारण किए हुए थे । अस्त्रशस्त्रों से भले प्रकार सुसज्जित उन वीरों के साथ भारी सेना थी ।२। वे अपने शिरों पर कार्ष्ण्य धातु का शिरस्त्राण धारण किये थे तथा सर्वश्रेष्ठ धनुष बाणों से सज्जित अपनी छः अक्षौ-

हिली सेना से पृथिवी को कम्पित कर रहे थे ।३। विशाखयूप-नरेश भी पदनी एक लाख हाथी, एक करोड़ घोड़ों और सात हजार रथों से सम्पन्न सेना के साथ थे ।४। उनके साथ दो लाख पैदल सैनिक धनुष बाणों से सुसज्जित थे। वायु के झोंकों से उनके सफेद घोर दुरूप हिल रहे थे ।५। इनके अतिरिक्त पचास हजार लाल वर्णों के अश्व, दस हजार मदमत्त गज छः करोड़ महारथी तथा नौ लाख पदाति थे ।६।

अक्षौहिणीभिर्दशभिः कल्किः परपुरञ्जय ।
समावृतस्तथा देवैर्देवमिन्द्रो दिवि स्वराट् ।७।
भ्रातृपुत्रसुहृद्भिश्च मुदितः सैनिकैर्वृतः ।
ययौ दिग्विजयाकाङ्क्षी जगतामीश्वरः प्रभुः ।८।
काले तस्मिन्द्विजो भूत्वा धर्मः परिजनैः सह ।
समाजगाम कलिना बलिनापि निराकृत । ९।
ऋतं प्रसादमभयं सुखं मुदमथ स्वयम् ।
योगमर्थं तथाऽदर्पं स्मृतिं क्षेमं प्रतिश्रयम् ।१०।
नरनारायणौ चोभौ हरेरंशौ तपोव्रतौ ।
धर्मस्त्वेतान्समादाय पुत्रान्स्त्रीश्चागतस्त्वरन् ।११।
श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा च ह्रीर्मूर्तिर्धर्मपालकाः ।१२।
एतास्तेन सहायाता निजबन्धुगणैः सह ।
कल्किमालोकितुं तत्र निजकार्यं निवेदितुम् ।१३।

शत्रु पुरी के विजेता कल्किजी स्वर्ग में सुशोभित सुदर्शन इन्द्र के समान दस अक्षौहिणी सेना के साथ परमन्त शोभा को प्राप्त हुए ।७। इस प्रकार भाई, पुत्र, सुहृद और सैन्य-समूह से सम्पन्न होकर जगदीश्वर कल्किजी ने दिग्विजय की इच्छा से प्रस्थान किया।८। तभी कलियुग के द्वारा निग्रह किया हुआ धर्म ब्राह्मण वेश में वहाँ उपस्थित हुआ ।९। ऋत, प्रसाद, अभय, सुख आनन्द, योग, अर्थ, अदर्प, स्मृति, क्षेम और प्रतिश्रय नामक उसके सेवक साथ थे ।१०। भगवान् विष्णु

वे ब्रह्म रूप कल्किजी नर नारायण को तथा अपने स्त्री पुत्रादि को साथ लेकर धर्म शीघ्रता पूर्वक वहाँ आ गया ।११। श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री आदि धर्म की रक्षा में तत्पर यह सभी साकार रूप से अपने भावों से युक्त होकर कल्किजी के दर्शनार्थ और स्वार्थ निवेदनार्थ वहाँ उपस्थित हुए ।१२-१३।

कल्किर्द्विज समायान्तं पूजयित्वा यथाविधि ।
प्रोवाच विनयापन्नं कस्त्वं कस्मादिहागतः ।१४।
स्त्रीभिः पुत्रैश्च सहितः क्षीणपुण्य इव ग्रहः ।
कस्य वा विषयाद्भ्रष्टस्तन्मे त्वं वद तावत ।१५।
पुत्राः स्त्रियश्च ते दीना हीनस्वबलपीडिताः ।
वैष्णवाः साधवो यद्वत्पाषण्डैश्च निराकृताः ।१६।
कल्केरिति वचः श्रुत्वा धर्मः शर्म निजं स्मरन् ।
प्रोवाच कमलानाथमनाथस्त्वतिकातरः ।१७।
पुत्रैः स्त्रीभिर्निजजनैः कृताञ्जलिपुटो हरिम् ।
स्तुत्वा नत्वा पुनर्नत्वा मुदितं तं दयापरम् ।१८।
शृणु कल्के ममाख्यानं धर्मोऽहं ब्रह्मरूपिणः ।
तव वक्षःस्थलाज्जातः कामदः सर्वदेहिनाम् ।१९।

भगवान् कल्कि ने ब्राह्मण को देखते ही विनय पूर्वक यथाविधि उसका पूजन किया और बोले-आप कौन हैं ? कहाँ से आगमन हुआ ? ।१४। क्षीण पुण्य ग्रह के समान आप अपनी स्त्री पुत्रादि के सहित किस राज्य से यहाँ आये हैं यह सब मुझे यथार्थ रूप से बताइए ।१५। जैसे वैष्णव साधु पाखण्डों से पराजित हो जाते हैं, वैसे ही आप बल-पौरुष से हीन होकर स्त्री पुत्रादि के सहित अत्यन्त कातर क्यों हो रहे हैं ? ।१६। अत्यन्त कातर और अनाथ रूप में आया हुआ धर्म पद्मा-पति कल्किजी के वचन सुन कर अपने कल्याणार्थ निवेदन करने लगा ।१७। उसने अपने अनुगामियों के सहित हाथ जोड़े और आनन्द-धाम

तथा दयावन्त प्रभु का पूजन कर प्रणाम और स्तुति करने लगा ।१८। धर्म बोला—हे प्रभो ! मैं अपना वृत्तान्त निवेदन करता हूँ, इसे सुनिये ! मैं ब्रह्मस्वरूप धर्म आपके वक्ष स्थल से उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे द्वारा सभी प्राणियों के कार्यों की सिद्धि होती है ।१९।

देवानामग्रणीर्हव्यकव्यानां कामधुग्विभुः ।
तवाज्ञया चराम्येव साधुकीर्तिकृदन्वहम् ।२०।
सोऽहं कालेन बलिना कालनाम्ना निराकृतः ।
शककाम्बोजशबरैः सर्वैरावासवासिना ।२१।
अधुना तेऽखिलाधार ! पादमूलमुपागतः ।
यथा संसारकालाग्निसन्तप्ता साधवोऽर्द्दिता, ।२२।
इति वाग्भिरपूर्वाभिर्धर्म्मस्य परितोषितः ।
कल्किः कल्कहर श्रीमानाह सहर्षवचनैः ।२३।
धर्म कृतयुगं पश्य भव चण्डानुशासनम् ।
मा जानासि यथा जातं धातुर्वाचितविग्रहम् ।२४।
कीटाकैर्बौद्धदलनमिति मत्वा सुखी भव ।
सर्वदेशगतानामन्येषां तत्रापदप्रकारिणाम् ।
जिघांसुर्यामि संग्रामे चर मा त्वं निर्विभरः ।२५।

देवताओं में प्रथम गणना योग्य मैं यज्ञांश अर्थात् हव्य-कव्य के भोग का अधिकारी हूँ। मैं यज्ञ फल प्रदान करके साधुजन का अभीष्ट पूर्ण करता हूँ। आपकी आज्ञा से मैं सदैव साधुओं का कार्य सिद्ध करता हुआ घूमता हूँ ।२०। इस समय शक, कम्बोज, शबर आदि कलियुग के शासन में रहते हैं। कालक्रम के कारण मैं उस बलवान् कलि से ही हारा हुआ हूँ ।२१। हे अखिलाधार ! इस समय साधुजन विश्वरूपी कालाग्नि से संतप्त एवं पीड़ित हैं। इसी लिए मैं आपके चरणों की शरण में उपस्थित हुआ हूँ ।२२। धर्म के इन अपूर्व वचनों को सुन कर पाप हारी कल्कि जी धर्म के लिए प्रसन्न करने वाले वचन कहने लगे ।२३। उन्होंने कहा—हे धर्म ! इधर देखो, सत्ययुग का आगमन हो चुका

सारथि, अग्नि शासन रूप आश्रय हुआ । इस प्रकार धर्म रूप नायक क्रियानुष्ठान रूपी महाबल से समन्वित होकर चल दिया ।३१।

यज्ञदानतपः पात्रैर्यमैश्च नियमैर्वृतः ।
खशकाम्बोजकान्सर्वाञ्छबरान्बर्बरानपि ।३२।
जेतुं कल्किर्ययौ यत्र कलेरावाससमीप्सितम् ।
भूतावासबलोपेतं सारमेयखराकुलम् ॥३३॥
गोमांसपूतिगन्धाढ्यं काकोलूकशिवावृतम् ।
स्त्रीणां दुर्द्यूतकलहविवादव्यसनाश्रयम् ।३४।
घोरं जगद्भयकरं कामिनीस्वामिनं गृहम् ।
कलिः श्रुत्वोद्यमं कल्केः पुत्रपौत्रवृतः क्रुधा ।३५।
पुराद्विशसनाख्यायात्स चकाक्षरथोपरि ।
धर्मः कलिं समालोक्य ऋषिभिः परिवारितः ।३६।
युयुधे तेन सहसा कल्किवाक्यप्रचोदितः ।
ऋतेन दम्भः संग्रामे प्रसादो लोभमाह्वयत् ।३७।

इस प्रकार यज्ञ, दान, तप, यम, नियम आदि से सम्पन्न हुए भगवान् कल्कि खश, कम्बोज, शबर तथा बर्बर आदि म्लेच्छों की विजय कामना से कलि के आवास वाले स्थान में पहुंचे । वहां भूतों का दृढ़ आवास होने से उस स्थान में सब ओर श्वान भूँकते थे । ३२–३३ । उस स्थान में गौ मांस की दुर्गंध आ रही थी । कौओं और उल्लुओं से पूर्ण तथा द्यूत का आश्रय एवं स्त्रियों के विवाद रूपी क्लेश इसमें भरा हुआ था ।३४। संसार के लिए भयप्रद यह अपनी भय [illegible] प्रतीत होती थी । वहां के पुरुष स्त्रियों की आज्ञा के अनुवर्ती थे । वहां पर अधीश्वर कल्कि जी का आक्रमण सुन कर अपने पुत्र-पौत्रादि के सहित उल्लू की ध्वजा वाले रथ पर आरूढ़ होकर विशसनपुरी से बाहर आया । उस कलि को देख कर भगवान् कल्कि की आज्ञानुसार ऋषियों के सहित धर्म ने उसके साथ संग्राम प्रारम्भ किया । दम्भ से ऋत और लोभ से प्रसाद भिड़ गया ।३५–३७।

युग्भौ परिवृतौ मृत्युजिवावेकत्र योधनात् ।४५।
तान्यां स युयुधे कल्किः सेनागणसमन्वितः :
सुमहान् कल्किसैन्यानां समरस्तुमुलोऽभवत् ।४६।
हे'षितैवृ'हितैर्दन्तघाव्दैष्टङ्कारनादितैः ।
शूरोरःक्ष्वेडितैर्वाहुवेगै' सशब्दस्तलताडनैः ।४७।
सपूरिता दिशः सर्वा लोका नो शर्म लेभिरे ।
देवाश्च भयसन्त्रस्ता दिवि व्यस्तपथा ययुः ।४८।
पादोरुदण्डं खड्गशक्त्यृष्टिशूलैर्गदाघातैर्वाणपातैश्च घोरैः ।
युद्धे शूराश्छिन्नबाहाङ्घ्रिमध्या पेतुः सख्ये शतशः कोटिशश्च

दैत्यों में श्रेष्ठ यह दोनों भाई घोर युद्ध में प्रवीण, महाबली और देवताओं को भयभीत करने में समर्थ थे। इन दोनों का रूप एक सा था ।४४। यह दोनों दिग्विजयी, वज्र जैसे कठोर शरीर वाले थे। दोनों मिल कर मृत्यु को भी युद्ध में जीत लेने में समर्थ थे। अपनी बलवती सेना के सहित यह दोनों सदा आरण्य कर पैदल ही युद्ध में तत्पर हुए ।४५। इन कोक विकोक के साथ कल्कि जी का घोर सग्राम हो रहा था उनकी सेना के प्रमुख वीर भयकर युद्ध कर रहे थे ।४६। अश्वों का हीसना, हाथियों की चिघाड़ तथा शस्त्रों का शब्द, धनुषों की टकार, वीरों के भुजाघात आदि से भयङ्कर भीषण शब्द होने लगा ।४७। उस शब्द से दसों दिशाएँ गूँज उठी। कोई भी लोक भय-रहित नहीं था। देवता भी डर के कारण गगन मार्ग से उल्टे-सीधे मार्गों से भागने लगे ।४८। खड्ग, दण्ड, खड्ग, शक्ति, शूल, गदा तथा भयकर बाणों के आघात से करोड़ों शूरों के हाथ, पैर, कटि आदि विच्छिन्न अंग कट-कट कर गिर रहे थे, जिनसे युद्ध भूमि आच्छादित होने लगी थी ।४९।

—✽—

अपने कुल के अग्र रथ से सार-हीन होता हुआ अपने गृह में जा पहुँचा ।४। उधर अश्व के द्वारा पदाघात को प्राप्त हुए कोक का शिर कट गया। कुत्तो से युक्त उसका रथ छिन्न भिन्न हो गया। तब वह उसे छोड़ कर रवन वमन करता हुआ रण क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ ।५। अभय में युद्ध करता हुआ क्रोध भी हार गया। उसके नेत्रो में लाली छाई थी। चूहो से युक्त दुर्गन्ध पूर्ण अपने छिन्न-भिन्न रथ को वहीं पड़ा छोड़ कर वह भी विशसनपुरी में जा घुसा ।६।

भय शूलतलाघातादगतासु र्यपतद्भुवि ।
निरयो मुदमुष्टिभ्यां पीड़ितो यममाययौ ।७।
आधिव्याध्यादय सर्वे त्यक्त्वा वाहमुपाद्रवन् ।
नानादेशान्भयोद्विग्न कृतवाणप्रपीड़िता' ।८।
धर्म कृतेन सहितो गत्वा विशसन कलेः ।
नगर बाणदहनैर्ददाह कलिना सह ।९।
कलिर्विप्लुष्टसर्वाङ्गो मृतदारो मृतप्रज ।
जगामैको रुदन्दीनो वर्षान्तरमलक्षित ।१०।
मरुस्तु शककाम्बोजाञ्छन्नैर्दिव्यास्त्रतेजसा ।
देवापि शबराश्चोलान्बर्बरांस्तद्गणानपि ।११।
दिव्यास्त्रशस्त्रसम्पातैरदर्दयामास वीर्यवान् ।
विशाखयूपभूपालः पुलिन्दान्पुक्कसानपि ।१२।

शूल के तलाघात से आहत हुआ भय प्राण त्याग कर धराशायी हुआ। प्रीति के मुष्टि प्रहार से पीड़ित हुआ निरय भी तुरन्त ही यमा- लय को चला गया ।७। सत्युग के बाणो से आहत हुई आधि-व्याधि अपने वाहनो का परित्याग करके इधर-उधर भाग गई ।८। इसके पश्चात् सत्युग को साथ लेकर धर्म कलि की राजधानी विशसन में प्रविष्ट हुआ और उसने कलि के सहित सम्पूर्ण नगर को अपनी बाणा- ग्नि से जला दिया ।९। कलि के सभी अग गल गये। उसकी सतति और पत्नी भी मरण को प्राप्त हुई और वह रुदन रोता हुआ अप्रकट रूप

रहे थे ।१६। फिर समर विजेता महाबाहु कल्कि जी ने क्रोध में भर कर भल्लास्त्र के द्वारा विकोक का सिर छेदन कर दिया ।१७। महाबली विकोक मृत्यु को प्राप्त हो गया था। परन्तु जैसे ही उसके भाई कोक ने उसे देखा वैसे ही वह पुनर्जीवित हो गया। यह देख कर सभी देवगण और स्वयं कल्कि जी भी आश्चर्य करने लगे ।१८।

प्रतिकर्तुं गदापाणेः कोकस्याप्यच्छिनच्छिरः।
मृतः कोको विकोकस्य दृष्टिपातात्समुत्थितः ।१६।
पुनस्तौ मिलितौ तेन युयुधाते महाबलौ।
कामरूपधरौ वीरौ कालमृत्यू इवापरौ ।२०।
खड्गचर्मधरौ कल्किं प्रहरन्तौ पुनः पुनः।
कल्किः क्रुधा तयोस्तद्वद्वाणेन शिरसी हृते ।२१।
पुनर्लग्ने समालोक्य हरिश्चिन्तातरोऽभवत्।
विसर्ज्यत्वमथ घोटकम् तुरगस्तावताडयत् ।२२।
कालकल्पो दुराधर्षो तुरगेणार्दितौ भृशम्।
पश्चाद्भ्यां मृत्युवाणैरमर्षाताम्रलोचनौ ।२३।
तयोर्भुजान्तरं सोऽश्व क्रुधा समदयद्भृशम्।
तौ तु प्रभिन्नास्थिभुजौ विदारिताङ्गदकार्मुकौ:
पुच्छं जगृहतुः सप्तेर्गोपुच्छं बालकाविव ।।२४।

फिर कल्कि जी ने विकोक को पुनर्जीवित करने वाले गदापाणि कोक का ही उच्छेद कर दिया। इस प्रकार कोक मर गया, परन्तु जैसे ही उसे विकोक ने देखा, वैसे ही वह भी पुनर्जीवित हो उठा ।१६। तब इच्छानुसार रूप धारण में समर्थ महाबली कोक-विकोक दोनों मिल कर कल्किजी के साथ दूसरे काल के समान घोर युद्ध करने लगे ।२०। वह खड्ग और ढाल धारण कर बारम्बार कल्किजी पर आघात करने लगे। तब कल्किजी ने अत्यन्त क्रोधित होकर उन दोनों के ही अपने बाणों से मस्तक उड़ा दिये ।२१। परन्तु, अब दोनों के ही मस्तक अपने-अपने धड़ में स्वयं जुड़ गये, तब तो कल्कि जी को बड़ी चिन्ता हुई। फिर वे कोक-विकोक द्वारा अपने पर प्रहार होते देख कर स्वयं भी

निमिष पुन, ललकारने लगे ।२६। तभी ब्रह्मा जी वहाँ आये और कल्किजी से हाथ जोड़ कर बोले कि हे प्रभो ! यह कोक-विकोक शस्त्रास्त्रों से मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकते ।२७। इन दोनों को एक समय में ही थप्पड़ मार कर इनका वध कर दीजिये। क्योंकि जब तक यह दोनों परस्पर एक दूसरे को देखेंगे, तब तक इनकी मृत्यु संभव नहीं है। अतः आप इसी प्रकार इनको मारिये ।२८। ब्रह्माजीके वचन सुन कर कल्किजीने शस्त्रास्त्र और वाहन का परित्याग कर दिया और दोनों दानवों के मध्य पहुँच कर दोनों हाथों से एक साथ उन दोनों के वज्र के समान मुष्टि-प्रहार किया, जिससे उनका मस्तक चूर्ण हो गया ।२९। देवताओं के लिए भयप्रद और सब जीवों का अनिष्ट करने में तत्पर वे दोनों दानव मस्तकों के चूर्ण होने से टूट कर गिरते हुए पर्वत-शिखरों के समान धरती पर आ गिरे ।३०।

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च मुनयः सिद्धचारणाः ।
देवाश्च कुसुमासारैर्ववृषुर्हृष्टमानसाः ।३१।
दिवि दुन्दुभयो नेदुः प्रसन्नाश्चाभवन्दिशः ।
तयोर्वधप्रमुदितः कविर्दशसहस्रकान् ।
सारथान्महारथान्साक्षादहनद्दिव्यसायकैः
प्राज्ञः शतसहस्राणि योधानां रणमूर्द्धनि ।
क्षय निन्ये सुमन्त्रस्तु रथिनां पञ्चविंशतिः ।३३।
एवमन्ये गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्या महारथान् ।
निजघ्नुः समरे क्रुद्धा निषादान्म्लेच्छबर्बरान् ।३४।
एवं विजित्य तान्सर्वान्कल्किर्मूर्पगणैः सह ।
कृपाकर्णांश्च भल्लाटनगरञ्जेतुमाययौ ।३५।
नानावाद्यैर्लोकसंघैर्वरास्त्रैर्नानावस्त्रैर्भूषणैर्भूषिताङ्गैः
नानावहैश्चामरैर्वीज्यमानैर्यातोद्योद्दृप्तं कल्किरत्तुप्रसेन ।३६

यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य में भरे गंधर्व और अप्सराएं

अष्टम अध्याय

सेनागणैः परिवृत कल्किर्नारायणः प्रभुः ।
भल्लाटनगरं प्रायात्खड्ग धृक्सप्तिवाहन ॥१॥
स भल्लाटेश्वरो योगी ज्ञात्वा विष्णुं जगत्पतिम् ।
निजसेनागणैः पूर्णो योद्धुकामो हरिं ययौ ॥२॥
स हर्षोत्पुलकः श्रीमान्दीर्घाङ्गः कृष्णभावनः।
शशिध्वजो महातेजा गजायुतबलः सुधी ॥३॥
तस्य पत्नी महादेवी विष्णुव्रतपरायणा ।
सुशान्ता स्वामिनं प्राह कल्किना योद्धुमुद्यमम् ॥४॥
नाथ कान्त जगन्नाथं सर्वान्तर्यामिनं प्रभुम् ।
कल्किं नारायणं साक्षात्कथं त्वं प्रहरिष्यसि ॥५॥
सुशान्ते परमो धर्म्मः प्रजापतिविनिर्मितः ।
युद्धे प्रहार [सर्वत्र गुरौ शिष्ये हरेरिव ॥६॥

सूत जी बोले—तदनन्तर अपने अश्व पर चढ़कर हुए कल्कि जी खड्ग धारण किये हुए, सेना के सहित भल्लाट नगर में पहुँचे।१। योगिराज भल्लाट नरेश ने कल्कि जी को साक्षात् जगदीश्वर विष्णु जाना और वह उनसे युद्ध करने के लिए सेना सहित नगर से बाहर चले।२। उस समय वह दीर्घांग, श्रीमान्, कृष्ण भक्त, महाबली एवं महा तेजस्वी राजा शशि ध्वज हर्ष से पुलकित हो रहे थे।३। उन राजा की पत्नी विष्णु व्रत-परायणा महादेवी सुशान्ता थी। उसने जब अपने पति को कल्कि जी से युद्ध के लिए जाने को उद्यत देखा तब वह कहने लगी।४। हे नाथ! हे स्वामिन्! कल्कि जी तो साक्षात् जगन्नाथ विष्णु

सेवा-स्वरूप विलाप लीला मात्र ही समझना चाहिये ।१०। ईश्वर के अवतार धारण करने पर कामादि माया रूप दैहिक गुणों का समन्वित होना भी अनिवार्य है। जब कामादि विषयों का आरोपित होना देह धर्म ही है, तो उनके शरीर में भी वह क्यों नहीं प्रगट होंगे ? ।११। पूर्ण ब्रह्म स्वरूप ईश्वर ब्रह्म कहे जाते हैं और जब वह शरीर धारण कर लेते हैं तब उन्हें शरीरिक कहते हैं। सेवक की भेद दृष्टि के लय होने अर्थात् अनेकत्व की उपलब्धि होने पर उनका जन्म लय और उदय भी इसी प्रकार संभव है ।१२।

सेव्यसेवकता विष्णोर्माया सेवेति कीर्तिता ।
इतीदं तस्य चेष्टया त्रिवर्गजनिका सताम् ।१३।
अतोऽहं कल्किना योद्धुं यामि कान्ते स्वसेनया ।
त्वं न पूजय कान्तेऽत्र कमलापतिमीश्वरम् ।१४।
कृतार्थोऽहं त्वया विष्णुसेवासम्मिलितात्मना ।
स्वामिन्निह परत्रापि वैष्णवो प्रथिता गतिः ।१५।
इति तस्या वल्गुवाग्भिः प्रणतायाः शशिध्वजः ।
आत्मानं वैष्णवं मेने साधु रेमे हरिं स्मरन् ।१६।
तामालिङ्ग्य प्रमुदितः शूरैर्नृपैरावृतः ।
वदन्नाम स्मरन्विष्णोर्वैष्णवैर्योद्धुं ययौ ।१७।
गत्वा तु कल्किसेनाया विद्राव्य महतीं चमूम् ।
श्यामकर्णगणैर्वीरैः सन्नद्धैः शस्त्रायुधैः ।१८।

सेव्य-सेवक भाव ही सेवा है। यह कार्य विष्णु-माया का ही है। इस त्रैवर्गिक चेष्टा के द्वारा ही सज्जन पुरुष त्रिवर्ग को प्राप्त कर लेते हैं ।१३। हे कान्ते! यही कारण है कि मैं अपनी सेना के सहित कल्कि से युद्ध करने के लिए प्रस्थान कर रहा हूँ। हे प्रिये! इधर तुम कमलापति भगवान् विष्णु का पूजन करो ।१४। सुशान्ता ने कहा—हे नाथ! आप विष्णु सेवा द्वारा उन्हीं में लीन हो गये, इससे मैं भी धन्य हो गई हूँ। इहलोक और परलोक में भगवान् विष्णु की सेवा के

प्रकार रणक्षेत्र में सब ओर से शूल, प्रास, गदा, बाण, शक्ति, यष्टि, तोमर, भाले, खड्ग, भुशुण्डी और पुन: आदि अस्त्र-शस्त्र चलने लगे ।२३। उस समय छत्र, चमर, ध्वजा, पताका आदि की छाया और बहुत धूल उड़ने से रणभूमि में अन्धकार छा गया ।२४।

गगनेऽनुपना देवा· ऐवा वास न चक्रिरे ।
गन्धर्वं साधुपञ्चमैर्गायनैरमृतायनै. ।२५।
द्रष्टु समागता. सर्वे लोका. समरमद्भुतम् ।
शतदुन्दुभिनादैरास्फोटैर्वृंहितैरपि ।।२६
हेषितैर्घोषनोत्कुष्टैर्लोकाश्चमूका इभवन् ।
रथिनो रथिभि· साकं पदाताश्च पदातिभि· ।।२७।।
हया हयैरिभाश्चेभै· समरोऽमरदानवं. ।
यथाभवत्स तु घनो यमराष्ट्रविवर्द्धन २८।।
शशिध्वजजनमुनाथं कल्किसेनाधिप सह ।
निपेतु· सैनिका भूमौ छिन्नबाह्वङ्घ्रिकन्धरा: ।२९।।
धावन्तोऽसिमुवन्तश्च विकुर्वन्तोऽसृगुक्षिता: ।
उपर्युपरि सञ्छन्ना गजाश्वरथमर्दिता: ।।३०।।

गगन मण्डल में स्थित देवगण इस संग्राम को देख रहे थे । गन्धर्व भी अमृत-ध्वनि में गाते हुए उस युद्ध को देखने के लिए आ गये थे ।२५। सभी लोक उस अद्भुत संग्राम को देखने के उद्देश्य से वहाँ आ गये थे । शंख और नगाड़े बज रहे थे । परस्पर घोष मारने से, हाथियों की चिंघाड़ से, अश्वों के हिनहिनाने से तथा अस्त्रशस्त्रों के टकराने से जो शब्द निकल रहे थे, उनके मिलने से रणभूमि गूंज रही थी । सभी लोग मूक जैसे लग रहे थे, क्योंकि किसी को किसी की बात सुनाई नहीं देती थी, रथी रथी से, पैदल पैदल से, घुड़सवार घुड़सवार से भिड़ रहे थे । देवासुर-संग्राम के समान भीषण यह युद्ध यमराष्ट्र की वृद्धि कर रहा था ।२६-२८। कल्कि के सेनापतियों से भिड़े हुए शशिध्वज के सेनापति एवं वीरगण सिर कटा कर पृथिवी पर गिर रहे थे ।२९।

आहत होकर कोई भाग रहा है, कोई चीत्कार कर रहा है, कोई आर्त-नाद कर रहा है, किसी पर रक्त की धार पड़ रही है, कोई एक दूसरे से गुँथे हुए ही पृथिवी पर गिर रहे हैं तथा कोई हाथी या अश्व के पाँवों अथवा रथों के पहियों से ही कुचले जा रहे हैं ।३०।

निपेतुः प्रघने वीराः कोटिकोटिसहस्रशः ।
भूते सानन्दसन्दोहा स्रवन्ती रुधिरोदकम् ॥३१॥
उत्प्लोपकसाः उच्छिन्न गजरोघोरथस्पथाः ।
करोरुमीनामरणमसिकाच्छनवालुका ॥३२॥
एवं प्रवृत्ता संग्रामे नदी सद्योऽतिदारुणा ।
सूर्यकेतुस्तु मदेन सहितो युयुधे बली ॥३३॥
कालकल्पो दुराधर्षो मदं बाणैरताडयत् ।
मदस्तु तस्य दशभिर्मार्गणैर्व्यदारयद् भृशम् ॥३४॥
मदबाणाहतो वीरः सूर्यकेतुरमर्षितः ।
जघान तुरगान्कोरापदोद्धातेन तद्रथम् ॥३५॥
कृपीयिस्ताड्य तेनापि तस्य वक्षस्यताडयत् ।
गदाघातेन तेनापि मदस्तूर्च्छामवापह ॥३६॥

इस प्रकार, उस युद्ध में हजारों करोड़ वीर नाश को प्राप्त हुए । रणक्षेत्र में रक्त की नदी बह चली । इस नदी के प्रवाह को देख कर भूत-पिशाचादि अत्यन्त आनन्दित [illegible] ।३१। इस लोहित नदी में बहती हुई पताका शरीरों से सुशोभित हंस के समान प्रतीत होती थी । उसमें गिरे हुए हाथी ऐसे लगते थे जैसे टापू हों । रथ उसमें नावों के समान तैरने लगे और कटे हुए हाथ पाँव मच्छ जैसे लगने लगे । उसमें गिरे हुए खड्ग ऐसे लगते थे मानों स्वर्णिम रेती चमक रही हो ।३२। इस प्रकार रणक्षेत्र में यह अत्यन्त दारुण नदी बहने लगी । सूर्यकेतु मद के साथ युद्ध कर रहा था ।३३। काल के समान विकट सूर्यकेतु के बाणों से मद आहत हो गये तब मद ने भी दस बाणों से सूर्यकेतु को आहत कर दिया ।३४। मद के बाणों से आहत हुए सूर्यकेतु ने मद के सभी अश्व

मार डाले और गदाघात से रथ तोड़ डाला। फिर मरु के हृदय पर भीषण गदाघात किया, जिससे वह मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े।३५-३६।

सारथिस्तमपोवाह रथेनान्येन धर्मवित्।
बृहत्केतुश्च देवापि बाणै: प्राच्छादयद्बली ॥३७॥
धनुर्विकृष्य तरसा नीहारेण यथा रविम्।
स तु बाणमयं वर्षं परिवार्य निजायुधैः ॥३८॥
बृहत्केतु दृढं जघ्ने कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।
भिन्नं शूलमथालाय धनुर्गृह्य पतत्त्रिभिः ॥३९॥
शितधारैः स्वर्णपुङ्खैर्गार्ध्रपत्रैरयोमुखैः।
देवापिमाशुगैर्जघ्ने बृहत्केतुः ससैनिकम् ॥४०॥
देवापिस्तद्धनुर्दिव्यं चिच्छेद निशितैः शरैः।
छिन्नधन्वा बृहत्केतुः खड्गं गृह्णाज्जिघांसया ॥४१॥

तब मरु का धर्मवित् सारथि उन्हें उठा कर अन्य रथमें ले गया। उधर महाबली बृहत्केतु ने देवापि पर बाण-वर्षा की।३७। जैसे सूर्य कुहरे से आच्छादित हो जाता है, वैसे ही बाणों से आच्छादित देवापि ने तुरंत धनुष लेकर शत्रु की बाण वर्षा को अपनी बाण वर्षा से काट दिया।३८। बृहत्केतु ने शान चढ़े हुए बाणों से अपने शूल को भी नष्ट हुआ देख कर पुन: धनुष उठाया और उस पर स्वर्ण खचित, गृद्ध पत्र के समान तथा लोह मुख वाले तीक्ष्ण बाण चढ़ा कर देवापि पर सैन्य सहित भीषण प्रहार किये।३९-४०। परन्तु बृहत्केतु के उस दिव्य धनुष को देवापि ने अपने तीक्ष्ण बाणों से काट दिया। देवापि को मारने के विचार से बृहत्केतु ने हाथ में खड्ग ग्रहण किया।४१।

देवापे: सारथिं सास्वं जघ्ने शूरो महामृधे।
स देवापिर्धनुस्त्यक्त्वा तलेनाहत्य तं रिपुम् ॥४२॥
भुजयोरन्तरानीय निष्पिपेष स निर्दय:।
स दृष्टवर्णं निष्क्रान्तं मूर्च्छितं जनुर्णहितम् ॥४३॥

नवम अध्याय

हृदि ध्यानास्पदं रूपं कल्केर्दृष्ट्वा शशिध्वजः ।
पूर्णं खड्गधरं चारुतुरगारूढमब्रवीत् ॥१॥
धनुर्बाणधरं चारु-विभूषणवराङ्गकम् ।
पापतापविनाशायमुद्यतं जगतां परम् ॥२॥
प्राह तं परमात्मानं हृष्टरोमा शशिध्वजः ।
एह्येहि पुण्डरीकाक्ष ! प्रहारं कुरु मे हृदि ॥३॥
अथवात्मन् बाणभिया तमोऽन्धे हृदि मे विश ।
निर्गुणस्य गुणाश्रयपदं तस्यास्त्रताडनम् ॥४॥
निष्कामस्य जयोद्योगसहाय यस्य सैनिकम् ।
लोकाः पश्यन्तु युद्धे मे हृदये परमात्मनः ॥५॥
परबुद्धिर्यदि दृढ प्रहर्त्ता विभवे त्वयि ।
शिवविष्णोर्भेदकृते लोकं यास्यामि सयुगे ॥६॥

सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! कल्किजी का हृदय में ध्यान के योग्य, सुन्दर, खड्गधारी एवं तुरगारूढ़ पूर्ण स्वरूप देख कर शशि-ध्वज ने विचार किया ।१। धनुर्बाणधारी सुन्दर आभूषणों से विभूषित जगदीश्वर भगवान् कल्कि का अवतार संसार के पाप-ताप के निवारणार्थ हुआ है ।२। राजा शशिध्वज ने पुलकित शरीर से परब्रह्म कल्किजी के प्रति निवेदन किया—हे पुण्डरीकाक्ष ! आइये, मेरे हृदय पर प्रहार कीजिये ।३। हे परमात्मन् ! मेरे बाणों की मार से बचने के लिए मेरे तमाच्छादित हृदय में आकर छिप जाओ । जो निर्गुण होकर भी गुणों में आता है, जो अद्वैत होकर भी अस्त्र प्रहार में तत्पर हैं तथा जो निष्काम होकर भी विजय की इच्छा से सैन्य-संहार कर रहे हैं मैं उन्हीं

भगवान् के साथ द्वैरथ युद्ध में तत्पर हो रहा हूँ। अभी मोक्ष प्रदाता भगवान मेरे ।४-५। मैं आप विभु पर प्रहार करूँगा। परन्तु प्रहार करते समय भी यदि मैं आपको ब्रह्म से भिन्न समझने लगूँ तो शिव और विष्णु में भेद मानने वाले को जिस लोक की प्राप्ति होती है, मुझे उसी लोक की प्राप्ति हो ।६।

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा प्रकोपात् कल्किरद्भुतः ।
बाणैस्तं ताडयामास धृतायुधमरिन्दमम् ॥७॥
शशिध्वजस्तत्प्रहारमगणय्य वरायुधैः ।
स जघान बाणवर्षैर्धाराभिरिव पर्वतम् ॥८॥
तद्बाणवर्षाभिक्रान्तः कल्किः परमकोपनः ।
दिव्यं शस्त्रास्त्रसंपातं तयोर्युद्धमवर्तत ॥९॥
ब्राह्मस्य च ब्राह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतं ।
आग्नेयस्य च पार्जन्यं पन्नगस्य च गारुडं ॥१०॥
एवं नानाविधैरस्त्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
लोकाः सपालाः सन्त्रस्ता युगान्तमिव मेनिरे ॥११॥
देवा ब्रह्माग्निसम्भ्रान्ता भ्रमं जग्मुः किल ।
ततोऽविविक्तयोधौ तौ वासुदेवशशिध्वजौ ॥१२॥
निरस्त्रौ बाहुयुद्धेन युयुधाते परस्परम् ।
पदाघातैस्तलाघातैर्मुष्टिप्रहारसंस्तवा ॥१३॥

राजा के इन वचनों को सुन कर क्रोध से भरे कल्किजी क्रोधित हो उठे। यह देख कर आयुधधारी एवं अरिमर्दन राजा शशिध्वज ने उन पर बाण-प्रहार प्रारम्भ किया ।७। जब राजा ने अपने उस प्रहार का निष्फल हुआ देखा तो वह पर्वत पर वर्षणशील मेघ के समान घोर बाणों की वर्षा करने लगे ।८। उस बाण वर्षा से कल्किजी का शरीर आहत हो गया। तब वे अत्यन्त क्रोध करके आगे बढ़े। इस प्रकार दोनों में घोर युद्ध होने लगा ।९। ब्रह्मास्त्र के द्वारा ब्रह्मास्त्र काटने लगे। पार्वतास्त्र से वायव्यास्त्र, मेघास्त्र से आग्नेयास्त्र और गरुडास्त्र से

सर्वाङ्ग नष्ट होने लगे ।१०। इस प्रकार विविध भाँति के दिव्यास्त्रों के द्वारा वे दोनों भीषण प्रहार में तन्मय थे। इससे लोक और लोकपाल सभी यह समझते हुए कि कहीं आज ही प्रलय न हो जाय, अत्यन्त भयभीत हुए ।११। ब्रह्मादि भी देख कर युद्ध देखने के लिए गगन मण्डल में एकत्र हुए देवता भयभीत हो गये। दिव्यास्त्रों को व्यर्थ हुए देख कर कल्कि और राजा शशिध्वज दोनों बाहु युद्ध के निमित्त शस्त्र त्याग कर हाथ पड़े। फिर, पदाघात करतलाघात और मुष्टिका-प्रहार से युद्ध होने लगा ।१२-१३।

निपुद्धकुशलौ वीरौ मुमुदाते परस्परम् ।
वराहोद्धृतभूखण्डेन तलेनाहनद्धरिः ॥१४॥
स मूर्च्छितो नृप क्षोणात्समुत्थाय च तत्क्षणात् ।
मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यामवधीत्कल्किमोजसा ।
स कल्किस्तत्प्रहारेण पपात भुवि मूर्च्छितः ॥१५॥
धर्मः कृतश्च तं दृष्ट्वा मूर्च्छितं जगदीश्वरम् ।
समागतौ तमानेतुं कक्षे तौ जगृहे नृपः ॥१६॥
कल्किं वक्षस्युपादाय लब्धसंज्ञः प्रययौ गृहम् ।
युद्धं न शशाम्येषां पुत्री दृष्ट्वा मुहुर्मुहुः ॥१७॥

दोनों ही रणविद्या में अत्यन्त कुशल थे और परस्पर एक दूसरे के कौशल को देखते हुए प्रसन्न हो रहे थे। सृष्टि के आरम्भ में पृथिवी का उद्धार करने के लिए वाराह भगवान् ने जैसा प्रहार किया था, कल्किजी द्वारा किये गये करतलाघात से वैसा ही भीषण प्रहार हुआ ।१। उस आघात से राजा शशिध्वज मूर्च्छा को प्राप्त हो गए। फिर तुरन्त ही सचेत होकर उन्होंने कल्किजी पर वज्र के समान मुष्टि प्रहार किया, जिससे कल्किजी अचेत होकर पृथिवी पर लेट गये ।१५। तब जगत्पति कल्किजी को मूर्च्छित देख कर धर्म और सतयुग वहाँ आकर उन्हें ले जाने लगे। परन्तु राजा शशिध्वज ने उन दोनों को काँख में दबा लिया ।१६। और कल्किजी को वक्ष में उठा कर कृत कृत्य होते हुए

दशम अध्याय

जय हरेऽमराधीशसेवितं तव पदाम्बुजं । भूरिभूषणम्
कुरु ममाग्रतः साधुसत्कृतं त्यज महामते ! मोहमात्मनः ॥१॥

तव वपुर्जगद्रूपसम्पदा विरचितं सतां मानसे स्थितम् ।
रतिपतेर्मनोमोहदायकं कुरु विचेष्टितं कामलम्पटम् ॥२॥

तव यशो जगच्छोकनाशनं मृदुकथामृतप्रीतिदायकम् ।
स्मितसुधोक्षितं चन्द्रवन्मुखं तव करोत्वलं लोकमङ्गलम् ॥३॥

मम परिश्रमं सर्वदुर्जयो यदि तवाप्रियं कर्मणाचरेत् ।
जहि तदात्मनः साधुमुद्यतः कुरु कृपां न चेदीदृशोऽश्वरः ॥४॥

महदहंयुतं पञ्चमात्रया प्रकृतिजायया निर्मितं वपुः ।
तव निरीक्षणाल्लीलया जगत्स्थितिलयोदयं ब्रह्मकल्पितम् ॥५॥

सुता बोली—हे हरे! आपकी जय हो! महामते! अब आप अपने इस मोहोत्पन्न भाव को त्याग कर इन्द्र से भी सेवित, सुन्दर आभूषणों से विभूषित तथा साधुओं के द्वारा सत्कारित अपने चरणारविन्द मेरे समक्ष कीजिये।१। जगत् की श्रेष्ठ सम्पदा से विरचित तथा साधुओं के हृदय में विद्यमान रहने वाला आपका यह देह कामदेव को भी मोहित करने वाला है। अब आप हमारी कामना पूर्ण कीजिये।२। आपके यशगान से जगत् के शोक नष्ट होते हैं, आपके मुस्कान सुधा सम्पन्न चन्द्र वदन से निकली हुई मधुर वाणी सब को प्रसन्न करती है। हे प्रभो! आपका यह मुख लोककल्याण के करने

वाला है ।३। मेरे सर्व दुर्जय पति के द्वारा यदि आपका कोई अपराध बन पड़ा हो तो भी इनके प्रति शत्रु-भाव न रख कर इन पर कृपा कीजिये, अन्यथा कोई आपको कृपामय ईश्वर नहीं कहेगा ।४। आपकी पत्नी प्रकृति महत्तत्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र के द्वारा देह रचती है। आपके ही निरीक्षण में लीला से ही यहा कल्पित विश्व में सृष्टि, स्थिति और लय का क्रम चलता है ।५।

भुवियन्मरुद्वारितेजसा राशिभि: शरीरेन्द्रियाश्रितैः ॥
त्रिगुणया स्वया मायया विभो कुरु कृपां भवत्सेवनार्थिनाम्
तव गुणालयं नाम पावनं कलिमलापहं कीर्तयन्ति ये ।
भवभयक्षयं तापनाशिता मुहुरहो जना संसरन्ति नो ।।७।।
तव जनम सतां मानवर्द्धनं निजकुलक्षयं देवपालकम् ।
कृतयुगापकं धर्मपूरकं कलिकुलान्तकं शमनोतु मे ।।८।।
मम गृहं पतिपुत्रनप्तृकं गजरथैर्ध्वजैश्चामरैर्धनैः ।
मणिवरासनसत्कृति विना तव पदाब्जयो: शोभयन्ति किम्
तव जगद्वपुः सुन्दरस्मितं मुखमनिन्दितं सुन्दरारवम् ।
यदि नने प्रिय वल्गुचेष्टितं परिकरोत्यहो मृत्युरस्त्विह ।।१०।।

हे देव ! पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्व से युक्त यह पञ्च भूतात्मक शरीर इन्द्रियों के आश्रित रहते हैं। अपनी त्रिगुणात्मिका माया से अपने भक्तों पर कृपा कीजिये ।६। हे प्रभो ! आपके नाम गुण-कीर्तन से कलियुग के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। आपका यह नाम अनन्त गुणों से युक्त और भवभय का नाश करने वाला है, जो संसार ताप से पीड़ित प्राणी उसका स्मरण करते हैं, उनका जन्म-मरण रूप बन्धन नष्ट हो जाता है ।७। आपका यह अवतार साधुओं का मान बर्द्धक, कलियुग नाशक, देवताओं का पालक, धर्म पूरक तथा सत्युग का पुनः स्थापक है। आपके इस अवतार से हमारा कल्याण हो ।८। मेरे घर में पति, पुत्र, पौत्र, गज, रथ, ध्वज, चमर, धन और मणि जटित श्रेष्ठ आसनादि सब कुछ वर्तमान हैं। परन्तु आपके

चरणारविन्दों से पूजन किये बिना उनकी शोभा नहीं हो सकती।९। हे जगद्गुरु ! सुन्दर मुस्कान से सुशोभित, मधुर वाणी से विभूषित, सुरम्य चेष्टा से युक्त आपका मुख यदि हमारा प्रिय नहीं करता रहेगा तो हमारी तत्काल मृत्यु ही हो जायगी।१०।

हयधरभयहरकरहरशरणखरतरवरशरदशदमदन ।
जयहतपरभरभववरनाशनशशधरशतसमरसभरवदन ॥११॥
इति तस्याः सुशान्तायाः गीतेन परितोषितः ।
उत्तस्थौ रणसंयाता कल्कियुद्धस्यवीरवत् ॥१२॥
सुशान्तां पुरतो दृष्ट्वा कृत वामे तु दक्षिणे ।
धर्मं शशिध्वज पश्चात्प्राहों त्रीडितानन ॥१३॥
का त्वं पद्मपलाशाक्षि ! मम सेवार्थमुद्यता ।
कान्ते शशिध्वजः शूरो मम पश्चादुपस्थित ॥१४॥
हे धर्म ! हे कृतयुग ! कथमागता वयम् ।
रणाङ्गण विहायाग्याः सम्भोरत्व पुरे वद ॥१५॥

आप आश्वारोही भव को अभय देते हुए विचरते हैं ? आपके तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से जो वीर पुरुष युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उनका आप ही प्रतिपालन करते हैं। आपके मुख मण्डल पर सैकड़ों चन्द्रमाओं की आभा चमकती है। शिव और ब्रह्मा भी सदा आपके आश्रय की कामना करते रहते हैं।११। सुशान्ता द्वारा किये गये इस प्रकार के विनय-गान से सन्तुष्ट होकर कल्किजी उसी प्रकार उठ पड़े, जिस प्रकार रणक्षेत्र में मूर्च्छित वीर उठ जाता है।१२। उन्होंने अपने सामने रानी शान्ता को, वाम पार्श्व में सत्युग और दक्षिण पार्श्व में धर्म को और अपने पीछे राजा शशिध्वज को खड़े देखा। तो लज्जा से मुख नीचा करके बोले।१३। हे कमलपत्र जैसे नेत्र वाली ! तुम कौन हो और मेरी सेवा में क्यों तत्पर हुई हो ? यह बलवान् राजा शशिध्वज मेरे पीछे क्यों उपस्थित है ?।१४। हे धर्म ! हे सत्युग ! हम युद्ध क्षेत्र

को छोड़ कर शत्रु के मन्दिर में क्यों आ गये यह ? यह मुझे बताओ ।।१५।।

शत्रुपत्न्य कथं साधु सेवन्ते मामिह मुदा ।
शशिध्वज. शूरमानी मूर्च्छितं हन्ति नो कथम् ।।१६।।
पाताले क्षिति भूलोका नरनागसुरासुराः ।
नारायणस्य के कलके केना सेवा न कुर्वते ।।१७।।
यत्सेवकाना जगतां निशारण दर्शनादपि ।
निवर्तन्ते शत्रुभावस्तस्य साक्षात्कुतो रिपु. ।।१८
त्वया ह्यद्य मम पति शत्रुभावेन सयुगे ।
यदि योगस्तत्तदानेतु कि समर्थो निजालयम् ।।१०।।
तव दासो मम स्वामी अहं दासी निजा तव ।
भावतो सम्प्रसादाय आगतोऽसि महाभुज ।।२०।।

मुझे शत्रु की यह शत्रु-पत्नियाँ प्रसन्न हो हुई यहाँ परिचर्या कर रही हैं ? जब मैं मूर्च्छित हो गया था, तब इस शूर एवं मानी राजा शशिध्वज ने मेरा सहार क्यों नहीं कर दिया ? ।।१६।। रानी बोली— पाताल, स्वर्ग अथवा पृथिवी पर, नाग, सुर और असुर में ऐसा कौन है जो भगवान् कल्कि की सेवा नहीं करता ? ।।१७।। संसार जिनका सेवक और मित्र है तथा जिनके दर्शन मात्र से शत्रु भाव नष्ट हो जाता है, क्या उनका कोई प्रत्यक्ष रूप से कभी शत्रु हो सकता है ? ।।१८।। मेरे पति यदि आपके प्रति शत्रु भाव रख कर आपसे युद्ध करते तो क्या वह आपको अपने घर में इस प्रकार ले आते ? ।।१९।। हे महाभुज ! मेरे पति आपके दास है, इसलिए मैं भी आपकी दासी हूँ। इस प्रकार हम पर प्रसन्न होकर ही आप स्वयं यहाँ पधारे हैं ।।२०।।

अहं सर्वतपोभिस्तपा नामरूपानुकीर्तनात् ।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कलिहन्त ।।२१।।
अधुनाहं कृतयुगं तव दासस्य दर्शनात् ।
स्वमोक्षगो जगत्पूज्यसेवकस्यास्य तेजसा ।।२२।।

दण्डय मां दण्डय विभो योद्धृ-न्यादुद्यतायुधम् ।
येन कामादिरागेणत्वयात्मन्यपि वैरिता ॥२३॥
इति कल्किर्वचस्तेषां निशम्य हसिताननः ।
त्वया जितोऽस्मीति नृप पुनः पुनरुवाच ह ॥२४॥
ततः शशिध्वजो राजा युद्धादाहूय पुत्रकान् ।
सुशान्तायाः मतिं बुद्धा रमां प्रादात्सकल्कये ॥२५॥

धर्म ने कहा—हे कलि का नाश करने वाले कल्किजी ! यह राजा-रानी दम्पति जिस प्रकार आपकी भक्ति करते हुए आपका नाम-संकीर्त्तन एवं स्तोत्र करते हैं, उसे देख कर मैं कृतार्थ हो गया—कृतार्थ हो गया ।२१। सत्युग बोला—हे प्रभो ! आज आपके इस सेवक का दर्शन पाकर तो अवश्य ही मेरा सत्युग नाम यथार्थ हो गया। इस सेवक ने अपने तेज से आपको भी जगत्पूज्यत्व और ईश्वरत्व से परिपूर्ण कर दिया ।२२। राजा शशिध्वज बोले—हे जगदीश्वर ! मैंने काम क्रोध आदि विषयों के वशीभूत होकर ही आप ईश्वर एवं साक्षात् अपने आत्मा के प्रति शत्रुता करके आपके देह पर अस्त्र प्रहार किया है ।२३। राजा के वचन सुन कर कल्किजी ने मुस्कराते हुए बारम्बार कहा—हे राजन् ! आपने मुझे सब प्रकार जीत लिया है ।२४। इसके पश्चात् राजा शशिध्वज ने रणभूमि से अपने पुत्रों को वापिस बुला लिया और फिर रानी सुशान्ता की प्रेरणा से अपनी रमा नाम की कन्या कल्किजी को प्रदान कर दी ।२५।

तदैव मरुदेवापी शशिध्वजसमाहृतौ ।
विशाखयूपभूपश्च रुचिराश्वश्च संयुगात् ॥२६॥
शय्याकर्णनृपेणापि मल्लाटं पुरमाययुः ।
सेनागणैरसंख्यातैः सा पुरी मद्दितामवत् ॥२७॥
गजाश्वरथसंबाधैः पत्तिच्छत्ररथध्वजैः ।
कल्किनापि रमायाश्च विवाहोत्सवसम्पदाम् ॥२८॥

द्रष्टुं समीयुस्त्वरिता हर्षात्सबलवाहनाः ।
शङ्खभेरी मृदङ्गानां वादित्राणाञ्च निस्वनैः ॥२९॥
नृत्यगीतविधानैश्च पुरस्त्रीकृतमङ्गलैः ।
विवाहो रमयाऽस्कल्केरभूदतिसुखावहः ॥३०॥

इस अवसर पर यक्ष, देवर्षि, विशाखयूपनरेश और रुचिराश्व आदि सभी कल्कि पक्ष के राजागण अधिकृत द्वारा आमन्त्रित किये गये। वे सब राजा आयोजन की साथ लेकर शम्भलभूमि से मल्लाट नगरी में आ पहुँचे। उस समय असंख्य कल्कि-सेना के पाँवों से यह नगरी मर्दिता हो गई।२१-२८। यज्ञ, अश्व, रथ, पदाति, छत्र और रथ की ध्वजाएँ आदि सभी से सुशोभित विवाह मण्डप में कल्किजी और रमा का विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ।२८। हर्ष से प्रफुल्लित हुए सभी व्यक्ति अपने दल बल और वाहनों के सहित उस समय को देखने के लिए वहाँ आये। राजकुमारी रमा का विवाह शंख, भेरी, मृदंग आदि वाद्यों की सुमधुर ध्वनि और पुर-नारियों के श्रेष्ठ मङ्गलाचारों तथा नृत्य-गीतादि के आनन्द सम्पन्न हुआ।२९-३०।

नृपा नानाविधैर्भोज्यैः पूजिता विविशुः सभाम् ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चावरजातयः ॥३१॥
विचित्रभोगाभरणाः कल्किं द्रष्टुमुपाविशन् ।
तस्यां सभायां शुशुभे कल्किः कमललोचनः ॥३२॥
नक्षत्रगणमध्यस्थः पूर्णः शशधरो यथा ।
रेजे राजगणाधीशो लोकानामभिमोहयन् ।३३।
रमापतिं कल्किमवेक्ष्य भूपः समागतं पद्मपलाशलोचनम् ।
जामातरं भक्तियुतेन कर्मणा विबुध्य सख्ये नियमात् तमर्ह ।३४

विविध प्रकार भोज्य एवं पान पदार्थों से सत्कार प्राप्त करते हुए राजगण सभा में प्रविष्ट हुए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि

सभी वहां के लोग अद्भुत आभूषणों और विविध प्रकार की भोग—सामग्रियों को प्राप्त करके उस सभा मे सुशोभित कल्किजी के सब ओर बैठ कर शोभा को प्राप्त होने लगे ।३१-३२। जैसे तारागण के मध्य पूर्ण चन्द्र की अत्यन्त शोभा होती है, वैसे हो सब लोगो के मध्य मे सुशोभित राजाओ के भी स्वामी कल्किजी सब लोगों को मोहित करने लगे ।३३। पद्म पलाश जैसे नेत्र वाले कल्किजी ने सभा मे उपस्थित राजाओ आदि के समक्ष रमा का पाणिग्रहण किया। उस समय राजा शशिध्वज भी कल्किजी को जामाता-भाव से देखते हुए भक्ति-युक्त हृदय से सभा मे अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए ।३४।

०००

यह शक्ति आपको किस प्रकार उपलब्ध हो सकी ? ।४। हे राजन् ! इस भक्ति को क्या आपने किसी से शिक्षा प्राप्त की है ? अथवा यह भक्ति आप में स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो गई है ? हे राजन् ! आपकी इस भगवद्भक्ति का कारण सुनने की हमें जिज्ञासा है । क्योंकि भगवद्भक्ति की यह कथा संसार के आवागमन को नाश करने वाली है ।५।

स्त्रीपुंसोर्वयोर्वस्तत्तच्छ्रुत्वामोघविक्रमा ।
वृत्तं यज्जन्मकर्मादि स्मृति तद्भक्तिलक्षणम् ॥६॥
पुरा युगसहस्रान्ते गृध्रोऽहं पूतिमांसभुक् ।
गृध्री च मे प्रियारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥७॥
चचार काम सर्वत्र वनोपवनसंकुले ।
मृतानां पूतिमांसौघं प्राणिनां वृत्तिरूरकौ ॥८॥
एकदा लुब्धकः क्रूरो लुलोभ पिशिताशिनौ ।
आवां वीक्ष्य गृहे गृध्रं गृध्रं तत्राप्ययोजयत् ॥९॥
स वीक्ष्य जातविश्रम्भौ क्षुधया परिपीडितौ ।
स्त्रीपुंसौ पतितौ तत्र मांसलोभितचेतसौ ॥१०॥

इस पर राजा शशिध्वज बोले—हे राजाओ ! हम दोनों पति-पत्नी के जो जन्म, कर्म आदि हैं तथा जिस प्रकार हम को भगवद्भक्ति का स्मरण हुआ, वह सब आप सुनिये ।६। एक सहस्र युग पहिले की बात है—मैं सड़ा-गला मांस खाने वाला गृद्ध था और मेरी यह प्रिया गृद्धिनी थी । हम दोनों एक विशाल वृक्ष पर नीड़ बना कर उसमें रहते थे ।७। वन-उपवन आदि स्थानों में हमारी इच्छानुसार स्वच्छन्द गति थी । उस समय हम मरे हुए प्राणियों के दुर्गन्धित मांस से अपना जीवन निर्वाह किया करते थे ।८। एक दिन एक क्रूर व्याध ने हमें देख लिया और लोभवश हमें पकड़ने के लिए उसने अपने पालित गृद्ध को हमारे समक्ष छोड़ दिया ।९। मैं क्षुधा से व्याकुल था, तभी मैंने उसे देखा और मांस के लोभ से हम स्त्री-पुरुष दोनों ही उस पर झपट पड़े ।१०।

बद्धावावां सोऽथ तदा हृष्टोऽसावागत्य लुब्धकः ।
जग्राह कण्ठे तरसा पञ्जरायान्तरोऽधिकः ॥११॥

व्याधो गृहीत्वा गण्डक्याः शिलायां सन्निधान्तिके ।
मस्तिष्कं चूर्णयामास लुब्धकः पिशिताशनः ॥१२॥
चक्राङ्कितशिलासङ्गामरणादपि तत्क्षणात् ।
ज्योतिर्मयविमानेन सद्यो भूत्वा चतुर्भुजौ ॥१३॥
प्राप्तौ वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
तत्र स्थित्वा युगशतं ब्रह्मणो लोकमागतौ ॥१४॥
ब्रह्मलोके पञ्चशतं युगानामुपभुज्य वै ।
देवलोके कालवशाद्गतं युगचतुःशतम् ॥१५॥

व्याध ने हम दोनों को अपने जाल में बँधा हुआ देखा तो वह प्रसन्न होता हुआ शीघ्रता से हमारे पास आया और उसने हमारे पंख पकड़ लिये । तब हम भी उस पर अपनी चोंचों से आघात करने लगे ।११। तदनन्तर मांस के लोभी उस व्याध ने हम दोनों को पकड़ कर गण्डकी में स्थित एक शिला पर पछाड़-पछाड़ कर हमारे मस्तकों को चूर्ण कर डाला ।१२। गण्डकी का किनारा और चक्राङ्कित शिला—मरण काल में इन दोनों की सान्निध्यता के प्रभाव से हम उसी समय चतुर्भुज रूप हो गये और तेजस्वी विमान में चढ़ कर सब लोकों के द्वारा नमस्कृत वैकुण्ठ लोक में आ पहुँचे । वहाँ सौ युगों तक निवास करने के पश्चात् हमको ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई ।१३-१४। उस ब्रह्मलोक में पाँच सौ युगों तक सुख भोगने के पश्चात् काल के वश में पड़ कर देवलोक में गये और चार सौ युगों तक वहाँ सुख भोगते रहे ।१५।

ततो भुवि नृपास्तावद्वयसूनुरहं स्मरन् ।
हरेरनुग्रहं लोके शालग्रामशिलाश्रयम् ॥१६॥
जातिस्मरत्वं गण्डक्याः किं तस्याः कथयाम्यहम् ।
यज्जलस्पर्शमात्रेण माहात्म्यं महदद्भुतम् ॥१७॥
चक्राङ्कितशिलास्पर्शमरणस्येदृशं फलम् ।
न जाने वासुदेवस्य सेवया किं भविष्यति ॥१८॥
इत्याबाहरिपूजासु सर्वविह्वलचेतसौ ।

नृत्यन्तस्त्वगायन्तो विलुठन्तो दिवताविह ॥१९॥
कल्केर्नारायणांशस्य अवतारः कलिक्षयः।
पुरा विदितवीर्यस्य पृष्टो ब्रह्ममुखाच्छ्रुत ॥२०॥

हे राजागण ! फिर अब हम इस मत्यलोक में उत्पन्न हुए हैं। परन्तु हमें शालग्राम शिला का वह स्थान और भगवान् विष्णु की कृपा का अभी तक स्मरण है।१६। क्योंकि गण्डकी नदी के तट पर मरण होने पर जन्मों की स्मृति कभी नष्ट नहीं होती। यह अद्भुत माहात्म्य उस नदी के जल स्पर्श का ही है।१७। यदि उस चक्रांकित शिला के स्पर्श मात्र से मृत्यु के पश्चात् ऐसा शुभ फल होता है, तो भगवान् वासुदेव की सेवा के फल का तो कहना ही क्या है ? ।१८। यही सोचते हुए हम कभी हरि-पूजन में अपने चित्त को एकाग्र करते हैं, कभी हम से विह्वल होकर नृत्य करने लगते हैं, कभी उनका गुण-गान करते और भक्ति भाव में मग्न हो जाते हैं।१९। यह समाचार हमें भी ब्रह्माजी द्वारा पहिले ही मिल गया था कि कलियुग का नाश करने के लिए भगवान् नारायण का अंशावतार होगा। इस प्रकार हम इनके पराक्रम को भले प्रकार जानते हैं।२०।

इति राजसभायां स श्रावयित्वा निजाः कथाः ।
ददौ गजानामयुतमश्वानां लक्षमादरात् ॥२१॥
रथानां षट्सहस्त्रन्तु ददौ पूर्णस्य भक्तित. ।
दासीनां युवतीनाञ्च रमानाथाय षट्शतम् ॥२२॥
रत्नानि च महार्घाणि दत्वा राजा शशिध्वज. ।
मेने कृतार्थमात्मानं स्वजनैर्बान्धवैः सह ॥२३॥
सभासद इतिश्रुत्वा पूर्वजन्मोदिताः कथाः ।
विस्मयाविष्टमनसः पूर्णं तं मेनिरे नृपम् ।२४।
कल्कि स्तुवन्तो ध्यायन्तो प्रशंसन्त जगज्जनाः।
पुनस्तमाहू राजानं नराणां भक्तिभक्तयो. ।२५।

इस प्रकार उस सभा में अपना पूर्व प्रसंग कह कर राजा शशिध्वज ने भक्ति-भाव पूर्वक कल्किजी को दस सहस्र गज, एक लाख अश्व,

छः सहस्र रथ, छः सौ युवती दासियाँ तथा असंख्य रत्नादि प्रदान करके अपने स्वजनों और बान्धवों के सहित अपने को धन्य माना ।२१-२३। राजा शशिध्वज के मुख से उनके पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुन कर सभी सभासद् आश्चर्य चकित होकर उन्हें पूर्ण समझने लगे ।२४। फिर वहाँ उपस्थित सभी जन कल्कि जी का भक्तिपूर्वक ध्यान करने लगे । फिर उन्होंने भक्तों के लक्षण विषयक प्रश्न राजा शशिध्वज से किया ।२५।

भक्तिः कास्यद्भगवतः को वा भक्तो विधानवित् ।
किं करोति किमश्नाति क्व वा वसति वक्ति किम् ।२६।
एतन्मे ब्रूहि राजेन्द्र ! सर्वं त्वं वेत्सि सादरात् ।
जातिस्मरत्वात्कृष्णस्य जगतां पावनेच्छया ।२७।
इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृपः ।
साधुवादैः समाभाष्य तानाह ब्रह्मणोदितम् ।२८।
पुरा ब्रह्मसभामध्ये महर्षिगणसंकुले ।
सनकोनारदं प्राह भवद्भिर्यास्त्विहोदिताः ।२९।
तेषामनुग्रहेणाह तयोदित्वा श्रुताः कथाः ।
यास्ताः सकथयाम्यद्य शृणुध्वं पापनाशनाः ।३०।

सभासद बोले—भगवद्भक्ति क्या है ? विधान का जानने वाला भक्त कौन कहा जाता है ? भक्त का कार्य क्या है ? वह क्या खाता, क्या वार्तालाप करता और कहाँ रहता है ? ।२६। हे राजेन्द्र ! आपको सब कुछ विदित है, इस लिए आप कृपया आदरपूर्वक सब बात हमें बतावें । उनकी बात सुन कर राजा शशिध्वज ने हर्षित मुख से उन्हें साधुवाद दिया । फिर जाति स्मरण होने के कारण श्री कृष्ण चरित्र द्वारा संसार को पवित्र करने के उद्देश्य से उन्होंने वह कथा कहना आरम्भ किया, जो उन्होंने ब्रह्माजी के मुख से सुना था ।२७-२८। शशिध्वज बोले पुराकाल की बात है—ब्रह्माजी की सभा के मध्य महर्षिगण विराजमान थे, उसी अवसर पर जो कुछ सनकादि ने नारदजी से पूछा था, वही आपको बताता हूँ ।२९। उस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था, इसलिए

उनकी कृपा से मैंने उस सब प्रसंग को सुना था। हे पापनाशन उप-स्थित सज्जनो! जो बात मैंने सुनी थी। वही कहता हूँ, आप लोग सुनिये।२०।

का भक्ति संसृतिहरा हरौ लोकनमस्कृता।
तामादौ वर्णय मुने नारदाविहिता वचम्।३१।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि संयम्य परया धिया।
गुरावपि न्यसेद्देह लोकतन्त्रविचक्षण.।३२।
गुरौ प्रसन्ने भगवान्प्रसीदति हरिः स्वयम्।
प्रणवाग्निक्रियामध्ये मवरण सन्निदेशतः।३३।
स्मरेदनन्यया बुध्या देशिक सुसमाहित।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः।३४।
पूजयित्वा वासुदेवपादपद्म समाहित.।
सर्वाङ्गसुन्दर रम्य स्मरद्धृत्पद्ममध्यगम्।३५।

सनक ने कहा—हे मुने! हे नारद! किस प्रकार की हरि-भक्ति से जन्म नहीं लेना होता तथा कौन सी भक्ति प्रशंसा के योग्य है। आप उसी को पहले कहिये। हम सुनने के इच्छुक हैं।३१। नारद बोले—लोकतन्त्र के ज्ञाता साधक को श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा पाँचो ज्ञानेन्द्रिय और छठवे मन का निग्रह करते हुए श्रद्धा-भाव पूर्वक गुरु के चरणो मे अपना शरीर अर्पण कर देना चाहिये।३२। क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने पर भगवान् श्रीहरि भी प्रसन्न होते हैं। प्रथम प्रणवाग्नि क्रिया के मध्य मे ॐ, का अनन्य हृदय से स्मरण करे। फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि तथा स्नान और वस्त्राभूषणो से युक्त होकर सावधान चित्त से नारायण के चरणारविन्दो का पूजन करे। तदनन्तर हृत्पद्म के मध्य मे प्रतिष्ठित सुरम्य और सर्वांग सुन्दर श्रीहरि के स्वरूप का चिन्तन करे।३३-३५।

एव ध्यात्वा वाक्मनोबुद्धीन्द्रियगणैः सह।
आत्मानमर्पयेद्विद्वान्हरावेकान्तभाववित्।३६।

तमसा घोरसङ्कल्पा भजन्ति द्वैतदृग्जना. ।४४।
सत्त्वान्निर्गुणतोमति रजसा विषयस्पृहा ।
तमसा नरकं यान्ति संसाराद्द्वैतधर्मिणः ।४५।

वह विह्वल होकर नाचता, रोता, हँसता और तन्मयतापूर्वक विचरण करता है । वह स्वयं को भूल कर भक्ति-रस में ही डूब जाता है और हरि के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं जानता ।४१। वही भगवान् की अव्यभिचारिणी भक्ति है, इसी के प्रभाव से देवता, दैत्य और मनुष्य आदि की सम्पूर्ण सृष्टि सहसा पवित्रता को प्राप्त होती है ।४२। नित्या प्रकृति अथवा ब्रह्म की सम्पदा ही भक्ति रूप में प्रकट होती है । वही भक्ति वेदादि में अखण्ड एवं शिव, विष्णु और ब्रह्मा स्वरूपिणी है ।४३। सत्त्वगुण के अभ्यास से युक्त द्वैत के जानने वाले मनुष्य इन्द्रिय व्यापार की इच्छा वाले होते हैं और जो तमोगुण से युक्त हैं वे घोर कार्यों का सङ्कल्प किया करते हैं ।४४। द्वैत ज्ञान से युक्त ज्ञानीजन सत्त्वगुण के व्याप्त होने पर निर्गुणता को प्राप्त होते हैं तथा रजोगुण के व्याप्त होने पर विषयों में लग जाते हैं और यदि तमोगुण की अधिकता होती है तो वे पुरुष नरक को प्राप्त होते हैं ।४५।

उच्छिष्टमवशिष्टं वा पथ्यं पूतमभीप्सितम् ।
भक्तानां भोजनं विष्णोर्नैवेद्यं सात्त्विकं मतम् ।४६।
इन्द्रियप्रीतिजननं शुक्रशोणितवर्द्धनम् ।
भोजनं राजसं शुद्धमायुरारोग्यवर्द्धनम् ।४७।
अतः परं तामसानां कट्वम्लोष्णविदाहिकम् ।
पूतिपर्युषितं ज्ञेयं भोजनं तामसप्रियम् ।।४८।।
सात्त्विकानां वने वासो ग्रामे वासस्तु राजसः ।
तामसं द्यूतमद्यादिसदनं परिकीर्तितम् ।।४९।।
न दाता स हरिः किञ्चित्सेवकस्तु न याचकः ।
तथापि परमा प्रीतिस्तयोः किमिति शाश्वती ।।५०।।

इत्येतदभगवत ईश्वरस्य विष्णोर्गुणकथनं सनको विबुध्य भक्त्या
सविनयवचनैः सुरर्षिवर्यं परिणुत्येन्द्रपुरं जगाम मुदा ॥५१॥

भगवान् का भोग लगा हुआ उच्छिष्ट (प्रसाद) तथा इन्द्रिय नैवेद्य ही पवित्र पथ्य भक्ष्य है। भक्तों को इसी सात्विक आहार का भोजन करना चाहिए (अर्थात् भोज्य सामग्री भगवान् को अर्पण करके ही प्रसाद रूप में सेवन करनी चाहिए) ।४६। जो भोजन इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने वाला, वीर्य एवं रक्त वर्द्धक तथा परमायु के देने वाला एवं आरोग्यप्रद है, ऐसा शुद्ध भोजन राजसी कहा जाता है ।४७। कड़ुवा, खट्टा, जलन करने वाला, दुर्गन्ध युक्त तथा बासी भोजन तामसी मनुष्यों को प्रिय है ।४८। सतोगुणी पुरुष वन में निवास करते हैं, रजोगुणी मनुष्य ग्राम में और तमोगुणी द्यूत खेलने के अथवा मद्य पीने के स्थान में रहते हैं ।४९। भगवान् स्वयं अपना हाथ उठा कर किसी को कुछ प्रदान नहीं करते, और न सेवक ही उनसे कुछ याचना करता है। फिर भी उनमें परस्पर सदा ही परम प्रीति रहती है, यह कैसी विचित्र बात है? ।५०। पवित्र मन वाले सनक भक्तिपूर्वक नारदजी के द्वारा भगवान् विष्णु का गुण-कथन सुन कर विनम्र वचनों से देवर्षिवर नारदजी की स्तुति और नमस्कार कर देवलोक को चले गये ।५१।

द्वादश अध्याय

एतद्' कथितं भूपा कथनीयोरुकर्मरण ।
कथा भक्तस्य भगवतेश्च किमन्यत्कथयाम्यहम् ।।१।।
त्व राजन्वैष्णवश्रेष्ठः सर्वमत्वहिते रत ।
तवावेश कथ युद्धरन्ध्रे हिंसादिकर्मणि ।।२।।
प्रायशः साधवो लोके जीवाना हितकारिणः ।
प्राणवुद्धिधनैर्वाभि. सर्वेषा विपयात्मनाम् ।।३।।
द्वंतप्रकाशिनो या तु प्रकृति' कामरूपिणी
सा सूते त्रिजगत्कृत्स्न वेदाश्च त्रिगुणात्मिका ।।४।।
ते वेदास्त्रिजगद्धर्मशासना धर्मनाशना ।
भक्तिप्रवर्तका लोके कामिना विपर्यपिणाम ।।५।।
वात्स्यायनादिमुनयो मनवो वेदपारगाः ।
वहन्ति वलिमोक्षस्य वेदवाक्यानुशासिताः ।।६।।
वय तदनुगा कर्म धर्म निष्ठा रणप्रियाः ।
जिघांसन्त जिघांसामो वेदार्थकृतनिश्चया. ।।७।।

राजा धर्मध्वज बोले—हे राजाओ ! जिनके पराक्रम कर्म कीर्तन के योग्य है, उन भक्तो और भक्ति का महात्म्य मैंने कह दिया है । अब और क्या कहूँ ? ।१। राजा बोले—हे राजन् ! आप सब जीवो के कल्याण करने में तत्पर तथा वैष्णव श्रेष्ठ हैं । फिर आप हिंसादि दोषो से युक्त युद्ध करने में क्यों प्रवृत्त होगये थे ।२। प्रायः साधुजन

विषयासक्त जीवों का हित-साधन करने के कार्य में अपने प्राण, बुद्धि, धन तथा वाणी आदि सब कुछ लगा देते हैं ।३। शाण्डिल्य बोले—त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही देवमाय को प्रकाशित करती है। तथा वर्णों और गौओं लाने का उत्पन्न करने वाली यह प्रकृति कामवर्षिणी है।४। तीनों वेदों में वेद ही धर्म की व्यवस्था द्वारा अधर्म का नाश करते हुए विषयासक्त धर्मियों में भी भक्ति का प्रवर्त्तन करते हैं।५। वेदों के ज्ञाता वात्स्यायन आदि मुनिवरों और मनुओं ने वेदाज्ञा के शासन को मानते हुए परमात्मा के हेतु बलि प्रदान की थी।६। तुम भी उन्हीं का अनुगमन करते धर्म पूर्वक युद्ध में तत्पर होते और वैदिक शिक्षा के अनुसार ही युद्ध में आततायियों का संहार कर सकते हो।७।

अवध्यस्य वधे याबान्तावानवध्यस्य रक्षणे ।
इत्याह भगवान्व्यासः सर्ववेदार्थतत्परः ।।८।।
अधार्मिकत्वं न तत्रास्ति तथाधर्मं प्रवर्त्तते ।
अतोऽस्य वाहिनी हत्वा भवता युधि दुर्जयाम् ।।९।।
धर्मं कतव्य कल्किन्नु समानोपासता वयम् ।
एवा भक्तिमयं मया तथापिप्रेमयोग्य ।।१०।।
मह तदनुवक्ष्यामि वेदावाक्यानुसारत: ।
यदि विष्णुः स सर्वत्र तदा क हन्ति को हत ।।११।।
हन्ता विष्णुर्हतो विष्णुर्वध कस्यास्ति तत्र चेद् ।
युद्धयज्ञादिषु वधे न वधो वेदशासनात् ।।१२।
इति गायन्ति मुनयो मनवश्च चतुर्दश ।
इमं युद्धेरण यज्ञेन यजामो विष्णुमीश्वरम् ।।१३।
अतो भागवती मायामाश्रित्य विधिना यजन् ।
सेव्यसेवकभावेन मुक्तो भवति नान्यथा ।।१४।

सर्व वेदार्थ के ज्ञाता भगवान् वेद व्यासजी का कथन है कि जो पाप अवध्य के मारने में है वही पाप वोध्य का वध न करने में भी

है ।८। इस प्रकार का आचरण न करना अधर्म है। उसका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं है। इसीलिए मैं रणभूमि में दुर्जय सेना के वध में तत्पर होकर धर्म, सत्युग और कल्कियों को यहाँ ले आया। मेरे मत में यही वास्तविक भक्ति है। इस विषय में आपका अभिप्राय जो हो, वह बताइये ।६-१०। इसके अतिरिक्त मैं वेद-वाणी के अनुसार ही कहता हूँ कि भगवान् विष्णु सर्व-व्यापी हैं। यदि यह यथार्थ है तो फिर कौन किसी को मारता है और कौन मरता है ? ।११। जब मारने वाले विष्णु हैं, और मरने वाले भी विष्णु ही हैं, तो किसका वध हो सकता है ? फिर वेद की ही व्यवस्था है कि युद्ध आदि कर्मों में जो वध होता है, वह वध नहीं माना जाता ।१२। यही बात वोदह मनुओं और मुनियों ने भी कही है। हम भी इसी के अनुसार यज्ञों और युद्धों के द्वारा भगवान् विष्णु का पूजन किया करते हैं।१३। इस प्रकार भगवती माया के आश्रय में स्थित हुआ साधक विधिवत् सेव्य-सेवक भाव से भगवान् का यजन करके सुखी होता है, अन्य कोई विधि सुख-प्राप्त करने की नहीं है ।१४।

निमेर्भूपस्य भूपाल ! गुरोः शापान्मृतस्य च ।
तादृशे भोगायतने विरागः कथमुच्यताम् ।१५।
शिष्यशापाद्वशिष्ठस्य देहावाप्तिमृतस्य च ।
श्रूयते किम्न मुक्तानां जन्म भक्तविमुक्तया ।१६।
अतो भागवती माया दुर्बोध्याखिलितात्मनाम् ।
विमोहयति संसारे नानात्वादिन्द्रजालवत् ।१७।
इति तेषां वचो भूयः श्रुत्वा राजा शशिध्वजः
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो भक्तिश्रवणया धिया ।१८।
बहूनां जन्मनामन्ते तीर्थसेवादियोगतः
दैवाद्भवेत्साधुसङ्गस्तस्मादीश्वरदर्शनम् ।१६।
ततः सालोक्यताम्प्राप्य भजन्त्याहतचेतसः ।
भुक्त्वा भोगाननुपमाम्मुक्तो भवति संसृतौ ।२०।

हरिरूपाः क्षेत्रतीर्थपावना धर्मतत्पराः ।
सारासारविदः सेव्यसेवका दृतविग्रहाः ।२५।

यथावतारः कृष्णस्य तथा तत्सेविनामिह ।
एवं निमेर्निमिषता लीला भक्तस्य लोचने ।२६।

मुक्तस्यापि वशिष्ठस्य शरीरभजनादरः ।
एतद्व कथितं भूपा माहात्म्यं भक्तिभक्तयोः ।२६।

सद्य पापहरं पुंसा हरिभक्तिविवर्द्धनम् ।
सर्वेन्द्रियस्यदेवानामानन्दसुखसञ्चयम् ।
कामरागादिदोषघ्नं मायामोहनिवारणम् ।२७।

नानाशास्त्रपुराणवेदविमलव्याख्यामृताम्भोनिधि
समथ्यातिचिरं त्रिलोकमुनयो व्यासादयो भावुकाः ।
कृष्णे भावमनन्यमेवममलं हेयङ्गवीन नव
लब्ध्वा स्मृतिनाशनं त्रिभुवने श्रीकृष्णतुल्यायते ।२८।

वे श्रीहरि के अवतार का सदा अनुकरण करने वाले होते हैं। पर्वकाल में व्रत, पूजन, भक्ति आदि में तत्पर रहते हुए भी परमानन्द में निमग्न रहते हैं।२२। वे सभी भक्तजन भोग फल को प्रत्यक्ष प्रकट होता देख कर मोक्ष की कामना नहीं करते और भोगों को भोगते हुए जन्म प्राप्त करके भी सदा हरिभाव को प्रकाशित करते रहते हैं।२३। भक्तजन हरिस्वरूप और क्षेत्र तथा तीर्थों के पवित्र करने वाले, सार और असार के ज्ञाता, धर्मानुष्ठान में तत्पर रहते हुए सेव्य-सेवक रूप में निवास करते हैं।२४। भगवान श्रीकृष्ण के अवतार लेने के समान ही उनके सेवक भी समय-समय पर अवतार ग्रहण करते रहते हैं। इसी लिए तो निमि का भक्तों के नेत्रों पर निमेष रूप से निवास है, इसे भगवान की ही लीला समझना चाहिए।२५। गुरु वशिष्ठ ने मुक्त होकर भी जो पुन देह धारण किया, वह भी इसी कारण से किया था। हे राजाओ! इस प्रकार भक्ति और भक्त का यह माहात्म्य मैंने आपके

श्रुति कहा है ।२६। इसके सुनने से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं, मन में हरि-भक्ति की वृद्धि होती और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता भी सुखी होते हैं । काम और रागादि सभी दोष तथा माया-मोह का नाश होता है ।२७। तीनों लोकों के ज्ञाता मुनियों ने वेद पुराणादि शास्त्रों के अमृत रूपी सार का मन्थन करके यह अत्यन्त पवित्र एवं भागवत रूप श्रीकृष्ण भक्ति को प्राप्त किया है । यह भव-बन्धन को नष्ट करने वाली है । इन मुनियों को इस प्रकार का फल पाते देख कर उनको भगवान श्रीकृष्ण के समान ही माना गया है ।२८।



त्रयोदश अध्याय

इति भूतः समायां स कथयित्वा निजाः कथाः ।
शशिध्वज प्रीतमना प्राह कल्कि कृताञ्जलिः ।१।
त्वहि नाथ त्रिलोकेश एतेभूपास्त्वदाश्रया॰
मा तथा विद्धि राजन त्वन्निदेशकर हरे ।२।
तपस्तप्तु यामि काम हरिद्वार मुनिप्रियम् ।
एते मत्पुत्रपौत्राश्च पालनीयास्त्वदाश्रयाः ।३।
ममापि काम जानासि पुरा जाम्बवतो यथा ।
निधन द्विविदस्यादि तदा सर्व सुरेश्वर ।४।
इत्युक्त्वा गन्तुमुद्युक्त भार्यया सहित नृपम् ।
लज्जयाधोमुख कल्कि प्राहुर्भूपा. किमित्युत ।५।

सूतजी बोले—सभा में उपस्थित सब जनों के समक्ष इस प्रकार अपना वृत्तान्त कहने के उपरान्त राजा शशिध्वज ने हाथ जोड़ कर कल्कि जी से कहा ।१। राजा बोले—हे हरे ! हे त्रिलोकेश ! यह सभी राजागण आपके आश्रय में स्थित हैं। आप इन सबको और मुझे भी अपनी आज्ञा के पालन में तत्पर समझिये ।२। अब मैं ऋषियों के लिए प्रिय हरिद्वार के लिए तपस्या हेतु गमन करूँगा। मेरे यह पुत्र-पौत्रादि सब आपके ही आश्रित हैं और आपके द्वारा ही प्रतिपालन करने योग्य हैं ।३। हे सुरेश्वर ! आप मेरे अभिप्राय को भले प्रकार जानते हैं। आपने पूर्व अवतार में आपने जाम्बवन्त और द्विविद आदि जिन वानरोंका वध किया

था वह भी आपको स्मरण है ।४। यह कह कर राजा शशिध्वज अपनी पत्नी सुशान्ता सहित प्रस्थान के लिए उद्यत हुए। उस समय कल्किजी ने अपना मुख लज्जा से झुका लिया। यह देख कर राजागण उसे जानने की इच्छा से बोले ।५।

हे नाथ किमनेनोक्तं यच्छ्रुत्वा त्वमधोमुखः ।
कथं तद्वद हि कामं नः किं न आधि संशयात् ।६।

मम पृच्छत वो भूपा युष्माकं संशयच्छिदम्
शशिध्वजं महाप्राज्ञं मद्भक्तिकृतनिश्चयम् ।७।
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा ते भूपा लोककारिणः ।
राजानं तं पुनः प्रह्वं संशयापन्नमानसाः ।८।
किं त्वया कथितं राजञ्छशिध्वज महामते ।
कथं कल्किस्त्वदुक्तमिदं श्रुत्वाभूदधोमुखः ।९।
पुरा रामावतारेण लक्ष्मणादिन्द्रजिद्वधम्
सहस्रलक्ष्य द्विविदो राक्षसभ्यात्सदासत्यात् ।१०।

राजाओं ने कहा—हे नाथ! राजा शशिध्वज ने ऐसी क्या बात आपसे कही थी, जिसे सुन कर आपने लज्जा से अपना मुख नीचा कर लिया था। यह हमारे प्रति कह कर हमारा सन्देह दूर करिये ।६। कल्किजी बोले—हे राजाओ! आप उन्हीं महाराज शशिध्वज से ही इस विषय में प्रश्न करिये। क्योंकि वे परम ज्ञानी और मुझमें अनन्य भक्ति रखने वाले हैं। वे ही आपके सन्देह को नष्ट करेंगे ।७। यह सुनकर सभी राजागण संशययुक्त हृदय से राजा शशिध्वज से प्रश्न करने लगे। उन्होंने कहा—हे राजन्! हे महामते! हे महाराज शशिध्वज! आपने ऐसी कौन-सी बात कल्किजी के प्रति कही थी, जिसे सुन कर वे लज्जावनत मुख वाले हो गये थे ।८-९। शशिध्वज बोले—हे राजागण! पूर्व काल में जब रामावतार हुआ था, तब लक्ष्मणजी के द्वारा वध को प्राप्त हुए इन्द्रजीत मेघनाद की राक्षस योनि से मुक्ति हो गई थी ।१०।

अग्न्यागारे ब्रह्मवीरवधेनैकाहिकोज्वरः ।
लक्ष्मणस्य शरीरेण प्रविष्टो मोहकारकः ।।११।।
तं व्याकुलमभिप्रेक्ष्य द्विविदो भिषजां वरः ।
अश्विवंशेन सजातः स्थापयामास लक्ष्मणम् ।।१२।।
लिखित्वा रामभद्रस्य सज्ञापत्रीमतन्द्रितः ।
लक्ष्मणं दर्शयामास ऊर्ध्वस्तिष्ठन्महाभुजः ।।१३।।
लक्ष्मणो वीक्ष्य तां पत्रीं विज्वरो बलवानभूत् ।
स ततो द्विविदं प्राह वरं वरय वानर ।।१४।।
द्विविदस्तच्च श्रुत्वा लक्ष्मणं प्राह हृष्टवत्
त्वत्तो मरणं प्रार्थ्यं वानरत्वाच्च मोचनम् ।।१५।।

उस समय अग्निशाला में ब्राह्मण की हत्या करने के पाप स्वरूप लक्ष्मणजी के शरीर में एकाहिक ज्वर घुस गया, जिससे उन्हें मोहादि उपद्रवों ने घेर लिया ।।११।। उस समय अश्विनीकुमार के वंश में उत्पन्न हुए भिषग्वर द्विविद वानर ने लक्ष्मणजी को ज्वर की पीड़ा से व्याकुल देख कर एक मन्त्र बतलाया ।।१२।। इस मन्त्र को लिख कर भगवान् श्रीराम के सामने ही एक ऊँचे स्थान पर टांक कर लक्ष्मणजी को दिखाया गया ।।१३।। इस मन्त्र को देखते ही लक्ष्मणजी [illegible] ज्वर नष्ट हो गया और उनमें शक्ति आ गई । फिर लक्ष्मणजी ने द्विविद नामक उस वानर से कहा—हे वानर ! आप वर माँगिये ।।१४।। तब द्विविद ने अत्यन्त हर्षित होकर कहा कि मेरी आपसे ही यही प्रार्थना है कि वानर भाव से मुक्त होने के उपाय स्वरूप मेरा मरण आपके ही द्वारा हो ।।१५।।

पुनस्तं लक्ष्मणः प्राह मम जन्मान्तरे तव ।
मोचनं भविता कोश बलरामशरीरिणः ।।१६।।

समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखनं यस्तु पश्यति ।।१७।।

इति मन्त्राक्षरं द्वारि लिखित्वा तालपत्रके ।
यस्तु पश्यति तस्यापि नश्यत्यैकाहिकज्वरः ।।१८।।

इति तस्य वरं लब्ध्वा चिरायु सुग्यशानरः ।
बलरामास्त्रभिन्नात्मा मोक्षमवाप कुरोमयम् ।।१९।
तथा क्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो रोमहर्षणः ।
बलरामास्त्रमुक्तात्मा नैमिषेऽभूत्स्ववाञ्छया ।।२०।

तब महामत्स्यजी ने उसे आश्वासन दिया कि आगामी जन्म में जब मैं बलदेवावतार लूँगा, तब तुम मेरे हाथ से मृत्यु को प्राप्त होकर वानर भाव से मुक्त हो जाओगे ।१६। "समुद्र द्वापरे नारे द्विविदो नाम वानरः" यही वह मन्त्र है, जिसे लिखा हुआ देखने पर ऐकाहिक ज्वर नष्ट हो जाता है ।१७। इस मन्त्र को द्वार पर लिखना चाहिए । इस पर जिस प्रकार देखना चाहिये तब ऐकाहिक ज्वर का नाश होना सम्भव है ।१८। मत्स्यजी से इस प्रकार वर को प्राप्त हुआ वह द्विविद नामक वानर स्वस्थ शरीर से बहुत काल जीवित रहा और बलदेवजी का अवतार होने पर उनके अस्त्र से मृत्यु को प्राप्त होकर अमवासित्वका मुक्ति को प्राप्त हो गया ।१९। इसी प्रकार से अपनी इच्छा से सूत पुत्र रोमहर्षण भी नैमिषारण्य में बलदेव जी के अस्त्र से ही मारे गये ।२०।

जाम्बवांश्च पुरा भूपा वामनस्य गते हरौ ।
तस्याप्यूर्ध्वगतपादस्य चक्रे प्रदक्षिणं प्रभुम् ।।२१।
मनोजवं न निरीक्ष्य वामनः प्राह विस्मितः ।
भक्तो वृणु वरं काममुवाचेदं महाबल ।।२२।
इति तं हृष्टवदनो ब्रह्मांशो जाम्बवान्मुदा ।
प्राह भो चक्रहस्तान्मम मृत्युर्भविष्यति ।।२३।
इत्युक्ते वामनः प्राह कृष्णजन्मनि मे तव ।
मोक्षश्चक्रेण सम्भिन्नशिरसः संभविष्यति ।।२४।
मम कृष्णावतारे तु सूर्यभक्तस्य भूपते ।
सत्राजितस्तु मण्यर्थे दुर्वादं समजायत ।।२५।

हे राजाओ ! वामनावतार में वामनजी ने जब तीन पग में ही तीनों लोकों को नाप लिया, तब उनके ऊर्ध्वलोक में गये हुए चरण की

जाम्बवान ने प्रदक्षिण की थी।२१। उस समय उस जाम्बवान् को मन के समान द्रुत वेग वाला देख कर वामनजी अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर बोले—हे ऋक्षाधीश ! तुम महायशी हो, मुझसे इच्छित वर माँगो।२२। यह सुन कर हर्षित मन [redacted] ब्रह्मा रूप जाम्बवान् ने कहा कि हे प्रभो ! मेरी मृत्यु आपके चक्र से हो, यही वर प्रदान कीजिये।२३। जाम्बवान् के वचन सुन कर वामनजी ने कहा—कृष्णावतार में मेरे चक्र से तुम्हारा सिर कटेगा और तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे।२४। तदनन्तर कृष्णावतार हुआ। उस समय मैं सूर्य का भक्त सत्राजित् नामक एक राजा हुआ था। [उस एक मणि के कारण दुर्वाद प्राप्त हो गया।२५।

> प्रसेनस्य मम भ्रातुर्वधस्तु मणिहेतुकः।
> सिंहात्तस्यापि मध्यर्थ वधो जाम्बवता कृतः।२६।
> दुर्वादभयभीतस्य कृष्णस्यामिततेजस।
> मण्यन्वेषणचित्तस्य ऋक्षेणाभूद्रणो बिले।२७।
> स निजेश परिज्ञाय चक्रक्रान्तस्वकन्धरम्।
> मुक्तो बभूव सहसा कृष्णं पश्यन्सलक्ष्मणम्।२८।
> नवदूर्वादलश्याम दृष्ट्वा प्रादान्निजात्मजाम्।
> तदा जाम्बवती कन्या प्रगृह्य मणिना सह।२९।
> द्वारका पुरमागत्य सभायां मामुपाह्वयत्।
> आहूय मह्यं प्रददौ मणिं मुनिगणार्चितम्।३०।

प्रसेन नामक मेरा अनुज था। उसे एक सिंह ने मणि [redacted] लिए मार डाला। फिर [redacted] सिंह भी उसी मणि के कारण जाम्बवान् के द्वारा वध को प्राप्त हुआ।२६। उधर कलङ्क के भय से अमित तेज वाले भगवान् श्रीकृष्ण उस मणि की खोज करने लगे, तभी एक गिरि-गुहा में जाम्बवान् के साथ उनका घोर युद्ध हुआ।२७। तभी जाम्बवान् अपने स्वामी को पहचान गया। भगवान् के चक्र से उसका सिर [redacted]

गया। मकमरा सहित भगवान् का दर्शन करते हुए जाम्बवान् को मोक्ष की प्राप्ति हुई।२८। तब उस ऋक्षराज ने अपने प्रभु की श्यामल मूर्ति का दर्शन करते हुए उन्हें अपनी पुत्री जाम्बवती के सहित वह मणि भेंट कर दी।२९। फिर श्रीकृष्ण ने द्वारका की राज सभा में आकर मुझे वहाँ बुलाया और यदुवियों के द्वारा पूजित वह मणि उन्होंने मुझे दे दी।३०।

सोऽहं तां लज्जया तेन मणिना कन्यकां स्वकाम् ।
विवाहेन ददावस्मै लावण्यात्तजगृहे मणिम् ।३१।
तां सत्यभामामादाय मणिं मय्यर्प्य स प्रभुः ।
द्वारकामागत्य पुनर्गजाह्वयमगाद्विभुः ।३२।
गते कृष्णे मां निहत्य शतधन्वाग्रहीन्मणिम् ।
सतोऽहमिह जानामि पूर्व जन्मनि यत्कृतम् ।३३।
मिथ्याभिशापात्कृष्णस्य नैवाभून्मोचनं मम ।
अतोऽहं कल्किरूपाय कृष्णाय परमात्मने ।
दत्त्वा रमां सत्यभामारूपिणीं यामि सद्गतिम् ।३४।

यह देख कर मैं अत्यन्त लज्जित हुआ और मैंने अपनी सत्यभामा नाम की कन्या के सहित वह मणि श्रीकृष्ण को ही दे दी। उन दोनों के लावण्य से आकर्षित होकर उन्होंने उन्हें ग्रहण कर लिया।३१। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने मणि मेरे पास रख दी और स्वयं सत्यभामा को साथ लेकर द्वारका से हस्तिनापुर को चले गये।३२। श्रीकृष्ण के चले जाने पर शतधन्वा नामक एक राजा ने मणि के निमित्त मेरा वध कर दिया और मणि को ले लिया। इस प्रकार इस जन्म में मैंने अपने पूर्वावतार में जो किया, उस सब को मैं भले प्रकार जानता हूँ।३३। श्रीकृष्ण को मैंने झूँठा कलंक लगाया था, इसी पाप से उस जन्म में मैं मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सका। यही कारण है कि इस जन्म में अपनी रमा रूपिणी सत्यभामा को कल्कि रूप कृष्ण को देकर मैं सद्गति को प्राप्त करूँगा।३४।

सुदर्शनास्त्रघातेन मरणं मम काङ्क्षितम् ।
मरणोऽभूदिति ज्ञात्वा रणे वाञ्छामि मोचनम् ।३५।
इत्यसौ जगतामीशः कल्किः श्वशुरघातनम् ।
श्रुत्वैवाधोमुखस्तस्थौ ह्रिया धर्मभिया प्रभुः ।३६।
अत्याश्चर्यमपूर्वमुत्तममिदं श्रुत्वा नृपा विस्मिता
लोकाः ससदि हर्षिता मुनिगणाः कल्केर्गुणाकर्षिता ।
आख्यानं परमादरेण सुखदं धन्यं यशस्यं परं
श्रीमद्भूपशशिध्वजेरितवचो मोक्षप्रदं चाभवत् ।३७।

यह जान कर कि युद्धस्थल में मरने से मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है, मैंने यह अभिलाषा की थी कि कल्किजी के सुदर्शन चक्र-प्रहार से मेरा मरण हो जायगा ।३५। जगदीश्वर भगवान् कल्कि ने अपने श्वसुर का इस प्रकार मारा जाना स्मरण करके ही धर्मभय और लज्जा से अपना मुख झुका लिया था ।३६। इस परम विस्मय युक्त, अपूर्व और श्रेष्ठ उपाख्यान को सुन कर राजागण विस्मित हो उठे तथा सभी सभासद आनन्द विभोर हुए । कल्किजी के गुणों के प्रति मुनिगण भी आकर्षित हो रहे थे । राजा शशिध्वज के कहे हुए इस उपाख्यान के सुनने वाला प्राणी सुखी, धन्य और यशस्वी होकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है, उसका कभी पुनर्जन्म नहीं होता ।३७।



कन्याएं छाई हुई हैं। यह पुरी स्थान स्थान पर कल्पवृक्षों से सुशोभित हो रही है। यहाँ मनुष्य तो नाम को भी नहीं है ।५।

विलोक्य कल्किः प्रहसन्प्राह भूपान्किमित्यहो ।
सर्पस्येयं पुरी रम्या नराणां भयदायिनी ।
नागनारीगणाकीर्णा किं यास्यामो वदन्त्विह ।६।

इति कल्कमताऽज्ञाय रमानाथं हरिं प्रभुम् ।
भूपास्तदनुरूपाश्च ते वागाहाशरीरिणि ।७।
विलोक्य नेमां सेनाभिः प्रवेष्टुं भोस्त्वमर्हसि ।
इमां विनान्ये मरिष्यन्ति विषकन्यादृशादपि ।८।

आकाशवाणीमाकर्ण्य कल्किः शुकसहायकृत् ।
ययावेकः खड्गधरस्तुरगेण त्वरान्वितः ।९।
गत्वा तां ददृशे वीरो धीरस्य धैर्यनाशिनीम् ।
रूपेणालक्ष्य लक्ष्मीशं प्राह प्रहसितानना ।१०।

यह देख कर हंसते हुए कल्किजी ने राजाओं से कहा—हे राजन्! यह सर्पपुरी कैसी आश्चर्यमयी एवं मनुष्यों के लिए अत्यन्त भयावनी है। इसमें नागकन्याओं का ही निवास है। अब कहिए कि इसमें प्रवेश करें अथवा नहीं? ।६। रमानाथ कल्किजी और सब राजागण भी यह निश्चय नहीं कर पाये कि क्या करना चाहिये, इसलिए अत्यन्त चिंतित हुये। तब आकाशवाणी सुनाई दी ।७। इस पुरी में सेना-सहित प्रविष्ट नहीं होना चाहिए। क्योंकि जैसे ही पुरी निवासिनी विष-कन्याओं की दृष्टि पड़ेगी, वैसे ही नष्ट हो जाओगे ।८। आकाशवाणी का निर्देश सुन कर कल्किजी एकाकी ही खड्ग लेकर घोड़े पर चढ़े और शुक को साथ लेकर चल दिये ।९। कुछ आगे जाने पर उन्हें एक अपूर्व कन्या दिखाई दी, जिसे देखते ही ज्ञानी जन भी धैर्य छोड़ देते हैं। वह कन्या अपूर्व रूप वाले कल्किजी को देख कर हँसती हुई बोली ।१०।

सोपालम्भ मुनिः श्रुत्वा वचनं च ममाप्रियम् ।
शशाप मां क्रुधा तत्र मैनाहं विषदर्शना ।१७।
निक्षिप्ताहं अपंपुरे काञ्चन्या नागिनीगणे ।
पतिहीना देवहीना चरामि विषवर्षिणी ।१८।
न जाने केन तपसा भवदृष्टिपथं गता ।
त्यक्तशापामृताक्षाहं पतिलोकं प्रजाम्यतः ।।१९।
अहो तेषामस्तु शाप प्रसादो मा सतामिह ।
यद्युः शापहर्षोमोक्षात्तव पादाब्जदर्शनम् ।२०।

उस समय मैं अपने रूप यौवन के गर्व से अत्यन्त मदोन्मत्त हो रही थी। वहां विकट शरीर वाले यममुनि को देख कर मैं उन पर कटाक्ष करती हुई, उनकी हँसी उड़ाने लगी ।१६। मेरे मुख से अपने प्रति अपमानजनक वचन सुन कर मुनि कोपित हो उठे और उन्होंने मुझे जो शाप दिया, उससे मैं तुरन्त विषदृष्टि को प्राप्त हो गई।१७। तब मुझे इस काञ्चनीपुरी में नागनियों के मध्य डाल दिया गया। तभी से मेरी दृष्टि विष की वर्षा किया करती है। इस प्रकार मैं अभागी पति से हीन होकर यहाँ एकाकी विचरती हूँ ।१८। मुझे ज्ञात नहीं कि अपनी किस तपस्या के फल से मैं आपकी दृष्टि के सामने आ गई हूँ। आपके दर्शन से मैं शाप-मुक्त होकर अमृतवर्षिणी दृष्टि से सम्पन्न हो गई हूँ। अब मैं अपने पति के पास गमन करती हूँ ।१६। अहा ! साधुओं के प्रसन्न होने की अपेक्षा तो शाप देना भी श्रेष्ठ है क्योंकि शाप के कारण ही तो मोक्ष स्वरूप आपके चरणाम्बुज का दर्शन प्राप्त हो सका है ।२०।

इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं विमानेनार्कवर्चसा ।
कल्किस्तु तत्पुराधीशं नृपं चक्रे महामतिम् ।२१।
अमर्षस्तस्सुतो धीमान् सहस्रो नाम तत्सुतः ।
सहस्रात् सुतश्चासीद्राजा विश्रुतवानपि ।२२।
बृहन्नला भूशर्मा सम्भुरा यस्य यशः ।

स मनुं भूपशार्दूलं नानामुनिगणैर्वृतः ।२३।
अयोध्यायां चाभिषिच्य मथुरामगमद्धरिः ।
तस्यां भूपं सूर्यकेतुमभिषिच्य महाप्रभम् ।२४।

यह कह कर वह विषकन्या पुष्प और तेजस्वी विमान पर चढ़ कर स्वर्ग को गई। कल्किजी ने महामति नामक एक राजा को उस पुरी के राज्य पर अभिषिक्त किया।२१। उस राजा महामति का पुत्र अमर्ष हुआ। अमर्ष का पुत्र श्रीमान् सहस्व और सहस्व का पुत्र अत्यन्त प्रसिद्ध राजा अक्षि हुआ।२२। उसी राजा के वंश में बृहद्बल राजाओं की उत्पत्ति हुई। नृपशार्दूल मनु को अयोध्या का राज्य देकर अनेक मुनियों के सहित कल्किजी मथुरा पहुँचे और उन्होंने अत्यन्त प्रभा से सम्पन्न सूर्यकेतु को मथुरा के राज्य पर विधिवत् अभिषिक्त किया।२३-२४।

अथ वर्के ततो गत्वा देवापिं वारणावते ।
अरिस्थलं वृकस्थलं माकन्दञ्च गजाह्वयम् ।२५।
पञ्चदेशेश्वरं कृत्वा हरिः शम्भलमाययौ ।
कौन्य पौण्ड्रं पुलिन्दञ्च सुराष्ट्रं मगधन्तथा ।
कविप्राज्ञसुमन्तुभ्यः प्रददौ भ्रातृवत्सलः ।२६।
कीकटं मध्यकर्णाटमन्ध्रोड्रं कलिङ्गकम् ।
अङ्गं वङ्गं स्वगोत्रेभ्यः प्रददौ जगदीश्वरः ।२७।
स्वयं शम्भलमध्यस्थः कङ्कणेन कलापकान् ।
देशं विशाखयूपाय प्रादात्कल्किः प्रतापवान् ।२८।
चोलवर्वरकर्वादिगान्धारकादेशमध्यगान् ।
पुत्रेभ्यः प्रददौ कल्किः कृतधर्मपुरस्कृतान् ।२९।

यात्रा करते हुए कल्किजी ने देवापि को राज्य देकर उन्हें अरिस्थल, वृकस्थल, माकन्द, हस्तिनापुर और वारणावत-इन पाँच देशों का अधिपति बनाया और फिर शम्भल ग्राम के लिए चल पड़े।

फिर भ्रातृवत्सल कल्किजी ने कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्र को काम्बोज, पौण्ड्र, पुलिन्द और मगध देश का राज्य दिया।२५-२६। फिर जगदीश्वर कल्किजी ने अपने गोत्र बान्धवों को कीकट, मध्यकर्णाटक, आन्ध्र, उड्र कलिंग, अङ्ग और बंगादि देश प्रदान किये।२७। फिर स्वयं शम्भल में रह कर विशाखयूप-नरेश को कलाप और कपाल प्रदेशों का राजा बनाया।२८। तदनन्तर उन्होंने कृतवर्म्म आदि पुत्रों को द्वारका देश के मध्य में स्थित चोल, बर्बर तथा कर्ब आदि प्रदेशों का राज्य प्रदान किया।२९।

पित्रे धनानि रत्नानि ददौ परमभक्तितः ।
प्रजा समाश्वास्य हरिः शम्भलग्रामवासिनः ।३०।
पद्मया रमया कल्किर्गृहस्थो मुमुदे भृशम् ।
धर्मश्चतुष्पादभवत्कृतपूर्णं जगत्त्रयम् ।३१।
देवा यथोक्तफलदाश्चरन्ति भुवि सर्वतः ।
सर्वशस्या वसुमती हृष्टपुष्टजनावृता ।
शाठ्यचौर्य्यानृतैर्हीना आधिव्याधिविवर्ज्जिता ।३२।
विप्रा वेदविदः सुमङ्गलयुता नार्यस्तु चार्य्याव्रतैः ।
पूजाहोमपराः पतिव्रतपरा यागोद्यता क्षत्रियाः ।
वैश्या वस्तुषु धर्मतो विनिमयैः श्रीविष्णुपूजापराः ।
शूद्रास्तु द्विजसेवनाद्धरिकथालापाः सपर्यापराः ।३३।

फिर भगवान् कल्किजी अपने पिता को अत्यन्त भक्तिपूर्वक धन-रत्न आदि भेंट करके और शम्भल ग्राम के निवासियों को सन्तुष्ट करके रमा और पद्मा के साथ गृहस्थाश्रम के सुख भोगने लगे। तब तक धर्म के चारों चरणों सम्पन्न हुए तीनों लोकों में सतयुग का आविर्भाव हो गया।३०-३१। मनुष्यों को इच्छित फल प्रदान करते हुए देवगण सम्पूर्ण पृथिवी पर विचरण करने लगे। धरा के सब धान्यों से परिपूर्ण होने के कारण सभी प्राणी हृष्ट-पुष्ट हो गए। शाठ्य, चोरी, अनृत, आदि,

व्याधि आदि सभी दुःख भूमण्डल से अदृश्य हो गये ।३२। ब्राह्मण वेदपाठी हुए, स्त्रियां पतिव्रत धर्म के पालन पूर्वक धर्मानुष्ठान में लगीं । सर्वत्र पूजन और होम होने लगे । क्षत्रिय भी यज्ञादि शुभ कर्मों में तत्पर हुए । विष्णु-पूजन में रत रहते हुए वैश्य गण भी वस्तु विनिमय का धर्म पूर्वक, व्यापार करने लगे । शूद्रगण द्विज सेवा परायण हुए । सभी प्राणी भगवान् का गुण कीर्तन, श्रवण और उपासना में तत्पर रहते हुए जीवनचर्या चलाने लगे ।३३।



पंचदश अध्याय

शशिध्वजो महाराज स्तुत्वा मायां गत कुत ।
का वा मायास्तुति सूत वद तत्वविदां वर ।
या त्वत्कथा विष्णुकथा वक्तव्या सा विशुद्धये ।१।
शृणुध्व मुनयः सर्वे मार्कण्डेयाय पृच्छते ।
शुक प्राह विशुद्धात्मा मायास्तवमनुत्तमम् ।२।
तच्छृणुध्व प्रवक्ष्यामि यथाधीतं यथाश्रुतम् ।
सर्वकामप्रद नृणां पापतापविनाशनम् ।३।
भल्लाटनगरं त्यक्त्वा विष्णुभक्तः शशिध्वजः ।
प्रारभत्संसारमोक्षाय मायास्तवमलं जगौ ।४।
ओं ह्रींकारा सत्वसारा विशुद्धा ब्रह्मादीनां मातरं वेदबोध्याम्
तन्वी स्वाहा भूततन्मात्रकक्षां वन्देवन्द्यां देवगन्धर्वसिद्धैः ।५।

शौनक जी बोले—हे मुनओ! भगवती माया की स्तुति करके महाराज शशिध्वज कहाँ गये ? हे तत्वज्ञानियो में श्रेष्ठ ! माया की स्तुति के विषय में बताइये। माया और विष्णु की कथा में कोई भेद नहीं होने से पुनीत होने के उद्देश्य से उस स्तव को हमारे प्रति कहिये।१। सूत जी ने कहा—हे ऋषियो ! मार्कण्डेयजी, के पूछने पर शुकदेव जी ने जो श्रेष्ठ माया-स्तोत्र कहा था, वही तुम्हारे प्रति कहता हूँ, सुनिये।२। जिस माया-स्तव को मैंने सुना और पढ़ा है, जो सुनने से सब की कामनाएँ पूर्ण करने वाला और पाप-ताप का नाशक है, उस

स्वरूपिणी को नमस्कार है।७। आपकी महिमा से ही यह त्रिलोकी पञ्चभूतात्मिका रूप से प्रकाशित है। काल, देश, कर्म, उपाधि आदि कोई भी विषय जो द्वारा निश्चित भाव आपके प्रकाश के बिना प्रकाशित नहीं हो सकता। ऐसी आप प्रभावती [illegible] मेरा नमस्कार है।८। आप ही पृथिवी में गन्ध, जल में रस, तेज में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द रूप से विविध रूपों में प्रतिष्ठित रहती है। आप जगत् में व्याप्त विश्वरूपिणी को नमस्कार है।९। आप ही ब्रह्मरूपा सावित्री हैं, भगवान् विष्णु की लक्ष्मी, शंकर की भवानी तथा देवराज इन्द्र की शची है। हे माये! सम्पूर्ण विश्व मे आप इसी प्रकार व्याप्त हो रही हैं।१०।

बाल्ये बाला युवती यौवने स्ववार्धक्ये या स्थविरा कालकल्पा
नानाकारैर्योगयोगैरुपास्या ज्ञानातीता कामरूपा विभासि।११
वरेण्या त्व वरदा लोकसिद्धयासाध्वीधन्या लोकमान्या सुकन्या
चण्डी दुर्गा कालिका कालिकाख्या, नानादेशे
रूपवेशैर्विभासि।१२।
तव चरणसरोज देवि! देवादिवन्द्य यदि हृदयसरोजे।
भावयन्तीह भक्त श्रुतियुगकुहरे वा सत्यं तु
धर्म्मसम्यज्जनयति जगदाद्ये सर्वसिद्धश्च तेषाम्।१३।
मायास्तवमिद पुण्य शुकदेवेन भाषितम्।
मार्कण्डेयादवाप्यापि सिद्ध लेभे शशिध्वजः।१४।
कोकामुखे तपस्तप्त्वा हरिं ध्यात्वा वनान्तरे।
सुदर्शनेन निहतो वैकुण्ठ शरणं ययौ।१५।

आप शैशवावस्था में बाला, यौवनावस्था मे युवती और वृद्धावस्था मे वृद्धा रूप वाली रहती है। आप ही काल से कल्पित, ज्ञानातीता और कामरूपा है। आप विभिन्न रूपों में प्रकाशित होने वाली ईश्वरा का यज्ञ और योग के द्वारा पूजन किया जाता है। मैं आपकी वन्दना करती हूँ।११। हे वरेण्या! आप ही उपासकों को वरदानी और सिद्धि के देने वाली हैं। आप लोकों के द्वारा मान्या, साध्वी, एवं [illegible] प्रकार से धन्या हैं। आप ही श्रेष्ठ कन्या, चण्डी, दुर्गा, कालिका आदि विभिन्न

रूपों से अनेक देशों में प्रकाशित रहती है ।१२। हे संसार की मातृ रूपा देवि ! यदि कोई अपने हृदय में देवताओं आदि से वन्दित आपके चरणारविन्दों का भक्ति भाव पूर्वक ध्यान और आपका नाम-स्मरण करता है, तो उसे धर्म रूपी ऐश्वर्य और सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति होती है ।१३। यह पवित्र माया-स्तव शुकदेव जी द्वारा कहा गया था। राजा ऋतिध्वज ने इसे मार्कण्डेयजी से प्राप्त करके सिद्धि-लाभ किया ।१४। वन में स्थित कोकामुख नामक स्थान में तपस्या करते हुए राजा ऋतिध्वज सुदर्शन चक्र से निहत होकर वैकुण्ठ को प्राप्त हुए ।१५।



षोडश अध्याय

एतद् कथितं विप्राः शशिध्वजविमोक्षणम् ।
कल्केः कथाममप्रतिमां शृण्वन्तु विबुधर्षभाः ।१।
वेदो धर्मः कृतयुगं देवलोकश्चराचरः ।
हृष्टः पुष्टाः सुसन्तुष्टाः कल्कौ राजनि चाभवन् ।२।
नानादेवादिलिङ्गेषु भूषणैर्भूषितेषु च ।
इन्द्रजालिकवद्वृत्तिकल्पकाः पूजका जनाः ।३।
न सन्ति मायामोहाढ्याः पाखण्डाः साधुवञ्चकाः ।
तिलकाचितसर्वाङ्गाः कल्कौ राजनि कुत्रचित् ।४।
शम्भले वसतस्तस्य पद्मया रमया सह ।
प्राह विष्णुयशाः पुत्रं देवान्यष्टुं जगद्धितान् ।५।

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! इस प्रकार राजा शशिध्वज को मोक्ष प्राप्ति का प्रसंग मैंने आपको सुनाया। अब कल्किजी के विचित्र आख्यान को पुनः कहता हूँ, उसे सुनिये ।१। जब भगवान् कल्किजी राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए, तब वेद, धर्म, सत्युग, देवगण और चराचर युक्त विश्व हृष्ट, एवं सन्तुष्ट हो गया ।२। पूर्व युग में पूजा करने वाले मनुष्य देव मूर्तियों को विभिन्न प्रकार के अलंकारों से अलङ्कृत करके इन्द्रजाल के समान रहस्य-कल्पना किया करते थे ।३। अब वह माया मोह से आवृत्त साधु वञ्चक पाखण्ड समाप्त हो गया। कल्किजी के

राज्य में सभी मनुष्य धर्माचरण में तिलक लगाने लगे ।४। पद्मा और रमा के साथ जब कल्किजी सम्भल ग्राम में सुख पूर्वक निवास कर रहे थे, तभी एक दिन उनके पिता विष्णुयशाजी ने अपने पुत्र से देवताओं को सन्तुष्ट करने वाले यज्ञ का अनुष्ठान करने को कहा ।५।

तच्छ्रुत्वा प्राह पितरं कल्किः परमहर्षितः ।
विनयावनतो भूत्वा धर्मकामार्थसिद्धये ।६।
राजसूयैर्वाजपेयैरश्वमेधैर्महामखैः ।
नानायागैः कर्मतन्त्रैरीजे क्रतुपतिं हरिम् ।७।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नात्वावभृथमादरात् ।
कृपरामवसिष्ठाद्यैर्व्यासधौम्याकृतव्रणैः ।
अश्वत्थाममधुच्छन्दोमन्दपालैर्महात्मभिः ।८।
दक्षिणाभिः समभ्यर्च्य ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।९।
चर्व्यैश्चोष्यैश्च पेयैश्च पूपशष्कुलिपायसैः ।
भोजयामास विविधैः सर्वकामसमृद्धिभिः ।१०।

पिता के वचन सुन कर हर्षित हुए कल्किजी ने विनय पूर्वक कहा—धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के प्रयोजन से मैं कर्म तन्त्र विहित राजसूय, वाजपेय और अश्वमेध आदि महायज्ञों के अनुष्ठान द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न करूँगा ।६-७। फिर कल्किजी ने कृपाचार्य, परशुराम, वसिष्ठ, व्यास, धौम्य, अकृतव्रण, अश्वत्थामा, मधुच्छन्द तथा मन्दपाल आदि महात्मा महर्षियों और वेदपाठियों को आमन्त्रित कर उनका पूजन किया। तदनन्तर गङ्गा-यमुना के मध्य में स्थित यज्ञ में दीक्षित होकर उन्होंने स्नान किया और दक्षिणा दी ।८-९। फिर उन्होंने अनेक प्रकार के चर्व्य, चोष्य, पेय, पूप, शष्कुलि और पायस आदि भोज्य पदार्थों के द्वारा उन ब्राह्मणों को अनेक भोजन कराया ।१०।

यत्र वह्निर्हुतः पाके वरुणो जलदो भवत् ।११।
परिवेष्टा द्विजान्कामैः समार्थं रतोऽभवत् ।

दानैर्नृत्यैश्च गीतैश्च पितृयज्ञमहोत्सवैः ।१२।
कल्किः कमलपत्राक्षः प्रहृष्टः प्रददौ वसु ।
स्त्रीबालस्थविरादिभ्यः सर्वेभ्यश्च यथोचितम् ।१३।
रम्भा तालधरा नन्दी हूहूर्गायति नृत्यति ।
दत्त्वा दानानि पात्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्य. स ईश्वरः ।१४।
उवास तीरे गंगाया पितृवाक्यानुमोदितः ।
सभायां विष्णुयशस. पूर्वराजकथाः प्रियाः ।१५।
कथयन्तो हसन्तश्च हर्षयन्तो द्विजा बुधाः ।
तथागतस्तुम्बुरुणानारदः सुरपूजित. ।१६।

यज्ञ का भले प्रकार परिपाक हुआ । अग्नि ने पाक किया, वरुण ने जल प्रदान किया और वायु परोसने लगा । पद्मपत्र कल्किजी ने इस प्रकार श्रेष्ठ यज्ञादि, नृत्य, वाद्य, गीतादि से उत्सव करते हुए सब के आनन्द की वृद्धि की । बालक, स्त्री, वृद्ध आदि सब को धन से यथोचित सत्कृत किया ।११-१३। रम्भादि नाचने लगीं, नन्दी ताल देने लगे, हुहू गन्धर्व ने गीत गाया, उस समय ब्राह्मणों और सत्पात्रों को धन प्रदान करने के पश्चात् कल्किजी अपने पिता की अनुमति से गङ्गा-तट पर रहने लगे । विष्णुयश की विद्वत्सभा में विद्वान् विप्रगण राजाओं को सन्तोष देने वाली कथाएं कहने लगे । इस प्रकार जब सभी ज्ञानीजन एवं द्विजजन आनन्द में निमग्न थे, तभी राजा तुम्बरु और देवताओं द्वारा पूजित नारदजी वहाँ आये ।१४-१६ ।

तं पूजयामास मुदा पित्रा सह यथाविधि ।
तौ सपूज्य विष्णुयशा. प्रोवाच विनयान्वितः ।
नारदं वैष्णवं प्रीत्या वीणापाणिं महामुनिम् ।१७।
अहो भाग्यमहो भाग्यं मम जन्मशतार्जितम् ।
सर्वहिंसानां पूर्णानां यन्मे मोक्षाय दर्शनम् ।१८।
अद्याग्नयश्च सुहुतास्तृप्ताश्च पितरः परम् ।

देवाश्च परिसन्तुष्टास्तवावेक्षणपूजनात् ।१६।
यत्पूजायां भवेत्पूज्यो विष्णुर्यन्मम दर्शनम् ।
पापसंघ स्पर्शनाच्च किमहो साधुसङ्गतः ।२०।
साधूनां हृदयं धर्मो वाचो देवाः सनातनाः ।
कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुर्हरिः स्वयम् ।२१।

उस अवसर पर प्रफुल्लित हृदय वाले विष्णुवश जी ने उन दोनों का विधिवत् पूजन किया और फिर उन्होंने वीणापाणि विष्णु भक्त नारदजी से विनय पूर्वक कहा ।१७। विष्णुयश बोले—मेरा अहो-भाग्य है। सौ जन्मों से संचित पुण्य के प्रभाव से. ही आप परम पूर्ण पुरुषों के दर्शन मेरे मोक्ष के उद्देश्य से ही प्राप्त हुए हैं ।१८। आपके दर्शन और पूजन के होने से हमारे पितरों की भी तृप्ति हो गई तथा अग्नि में दी हुई आहुत के सफल होने से देवगण भी सन्तुष्ट हो गए हैं ।१६। जिनके पूजन में भगवान् विष्णु का पूजन निहित है, उनके दर्शन मात्र से ही पुनर्जन्म का नाश हो जाता है। उनके स्पर्श मात्र से पापों के पुञ्ज भी समूल मिट जाते हैं। ऐसे साधुओं का सब भी सद्गुण ही है ।२०। साधुओं का हृदय धर्म, वाणी सनातनदेव और कर्म ही कर्म को क्षीण करते हैं। इस प्रकार साधु ही साक्षात् हरि है ।२१।

मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य जगत्त्रये ।
यथावतारे कृष्णस्य सतो दुष्टविनिग्रहे ।२२।
पृच्छामि त्वामतो ब्रह्मन्मायासंसारवारिधौ ।
नौकाया विष्णुभक्त्या त्वं कर्णधारोऽसि पारकृत् ।२३।
केनाहं यातनागारान्निर्वाणपदमुत्तमम् ।
सम्प्याभीह जगद्बन्धो कर्मणा सर्मं तद्वद ।२४।
अहो बलवती माया सर्वाश्चर्यमयी शुभा।
पितरं मातरं विष्णुर्नैव मुञ्चति कर्हिचित् ।२५।
पूर्णो नारायणो यस्य सुतः कल्किर्जगत्पतिः

त विहाय विष्णुयशा मत्तो मुक्तिमभीप्सति ।२६।

दुष्टों को दण्ड देने वाला श्रीकृष्णावतार जिस प्रकार भौतिक देह से युक्त नहीं है, वैसे ही तीनों लोकों में विष्णु भक्तों के शरीर भी पंचभूत से युक्त प्रतीत नहीं होते ।२२। हे ब्रह्मन् ! इस माया मय संसार सागर में आप ही विष्णुभक्ति रूपिणी नौका के द्वारा पार कराने वाले हैं। इसी लिये मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ।२३। हे विश्वबन्धो ! आप मुझे यह बताने की कृपा करिये कि मैं इस संसार रूपी यातनागार से मुक्त होकर श्रेष्ठ निर्वाणपद को किस धर्म के द्वारा प्राप्त कर सकता हूँ ? ।२४, नारदजी ने कहा—अहो ! यह माया कैसी आश्चर्यमयी, उज्ज्वला और बलवती है, जिसके प्रभाव से स्वयं भगवान् भी अपने पिता माता को मुक्त नहीं करा पाते ।२५। जिन विष्णुयशाजी के पुत्र साक्षात् भगवान् जगत्पति कल्कि हैं,वे मुझसे मोक्ष की कामना व्यक्त करतेहैं।२६।

विविच्येत्थं ब्रह्मसुत प्राह ब्रह्मयशः सुतम् ।
विविक्ते विष्णुयशस ब्रह्मसम्पद्विवर्द्धनम् ।२७।
देहावसाने जीव सा दृष्ट्वा देहावलम्बनम् ।
मायाह कर्तु मिच्छन्त तन्मे तच्छृणु मोक्षदम् ।२८।
विन्ध्याद्रौ रमणी भूत्वा मायोवाच यथेच्छया ।२९।
अहं माया मया त्यक्त कथंजीवितुमिच्छसि ।३०।
नाहं जीवाम्यहं माये कायेऽस्मिञ्जीवनाश्रये
अहमित्यन्यथाबुद्धिर्विना देहं कथं भवेत् ।३१।
देहबन्धे यथाश्लेपास्तथ बुद्धि कथ तत्र ।
मायाधीनां विना चेष्टा ते कुतो वद ।३२।

ब्रह्मसुत नारदजी ने यह सोच कर ब्रह्मज्ञान देने के विचार से विष्णुयशजी से कहा ।२७। नारदजी बोले—जब देह के नष्ट होने [illegible] पुन देह का आश्रय प्राप्त करने की जीव ने कामना की तब माया ने जो कुछ कहा था, उसे सुनो। इसके सुनने से ही मोक्ष मिल जाता है ।२८। उन भगवती माया ने विन्ध्याचल पर स्वेच्छा से नारी रूप धारण करके

कहा ।२९। माया बोली—मैं माया हूँ। जब मैंने तुम्हारा त्याग कर दिया है, तब तुम पुनर्जीवन प्राप्त करने की इच्छा क्यों करते हो ? ।३०। इस पर जीव ने कहा—हे माये ! मैं तो जीवन की इच्छा नहीं करता, परन्तु जीवन का आश्रय शरीर ही है। अहं रूपी अभिमान के बिना देह धारण ही किस प्रकार संभव है ? ।३१। माया बोली देह धारण पर पर जो भेद ज्ञान होता है, तब तुम्हारी बुद्धि उस प्रकार की क्यों होती है ? जब चेष्टा माया के बिना सम्भव नहीं, तब माया रहित तुम्हारी चेष्टा किस प्रकार होती है ? ।३२।

मां विना प्राज्ञता माये प्रकाशविषयस्पृहा
मायया जीवति मरश्चेष्टते हतचेतनः ।
निःसारः सारवद्भाति गजभुक्तकपित्थवत् ।३४।
मम संसर्गजाता त्व नानानामस्वरूपिणी ।
मां विनिन्दसि किं मूढे स्वैरिणी स्वामिन यथा ।३५।
ममाभावे तवाभावः प्रोद्यत्सूर्ये तमो यथा ।
मामावृत्य विभासि त्वं रविनवघनो यथा ।३६।
लीलाबीजकुशूलासि मम माये जगन्मये ।
नाद्यन्ते मध्यतो भासि नानारूपादिन्द्रिजालवत् ।३७।

जीव ने कहा—हे माये ! तुम्हारी प्राज्ञता मेरे बिना प्रकाशित नहीं हो सकती और न फिर विषय में स्पृहा ही सम्भव है ।३३। माया बोली—जीव का जीवन धारण माया से ही हो सकता है। माया से रहित जीव हाथी द्वारा भक्षित कपित्थ फल के समान सारहीन होता है ।३४। जीव बोला—हे मूढे ! तूने हमारे ही संसर्ग में उत्पन्न होकर नाना प्रकार के नाम और रूप धारण कर लिये हैं। स्वामी की निन्दा करने वाली स्वैरिणी नारी के समान तू हमारी निन्दा क्यों कर रही है ? ।३५। जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार का अभाव हो जाता है, वैसे ही मेरे अभाव में तेरा भी अभाव निहित है। जैसे सूर्य को आवृत्त करता

हुआ मेघ शोभा पाता है, वैसे ही तुम भी मुझे धारण कर शोभा को प्राप्त होती हो ।३६। हे माये ! तुम सीना रूपी बीज की भुसी के समान हो । परमेश्वर की कारण रूपा भी तुम्हीं हो तथा संसार के आदि, मध्य और लय में इन्द्रजाल की भांति सुशोभित होती हो ।३७।

एवं निर्विषयं नित्यं मनोव्यापारवर्जितम् ।
अभीतिरूमजीवस्य शरीरं वीक्ष्य सा त्यजत् ।३८।
त्यक्त्वा मां सा ददौ शापमिति लोके सदाप्रिय ।
न स्थितिर्भविता काष्ठकुड्योपम कथञ्चन ।३९।
सा माया तव पुत्रस्य कल्केर्विश्वात्मनः प्रभोः ।
तां विज्ञाय यथाकामं चर त्वं हरिभावन ।४०।
निराशो निर्मम शान्तः सर्वभोगेषु निस्पृहः ।
विष्णौ जगदिदं ज्ञात्वा विष्णुर्जगति वासकृत् ।
आत्मनात्मानमावेश्य सर्वतो विरतो भव ।४१।
एवं तं विष्णुयशसमामन्त्र्य च मुनीश्वरौ ।
कल्किं प्रदक्षिणीकृत्य जग्मतुः कपिलाश्रमम् ।४२।

इस प्रकार निर्विषय, मानसिक व्यापार और अलौकिक जीव से परे इस शरीरधारी को देख कर माया ने उसका त्याग कर दिया ।३८। उस समय माया ने मेरा त्याग करते हुए यह शाप दिया कि हे जीव ! तू अप्रिय है : तू काठ की भीत के समान निश्चेष्ट एवं लोक में सर्वथा स्थिति-हीन हुआ ।३९। नारदजी बोले—हे प्रभो ! तुम्हारे पुत्र विश्वात्मा कल्किजी ने ही इस माया को उत्पन्न किया था। तुम उस माया के तत्व को जानते हुए भगवान् विष्णु के ध्यान में रत रहते हुए स्वेच्छापूर्वक भ्रमण करो ।४०। अब तुम माया और ममता का त्याग कर और सभी भोगों से परे होकर शान्त चित्त हो जाओगे, तब तुम्हें इसका ज्ञान होगा कि यह विश्व भगवान् विष्णु के विराट् प्रभाव में प्रतिष्ठित है तथा भगवान् विष्णु इस अखिल जगत् में व्याप्त हैं। इस प्रकार के ज्ञान से जीवात्मा और परमात्मा में अभेद मानते हुए सभी

कामनाओं से मुक्त हो जाओ ।४१। इस प्रकार विष्णुयशजी को ज्ञान देकर और कल्किजी की प्रदक्षिणा कर दोनों मुनीश्वरों ने कपिलाश्रम के लिए प्रस्थान किया ।४२।

नारदेरितमाकर्ण्य कल्किं सुतमनुत्तमम् ।
नारायणं जगन्नाथं वनं विष्णुयशा ययौ ।४३।
गत्वा बदरिकारण्यं तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
जीवं बृहति संयोज्य पूर्णस्तत्याजय भौतिकम् ।४४।
मृतं स्वामिनमालिङ्ग्य सुमतिः स्नेहविक्लवा ।
विवेश दहनं साध्वी सुवेशैर्दिवि संस्तुता ।।४५।।
कल्किः श्रुत्वा मुनिमुखात्पित्रोर्निर्वाणमीश्वरः ।
सबाष्पनयन स्नेहात्तयोः समकरोत्क्रियाम् ।।४६।।
पद्मया रमया कल्किः शम्भले सुरवाञ्छिते ।
चकार राज्यं धर्मात्मा लोकवेदपुरस्कृत. ।४७।
महेन्द्रशिखराग्रामस्तीर्थपर्यटनादृतः ।
प्रायात्कल्पे दर्शनार्थं शम्भल तीर्थकृत् ।४८।

विष्णुयशजी ने देवर्षि नारद के मुख से यह सुन कर और जान कर कि मेरे पुत्र ही भगवान् नारायण जगदीश्वर हैं, स्वयं वन के लिए प्रस्थान किया ।४३। वह वहाँ से चल कर बदरिकाश्रम पहुँचे और वहाँ घोर तप करके अपने आत्मा को ब्रह्म में संयुक्त कर दिया तथा पंच-भूतात्मक देह को छोड़ कर पूर्ण स्वरूप हो गए ।४४। अपने पति की मृत्यु हुई सुन कर सुमति स्नेह से विह्वल होकर अपने पति के साथ चिता में प्रविष्ट हो गई। उस समय श्रेष्ठ वस्त्र भूषण को धारण किये हुए देवलोक स्थित देवगण उनकी स्तुति करने लगे ।४५। कल्किजी ने मुनियों के मुख से अपने माता-पिता का महाप्रयाण सुन कर स्नेह-जल से परिपूर्ण नेत्रों के सहित उनका श्राद्धादि कर्म किया ।४६। फिर लोकाचार और धर्माचार में स्थित कल्किजी देवताओं द्वारा कामना किये हुए शम्भल ग्राम में रमा और पद्मा के सहित राज्य करने लगे ।४७। तीर्था-

इस प्रकार परशुरामजी महेन्द्र पर्वत के शिखर से उतरते हुए कल्कि जी के दर्शनार्थ शम्भल ग्राम में पधारे ।४८।

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय पद्मया रमया सह ।
कल्किः प्रहर्षो विधिवत्पूजयामास विधानवित् ।४९।
नानारसैर्गुणमयैर्भोजयित्वा विचित्रितैः ।
पर्यङ्केऽनल्पवस्त्राढ्ये शाययित्वा मुदं ययौ ।५०।
तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं पादसंवाहनैर्गुरुम् ।
संतोष्य विनयापन्नः कल्किर्मधुरमब्रवीत् ।५१।
तव प्रसादात्सिद्धं मे गुरो त्रैवर्गिकञ्च यत् ।
शशिध्वजसुतायास्तु शृणु राम निवेदितम् ।५२।
इति पतिवचनं निशम्य रामं निजहृदयेप्सितपुत्रलाभमिष्टम् ।
व्रतजपनियमधर्मसंज्ञं कर्वा मम भवतीह मुदाह जायदान्यम् १३

उन्हें देखते ही पद्मा और रमा के सहित कल्किजी अपने सिंहासन से उठ पड़े और विधि विधान सहित हर्षित मन से उनका पूजन करने लगे ।४९। विभिन्न रसों से युक्त पक्वान्नादि का उन्हें भोजन कराके सुंदर वस्त्रों से ढकी हुई पर्यङ्क शय्या पर उन्हें शयन कराया ।५०। जिस समय गुरुवर परशुरामजी विश्राम कर रहे थे, उसी समय कल्किजी उनके चरण दाबते हुए विनय पूर्वक मधुर वाणी से कहने लगे ।५१। हे गुरो ! आपकी कृपा से मेरे धर्म, अर्थ और काम इन तीनों वर्गों की सिद्धि हो चुकी है। इस समय राजा शशिध्वज की पुत्री रमा आपसे एक निवेदन करना चाहती है, उसे सुनने की कृपा करें ।५२। पति के वचन सुन कर हर्षित हृदय से रमा ने परशुरामजी से प्रश्न किया—व्रत, जप, नियम आदि में ऐसा कौन-सा अनुष्ठान है, जिसके द्वारा मुझे वाञ्छित पुत्र की प्राप्ति हो सकती है ? ।५३।

✿✿✿

सप्तदश अध्याय

आमदान्यः समाकर्ण्य रमांतां पुत्रमर्दश्रियोम् ।
फलेरभिमनं नुकुणवाकारयद्विमत्प्रोत्तम ॥१॥
प्रतेन तेन च रमः पुत्राढ्या सुभगा सती ।
सर्वभोगेन संयुक्ता बभूव स्थिरयोवना ॥२॥
विधान ब्रूहि मे सूत व्रतस्यास्य च सत्फलम्
पुरा केन कृतं धर्म्यं रेविमत्प्रोवअमुत्तमम् ॥३॥
शृणु ब्रह्मन् राजपुत्री अभिमता सार्वधर्मणो ।
अवगाह्य सरोनीर सोमं हरमपश्यत ॥४॥
सा सखीभिः परिवृता देवपान्या च संगता ।
जामुमीश्वरा समुत्थाय पप्रच्छुर्नसन द्रुतम् ॥५॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! रमा को पुत्र की शोभनसिद्धी मान कर और कल्किजी के अभिप्राय को समझ कर वसुरानी ने उसे शोभनकी व्रत का उपदेश किया ॥१॥ उस व्रत के प्रभाव से शोभित पुत्री रमा पुत्रवती, सौभाग्य सम्पन्ना, सर्व भोगों से परिपूर्ण एवं स्थिर यौवन हो गई ॥२॥ शौनकजी ने कहा—हे सूतजी! उस व्रतजी का विधान और फल मुझे बताइये और आप ही यह भी कहिये कि इस उत्तम व्रत को पहिले किस ने किया था? ॥३॥ सूतजी ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपने जो पूछा है, वही कहता हूँ, सुनिये। सर्वधर्मा नृपवर्य की पुत्री शर्मिष्ठा थी। एक दिन वह सरोवर के जल में घुस कर विहार कर रही थी, तभी उसने पार्वती सहित भगवान् शंकर को वहाँ देखा

।४। तब शर्मिष्ठा, देवयानी और अन्यान्य सखियाँ सभी भयभीत होकर सरोवर से निकल कर [redacted] पर आ गई और अपने-अपने वस्त्रों को धारण करने लगी।५।

तत्र शुक्रस्य कन्याया वसनव्यत्ययमात्मनः ।
संलक्ष्य कुपिता प्राह वसनं त्यज भिक्षुकि ।६।
इति दानवकन्या सा दासीभिः परिवारिता ।
तां तस्या वाससा बद्ध्वा कूपे क्षिप्त्वा गता गृहम् ।७।
सा माना रुदती कूपे जलार्थी नहुषात्मजः ।
करे स्पृष्ट्वा समुद्धृत्य प्राह का त्वं वरानने ।८।
सा शुक्रपुत्री वसनं परिधाय ह्रिया भिया ।
शर्मिष्ठायाः कृतं सर्वं प्राह राजानमीक्षती ।९।
ययातिस्तदभिप्रायं ज्ञात्वानुव्रज्य शोभनम् ।
आश्वास्य तां ययौ गेहं तस्याः परिणयाहृतः ।१०।

उसी घबड़ाहट और विह्वलता के कारण दैत्यगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने भूल से शर्मिष्ठा के वस्त्र धारण कर लिये। यह देख कर शर्मिष्ठा क्रोधित होकर बोली—अरी भिक्षुकी ! तू मेरे वस्त्रों को उतार दे।६। इसके पश्चात उस दैत्यराज पुत्री शर्मिष्ठा ने देवयानी को वस्त्रों से बाँध कर एक कुएं में डाल दिया और सखियों के सहित घर चली गई।७। कूप में गिरी हुई देवानी रुदन करने लगी, तभी नहुष-पुत्र राजा ययाति जल पीनेकी इच्छासे उस कूप पर पहुँचे। उन्होंने देवयानी का हाथ पकड़ कर कूएसे निकाला और बोले—हे वरानने ! तुम कौन हो-यह बताओ।८। शुक्रपुत्री देवयानी ने राजा की ओर लज्जा और भय से देखते हुए शीघ्रता पूर्वक वस्त्र पहिने और शर्मिष्ठा ने जो कुछ किया था वह सब उन्हें कह सुनाया।९। देवयानी के अभिप्राय को जान कर राजा ययाति ने उसका पाणिग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की और फिर कुछ दूर तक उसके साथ-साथ चलते हुए, उसे हर प्रकारसे आश्वासन देकर अपने घर को चले गये।१०।

नित्यं दासीशताकीर्णा देवयानीन्तु सेवते ।१८।
एकादा सा धनगता ध्यतो जाह्नवीतटे ।
विश्वामित्रं मुनिं सा च ददर्शो स्त्रीभिरावृतम् ।१६।
अतिग पुण्यगन्धाभिः सुरूपाभि सुवासितम् ।
कारयन्त व्रतं माल्यधूपदीपोपहारकैः ।२०।

राजसुतां शर्मिष्ठा को देते हुए शुक्राचार्य ने राजा ययाति से कहा कि हे राजन् ! यदि इसे कभी अपने शयनागार में बुलाएँगे तो उसी समय वृद्ध हो जाएँगे ।१६। शुक्राचार्य के वचनों से भय को प्राप्त हुए राजा ययाति ने परमसुन्दर रूपवती शर्मिष्ठा को ले जाकर ऐसे स्थान में रख दिया, जहाँ पर उनकी दृष्टि भी न पड़ सके ।१७। परमन्त ही दुखित, शोक और भय से व्याकुला राजपुत्री शर्मिष्ठा सैकड़ों दासियों के साथ देवयानी की सेवा में तत्पर रहती थी ।१८। एक दिन वह शर्मिष्ठा जाह्नवी के तीर पर बैठी हुई रो रही थी, तभी उसकी दृष्टि स्त्रियों से घिरे हुए विश्वामित्र पर पड़ी ।१६। वे सभी महर्षि विश्वामित्र सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित हो रहे थे । अनेक सुन्दर नारियाँ उनके चारों ओर बैठी हुई थीं । धूप, दीप, माला तथा अनेक प्रकार के उपहारों के द्वारा विश्वामित्र उन स्त्रियों से व्रत-अनुष्ठान करा रहे थे ।२०।

निर्माय्याष्टदल पद्म वेदिकायां सुचिन्हितम् ।
रम्भापोतैश्चतुर्भिस्तु चतुष्कोणं विराजितम् ।२१।
वाससा निर्मितगृहे स्वर्णपट्टैर्विचित्रिते ।
निर्मितं श्रीवासुदेवं नानारत्नविघट्टितम् ।२२।
पौरुषेण च सूक्तेन नानागन्धोदकैः शुभैः ।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्यथामन्त्रैर्द्विजेरितैः ।२३।
स्नापयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।
स्नामयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।
पञ्चभिर्दशभिर्वापि षोडशैरुपचारकैः ।२४।

हुई है इसके द्वारा आपके वक्षःस्थल की शोभावृद्धि होगी । इस श्रेष्ठ माला को आप ग्रहण कीजिये ।२८। हे हरे ! आपको आवृत्त करने में कोई भी समर्थ नहीं है। आप अपनी प्रिया लक्ष्मी जी के सहित इस सूत्र-सन्तान द्वारा निर्मित शुद्ध वस्त्राभरण को स्वीकार कीजिये ।२६। हे देव ! यह सूत्र ब्रह्मा शक्ति द्वारा निर्मित हुआ है इसे आप अपनी पत्नी रुक्मिणीजी के सहित ग्रहण कीजिये ३०।

नानारत्नसमायुक्त स्वर्णमुक्ताविघट्टितम्
प्रियया सह देवेश गृहाणाभरणं मम ।३१।
दधिक्षीरगुडान्नादिपूपलड्डुकखण्डकान् ।
गृहाण रुक्मिणीनाथ सनाथ कुरु मां प्रभो ।३२।
कर्पूरागुरुगन्धाढ्य परमानन्ददायकम् ।
धूपं गृहाण वरद वैदर्भ्या प्रियया सह ।३३।
भक्तानां गेहशक्तानां संसारध्वान्तनाशनम् ।
दीपमालोकय विभो ! जगदालोकनादर ।३४।
श्यामसुन्दर ! पद्माक्ष ! पीताम्बर ! चतुर्भुज ! ।
प्रपन्नं पाहि देवेश रुक्मिण्या सहिताच्युत ।३५।

हे देवेश ! हे प्रभो ! विभिन्न प्रकार के रत्नों से युक्त एवं स्वर्ण द्वारा निर्मित आभूषणों को आप अपनी प्रिया लक्ष्मीजी के सहित ग्रहण कीजिये ।३१। हे रुक्मिणीनाथ ! यह दधि,दुग्ध,गुड, अन्न, पुआ लड्डू एवं शर्करादि को ग्रहण करके मुझे सनाथ कीजिये ।३२। हे वरद ! परमानन्द के देने वाली इस कर्पूर और अगर युक्त गन्ध को आप अपनी प्रिया के सहित स्वीकार कीजिये ।३३। हे विभो ! आप गृह-कामी भक्तों के अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं और आदर सहित जगत् को अपने प्रकाश से आलोकित कर रहे हैं, इस दीपक का अवलोकन कीजिये ।३४। हे श्यामसुन्दर ! हे कमलाक्ष ! हे पीताम्बरधारी चतुर्भुज ! हे देवेश ! आप रुक्मिणीजी के सहित प्रसन्न होते हुए हमारी रक्षा कीजिये ।३५।

इति तासां वचः श्रुत्वा मुनि वाचा मृदु, स्त्रिया ।
सर्वांश्च मिष्टवचनाः कृताञ्जलिरुवाच ताः ।३६।
राजपुत्री दुर्गया मा रक्षिता परिवर्जिताम्
मानुमहं हे देव्यो यतेनात्मेव कर्मणा ।३७।
श्रुत्वा तु ताः वचस्तस्याः कारुण्याच्च विमर्शिताः ।
पूर्वोपकारान् दत्त्वा कामनाम्अनुपादरात् ।३८।
एवं श्रुत्वा तु सा सीता लब्ध्वा स्वामिनमोश्वरम् ।
मुक्ता पुनान्तु सन्तुष्टा समभूत्स्थिरयौवना ।३९।
सीता शाकोकर्वतिकायाम्ये सरमया सह।
वतं कृत्वा पति सेवेराम राक्षसमारकम् ।४०।

स्त्रियों को इस प्रकार वार्ता करते हुए देख कर सीता ने पूरि को नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर बोली ।३५। सीता ने कहा—हे देवियो ! मैं मन्दभाग्य अभागी जनक पुत्री हूँ। भाग्य के जोर से ही पति सम-र्पित हूँ। यह मन जिस प्रकार किया जाता है, मुझे यह बता कर मेरी रक्षा करिये ।३६। सीता के वचन सुन कर उन स्त्रियों को दया आ गई और उन्होंने कुछ पूर्व उसको उस देकर उसके आदर पूर्वक अप-नाया ।३७। इस व्रत को करके सीता भी अपने पति करके वो प्रसन्न होकर पुनःवही और स्थिर यौवना होकर सन्तुष्ट हो गई ।३८। सीता और सरमा ने भी अशोक वाटिका में इस व्रत का अनुष्ठान किया था उसी के पुण्य-फल से सीताजी राक्षस-संहारक भगवान् राम से मिल सकी थी ।४०।

बृहदम्बाप्रसादेन कृत्वेयं द्रौपदी व्रतम् ।
पतिपुत्रा दुःखमुक्ता बभूव स्थिर यौवना ।४१।
तथा रम्भा सिते पक्षे वैशाखे द्वादशीदिने ।
वामदन्त्याद्वृतं चक्रे पूर्वं पंचचतुष्टयम् ।४२।
पट्टसूत्रं करे बद्ध्वा भोजयित्वा द्विजान् ।
भुक्त्वा हविष्य सौराष्ट्रं मुमुदे स्वामिना सह ।४३।

बुभुजे पृथिवीं सर्वामपूर्वां स्वजनैर्वृता ।
सा पुत्रौसुषुवे साध्वी मेघमालबलाहकौ ।४४।
देवानामुपकर्त्तारौ यज्ञदानतपोव्रतौ ।
महोत्साहौ महावीर्यौ सुमगौ कल्किसम्मतौ ।४५।
व्रतवरमिति कृत्वा सर्वसम्पत्समृद्धया भवति विदि-
तनरश्च पूजिना पूर्णकामा । हरिचरणसरोजद्वन्द्वम-
त्यंकताना व्रजति गतिमनूर्यां ब्रह्मविज्ञैरगम्याम् ।४६।

बृहदश्व की प्रेरणा से द्रौपदी ने इस व्रत को किया था और वह भी दुःख से मुक्त होती हुई पतिपुत्र और स्थिर यौवना हो गई ।४१। इसके पश्चात् रमा ने परशुरामजी के निर्देशन में वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन इस रुक्मिणी व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ किया और चार वर्ष व्यतीत होने पर उसका समापन किया ।४२। देवकी सूत्र हाथ में बाँधते हुये रमाने ब्राह्मणों को भोजन कराया और क्षीरयुक्त श्रेष्ठ हविष्यान्न का अपने स्वजनों सहित आहार किया । इससे वह स्वजनों से परिपूर्ण होकर पृथिवी का अखण्ड सुख भोगने लगी । उसके मेघमाल और बलाहक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।४३। वे दोनों देवताओं के उपकारी, यज्ञ-दान और तपोव्रत में निरत रहने वाले, अत्यन्त उत्साही, महापराक्रमी सौभाग्यवान् तथा कल्किजी की आज्ञा में चलने वाले थे ।४५। इस व्रत को करने वालों को सब प्रकार सुख, सम्पत्ति और समृद्धि की प्राप्ति होती है । उनकी सब कामनाएं पूर्ण होती हैं । ब्रह्मज्ञान और हरिचरणों में प्रीति उत्पन्न होती है, तथा वे श्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं ।४६।



से परिपूर्ण और रमणीय हो रहे थे। तथा शम्भल ग्राम संसार में मोक्ष के देने वाला माना जाने लगा था।५।

अथ कल्किः पुरस्त्रीणां नयनानन्दवर्द्धनः।
पद्मया रमया कामं रराम जगतीपतिः ।६।
सुराधिपप्रदत्तेन कामगेन रथेन वै।
नदीपर्वतकुञ्जेषु द्वीपेषु परया मुदा ।७।
रममाणो विशल्पपारमाद्याभीरमापतिः ८
पद्मामुखामोदसरोजसौगन्धवासोपभोगी सुविलासवासः।
प्रभूतनीलेन्द्रमणिप्रकाशे गुहाविवरे प्रविवेश कल्किः ।६।
पद्मा तु पद्माशतरततरूपा रमा च पीयूषकलाविलासा।
प्रति प्रविष्टं गिरिगह्वरे तं नारीसहस्रकुलिते स्वनाथाम् १०
पद्मा पतिं प्रेक्ष्य गुहानिविष्टं रन्तुं मनोज्ञा प्रविवेश पश्चात्
रमाबलायूथसमन्विता तत्पश्चाद्गता कल्किमहोप्रकाशा।

नगर निवासिनी नारियों के नयनों की आनन्द-वृद्धि करने वाले कल्किजी पद्मा और रमा के साथ शम्भल ग्राम में निवास करते हुए विहार करने लगे।६। वे मुदित मन से इन्द्र द्वारा दिये हुए रथ पर आरूढ़ होकर नदी, पर्वत, कुञ्ज और द्वीप में पद्मा और रमा प्रभृति नारियों के साथ विहार करते रहे।७-८। एक समय की बात है—पद्मा के मुख मोद के पद्म-गन्ध का उपभोग करने वाले कल्किजी पर्वत की एक गुफा में प्रविष्ट हुए जो कि अनेक नीलेन्द्र मणियों की आभा से प्रकाशित हो रही थी।६। उनके साथ सहस्र सखियों के सहित पद्म और पीयूषकला जैसी विलासिनी रमा भी उस गुफा में गई।१०। अपने स्वामी कल्किजी को उस गिरिगुहा में घुसते हुए देख कर मनोहारिणी पद्मा भी उनके पीछे-पीछे गई तथा रमा ने भी विहार की इच्छा से स्त्री यूथों के सहित पीछे से प्रवेश किया।११।

तत्रेन्द्रनीलोत्पलगह्वरान्ते कान्ताभिरात्म प्रतिमाभिरीशम्।
कल्किश्च दृष्ट्वा नयनोरद्राभ ततः स्थितं प्रस्तरवन्मुमोह ।१२

रमा सखीभिः प्रमदाभिरार्ता विलोकयन्ती दिक्षमाकुलाक्षी
पद्मान्ति पद्मासतशोभमाना विपण्णचित्ता न बभौ स्म चार्ता

भूमौ सिसन्ज्ञौ निजकज्जलेन कल्कि शुभं च कुचकुंकुमेन ।
कस्तूरिकाभिस्तु तदग्रमये निर्माय चालिङ्ग्य ननाम भावात्
रमा कलालापपरा स्तुवन्ती कामार्दिता तं हृदये निधाय
ध्यात्वा सिवासस्कुसुमैः प्रपूज्य तस्थौ विपण्णा करुणावसन्ना
क्षणात्सचाय परोद रामा कल्किनः कण्ठनिभ भुजनापम् ।
हृदोपगूढ न पुन. प्रलम्भ कामार्दितेरवाह हरे प्रसीद ।१६।

नीलेन्द्र मणिमय उस गिरिगुहा में पहुँच कर पद्मा ने देखा कि मेघ के समान कान्ति वाले कल्किजी अपने जैसे सुन्दर वाली नारियों के साथ वृक्ष के मध्य बैठे हुए है । यह देख कर पद्मा अत्यन्त आश्चर्य के साथ मोहित होकर निश्चेष्ट पाषाण के समान पृथ्वी पर बैठ गई ।१२। सखियों के सहित रमा भी उस दृश्य को देख कर विस्मय से सब ओर देखने लगी । उन पद्माओं के समान कर वाली नारियों को देख कर पद्मा तो दुःख और शोकित हो ही रही थी ।१३। वह अपने नेत्र के काजल से पृथिवी को रँगने लगी । वह कुंकुम और कस्तूरी से भूमि को सुगन्धित करती हुई, उस पर गिर गई ।१४। कामवती रमा भी अपने हृदय में कल्किजी का ध्यान करने लगी और सुन्दर पुष्पों के द्वारा उनका पूजन करके शोक और दुःख से व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर गई ।१५। क्षण भर के उपरान्त सचेत हुई रमा रोने लगी और अपने हृदय को कल्किजी के आलिंगन से रहित पाकर उठी—हे हरे ! प्रसन्न होइये ।१६।

पद्मापि निम्मुंच्य निजाङ्गभूषाप्रकार धूलीपटले विलासम्
कण्ठस्थ कस्तूरिनयापि नीलं कामं निष्ठिन्तु शिवतामुपेन्य १७
कलावतीनां कलयाकलय दोश्शाना हरिरात्तबन्धु ।
सा सादरेणात्मपति मनोज्ञं करेणयो युग्मर्पित यदेषु ।
सानन्दमग्ना विपदाननुभूता मनेषु रामाः परिपूर्णकामा ।१९

वैभ्राजके चैत्ररथे सुपुष्पे सुनन्दने नन्दरकन्दरान्ते ।
रेमे स रामाभिरुदारतेजा रथेन भास्वत्खगमेन कल्किः २०

पद्मा ने भी सब शृंगार धारण किया और पुत्र से लेट गई । उस समय उसका कान्तुरी युक्त नील वर्ण हुआ कण्ठ कामदेव को भस्म करने वाले शिवजी के समान लगने लगा ।१७। तभी उन सब के नेत्र वालों विलासिनी प्रियाओं की इच्छा पूर्ण करने के लिए यादवों के प्रभु कल्किजी उनके मध्य में प्रकट हुए ।१८। यूथपति हाथी के पास जिस प्रकार हथनियां जाती हैं, वैसे ही कल्किजी के समीप वे सभी नारियाँ हर्षित हृदय होकर भागईं । वे हृदय के सन्ताप को छोड़ कर पूर्ण काम हो गईं ।१९। फिर उदार चरित्र वाले एवं तेजस्वी कल्किजी में एक गगनगामी रथ पर पद्मा, रमा आदि नारियों के साथ आरूढ़ होकर पुष्पों से परिपूर्ण वैभ्राजक, चैत्ररथ और नन्दन वन में आकर विहार-रत हुए ।२०।

तत सरोवरं त्वरा स्त्रियो ययु मलमज्वरा: ।
प्रियेण तेन कल्किना वनान्तरे विहारिणा ।२१।
सर: प्रविश्य पद्मया विमोह रूपया तया ।
जल ददुर्वराङ्गना: करेणुवो यथा गजम् ।२२।
इति ह युवतिलीला लोकनाथ: स कल्किः ।
प्रिययुवतिपरीत: पद्मया रामयाद्य: ।२३।
निजरमणविनोदे शिक्षयंल्लोकवर्गान्
जयति विबुधभर्ता शम्भले वासुदेव: ।२४।
ये शृण्वन्ति वदन्ति भावचतुरा ध्यायन्ति सन्त: सदा
कल्के: श्रीपुरुषोत्तमस्य चरित कर्णामृत सादरा. ।
तेषां नो सुखयत्ययं मुररिपोर्दास्यमिलाषं विना
संसार: परिमोचनस्य परमानन्दामृताम्भोनिधे: ।२५।

फिर वे अनासक्त नारियाँ विहार करने वाले कल्किजी के साथ सरोवर के तीर पर जा पहुँची । जैसे हथिनियाँ यूथपति हाथी के शरीर

पर वस्त्र डालती हैं, वैसे ही वे सब स्त्रियाँ अद्भुत रूप वाली पद्मा के सहित कल्किजी के देह पर जल की वर्षा करने लगीं ।२१-२२। जो कल्किजी युवतियों के साथ लीला करने में निपुण तथा अपनी प्रिया रमा आदि नारियों के साथ विनोद युक्त विहार करते आते हैं एवं जो कल्किजी देवताओं के भी ईश्वर, आदि पुरुष और जगदीश्वर हैं, उन शम्भल ग्राम निवासी भगवान् वासुदेव की जय हो ।२३-२४। पुरुषोत्तम कल्किजी के इस लीला के अमृत के समान प्रिय लगने वाले चरित्र को जो कोई आदर पूर्वक सुनेंगे, कीर्तन या ध्यान करेंगे, उन काम्य भाव की कामना वाले मनुष्यों के हृदय में भगवान् की प्रीति के अतिरिक्त अन्य किसी की प्रीति या कामना उत्पन्न नहीं होगी। वे यही अनुभव करेंगे कि संसार मोक्ष के अतिरिक्त अन्य कोई परमानन्द नहीं ।२५।



ऊनविंश अध्याय

ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मणा सहिता रथैः ।
स्वैः स्वैर्गणैः परिवृताः कल्किं द्रष्टुमुपाययुः ।१।
महर्षयः सगन्धर्वाः किन्नराश्चाप्सरोगणाः ।
समाजग्मुः प्रमुदिताः शम्भलं सुरपूजितम् ।२।
तत्र गत्वा सभामध्ये कल्किं कमललोचनम् ।
तेजोनिधिं प्रपन्नानां जनानामभयप्रदम् ।३।
नीलजीमूतसंकाशं दीर्घपीवरबाहुकम् ।
किरीटेनार्कवर्णेन स्थिरविद्युन्निभेन तम् ।४।
शोभमानं द्युमणिना कुण्डलेनाभिशोभिना ।
सहर्षानापविकसद्वदनं स्मितशोभिनम् ।५।

सूतजी बोले—इसके अनन्तर एक समय सब देवता और ब्रह्मा संयुक्त होकर अपने अपने गणों के सहित रथों पर चढ़ कर कल्किजी के दर्शनार्थ आये ।१। महर्षिगण गन्धर्वगण, किन्नरगण तथा अप्सरागण सभी अत्यन्त मुदित हृदय से उस सुरपूजित शंभल ग्राम में एकत्र हुए ।२। फिर सब कल्किजी की सभा में गये और वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि कमललोचन भगवान् कल्किजी शरणागतों को अभयदाता रूप से विराजमान हैं ।३। उनकी कान्ति नील मेघ समान थी, दीर्घ और पुष्ट भुजाएँ हैं, उनका मस्तक स्थिर विद्युत सदृश। सूर्य के समान तेजोमय किरीट से सुशोभित है ।४। उनका मुख मंडल सूर्य के समान प्रकाश करने वाले

कुण्डलों से सुशोभित है उनका मुखारविन्द मधुर मुस्कान और हर्षालाप से अत्यंत शोभा को प्राप्त हो रहा है ।५।

कृपाकटाक्षविक्षेपपरिक्षिप्तविपक्षकम् ।
तारहारोल्लसद्वक्षश्चन्द्रकान्तमणिश्रिया ।६।
कुमुद्वतीमोदवहं स्फुरच्छक्रायुधाम्बरम् ।
सर्वदानन्दसन्दोहरसोल्लसितविग्रहम् ।७।
नानामणिगणोद्योतदीपितं रूपमद्भुतम् ।
ददृशुर्देवगन्धर्वा ये चान्ये समुपागता ।८।
भक्त्या परमया युक्ताः परमानन्दविग्रहम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं तुष्टुवुः परमादरात् ।९।
जयाशेषसंक्लेशकक्षप्रकोपानलोद्दाममकीर्णदीक्ष
देवेश विश्वेश भूतेश भाव । त्वानन्त चान्तःस्थितोऽज्ञानहन्त
प्रभाभासपादाब्जितानन्तशक्ते ।१०।

शत्रु भी उनके कृपा कटाक्ष-विक्षेप से अनुग्रह को प्राप्त होते हैं । वक्षस्थल पर चन्द्रकान्त मणि की कुमुदिनी को प्रसन्न करने वाली ज्योति से संयुक्त हार सुशोभित है, वस्त्र इन्द्र-धनुष के समान विविध रंगों में शोभा को बढ़ा रहे हैं । आनन्द रस के कारण हृदय उल्लसित हो रहा है ।६-७। देवता गंधर्वादि सभी आगन्तुकों को कल्किजी का अनेक मणियों से सुशोभित एवं तेजस्वी रूप इस प्रकार अत्यन्त अद्भुत दिखाई दिया ।८। तब वे सभी परम भक्ति भाव से आदर पूर्वक उन परमानन्द विग्रह कमल लोचन कल्किजी की स्तुति करने लगे ।९। देवताओं ने कहा—हे देवेश ! हे विश्वेश्वर ! हे भूतेश्वर ! हे प्रभो ! आप सभी भावों से युक्त एवं अनन्त हैं । आपके प्रचण्ड अग्नि रूप के किंचित् स्पर्श से भी इस संसार भर के क्लेश-पुञ्ज भस्म हो जाते हैं । कान्ति की राशि से सम्पन्न आपके चरणों से लोक प्रकाशित है । हे अनन्तशक्ते ! आपकी जय हो ।१०।

प्रकाशीकृताशेषलोकत्रयाय वक्षः स्थले भास्वरकौस्तु
श्याम मेघौघराजच्छरीरद्विजाधीशतुल्याननं त्राहि
विष्णो स दाराः वय त्वां प्रपन्ना सशेषः ।११।
यद्यस्त्यनुग्रहोऽस्माकं व्रज वैकुण्ठमीश्वर ।
त्यक्त्वाशासितभूखण्डं सत्यधर्माविरोधतः ।१२।
कल्किस्तेषामिति वचः श्रुत्वा परमहर्षितः ।
पात्रार्थैः परिवृतश्चकार गमने मतिम् ।१३।
पुत्रानाहूय चतुरो महाबलपराक्रमान् ।
राज्ये निक्षिप्य सहसा धर्मिष्ठाप्रकृतिप्रियान् ।१४।
ततः प्रजाः समाहूय कथयित्वा निजः कथाः ।
प्राह तान्निजनिर्माणं देवानामुपरोधतः ।१५।

हे प्रभो ! आपके श्याम वर्ण वाले वक्षस्थल में अत्यन्त ज्योति सम्पन्ना कौस्तुभमणी सुशोभित है। उस मणि के रश्मिजाल से तीनों लोक प्रकाशित हो रहे हैं इससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेघमाल के मध्य पूर्ण चन्द्र प्रतिष्ठित हो। हे नाथ ! हम सब विपत्ति में पड़े हुऐ हैं और अपने नारी, पुत्र, स्वजनादि के सहित आपकी शरण में आते हैं। हे प्रभो ! हम पर प्रसन्न होकर हमारी रक्षा कीजिये ।११। हे नाथ ! अब यह पृथ्वी सत्य और धर्म से अविरोध पूर्वक शासित है। यदि आपकी हम पर कृपा है तो अब इसे त्याग कर वैकुण्ठ के लिए प्रस्थान कीजिये ।१२। देवताओं के इन वचनों को सुन कर कल्किजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे अपने सुपात्र मित्रों के सहित वैकुण्ठ गमन की इच्छा करने लगे ।१३। तब उन्होंने प्रजा वत्सल, महाबली एवं धार्मिक अपने चारों पुत्रों को बुला कर तुरन्त ही राज्याभिषेक कर दिया ।१४। फिर उन्होंने सम्पूर्ण प्रजा को बुला कर अपना वृत्तान्त कहते हुए उसे सूचित कर दिया कि अब हमें देवताओं के अनुरोध पर वैकुण्ठ धाम के लिए जाना है ।१५।

तच्छ्रुत्वा ताः प्रजाः सर्वा रुरुदुर्विस्मयान्विताः ।
त आहुः प्रणता पुत्रा यथा पितरमीश्वरम् ।१६।
भो नाथ सर्वधर्मज्ञ नास्मान्त्यक्तुमिहार्हसि
यत्र त्वं तत्र तु वयं यामः प्रणतवत्सल ।१७।
प्रिया गृहा धनान्यत्र पुत्राः प्राणास्तवानुगाः ।
परत्रेह विशोकाय ज्ञात्वा त्वां यज्ञपूरुषम् ।१८।
इति तद्वचनं श्रुत्वा सान्त्वयित्वा सदुक्तिभिः ।
प्रययौ खिन्नहृदयः पत्नीभ्यां सहितो वनम् ।१९।
हिमालयं मुनिगणैराकीर्णं जाह्नवीजलैः ।
परिपूर्णं देवगणैः सेवितं मनसः प्रियम् ।२०।
गत्वा विष्णुः सुरगणैर्तत्रास्थाच्चतुर्भुजः ।
स्मरित्वा जाह्नवीतीरे स्वमात्मानमात्मना ।२१।

यह सुनकर सम्पूर्ण प्रजा अत्यन्त विस्मयमें पड़कर रुदन करने लगी। जैसे पुत्र पिता से निवेदन करता है वैसे वह प्रणाम करके उनसे बोली ।१६। प्रजा ने कहा—हे नाथ ! आप सभी धर्मों के जानने वाले हैं। आप प्रणतपाल को हम सब का परित्याग नहीं करना चाहिये। हे नाथ ! हम आपके साथ चलेंगे।१७। इस जगत् मे सभी को अपना धन, सन्तान और घर ही अत्यन्त प्रिय है। आप यज्ञ पुरुष सभी के दुःख और शोक का शमन करने मे समर्थ हैं। यह जान कर हमारे प्राण भी आपका अनुगमन करने के लिए इच्छुक है।१८। प्रजा के यह वचन सुन [illegible] कल्कि जी ने उन्हें श्रेष्ठ उपदेश देकर सान्त्वना प्रदान की और खेद-युक्त मन से अपनी दोनों पत्नियों को साथ लेकर वन के लिए चल दिये।१९। वे गंगाजल से सम्पन्न, देवताओं और मुनियो से उपासित हृदय को आनन्द देने वाले हिमालय पर्वत पर पहुँच कर देवताओं के मध्य विराजमान हुए और चतुर्भुज विष्णु स्वरूप धारण करके अपने रूप का स्मरण करने लगे।२०-२१।

पूर्णज्योतिर्मयः साक्षी परमात्मा पुरातनः ।
बभौ सूर्यसहस्राणां तेजोराशिसमद्युतिः ।२२।
शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गाद्यैः समभिष्टुतः ।
नानालङ्करणानाञ्च समलङ्करणाकृतिः ।२३
ववृषुस्त सुराः पुष्पं कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
सुगन्धि कुसुमासारैर्देवदुन्दुभिनिस्वनैः ।२४।
तुष्टुवुर्मुमुहुः सर्वे लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ।
दृष्ट्वा रूपमरूपस्य निर्याणे वैष्णवं पदम् ।२५।
सदृष्ट्वा महदाश्चर्यं पत्युः कल्केर्महात्मनः ।
रमा पद्मा च दहनं प्रविश्य तमवापतुः ।२६।

तब वे पूर्ण ज्योतिमान् सर्वसाक्षी स्वरूप,सनातन पुरुष परमात्मा, कल्किजी सहस्रों सूर्य के समान तेज से प्रकाशित हो रहे थे ।२२। विविध अलंकारों से युक्त वे स्वयं भी अलंकार के समान प्रकाशित हो रहे थे । शंख, चक्र, गदा, पद्म और शार्ङ्ग धनुष आदि समन्वित उनका श्री विग्रह पूजित होने लगा ।२३। उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि सुशोभित थी । देवगण उन पर पुष्पवृष्टि कर रहे थे और सब ओर दुंदुभियां बज रही थी ।२४। जब वे कल्किजी विष्णुपद में प्रविष्ट हुए, तब उन अरूप जगदीश्वर के रूप-दर्शन से सभी जीव मोह को प्राप्त हो गए ।२५। अपने पति कल्किजी के इस अद्भुत रूप को देख कर रमा और पद्मा अग्नि में प्रविष्ट होकर उसमें लीन होगईं ।२६।

धर्मः कृतयुगं कल्केराज्ञया पृथिवीतले ।
निःसपत्नौ सुसुखिनौ भूलोके चेरतुश्चिरम् ।२७।
देवापिश्च मरुः कामं कल्केरादेशकारिणौ ।
प्रजाः सम्पालयन्तौ तु भुवं जुगुपतुः प्रभू ।२८।
विशाखयूपभूपालः कल्केर्निर्याणमीदृशम् ।
श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृपं कृत्वा गतो वनम् ।२९।

अन्ये नृपतयो ये च कल्केर्विरहकर्पिताः ।
तध्यायन्तो जजन्तश्च विरक्ताः स्युर्नृपासने ।३०।
इति कल्केरनन्तस्य कथा भुवनपावनीम् ।
कथयित्वा शुकः प्रायान्नरनारायणाश्रमम् ।३१।
मार्कण्डेयादयो ये च मुनयः प्रशमायनाः ।
श्रुत्वानुभाव कल्केस्ते त ध्यायन्तो जगुर्यशः ।३२

भगवान् कल्किजी की आज्ञा के अनुसार धर्म और सतयुग भार्या-विहीन रह कर सुख पूर्वक भूमण्डल पर चिरकाल तक विचरण करते रहे ।२७ देवापि और मरु—यह दोनो राजा कल्किजी के आदेशानुसार प्रजा-पालन एवं अधिरी के रक्षण में तत्पर हुए ।२८। भगवान् कल्किजी का गमन सुन कर विशाखयूप-नरेश भी अपने पुत्र को राज्य देकर वन में चले गये ।२९। अन्यान्य राजागण भी कल्किजी के वियोग को सहन न कर सके। उन्होंने अपने-अपने राज्य का त्याग [redacted] किया और कल्किजी के रूप का ध्यान करते हुए उन्हीं का नाम जपने लगे ।३०। अनन्त प्रभु कल्किजी की इस लोक पावनी कथा का वर्णन करने के पश्चात शुकदेवजी ने नर-नारायण को प्रस्थान किया ।३१। शान्त चित्त वाले मार्कण्डेय आदि मुनिगण भगवान् कल्किजी [redacted] इस माहात्म्य को श्रवण कर उनका ध्यान करते हुए यशोगान में तत्पर हुए ।३२।

यस्यानुशासनादमुष्मो नाधर्मिष्ठप्रजाजनाः ।
नाल्पायुषो दरिद्राश्च न पाखण्डा न हैतुकाः ।३३
नाधयो व्याधयः क्लेशा देवभूतात्मसम्भवाः ।
निर्मत्सराः सदानन्दा बभूवुर्जीवजातयः ।३४।
इत्येतत्कथितं कल्केरवतार महोदयम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्य स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ।३५।
शोकसन्तापपापघ्नं कलिव्याकुलनाशनम् ।
सुखदं मोक्षदं लोके वाञ्छितार्थफलप्रदम् ।३६।

तावच्छ्रस्त्रप्रदीपाना प्रकाशो भुवि रोचते।
भाति भानु पुराणाख्यो यावल्लोकेऽति कामधुक् ।३७।
श्रुत्वेतद्भृगुवंशजो मुनिगणैः साकं सहर्षो वशी
ज्ञात्वा सूतममेयबोधविदितं श्रीरोमहर्षात्मजम्।
श्रीकल्केरवतारवाक्यममलं भक्तिप्रदं श्रीहरेः
शुश्रूषु पुनराह साधुवचसा गगास्तवं सादरं. ।३८।

जिनके शासनकाल मे इस पृथिवी पर कोई भी धर्म-हीन अल्पायुष्य, दरिद्री, पाखण्डी तथा कपट पूर्ण आचरण वाला व्यक्ति नहीं रहा और सभी प्राणी आधि-व्याधि से रहित, क्लेश-रहित और मात्सर्य-रहित होकर देवताओं के समान सुखी हो गए, उन्ही के अवतरण का का यह प्रसग कहा गया है। इसके श्रवण मात्र से धन, यश और आयु की वृद्धि होती और परमानन्द की प्राप्ति होती है तथा अन्तकाल मे स्वर्ग की उपलब्धि हो जाती है।३३-३५। यह कथा सुनने से शोक, सन्ताप और पाप को नष्ट करती है। कलियुग के उद्वेगो का शमन मोक्ष एव वाञ्छित फल देने मे यह समर्थ है।३६। इच्छित फल को देने वाला पुराण रूपी सूर्य को उदय जब तक ससार मे नही होता, तभी तक अन्यान्य-शास्त्र दीपक माला का प्रकाश टिक पाता है।३७। भृगुवंश मे उत्पन्न मुनिगण शौनकादि ऋषियो ने इस भक्ति रस से परिपूर्ण कल्कि कथा के श्रवण से अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया। वे जान गये कि लोम-हर्षण के पुत्र सूतजी ज्ञान मे इस प्रकार प्रवृत्त है। मुनियो के हृदय में हरि कथा सुनने की इच्छा पुनः जागृत हुई और उन्होने आदर सहित गगास्तोत्र के विषय मे सूतजी से प्रश्न किया।३८।

०००

तृतीयांश—

विंश अध्याय

हे सूत ! सर्वधर्मज्ञ यत्त्वया कथितं पुरा ।
गङ्गां स्तुत्वा समायाता मुनयः कल्किसन्निधिम् ।१।
स्तवं तं वद गङ्गायाः सर्वपापप्रणाशनम् ।
मोक्षदं शुभदं भक्त्या शृण्वतां पठतामिह ।२।
शृणुध्वमृषयः सर्वे गङ्गास्तवमनुत्तमम् ।
शोकमोहहरं पुंसामृषिभिः परिकीर्तितम् ।३।
इयं सुरतरङ्गिणी भवनवारिधेस्तारिणी ।
स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्संसदः ।
सुमेरुशिखरामरप्रियजला मलक्षालनी ।
प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी ।४।
भगीरथरथानुगा सुरकरीन्द्रदर्पापहा
महेशमुकुटप्रभा गिरिशिरः पताकासिता ।
सुरासुरनरोरगैरजभवाच्युतैः संस्तुता
विमुक्तिफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते ।५।

शौनकजी बोले—हे सूतजी ! आप सभी धर्मों के जानने वाले हैं। आपने कहा था कि मुनिगण गङ्गा जी का स्तवन करके कल्किजी के पास पहुँचे थे, तो वह स्तव कौन-सा है, जिसके भक्ति-सहित पढ़ने या सुनने से मोक्ष रूपी मङ्गल की प्राप्ति होती है और सभी पापों का नाश होता है। उसे हमारे प्रति कहिये ।१-२। सूतजी ने कहा—हे मुनियो ! वह

और मोह के नाशक अत्यन्त श्रेष्ठ ऋषि प्रणीत गंगा-स्तोत्र को आपके प्रति कहता हूँ, सुनिये ।३। ऋषियों ने कहा—यह सुरतरंगिणी संसार समुद्र से पार करने वाली भगवान् विष्णु के चरणारविन्दों से उद्भूत होकर भूमण्डल पर प्रवाहित हुई । यह भवभय विनाशिनी, पाप नाशिनी, सुमेरु शिखर वासिनी, अपूर्व जल वाली, प्रसन्नवदना भगवती गंगाजी शुभप्रदायिनी एवं सर्व पूजिता हैं ।४। यह भगवती राजा भगीरथ के पीछे-पीछे पृथिवी पर चली । इन्होंने ऐरावत का गर्व खण्डन किया । यह शिवजी के मस्तक में मुकुट की प्रभा रूप में शोभामयी और हिमालय की श्वेत पताका के समान है । सभी देवता, दैत्य, मनुष्य और नाग आदि इनके यश का सदा गान करते रहते हैं । यह पापनाशिनी एवं मोक्षदायिनी है ।५।

पितामहकमण्डलुप्रभवमुक्तिबीजालता
श्रुतिस्मृतिगणस्तुता द्विजकुलालवालावृता ।
सुमेरुशिखराभिदा निपतिता त्रिलोकावृता ।
सुधर्मफलशालिनी सुखपलाशिनी राजते ।६।
चरद्विहगमालिनी सगरवंशमुक्तिप्रदा
मुनीन्द्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी ।
सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसंदर्शन-
प्रणामगुणकीर्तनादिषु जगत्सु संराजते ।७।
महाभिषगुणाङ्किता हिमगिरीशकूटस्तनी
सफेनजलहासिनी सितमरालसञ्चारिणी ।
चलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा
रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते ।८।

इस मुक्ति रूपी बीजलता का प्रादुर्भाव ब्रह्मा जी के कमण्डलु से हुआ है । द्विजगण इसके थान-वास रूप और सुधर्म इसका फल है । यह सुख रूप किसलयों से परिपूर्ण लता सुमेरु पर्वत का भेदन करके प्रगट हो गई । तीनों लोकों में व्याप्त गंगाजी का यह स्तोत्र श्रुति, स्मृति

आदि सभी वर्ग शास्त्रों से सम्मत है ।६। सगरवंश को मोक्ष देने वाली यह जाह्नवी, देवताओं के लिए मन्दाकिनी स्वरूपा तथा मर्दन मनुष्य के देने वाली है। प्रणाम पूर्वक इनका गुणगान करने और इनके निर्मल जल का दर्शन करने से ही संसार में सुख की प्राप्ति होती है ।७। हिमालय के शिखर पर बहने वाली यह भगवती महाराज शान्तनु की रानी हुई थी। इनका फेनों से युक्त जल ही हास है तथा श्वेत वर्ण वाले हंस जिनकी पंक्ति, खिले हुए कमलों से शोभित जिनकी माला तथा तरंगें ही जिनके हाथ हैं, ऐसी यह भगवती गंगा प्रमुदित गति से समुद्र से मिलने के लिए बही चली जा रही है ।८।

क्वचित्कलकलस्वना क्वचिदधीरयादोगणा
क्वचिन्मुनिगणैः स्तुता क्वचिदनन्तसम्पूजिता ।
क्वचिद्रविकरोज्ज्वला क्वचिदुदग्रपाताकुला
क्वचिज्जनविगाहिता जयति भीष्मसाता मती ।९।
स एव कुशलो जनः प्रणमतीह भागीरथीं
स एव तपसां निधिर्जपति जाह्नवीमादरात् ।
स एव पुरुषोत्तमः स्मरति साधु मन्दाकिनीं
स एव विजयी प्रभुः सुरतरङ्गिणीं सेवते ।१०।
तवामल जलाचित खगशृगालमीनक्षतं
चलल्लहरि लोलितं रुचिर तीर जम्बालितम् ।
कदा निजवपुर्मुदा सुरनरोरगैः संस्तुतोऽ-
प्यहं त्रिपथगामिनि प्रियमतीव पश्याम्यहो ।११।

जिनकी कहीं मुनिगण स्तुति करते हैं, तो कहीं अनन्त भगवान् द्वारा पूजी जाती हैं। जिनके जल में कहीं विकराल जीव विचर रहे हैं, कहीं जिनका जल कल कल गान कर रहा है, कहीं जल कहीं भीषण नाद करता हुआ पतित हो रहा है, जल पर कहीं सूर्य रश्मियाँ पड़ कर उसे प्रकाशमय कर रही हैं और कहीं उस जल में मनुष्य स्नान कर रहे हैं। ऐसी इन भीष्म की माता सती गंगाजी की जय हो ।९। इन सगरकी

गङ्गा को प्रणाम करने वाले पुरुष कुशल हैं। इनके नाम का जप करने वाले मनुष्य ही वास्तव में तपस्वी हैं। इनका स्मरण करने वाले प्राणी ही श्रेष्ठ हैं। इनकी उपासना करने वाले जीव ही सब को जीतने में समर्थ तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी हैं।२०। हे देवि! हे त्रिपथगे! आपके निर्मल जल में हमारा शरीर कब प्राप्त होगा? इस देह के मृत होने पर पक्षी और शृगाल आदि जब इसे नोचेंगे और फिर जब यह आपकी चपल तरंगों में उछलता हुआ तट पर स्थित शिलाओं से कब लगेगा? हे माता! मैं स्वयं तक को कब प्राप्त कर सकूँगा और तुम्हें, कर नाम कब मेरा स्मरण करेंगे? इस प्रकार का आपका सौभाग्य मैं कब देख सकूँगा? २१।

त्वत्तीरे वसति तवामलजलस्नानं तव प्रेक्षणं
त्वन्नामस्मरणं तवोदयकथासंलापनं पावनम्।
गङ्गे मे तव सेवनैकनिपुणोऽप्यानन्दितश्चाहृतः
स्तुत्वा त्वद्गतपातको भुवि कदा शान्तश्चरिष्याम्यहम्।२२।
इत्येतद् ऋषिभिः प्रोक्तं गङ्गास्तवमनुत्तमम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पठनाच्छ्रवणादपि।२३।
सर्वपापहरं पुंसां बलमायुर्विवर्द्धनम्।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने गङ्गासान्निध्यता भवेत्।२४।
इत्येतद् भार्गवाख्यानं शुकदेवान्मया श्रुतम्।
पठितं श्रावितं चात्र पुण्यं धन्यं यशस्करम्।२५।
अवतारं महाविष्णोः कल्केः परममद्भुतम्।
पठतां शृण्वतां भक्त्या सर्वाशुभविनाशनम्।२६।

हे गङ्गे! आपके तट पर वास करता हुआ और आपके निर्मल जल में स्नान करता हुआ मैं कब आपके दर्शन करूँगा? कब आपका नाम स्मरण करता हुआ आपके प्रसङ्गों की पुनीत कथा का गान करूँगा? आपकी सेवा करने के फल रूप में मेरे हृदय में आपकी भक्ति

का संचार कब होगा ? मेरे द्वारा किये गये पाप कब नष्ट होंगे ? कब मैं शान्त चित्त से पृथिवी पर विचरण करता हुआ ईश्वर को प्राप्त हूँगा ? ॥२॥ इस ऋषि प्रोक्त गंगा-स्तव का इस प्रकार पाठ किया गया । इसके पढ़ने और सुनने से धन-लाभ होता तथा आयु की वृद्धि होती है ॥३॥ इस स्तोत्र का प्रातः मध्याह्न और सायं—तीनों काल पाठ करने से गंगा जी का सान्निध्य प्राप्त होकर सब पापों का क्षय तथा बल और आयु की वृद्धि होती है ॥४॥ इस भार्गवाख्यान का मैंने शुकदेवजी से श्रवण किया था । यह पढ़ने और सुनने में पुण्यप्रद तथा धन और यश के बढ़ाने वाला है ॥५॥ भगवान् कल्कि के अवतार विषयक अद्भुत उपाख्यान का भक्ति सहित पाठ अथवा श्रवण करने पर सब प्रकार के अमंगलों का का नाश हो जाता है ॥६॥

—※—

एकविंश अध्याय

अत्रापि शुकसम्वादो मार्कण्डेयेन धीमता ।
अधर्मवंशकथनं कल्केर्विवरणं ततः ॥१॥
देवानां ब्रह्मसदनप्रयाणं गोभुवा सह ।
ब्रह्मणो वचनाद्विष्णोर्जन्म विष्णुयशोगृहे ॥२॥
सुमत्यास्त्वाग्रजैर्भ्रातृचतुर्भिः शम्भले पुरे ।
पितुः पुत्रेण सम्वादस्तथोपनयनं हरेः ॥३॥
पुत्रेण सह सम्वासो वेदाध्ययनमुत्तमम् ।
शस्त्रास्त्राणां परिज्ञानं शिवसन्दर्शनं ततः ॥४॥
कल्केः स्तवः शिवपुरो वरलाभः शुकार्पणम् ।
शम्भलागमनं साकं ज्ञातिभ्यो वरकीर्तनम् ॥५॥

सूतजी बोले—इस पुराण में प्रथम मार्कण्डेयजी और शुकदेवजी का सम्वाद वर्णन हुआ है । फिर अधर्म के वंश का वर्णन और कल्किजी का प्रसंग आया है । इसके अनन्तर गोरूप धारिणी पृथिवी के देवताओं के साथ ब्रह्मलोक गमन और विष्णुयशजी के घर कल्किजी के जन्म लेने की कथा कही गई । तत्पश्चात् भगवान् विष्णु के अंश से चारों भाइयों के शम्भल ग्राम में अवतरित होने का व्याख्यान, पिता-पुत्र-संवाद और कल्किजी के उपनयन संस्कार का विवरण है ।१ ३। फिर पिता पुत्रों का साथ साथ रहना, कल्किजी का वेद शास्त्रों तथा शस्त्रास्त्र की शिक्षा पाने की और भगवान् शंकर के दर्शन होने की कथा कही गई है ।४। तदनन्तर कल्किजी द्वारा शंकर-स्तवन और वर प्राप्त करना और शिवजी

द्वारा प्रदत्त शुक के सहित उनका शंभल ग्राम को लौटना तथा जाति बधुओं से वर प्राप्ति का वर्णन किया गया है ।२।

बृहद्रथनृपभूपेन निजसर्वोत्सवर्णनम् ।
महाभागवदेवाह्मणानां शुकस्यागमनं ततः ।६।
कल्किना शुकसंस्वाद सिंहलाख्यानमुत्तमम् ।
शिवदत्तवरा पद्मा तस्या भूपस्वयं वरे ।७।
दर्शनादभूपसंघानां स्त्रीभावपरिकीर्त्तनम् ।
तस्या विषादः कल्केस्तु विवाहार्थं समुद्यमः ।८।
शुकप्रस्थापन दोरये तथा तस्यापि दर्शनम् ।
शुकपद्मापरिचयः श्रीविष्णुः पूजनादिकम् ।९।
पादादिदेहध्यानञ्च केशान्त परिवर्णितम् ।
शुकभूषणदानञ्च पुन शुकसमागमः ।१०।

फिर विशाखयुप नरेश के प्रति कल्किजी द्वारा अपने स्वरूपका और ब्राह्मण—माहात्म्य का वर्णन करना तथा शुक के आगमन की कथा कही गई है ।३। फिर कल्कि-शुक संवाद, शुक द्वारा सिंहल द्वीप वर्णन, शिव द्वारा पद्मा को वर प्राप्ति का प्रसंग पद्मा के स्वयंवर में आये हुए राजाओं को स्त्रीत्व प्राप्ति का वर्णन तथा पद्मा के सन्ताप की चर्चा और विवाह के लिए कल्किजी के उद्यम की कथा कही गई है ।७-८। शुक का दूत-भाव से प्रस्थान, पद्मा और शुक की भेंट तथा दोनों के परिचय का प्रसंग और विष्णु भगवान् के पूजन की कथा है ।९। तदुपरान्त चरण से केश पर्यन्त, भगवान् के ध्यान करने का प्रसंग, शुक को आभूषण-दान और शुक का कल्किजी के पास लौटना—यह कथा वर्णित हुई है ।१०।

कल्केः पद्माविवाहार्थं गमनं दर्शनं तयोः ।
जलक्रीडाप्रसङ्गेन विवाहस्तदनन्तरम् ।११।
पुंस्त्वप्राप्तिश्च भूपानां कल्केर्दर्शनमात्रतः ।
अनन्तागमनं राज्ञा सम्वादस्तेन संसदि ।१२।

पण्डत्वादात्मनो जन्म कर्म चात्र शिवस्तव ।
मृते पितरि तद्विष्णोः क्षेत्रे मायाप्रदर्शनम् ।१३।
प्रस्तावस्थानमनन्तस्य ज्ञानवैराग्यवैभवम् ।
राज्ञां प्रयाणं कल्केश्च पद्मया सह शम्भले ।१४।
विश्वकर्मविधानञ्च वसति पद्मया सह ।
ज्ञातिभ्रातृसुहृत्पुत्रं सेनाभिर्बौद्धनिग्रहः ।१५।

तदनन्तर विवाह के उद्देश्य से कल्किजी का गमन, जल क्रीड़ा के प्रसंग द्वारा कल्किजी और पद्मा का पारस्परिक परिचय और इनके विवाह का प्रसंग कहा गया है ।११। फिर स्त्रीत्व को प्राप्त हुए राजाओं का कल्कि-दर्शन से पुनः पुरुषत्व की प्राप्ति, अनन्त मुनि का सभा में आगमन और राजाओं से सम्वाद की कथा का वर्णन है ।१२। पाखण्ड रूप से अनन्त मुनि के जन्म का वर्णन, शिवजी की स्तुति और अनन्त मुनि के पिता के परलोक-गमन के पश्चात् विष्णु क्षेत्र में भगवती माया के दर्शन का प्रसंग कहा गया है ।१३। तदनन्तर अनन्त का माहात्म्य, ज्ञान एवं वैराग्य रूप ऐश्वर्य का प्रसंग, फिर राजाओं का प्रयाण और पद्मा सहित कल्किजी के शम्भल-गमन की कथा कही है ।१४। फिर विश्वकर्मा द्वारा शम्भलपुरी का निर्माण और उसमें पद्मा, ज्ञाति-बांधव, भ्रातृगण, सुहृद्जन, पुत्रादि तथा सेना के सहित कल्किजी का निवास और बौद्धों के निग्रह की कथा वर्णन की गई है ।१५।

कपितश्चात्र तेषाञ्च स्त्रीणां समोधनाश्रयः ।
ततोऽत्रो बालखिल्यानां मुनीनां स्वार्तिवेदनम् ।१६।
सपुत्राया कुथोदर्या वधश्चात्र प्रकीर्तितः ।
हरिद्वारगतस्यापि कल्केर्मुनिसमागमः ।१७।
सूर्यवंशस्य वर्णनं सोमस्य च विधानतः ।
श्रीरामचरितं चात्र सूर्यवंशानुवर्णने ।१८।
देवापेश्च मरोः सगो युद्धायात्र प्रकीर्तितः ।

महाघोरवनेकोक विकोकविनिपातनम् ।१९।
भल्लाटगमनं सह शय्याकर्णादिभि सह ।
युद्धं शशिध्वजेनाथ सुशान्त्या भक्तिकीर्तनम् ।२०।

युद्धगामी बौद्धों की नारियों का रणक्षेत्र में युद्ध के उद्देश्य से आगमन, बालखिल्य मुनियों का आगमन और अपने वृत्तान्त का वर्णन ।१३। फिर कुथोदरी नाम की राक्षसी का अपने पुत्र के सहित मारा जाना तथा हरिद्वार में कल्किजी से मुनियों का मिलना कहा गया है ।१७। फिर सूर्यवंश और चन्द्रवंश का वर्णन तथा सूर्यवंश के प्रसंग में भगवान् श्री राम का चरित्र-वर्णन हुआ है ।१८। फिर मरु और देवापि का युद्ध के लिए आगमन, अत्यन्त विकराल कोक-विकोक का वध, कल्किजी की भल्लाट नगर-यात्रा, शय्याकर्ण आदि से युद्ध, शशिध्वज-कल्किजी का संग्राम और सुशान्ता द्वारा भक्ति तत्त्व कीर्तन की कथा कही गई है ।१९-२०।

युद्धे कल्केरागमनं धर्मस्य च कृतस्य च ।
सुशान्ताया स्तवस्तस्य रमोद्वाहस्तु कल्किना ।२१।
सभायां पूर्वकथनं निजवृक्षत्वकारणम् ।
मोक्षं शशिध्वजस्याथ भक्तिमाश्रयितुर्विभो ।२२।
विषकन्यामोचनञ्च नृपाणामभिषेचनम् ।
मायास्तवं शम्भलेषु नानायज्ञादि साधनम् ।
नारदस्तुम्बुरुसंवादो मोक्षदश्च प्रकीर्तित ।
कृतधर्मं प्रवृत्तिश्च कल्किनो यशकीर्तनम् ।२४।
ततो विहारः कल्केश्च पुत्रपौत्रादि सम्भवः ।
कथितो देवगन्धर्वगणागमनमत्र हि ।२५।

फिर युद्ध क्षेत्र से कल्किजी, धर्म और सतयुग का शशिध्वज द्वारा अपने घर लाया, रानी सुशान्ता द्वारा कल्किजी का स्तव और कल्कि-रमा विवाह का प्रसंग कहा गया है ।२१। फिर राजा शशिध्वज

का अपने पूर्व-जन्मों का वृत्तान्त-कथन, गृध्र देह प्राप्ति का प्रसंग, कल्किजी के प्रति भक्ति का निवेदन और और राजा शशिध्वज को मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन हुआ है।२२। विषकन्या का उद्धार, राजाओं का राज्याभिषेक, भगवती माया का स्तव तथा शम्भल ग्राम में विविध वर्णों का अनुष्ठान।२३। तदनन्तर विष्णुयशजी का नारदजी से मोक्ष-विषयक प्रश्न, लोक में सत्युग का स्थापन और रुक्मिणी व्रत का प्रसंग।२४। फिर कल्किजी का विहार-वर्णन, पुत्र-पौत्रादि की उत्पत्ति और देवताओं तथा गन्धर्वों के शम्भल ग्राम में आगमन की कथा कही गई है।२५।

ततो वैकुण्ठगमनं विष्णोः कल्केरिहाश्रितम्।
शुकप्रस्थानं मुदितः कथयित्वा कथाः शुभाः।२६।
गङ्गास्तोत्रमिह प्रोक्तं पुराणे मुनिसम्मतम्।
जगतामानन्दकरं पुराणं पञ्चलक्षणम्।२७।
चतुर्वर्गप्रदं कल्किपुराणं परिकीर्तितम्।
प्रलयान्ते हरिमुखान्निःसृतं लोके विस्तृतम्।२८।
महांशांशेन कथितं द्विजरूपेण भूतले।
विष्णोः कल्केर्भगवतः प्रभावं परमाद्भुतम्।२९।
येऽभ्यस्यन्ति पुराणसारममलं श्रीविष्णुभावाप्लुताः।
शृण्वन्तीह वदन्ति साधुसदसि क्षेत्रे सुतीर्थाश्रमे।
दत्त्वाश्वं तुरगं गजं वरं स्वर्णं द्विजायादरात्
वस्त्रालङ्करणैः प्रपूज्य विधिवन्मुक्तास्त एवोत्तमाः।३०।

फिर कल्किजी के वैकुण्ठ-गमन का वर्णन करके शुकदेव जी का कथा समाप्त करके चले जाना कहा गया है।२६। फिर इस पुराण में मुनियों द्वारा कथित गंगास्तोत्र का वर्णन हुआ है। संसार को आनन्द देने वाला यह पुराण पाँच लक्षणों से सम्पन्न है।२७। यह कल्कि पुराण, कीर्तन करने से, चतुर्वर्ग के देने वाला है। प्रलय के अन्त

और फिर तीर्थाटन को चले गये ।३३। इसके पश्चात् मंत्रविद् एवं धर्मात्मा मुनिवर शौनकजी अन्यान्य मुनियों के सहित भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए ब्रह्म को प्राप्त हो गये ।३४। सब पुराणों के ज्ञाता, व्यासजी के परम शिष्य, लोमहर्षणपुत्र उन मुनिश्रेष्ठ सूतजी को मैं प्रणाम करता हूँ ।३५।

आलोड्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा । ३६।
वेद रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ।३७।
सजलजलददेहो वातवेगैकवाहः
करधृतकरवाल सर्वलोकैकपालः ।
कलिकुल बलहन्ता सत्यधर्म प्रणेता ।
कलयतुकुशलवः कल्किरूप; सभूपः ।३८।

सभी शास्त्रों के अध्ययन और उन पर बारम्बार विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि सदैव भगवान् श्रीनारायण का ध्यान करना ही श्रेयस्कर है ।३६। क्योंकि वेद, पुराण, रामायण और महाभारत आदि सभी शास्त्रों ने अपने आदि, मध्यादि में सर्वत्र इन्हीं भगवान् श्रीहरि का गुण कीर्त्तन किया है ।३७। जलयुक्त मेघ जैसे वर्ण वाले वायु के समान वेग वाले अश्वारूढ होने वाले, हाथ में तलवार धारण करने वाले, सत्य- धर्म के प्रणेता, राजाओं के सहित निवास करने वाले कलियुग के परिवार रूपी वन का हनन करने वाले भगवान् कल्किजी हमारा कल्याण करें ।३८।

॥ श्री कल्कि पुराण सम्पूर्ण ॥

—॥—